माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

आरक्षी महानिदेशक, झारखण्ड, राँची के माध्यम से झारखण्ड राज्य एवं अन्य

बनाम

ठाकुर अजित कुमार एवं अन्य

LPA No. 30 वर्ष 2009 साथ में I.A. No. 908 वर्ष 2009. 30 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–वसूली–अभिकथित अतिरेक धनराशि को लघुकरणीय वेतन संरक्षण के माध्यम से भुगतान के 12 वर्ष से अधिक समय के पश्चात् वसूल नहीं किया जा सकता था–ऐसी कोई भी राशि सुनवायी का अवसर दिये बिना वसूल नहीं किया जा सकता है–कर्मचारी को सुनवायी का अवसर देने के उपरांत भी, विशेषकर किसी प्रथम दृष्टया मामले की अनुपस्थिति में, मामले को दोबारा खोलने की छूट राज्य को नहीं दी जा सकती है।

(पैरा 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Shankar, For the Appellants.

आदेश

यह अपील तीन रिट याचिकाएँ W.P. (S) No. 2504 वर्ष 2008, W.P. (S) No. 3506 वर्ष 2008 एवं W.P. (S) No. 3563 वर्ष 2008, के समूह में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 20.8.2008 के आदेश के विरूद्ध दायर की गयी है, जिसके द्वारा सभी रिट याचिकायों को अनुज्ञात किया गया था एवं प्रत्यर्थी-झारखंड राज्य-वर्तमान अपीलार्थी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अभिखंडित एवं अपास्त किया गया था, जिसके द्वारा अपीलार्थी-झारखण्ड राज्य ने उस राशि की वसूली का आदेश दिया था जो अभिकथित रूप से लघुकरणीय वेतन संरक्षण के माध्यम से याचीगण-वर्तमान प्रत्यर्थी द्वारा प्राप्त अतिरेक राशि था। वसूली का आदेश प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण द्वारा इसकी प्राप्ति के 12 वर्षों से अधिक समयोपरांत पारित किया गया था और वह भी उनलोगों को कोई कारण-पृच्छा नोटिस निर्गत किए बिना एवं सुनवायी का कोई अवसर प्रदान किए बिना।

2. यह अपील 124 दिनों के विलम्ब के उपरांत दाखिल किया गया है, जिसके लिए एक स्पष्टीकरण पेश किया गया है, जो सामान्य एवं घिसापिटा है कि ये फाइलें एक विभाग से दूसरे विभाग तक गयी, जो विलम्ब की माफी का कोई मामला नहीं बनाता है।

3. इस अत्यधिक विलम्ब के बावजूद, हमने मामले को मात्र विलम्ब के आधार पर खारिज किए जाने की दशा में, अपीलार्थी-राज्य को मात्र उस अन्याय से बचाने के लिए जो परिणामित हो सकता था, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता को मामले के गुणागुणों पर इस न्यायालय को संबोधित करने की अनुज्ञा दी थी। इसी कारण से हमने मामले को गुणागुणों पर भी सुना है, परन्तु हम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अशक्तता पाने में सफल नहीं रहे हैं जिन्होंने एक न्यायोचित एवं युक्तिसंगत दृष्टिकोण अपनाया है कि अभिकथित अतिरेक धनराशि की वसूली भुगतान के बारह वर्षों के उपरांत नहीं की जा सकती थी जिसे प्रत्यर्थीगण ने लघुकरणीय वेतन संरक्षण के माध्यम से किया है। इसके अतिरिक्त, हमने इस बात पर गौर किया है कि काफी संख्या में कर्मचारी समय के अनुक्रम में सेवानिवृत्त हो गए एवं यहाँ तक कि अपीलार्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि सेवानिवृत्त कर्मचारियों से धनराशि की वसूली करना विवेकपूर्ण नहीं होगा, यदि यह वसूल किए जाने योग्य ही नहीं है।

4. यदि वैसा है, तो हम यह समझने में असमर्थ है कि किस प्रकार से अपीलार्थी-राज्य को कर्मचारी से उक्त राशि की वसूली करने की अनुज्ञा दी जा सकती है जो अभी भी सेवा में है, विशेषकर तब जब राशि की वसूली के 12 वर्ष के पश्चात् उनलोगों से राशि की वसूली करने का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है।

5. लेकिन प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय को यह कहकर कई औचित्य पेश किया है कि राशि वसूल किए जाने योग्य था एवं इस परिप्रेक्ष्य में उसने कहा है कि ऐसी परिस्थितियाँ सीमित थी, केवल जिसके अधीन ही कर्मचारियों को लघुकरणीय वेतन संरक्षण मंजूर किया जा सकता था एवं प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण उस कोटि में नहीं आते थे।

6. यदि इस निवेदन को सत्य के तौर पर स्वीकार किया जाता है, तो भी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा समनुदेशित तर्कों को दरकिनार करना कठिन है जिन्होंने गुणागुणों पर अभिलिखित किया है कि राशि की वसूली का आदेश याचीगण-प्रत्यर्थीगण को सुनवायी का अवसर दिए बिना नहीं दिया जा सकता था। राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उक्त अवसर मामले को प्रतिप्रेषित करके अब प्रत्यर्थीगण को दिया जा सकता है। लेकिन, अपीलार्थी-राज्य ने एकल न्यायाधीश के समक्ष कभी भी प्रतिवाद नहीं किया था कि अब अपीलार्थी-राज्य द्वारा सुनवायी का अवसर प्रत्यर्थीगण-कर्मचारीगण को दिए जाने की अनुज्ञा दी जा सकती है एवं अपील के प्रक्रम पर, भुगतान के 12 वर्ष के उपरांत, यदि यह अवसर झारखण्ड राज्य को प्रदान किया जाता है तो यह वादों की एक बड़ी संख्या सृजित करने को बाध्य है, जिसके फलस्वरूप उन कर्मचारियों को कष्ट परिणामित होगा।

7. हमने इस तथ्य पर भी गौर किया है कि वह राशि जो प्रत्यर्थीगण द्वारा प्राप्त की गयी थी उसका भुगतान झारखण्ड राज्य के सृजन के भी पूर्व वर्ष 2000 में किया गया था, यदि अपीलार्थी-राज्य के वसूली आदेश के सम्बन्ध में प्रत्यर्थीगण को सुनवायी का अवसर मंजूर करने की स्वतंत्रता अभी भी इसके पास शेष है तो यह वाद के 'पंडोरा का पिटारा' खोलने को बाध्य होगा, जो अनिश्चित वर्षों तक घसीटे जाने को बाध्य है। इसलिए हम इसका अनुमोदन नहीं करते हैं विशेष रूप से अपीलार्थी-राज्य के पक्ष में किसी प्रथम दृष्टया मामले की अनुपस्थिति में।

8. इन सभी कारणों से, हम इस तथ्य के अतिरिक्त इस अपील में कोई बल नहीं पाते हैं कि यह 124 दिनों से काल-वर्जित है। चूँकि हमने अधिवक्ता को अपील के गुणागुण पर हमें सम्बोधित करने की अनुज्ञा दी थी, इसलिए विलम्ब की माफी के आवेदन (I.A. No. 908 वर्ष 2009) को अनुज्ञात समझा जाये परन्तु जहाँ तक अपील के गुणागुण का सम्बन्ध है, यह सार रहित है एवं इसलिए इसे स्वीकृति के प्रक्रम पर ही खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

गोपाल केशरी

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W. P. (C) No. 613 वर्ष 2008. 13 मई, 2009 को विनिश्चित।

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955—धाराएँ 3 एवं 7—अधिहरण–यह अभिकथन कि 174 क्विंटल चावल अधिग्रहित किए गए थे–अधिहरण कार्यवाही प्रारम्भ हुई–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अपराधों के लिए आपराधिक मामला इस संदेह पर प्रारम्भ किया गया कि ऐसे बोरों में बन्द पाया गया था जिसपर भारतीय खाद्य निगम के मुहर था–अभिनिर्धारित, संपूर्ण दाण्डिक कार्यवाही एवं अधिहरण कार्यवाही अनुचित है क्योंकि भारतीय खाद्य निगम के बोरे खुले बाजार में उपलब्ध है एवं उसका उपयोग चावल पैक करने में किया जा सकता है–चावल का मूल्य याची को लौटाये जाने का निर्देश दिया गया है–सम्पूर्ण कार्यवाहियाँ अभिखंडित की गयी। **(पैरा 9 से 11)**

निर्णयज विधि.–LPA No. 179 of 2006; W.P.(C) No. 2567 of 2007—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Nilesh Kumar Agrawal, For the Petitioner; J.C. to S.C.-II, For the Respondent-State.

आदेश

याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री निलेश कुमार अग्रवाल एवं प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से स्थायी अधिवक्ता-II के कनीय अधिवक्ता को सुना।

2. याची ने अधिहरण केस सं॰ 34 वर्ष 2006 में उप-आयुक्त, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 26.11.2007 के आदेश एवं अधिहरण कार्यवाहियों को भी चुनौती दी है, जिसके द्वारा याची का 174 क्विंटल वजन का चावल जिसे याची के कब्जे से जब्त किया गया था, अधिहरण किया गया है।

3. चावल के अधिग्रहण एवं अधिहरण कार्यवाहियों के प्रारम्भ किए जाने को निर्दिष्ट करते हुए याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थीगण की संपूर्ण कार्रवाई, अत्यधिक अविधिमान्य एवं विधि के प्रावधानों के विरूद्ध है। विद्वान अधिवक्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि चावल अधिग्रहण किए जाने की तिथि को, चावल इत्यादि की स्टॉक सीमा, वितरण या परिवहन के सम्बन्ध में किसी नियंत्रण आदेश के माध्यम से कोई निर्बंधन नहीं था। फिर भी, इस संदेह के अभिवाक् पर कि चावल को बोरों में बन्द पाया गया था जिसपर भारतीय खाद्य निगम का मुहर था एवं यह भारतीय खाद्य निगम का था, चावल उपाप्त करने से संबंधित कागजातों की मांग की गयी थी, एवं यद्यपि याची ने इसे उपाप्त किया था परंतु इसे पेश किए जाने के बावजूद, चावल की 174 क्विंटल की सम्पूर्ण मात्रा को अभिग्रहित किया गया था एवं आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3 के उल्लंघन के अभिकथन पर अधिहरण कार्यवाहियाँ भी प्रारम्भ की गयी है एवं याची के विरूद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 7 एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन अपराध के लिए एक आपराधिक अभियोजन भी दर्ज किया गया था। यद्यपि याची को उस मामले में जमानत पर निर्मुक्त किया गया था, परंतु उसका विचारण अभी भी लंबित है।

4. प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रति शपथपत्र दाखिल किए गए हैं। प्रत्यर्थीगण द्वारा अपने प्रति शपथपत्र में अपनाया गया अभिवाक् यह है कि चूँकि याची के कब्जे से पाये गये चावल के बोरों पर, भारतीय खाद्य निगम का मुहर था, इसलिए इस बात का युक्तिसंगत संदेह था कि चावल को एफ॰ सी॰ आई॰ से अवैध रूप से उपाप्त किया गया था एवं इसलिए चावल के बोरों को जब्त किया गया था एवं याची के विरूद्ध एक प्राथमिकी दर्ज की गयी थी एवं अधिहरण कार्यवाही भी प्रारम्भ किया गया था।

5. प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता स्वीकार करते हैं कि 174 क्विंटल चावल के अभिग्रहण की तिथि पर, चावल इत्यादि की स्टॉक सीमा, वितरण या परिवहन के सम्बन्ध में किसी नियंत्रण आदेश के माध्यम से कोई निर्बंधन नहीं था। लेकिन, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि चावल बोरों में बन्द पाया गया था जिसपर भारतीय खाद्य निगम का मुहर एवं टैग था एवं इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि याची यह स्पष्ट करने में सफल नहीं हो सकता कि उसने इसे कैसे उपाप्त किया, इसलिए इस बात की युक्तिपूर्ण संभावना थी कि इसे भारतीय खाद्य निगम से अवैध रूप से उपाप्त किया गया था।

6. उपायुक्त द्वारा पारित अधिहरण कार्यवाही प्रारम्भ करने वाले आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि याची द्वारा उस स्त्रोत को स्पष्ट करते हुए याची द्वारा पेश किये गये दस्तावेजों को इसमें संदर्भ बनाया गया है जहाँ से उसके द्वारा चावल उपाप्त किया गया था परन्तु इसपर विचार नहीं किया गया था।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि चावल के बोरों का अधिग्रहण इस अभिवाक् पर किया गया था कि याची एक अनाज विक्रेता होते हुए उसने अनाज विक्रेताओं की अनुज्ञप्ति प्राप्त

नहीं की है, यद्यपि, चावल के स्टॉक सीमा, वितरण या परिवहन इत्यादि के सम्बन्ध में कोई निर्बंधन की अनुपस्थिति में जब प्रत्यर्थीगण द्वारा चावल के बोरों का अधिग्रहण किया गया था उस तिथि को अनाज विक्रेताओं की अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त करना आवश्यक बनाने वाला कोई आदेश नहीं था।

8. जैसा कि प्रतीत होता है, चावल के बोरों का अभिग्रहण मात्र इस तथ्य के कारण संदेह के आधार पर किया गया था कि चावल को उन बोरों में बंद किया गया था जिसपर भारतीय खाद्य निगम के मुहर एवं टैग थे।

9. इसी प्रकार का एक विवाद्यक **WP(C) No. 2567 वर्ष 2007** में पारित **भोली कुमार भोजगरिया बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय के समक्ष एवं साथ ही **L.P.A. No. 179 वर्ष 2006** में **दिलीप कुमार बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** के मामले में भी इस न्यायालय की खण्डपीठ के समक्ष विचारणार्थ आया। **भोली कुमार भोजगरिया, (उपर)** के मामले में निम्नलिखित शब्दों में संप्रेक्षित किया गया था:–

> *''पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करके, मैं चिंतित हूँ कि प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिविरोध में मात्र इस कारण से कुछ सार है कि अनाजों को ऐसे बोरों में रखा एवं संग्रहित किया गया था जिसमें भारतीय खाद्य निगम का मुहर था, अभिलेख पर मौजूद किसी सामग्री के बिना यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि उक्त वस्तु भारतीय खाद्य निगम का था। याची के विद्वान अधिवक्ता का प्रतिविरोध यह है कि प्रयोग हो चुके भारतीय खाद्य निगम के बोरे बाजार में उपलब्ध हैं एवं उसे आसानी से खरीदा जा सकता है, इसपर प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विवाद एवं इससे इनकार नहीं किया गया है। उस दृष्टिकोण से, मैं ऐसा कोई विधिक आधार नहीं पाता हूँ जिसपर अधिहरण कार्यवाही जारी रहने की अनुज्ञा दी जा सकती है एवं आक्षेपित अधिग्रहण का समर्थन आवश्यक वस्तु अधिनियम के प्रावधानों के अधीन किया जा सकता है।''*

वर्तमान मामले के तथ्य उपरोक्त मामले के तथ्यों के सदृश हैं।

10. उपरोक्त विवेचनों के आलोक में, चावल का अधिग्रहण एवं आक्षेपित आदेश के माध्यम से अधिहरण कार्यवाहियों का प्रारम्भ किया जाना एवं चावल के अभिग्रहित बोरों के अधिहरण का दिनांक 26.11.2007 का अंतिम आदेश अविधिमान्य एवं अनवधार्य है।

उक्त कारणों से, रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। आक्षेपित आदेशों को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

11. यह सूचित किया जाता है कि अधिहरण के आदेश के अनुसरण में चावल के बोरों को बेचा गया था एवं विक्रय के आगमों को सरकारी कोषागार में निक्षेपित किया गया है। यदि वैसा हो, तो याची के अभिग्रहित चावल के विक्रय आगमों को सांविधिक ब्याज सहित इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति से एक माह के भीतर परिदत्त करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

चन्द्र शेखर राय @ बग्घा राय

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 151 वर्ष 2009. 20 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—पुनःस्थापन–एक पुनरीक्षण आवेदन, जो व्यक्तिक्रम के कारण खारिज कर दिया था, के पुनःस्थापन के लिए रिट आवेदन–पुनःस्थापन के लिए याची ने पुनर्विलोकन आवेदन दाखिल कर दिया–प्राधिकारी ने पुनरीक्षण आवेदन के पुनःस्थापित करने से इनकार कर दिया यह अवधारित करते हुए कि पुनःस्थापन के लिए पुनर्विलोकन आवेदन समर्थनीय नहीं है और उसे इसे पुनःस्थापित करने की कोई शक्ति नहीं है–अभिनिर्धारित, प्राधिकारी ने मामले के तथ्यों को देखते हुए अधिक-से-अधिक कुछ व्यय अधिनिर्णीत करके आवेदन को पुनःस्थापित कर देना चाहिए था–पुनर्विलोकन आवेदन के पुनःस्थापित करने और मामले के शीर्षक, जो पुनर्विलोकन आवेदन दे दिया गया है, की उपेक्षा करते हुए मामले के अपने गुणावगुणों पर इसे निर्णीत करने का निर्देश दिया गया–एक अधिवक्ता के गलती से निर्दोष पक्ष को कष्ट नहीं होना चाहिए। (पैरा 2 एवं 3)

अधिवक्तागण.–Mr. Prakash Chandra Roy, For the Petitioner; J.C. to Sr. SC-I, For the State.

आदेश

वर्तमान याचिका को मुख्यतः इस कारण से दाखिल किया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 ने वर्तमान याची द्वारा अपने पुनरीक्षण आवेदन, जो पुनरीक्षण केस संख्या (सी॰) 7 वर्ष 2005 था, को पुनःस्थापित करने के लिए दाखिल पुनःस्थापन आवेदन का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया है, यह पुनरीक्षण आवेदन प्रारम्भ में व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया था, तत्पश्चात्, पुनःस्थापन आवेदन दाखिल किया गया था, तथापि इसे दोबारा पुनःस्थापित किया गया और, तत्पश्चात् बिना किसी कारण से यह केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि प्रत्यर्थी संख्या 4 में पुनरीक्षण की कोई शक्ति निहित नहीं है। प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा यह 10 दिसम्बर, 2008 को पारित किया गया था। (वर्तमान याचिका के ज्ञापांक का परिशिष्टि-4)।

2. दोनो पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की सुनवाई करके और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए:–

(i) यह प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में वर्तमान याची ने प्रत्यर्थी संख्या 4 के समक्ष पुनरीक्षण याचिका के तौर पर अधिहरण अपील सं० 4 वर्ष 2002 में उप-आयुक्त, गिरिडीह के दिनांक 29 मार्च, 2005 को पारित आदेश को चुनौती दी थी।

(ii) यह प्रतीत होता है कि किसी कारण से याची का प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति संभवतः अनुपस्थित रहा हो और, इसलिए याची का पुनरीक्षण आवेदन व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया था;

(iii) यह प्रतीत होता है कि पुनःस्थापन आवेदन दाखिल किया गया था (परन्तु वस्तुतः इस आवेदन का शीर्षक दिया गया था; पुनर्विलोकन आवेदन) एवं पुनरीक्षण केस संख्या (C) 7 वर्ष 2005 के इसकी मूल याचिका में पुनःस्थापित कर दिया गया था;

(iv) परिशिष्ट-4 पर आपेक्षित आदेश से यह प्रतीत होता है कि अचानक ही प्रत्यर्थी संख्या 4 को कुछ समझ आया होगा और, इसलिए, अचानक ही प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा यह अवधारित किया गया कि वह याची के आवेदन को पुनःस्थापित नहीं कर सकता, क्योंकि पुर्नविलोकन की कोई शक्ति नहीं है क्योंकि याची (जो एक ट्रैक्टर पर स्वामित्व का दावा कर रहा है) ने पुनःस्थापन के अपने आवेदन का शीर्षक 'पुनःविलोकन आवेदन' दिया है;

(v) यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 कुछ अधिक ही तकनीकी पेंचिदगी वाला पदाधिकारी है;

(vi) यह प्रतीत होता है कि कुछ बुद्धि लगाकर प्रत्यर्थी संख्या 4 को यह समझना चाहिए कि मूलतः आवेदन एक पुनःस्थापन आवेदन है और एक पुनर्विलोकन आवेदन नहीं। आवेदन में शीर्षक को नहीं देखना था अपितु आवेदन के मूल तत्व को प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा समझना और मूल्यांकित करना था। आवेदन का संभवतः एक भ्रामक शीर्षक हो सकते हैं, परन्तु याची जो अधिहरण किए गए ट्रैक्टर को मुक्त किए जाने

की प्रार्थना कर रहा है, द्वारा दाखिल उस आवेदन के साथ एवं तत्व और कुछ नहीं है बल्कि यह है कि वह एक पुनःस्थापना आवेदक है। मामले के इस पहलू का प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है, जो अभिलेख पर एक प्रकट त्रुटि है।

(vii) यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 ट्रैक्टर के स्वामी, अर्थात्, याची से अत्यधिक कानूनी भाषा की अपेक्षा कर रहा है जो वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए वांछनीय नहीं है। समाज के लिए क्या आवश्यक है इसको निर्णयन अभिकर्त्ता यानि, प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा समझा जाना चाहिए। मामले के इस साधारण पहलु का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है और अनावश्यक रूप से इस साधारण आदमी को एक याचिका दाखिल करना पड़ा और अब उसे सरकारी सेवा के चंगुल से अपने ट्रैक्टर को छुड़ाने के लिए काफी लम्बी अवधि तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। जब कभी भी एक मामला एक अधिवक्ता या इसका प्रतिनिधित्व कर रहा एक पक्ष की अनुपस्थिति से हुए व्यतिक्रम के कारण खारिज किया जाता है तो व्यतिक्रम के लिए खारिज करने से पहले इसे समझना चाहिए कि एक अधिवक्ता की भूल के कारण निर्दोष कष्ट नहीं झेले। प्रत्यर्थी संख्या 4 के इस मामले की जांच करनी चाहिए थी कि याची का प्रतिनिधित्व करने वाला अधिवक्ता अनुपस्थित क्यों था। केवल प्रत्यर्थी संख्या 4 के अति तकनीकी दृष्टिकोण के कारण इस मामले में काफी ज्यादा समय लग चुका है। उस मामले में तथ्यों को देखते हुए अधिक से अधिक कुछ व्यय का अधिनिर्णय करके आवेदन का पुनःस्थापन कर देना चाहिए था।

3. उपरोक्त तथ्यों एवं कारणों की दृष्टि से, मैं एतद् द्वारा पुनरीक्षण वाद संख्या (सी॰) 7 वर्ष 2005 में इसकी मूल संचिका में पुनःस्थापित करता हुँ और मैं एतद् द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 को इसका निर्णय उसके अपने गुणावगुणों पर विधिसम्मत ढंग से करने का निर्देश देते हैं और मैं एतद् द्वारा आज की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर याची द्वारा प्रत्यर्थीगण को 100/- रुपए का भुगतान करने का व्यय अधिरोपित करता है और मैं एतद् द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 को पुनरीक्षण वाद संख्या (सी॰) 7 वर्ष 2005 को इसके अपने गुणावगुणों के आधार पर यथा संभव और यथा व्यवहार्य रूप से जल्द-से-जल्द निस्तारित करने का निर्देश देता हूँ, और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तिथि से 12 सप्ताह की अवधि के भीतर ऐसा करना श्रेयस्कर होगा। तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

मेसर्स एस॰ एन॰ अग्रवाल

बनाम

सेन्ट्रल कोलफिल्ड लिमिटेड एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 3175 वर्ष 2005. 8 मई, 2009 को विनिश्चित।

माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996—धारा 11—माध्यस्थ की नियुक्ति—माध्यस्थ ने धन के भुगतान के सम्बन्ध में विवाद का विनिश्चय नहीं किया एवं यह आदेश पारित किया कि विवाद कालवर्जित है—पंचाट के तौर पर विचारण नहीं किया जा सकता—मामले को इसके गुणावगुणों पर विचार करने के लिए प्राधिकारियों को प्रतिप्रेषित किया गया। (पैरा 14 एवं 15)

अधिवक्तागण.—Mr. A.K. Sahani, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ साहनी एवं प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ के विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन को सुना।

पक्षों की सहमति से, यह आवेदन पेश किए जाने के चरण में निस्तारित किया जा रहा है।

2. प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ के विरूद्ध धन के लिए याची के दावे के संबंध में माध्यस्थ (प्रत्यर्थी संख्या 4) को निर्दिष्ट विवाद पर उसके द्वारा तात्पर्यित रूप से पारित एक अधिनिर्णय जो दिनांक 28 फरवरी, 2002 (परिशिष्ट-20) का आदेश है, को निरस्त करने के लिए प्रार्थना इस आवेदन में याची द्वारा की गई है।

3. याची का मामला विस्तार में यह है कि याची के एक पंजीकृत संविदाकार होने के नाते संविदा के अधीन चार विभिन्न कार्यों को निष्पादित करने के लिए प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ द्वारा नियोजित किया गया था। संविदाएं 1976-1980 के बीच प्रदान की गई थी। संविदा में विनिर्दिष्ट कार्यों के अतिरक्त, प्रत्यर्थीगण के सम्बद्ध प्राधिकारों के कहने पर याची द्वारा कतिपय अतिरिक्त कार्य भी निष्पादित किए गए थे।

प्रत्येक संविदा के कार्यों के निष्पादन का प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ द्वारा तैनात पदाधिकारी द्वारा पर्यवेक्षण किया जाता था और निष्पादित कार्यों की सीमा, प्रत्यर्थीगण के प्राधिकृत पदाधिकारी द्वारा मापन पुस्तिका में प्रविष्टि की जाती थी।

कार्यों को पूरा करने के उपरांत, याची ने प्रतिभूति राशि जिसे प्रत्यर्थीगण द्वारा उससे प्रारम्भ में प्राप्त किया गया था, के वापसी के अपने दावे के अतिरिक्त भुगतान के लिए अपने विपत्र पेश किए।

याची द्वारा बार-बार स्मरण कराए जाने के बावजूद बिलों के भुगतान को पूरा नहीं किया गया और इसमें विलम्ब करना जारी रखा गया। अन्ततः सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 1897 वर्ष 1998 (आर) के माध्यम से याची ने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट आवेदन दाखिल किया। दिनांक 17.2.1999 के आदेश द्वारा, याची को रिट आवेदन का निस्तारण इस स्वतंत्रता के साथ किया गया कि वह अपने दावे के विवरणों को कथित करते हुए और उसके साथ समथर्नकारी दस्तावेजों को संलग्न करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 3 के समक्ष जाए और अभ्यावेदन की तिथि से छः महीनों की अवधि के भीतर एक युक्तिसंगत आदेश पारित करके दावे का निर्णय करने के लिए प्रत्यर्थीगण प्राधिकारी को एक तत्सम निर्देश के साथ और इस दौरान याची को स्वीकृत बकायों, अगर कोई हो, का भुगतान भी कर देना था।

4. इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त निदेश के अनुसरण में, याची ने कुल विनिर्दिष्ट राशि के भुगतान के लिए प्रत्यर्थी संख्या 3 के समक्ष अपना दावा रखा। तथापि, याची द्वारा दावा की गई राशि के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 3 ने एक विवाद उठाया। विवाद का समाधान करने के लिए, याची को प्रदत्त चार कार्यों के संबंध में दावे से जुड़े विवाद का समाधान करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 ने विवाद्यक के तौर पर प्रत्यर्थी संख्या 4 की नियुक्ति की जो प्रत्यर्थी, सी॰ सी॰ एल॰ के एक सेवानिवृत्त कार्यपालक पदाधिकारी थे।

5. माध्यस्थ् की नियुक्ति पर, माध्यस्थम् कार्यवाही प्रारम्भ हुई और पहली सुनवाई 25.4.2000 को आयोजित की गई, एवं कार्यवाही की पहली तिथि को माध्यस्थ् (प्रत्यर्थी संख्या 4) ने घोषणा की थी कि वह 24.8.2000 तक अधिनिर्णय सुना देगा।

याची का तर्क है कि चूँकि सभी सुसंगत पुस्तिकाएं जिसमें मापन पुस्तिकाएं, कार्यस्थल आदेश पुस्तिकाएं संविदाकार के भुगतान का लेजर परिवर्तनों एवं विचलनों को दर्शाने वाले पुनरीक्षित आकलन इत्यादि शामिल थे, प्रत्यर्थीगण के पास थी, इसलिए उसने माध्यस्थ् से प्रत्यर्थीगण को सभी सुसंगत दस्तावेज को पेश करने का निर्देश देने हेतु आग्रह किया था, परन्तु, ऐसे आग्रह पर माध्यस्थ् द्वारा विचार नहीं किया गया था। याची ने माध्यस्थ् के समक्ष कार्यपालक अभियंता (C) सिरका का दिनांक 20.7.1999 का एक पत्र भी रखा था, जिसके द्वारा उसने स्वीकार किया था कि याची के साथ संविदाओं को बन्द नहीं किया गया है। जब बार-बार के आग्रहों के बावजूद माध्यस्थ् ने माध्यस्थम् कार्यवाही को पूर्ण करने की कार्यवाही नहीं की तो याची ने कथित कारणों से प्रत्यर्थी संख्या 2 को विवाचक के बदलने के लिए एक पत्र लिखा उससे यह कहते हुए कि वह माध्यस्थ् में पूरी तरह

विश्वास खो चुका है जो याची के अनुसार निष्पक्ष रूप से कार्य नहीं कर रहा था। माध्यस्थ् को बदलने के लिए आग्रह को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया।

तदुपरि प्रत्यर्थी संख्या 2 के दिनांक 30.1.2001 के पत्र को जिसके द्वारा माध्यस्थ् को बदलने के लिए याची के आग्रह को अस्वीकृत किया गया था, को चुनौती देते हुए याची ने सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 1924 वर्ष 2001 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष एक और रिट आवेदन दाखिल किया गया था। तथापि, विवाद को शीघ्र निर्णीत करने हेतु माध्यस्थ् से आग्रह करने में याची को सक्षम बनाने के लिए न्यायालय की अनुमति के साथ रिट याचिका को वापस ले लिया गया।

तत्पश्चात, कार्यवाही माध्यस्थ् के समक्ष चलती रही और अन्ततः आपेक्षित आदेश/पंचाट दिनांक 28.2.2002 द्वारा माध्यस्थम् ने निम्नांकित सम्परीक्षण करते हुए माध्यस्थम् कार्यवाही का समापन किया था:

> *"26. मामले के समग्र मूल्यांकन के उपरांत जैसा कि मेरे सामने तर्कों, अभिवाको एवं दस्तावेजो के द्वारा प्रकट किया गया। मैं उदय शंकर, एकल माध्यस्थ् निष्कर्ष देता हूँ कि सभी दावे 1963 की परिसीमन विधि द्वारा वर्जित है और दावों को ग्रहण नहीं किया जा सकता।*
>
> *27. मैं इस निर्णय को एक माध्यास्थम् अधिनिर्णय का नाम देने में असमर्थ हूँ क्योंकि प्रचलित विधि के अधीन इस दावे की अग्राह्यता के कारण धन के दावे की विस्तार से परीक्षा नहीं की जा सकी।*
>
> *28. एक निष्पक्ष अधिनिर्णयकर्ता के तौर पर, मैं अवश्य ही अभियंता पर यह कहूँगा कि वास्तव में बीस वर्षों से अधिक समय पहले किए गये कार्यों के लिए प्रत्यर्थी द्वारा दावेदार को कुछ धन देय होने का संकेत प्रतीत होता है। और उतने बड़े पैमाने पर प्रत्यर्थीगण से विवाद पैदा करने की बजाय, जिसमें अपने ओर से दावे को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ा देने के वजाय, अगर दावेदार ने स्पष्टीकरण कारणों से परिसीमा का अधित्यजन करने के लिए प्रत्यर्थीगण के पास अपील करने का विकल्प चुना होता तो एक युक्तिसंगत छूट पर कोई सौहार्दपूर्ण समाधान संभव हो सकता था।''*

6. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ साहनी निवेदन करते हैं कि माध्यस्थ के आक्षेपित आदेश में निहित सम्परीक्षण के अनुसार भी, इसे एक माध्यस्थम अधिनिर्णय नहीं कहा जा सकता क्योंकि याची के दावे का निर्णय करने के लिए कोई मुद्दा विरचित ही नहीं किया गया और याची के दावे को निर्णीत करने से इन्कार करने के लिए परिसीमा के मनमाने और त्रुटिपूर्ण आधारों को लिया गया। परिसीमा का आधार माध्यस्थ् द्वारा नहीं लिया गया होता, अगर उन्होंने कार्यपालक अभियंता (C), सिरका, द्वारा निर्गत दिनांक 27.9.1999 के पत्र पर विचार करने का कष्ट किया होता, जिसे सी॰ सी॰ एल॰ के कार्यकारी पदाधिकारी होने के नाते स्वीकार किया था कि याची के साथ संविदा को बंद नहीं किया गया है।

7. अपने प्रति शपथपत्र में, प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया गया पक्ष यह है कि धन के भुगतान के लिए याची के दावे के संबंध में उसके विवाद का समाधान करने का प्रत्यर्थीगण का बिल्कुल सच्चा इरादा था और इसलिए, माध्यस्थ् द्वारा विवाद का समाधान करना चाहते थे। प्रत्यर्थीगण के अनुसार, आक्षेपित आदेश, माध्यस्थ् द्वारा पारित एक अधिनिर्णय है एवं यदि याची व्यथित है, तो उसके पास माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम के अधीन एक वैकल्पिक उपचार है एवं इस पर रिट अधिकारिता में बहस नहीं की जा सकती।

8. रिट आवेदन के पैरा 22, 23 एवं 24 में याची द्वारा यह कहते हुए उसमें प्रकथन किया गया है कि याची द्वारा निष्पादित कार्यों के संबंध में मापन पुस्तिका में दर्ज मापन से जुड़े सभी सुसंगत दस्तावेजों प्रत्यर्थी के प्रतिनिधि, श्री भूदेव सिंह के पास थे और ये इस बात के पर्याप्त साक्ष्य है कि याची ने स्वयं को आबंटित कार्यों को पूरा किया था और मापन-पुस्तिकाओं में उक्त पदाधिकारी द्वारा यथा

निर्गत कार्यों के निष्पादन का प्रमाणपत्र भी इस तथ्य को संपुष्ट करता है। जवाब में प्रत्यर्थीगण का अपने प्रति-शपथपत्र के पैरा 26, 27 एवं 28 में कथन यह है कि चूँकि यह 20 वर्षों से भी अधिक पुराना एक मामला है, अत: स्वाभाविक है कि दस्तावेज प्राप्त करने में कुछ विलम्ब होगा। और यह कि मामला जाँच के अधीन है।

9. रिट आवेदन में याची के कथन और प्रत्यर्थी संख्या-4 के आक्षेपित आदेश की विषयवस्तु के साथ प्रति शपथपत्र में उपरोक्त कथनों को पठित करने से यह प्रकट है कि अपेक्षित दस्तावेज, जिनके आधार पर याची के दावे पर माध्यस्थ् द्वारा अधिनिर्णयण किया जा सकता था, प्रत्यर्थीगण द्वारा माध्यस्थ् के समक्ष पेश नहीं किए गए थे और न ही माध्यस्थ् ने दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए प्रत्यर्थीगण को एक निर्देश जारी किया गया था।

10. प्रत्यर्थीगण ने रिट याचिका के पैरा-37 में जिन कथनों से इन्कार नहीं किया है कि कार्यपालक अभियंता (C), सिरका, जो प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ का कार्यपालक पदाधिकारी है, ने दिनांक 27.9.1999 के अपने पत्र द्वारा स्वीकार किया था कि याची के साथ संविदाएं समाप्त नहीं की गई थी। यह भी प्रतीत होता है कि याची ने परिसीमा के एक अवधि के भीतर इस न्यायालय के समक्ष अपना रिट आवेदन दाखिल करके अपने बकायों के प्राप्ति के लिए प्रत्यर्थीगण के विरूद्ध अपने दावे का अनुसरण किया था और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में, प्रत्यर्थीगण ने याची के दावे को अग्रसारित करके माध्यस्थ् विवाद को निर्दिष्ट कर दिया था। दस्तावेजों की प्राप्ति पर, अभिवाचक ने लगभग दो वर्षों की अवधि के दौरान सुनवाई की कई तिथियाँ निर्धारित करके विवाचण द्वारा विवाद का निपटान करने की कार्यवाई का विकल्प चुना और अंतत:, आक्षेपित आदेश द्वारा, कार्यवाही को लगभग इस आधार पर हटा दिया था कि याची का दावा परिसीमा द्वारा वर्जित था।

11. आक्षेपित आदेश के कोरे पठन से, यह प्रकट होगा कि स्वीकार्यत: याची ने इस कारण से माध्यस्थ् में अविश्वास अभिव्यक्त किया था कि माध्यस्थम् कार्यवाही को लम्बा खींचने वाले तरीके से संचालित किया जा रहा था। आक्षेपित आदेश का अंतिम भाग भी यह इंगित करता है कि माध्यस्थ् स्वयं इस बारे में निश्चित नहीं था कि उस आदेश को अधिनिर्णय कहना चाहिए या नहीं।

12. स्वीकार्यत: माध्यस्थ् ने मुख्य विवाद को इस आधार पर निर्णय नहीं किया है कि विवाद काल वर्जित था। अपने इस तर्क के समर्थन में कि विवाद काल बाधित नहीं था, याची द्वारा प्रस्तुत की गई सुसंगत सामग्रियों में माध्यस्थ् द्वारा विचार नहीं किया गया प्रतीत होता है।

13. उपरोक्त कथित कारणों से, मैं इस रिट आवेदन में गुणागुण पाता हूँ और यह तद्नुसार अनुज्ञात किया जाता है। आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-20) एतद् द्वारा निरस्त किया जाता है।

स्वीकार्यत: प्रत्यर्थी एक सार्वजनिक निकाय है, स्वीकार्यत: याची को संविदा के अधीन निष्पादन के लिए कतिपय कार्य प्रदान किए गए थे। कार्य निष्पादित किए गए थे और प्रत्यर्थीगण के प्रतिनिधि द्वारा यह संपुष्ट किया गया था। विवाद अब निष्पादित कार्यों के लिए याची के धन के लिए दावे से संबंधित है। न्याय की यह माँग है कि याची को उसके द्वारा किए गए कार्यों के लिए भुगतान किया जाना चाहिए और प्रत्यर्थीगण को संविदा के अधीन अपनी दायित्वों को पूरा करना चाहिए था। मामले के तथ्यों से यह प्रकट है कि कार्यों के पूरा होने के उपरान्त याची अपने दावे का अनुसरण करता रहा हैं यह प्रत्यर्थीगण के सम्बद्ध प्राधिकार है जिन्होंने मिलकर मामले में वर्षों की देरी की है और अब अपने उत्तरदायित्व और बाध्यताओं से बचने के लिए तकनीकी अभिवाकों के अधीन इंकार किए जाते हैं।

14. चूँकि धन के दावे को अंत:ग्रस्त करने वाले एक विवाद को ग्रहण करने की अधिकारिता इस न्यायालय की रिट अधिकारिता के भीतर नहीं है जहाँ स्वयं दावा ही विवाद में है और तथ्यों का

विवाद अंतर्ग्रस्त है अतः, मैं यह यथोचित समझता हूँ कि सम्यक् विचारण के लिए मामले को पुनः प्रत्यर्थी प्राधिकारों को निर्दिष्ट कर दिया जाए।

15. इन तथ्यों एवं परिस्थितियों में, याची प्रत्यर्थीगण के समक्ष एक नया अभ्यावेदन दाखिल कर सकता है, इस आदेश की तिथि से चार महीना की अवधि के भीतर रिट आवेदन के पैरा-36 में निर्दिष्ट दस्तावेजों के साथ याची द्वारा निर्दिष्ट दस्तावेजों के आलोक मैं याची के दावे का आकलन करेगा, जो दस्तावेज स्वीकार्यतः उनके पास हैं और उसपर एक यथोचित निर्णय लेंगे।

इन सम्परीक्षणों के साथ इस रिट आवेदन का निस्तारण किया जाता हे।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के एक विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

संजय कुमार एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

Cr. Rev. No. 1142 वर्ष 2008. 5 मई, 2009 को विनिश्चित।

किशोर न्याय (बच्चों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 4—किशोर न्याय बोर्ड—जमानत की मंजूरी—स्वीकार्यतः याचीगण किशोर हैं—परिवीक्षा अधिकारी ने रिपोर्ट पेश किया कि अगर मौका दिया जाय तो उन्हें पुनर्वासित किया जा सकता है—जमानत इस शर्त के अध्यधीन मंजूर किया गया कि उनके माता-पिता उनलोगों की उचित रूप से देख-भाल करेंगे एवं वे यह भी देखेंगे कि वे लोग अपनी शिक्षा आरम्भ कर सकें एवं अपने पारिवारिक कारोबार में कार्य प्रारम्भ कर सकें। (पैरा 3 से 7)

अधिवक्तागण.—Mr. M.L. Yadav, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. यह पुनरीक्षण आवेदन दिनांक 29.8.2008 के किशोर न्याय बोर्ड, चतरा द्वारा पारित निर्णय के विरूद्ध निर्दिष्ट है, जिस आदेश के माध्यम से प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्यायालय, चतरा ने पाया कि तीनों किशोरों (याची सं॰ 1, 2 एवं 3) पहले ही बुरी संगत में पड़ चुके हैं एवं इस मामले के अतिरिक्त, याची सं॰ 1, संजय कुमार का एक अन्य मामला, चतरा थाना केस सं॰ 37 वर्ष 2007 भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 के अधीन लम्बित पड़ा है एवं किशोर अर्थात् याची सं॰ 2, राजू कुमार एवं याची सं॰ 3, पंकज कुमार के विरूद्ध, एक अन्य मामला, सदर थाना केस सं॰ 58 वर्ष 2007 भारतीय दण्ड संहिता की धारा 392 के अधीन लम्बित पड़ा है एवं ये तीनों याचीगण पहले ही संप्रेक्षण गृह, हजारीबाग से भाग चुके हैं। अपील में, सत्र न्यायाधीश, चतरा ने दिनांक 19.11.2008 के अपने आदेश द्वारा किशोर न्याय बोर्ड, चतरा के निष्कर्षों को उचित ठहराया एवं उनलोगों की जमानत की प्रार्थना अस्वीकार किया।

3. अब, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि तीनों याचीगण स्वीकार्यतः किशोर हैं एवं वे 25.4.2008 से अर्थात् एक वर्ष से अधिक समय से जेल में पड़े हुए हैं, किशोर न्याय बोर्ड की धारा 4 की दृष्टि में, चूँकि, याचीगण के माता-पिता किशोरों को उचित अभिरक्षा में रखने को तैयार हैं एवं साथ ही अपने निकट मार्गदर्शन में एवं आपराधिक गतिविधियों से दूर रखना

चाहते हैं, इसलिए किशोरों की निर्मुक्ति की प्रार्थना से इनकार करने का कोई आधार नहीं है एवं इसलिए, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता उन्हें उपरोक्त आधार पर निर्मुक्त किए जाने की प्रार्थना करते हैं।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने याचीगण के विद्वान अधिवक्ता की प्रार्थना का विरोध किया एवं निवेदन किया कि इन दोनों मामलों के अतिरिक्त, याचीगण रिमांड गृह से भाग जाने के भी अभ्यस्त है एवं इसलिए वे जमानत के विशेषाधिकार नहीं रखते हैं।

5. दोनों पक्षकारों को सुनने एवं अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य का अवलोकन करने के उपरांत, मैं पाता हूँ कि परिवीक्षा अधिकारी, चतरा ने दिनांक 30.6.2008 को एक परिवीक्षा रिपोर्ट दाखिल की थी, जो अवर न्यायालय के अभिलेख पर मौजूद है एवं उन्होंने निवेदन किया कि तीनों याचीगण, याची सं॰ 1 संजय कुमार, राजकीय उच्च विद्यालय, चतरा में वर्ग-X का एक छात्र है एवं वह अच्छे आचरण का है। चूँकि वह बुरी संगत में पड़ गया था, इसलिए वह उपरोक्त अपराध में संलिप्त हो गया, परंतु वह अपनी आगे की शिक्षा जारी रखना चाहता है एवं उसके माता-पिता भी उसे आपराधिक गतिविधियों से दूर रखना चाहते हैं। परीवीक्षा अधिकारी ने निवेदन किया था कि याची सं॰ 2, राजू कुमार, मध्य विद्यालय, किशुनपुर में वर्ग VIII का एक छात्र है। यह निवेदन किया गया है कि वह अपनी शिक्षा में रूचि ले रहा था एवं वह किराना की दुकान में अपने पिता की मदद भी कर रहा था एवं यदि, अवसर दिया जाता है, तो वह पुनर्वासित किया जा सकता है एवं याची सं॰ 3, पंकज कुमार के सम्बन्ध में परिवीक्षा अधिकारी ने कहा था कि वह विवेकानन्द विद्यालय जत्राहीबाग, चतरा में वर्ग 5 का एक छात्र है एवं चूँकि उसके पिता की मृत्यु अचानक हो गयी एवं परिवार परेशानियों से घिर गया, इसलिए उसने अपनी शिक्षा छोड़ दी। परिवीक्षा अधिकारी ने कहा था कि यदि उसे भी निर्मुक्त कर दिया जाता है, तो उसकी माँ उसकी देख-भाल करेगी एवं उसने वादा किया कि वह अपने भाई राजेश साव के साथ काम पर लगा देगी।

6. यह प्रतीत होता है कि सभी तीनों याचीगण एक वर्ष से भी अधिक समय तक जेल में रहा एवं किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, यदि उसके माता-पिता किशोरों को अपनी अभिरक्षा एवं संरक्षण में रखने को तैयार हैं एवं वे यह वादा करते हैं कि वे उन्हें किसी आपराधिक गतिविधि में संलिप्त होने की अनुमति नहीं देंगे, वे लोग उनलोगों की शिक्षा जारी रखवायेंगे।

7. मामले के उस दृष्टि में, सभी तीनों किशोरों, ऊपर नामित, को G.R. No. 447 वर्ष 2008 के सम्बन्ध में चतरा थाना केस सं॰ 118 वर्ष 2008 में किशोर न्याय बोर्ड, चतरा की संतुष्टि के लिए 10,000/- (दस हजार) रु॰ प्रत्येक के जमानत बंध पत्र एवं समान राशि के दो प्रतिभुओं को निष्पादित किए जाने पर निर्मुक्त किए जाने का निर्देश दिया जाता है जो इस शर्त के अध्यधीन है कि पंकज कुमार के मामले में उसकी माता एवं अन्य दो याचीगण, अर्थात् राजू कुमार एवं संजय कुमार के मामले में उनके पिता जमानतदारों में से एक होंगे एवं वे लोग बोर्ड के समक्ष यह वचनपत्र दाखिल करेंगे कि वे लोग किशोरों की उचित रूप से देख-भाल करेंगे एवं वे यह भी देखेंगे कि किशोर अपनी शिक्षा आरम्भ कर सकें एवं यह भी कि वे अपना पारिवारिक कारोबार प्रारम्भ कर सकें एवं उनलोगों को किसी आपराधिक एवं गैर-सामाजिक तत्वों की संगत में जाने से रोकेंगे।

8. तद्नुसार, यह याचिका अनुज्ञात किया जाता है एवं दाण्डिक अपील सं॰ 32 वर्ष 2008 में सत्र न्यायाधीश, चतरा द्वारा पारित दिनांक 19.11.2008 के निर्णय को एवं G.R. No. 447 वर्ष 2008 के सम्बन्ध में किशोर न्याय बोर्ड, चतरा द्वारा पारित दिनांक 29.8.2008 का आदेश अपास्त किया जाता है।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

समुन्द्री देवी

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W. P. (C) No. 5353 वर्ष 2002. 2 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

बिहार भूमि सुधार (हदबंदी क्षेत्र का नियतिकरण एवं अधिशेष भूमि का अर्जन) अधिनियम, 1961—धारा 11(1) एवं 5(iii)—अधिशेष भूमि–भूमि-धारक द्वारा अंतरित भूमि को 22.10.59 के काफी पूर्व अधिनियम की धारा-5 (iii) के निबंधनों में कोई जाँच कराये बगैर अधिशेष के तौर पर अवधारण अविधिमान्य है। (पैरा 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.–2000(3) PLJR 780; 1991(1) BLJ 708—Considered.

अधिवक्तागण.–Mr. Vikash Kishore Prasad, For the Petitioner; Mr. P.K. Verma, For the State; Mr. Awanish Shankar, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका जिला राजपत्र में दिनांक 16.12.1989 (परिशिष्ट-11) को प्रकाशित बिहार भूमि सुधार (हदबंदी क्षेत्र का नियतिकरण एवं अधिशेष भूमि का अर्जन) अधिनियम, 1961 (एतस्मिन पश्चात्, अधिनियम के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 11(1) के अधीन अंतिम विवरण के अभिखंडन के लिए उत्प्रेषण या कोई अन्य यथोचित रिट, आदेश या निर्देश की प्रकृति के एक रिट के निर्गतीकरण के लिए दायर की है जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन याची की एवं रजिस्ट्रीकृत दस्तावेजों के माध्यम से खरीदी गयी भूमि को सुनवायी का कोई अवसर या नोटिस दिए बिना कमोवेश अधिनियम की धारा 5 (iii) के निबंधनों में कोई कार्यवाही प्रारम्भ किए बिना भूमि धारक (प्रत्यर्थी सं॰ 5) के हाथों में अधिशेष के तौर पर घोषित किया गया है, यद्यपि प्रश्नगत भूमि शांतिपूर्ण रूप से याची के कब्जे में रहा है एवं उनके नामों को भी नामान्तरित किया गया है एवं यदि जरूरी हो, तो जहाँ तक याची की भूमियों का सम्बन्ध है एल॰ सी॰ केस सं॰ 24/73 की संपूर्ण कार्यवाहियों को स्थगित करने के लिए विशेषकर तब, जब एल॰ सी॰ मामले के आदेश-पत्र से ही, यह सुव्यक्त होगा कि विभिन्न व्यक्तियों के पक्ष में भूमि धारक द्वारा किए गए अन्य संक्रामण से सम्बन्धित रिपोर्ट प्राधिकारियों के समक्ष पेश की गयी थी, परन्तु फिर भी प्राधिकारियों ने अधिनियम की धारा 5 (iii) के अधीन अंतरितीयों को नोटिस देने के लिए या कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए विधि द्वारा यथापेक्षित कदम नहीं उठाया एवं अधिनियम के प्रावधानों एवं साथ ही नैसर्गिक न्याय के प्रारम्भिक सिद्धांतों के घोर उल्लंघन में आगे की कार्यवाही की।

2. याची द्वारा उठाया गया मुख्य प्रतिविरोध यह है कि क्या याची की रैयती भूमियों को सुनवायी का कोई अवसर या नोटिस दिए बिना भूमि-धारक (प्रत्यर्थी सं॰ 5) के हाथों में अधिशेष घोषित किया जा सकता है। उठाया गया अगला प्रतिविरोध यह है कि क्या प्रत्यर्थी प्राधिकारी को अधिनियम की धारा 5(iii) के अधीन कोई कार्यवाही प्रारम्भ किए बिना भूमि धारक के हाथों में याची की भूमियों को अधिशेष के तौर पर घोषित करने की अधिकारिता है। यह भी प्रतिवाद किया गया है कि प्रश्नगत भूमि को 25.7.55 को अर्थात् 21.10.59 के काफी पूर्व भूमि धारक को अंतरित किया गया था एवं इस प्रकार प्रत्यर्थीगण को भूमि को अधिशेष के तौर पर घोषित करने की अधिकारिता नहीं थी। याची ने यह भी निवेदन किया है कि उसी गाँव के समान स्थिति वाले व्यक्तियों ने उक्त आक्षेपित आदेश एवं कार्रवाई से व्यथित होकर उसी भूमि सीलिंग कार्यवाही से सम्बन्धित एक रिट याचिका दायर किया था, जो CWJC No. 3926 वर्ष 2000 (R) था एवं इसे दिनांक जो 15.3.2001 के आदेश के निबंधनों

में अनुज्ञात किया गया था। एक विनिर्दिष्ट मामला निर्मित किया गया है कि कार्यवाही वही होने के कारण एवं भूमि सीलिंग केस सं० 24/73 जिसे यहाँ पर चुनौती दिए जाने की ईप्सा की गयी है, पहले ही इस न्यायालय द्वारा विचारित किया गया है एवं आक्षेपित अधिसूचना अभिखंडित की गयी थी एवं उक्त अधिसूचना को प्रभावी न बनाये जाने के लिए निर्देश निर्गत किया गया था एवं जबतक उस कार्यवाही में एक अंतिम आदेश पारित नहीं किया जाता है जो अधिनियम की धारा 5 (iii) के अधीन याची के विरूद्ध प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रारम्भ की जा सकती है, तबतक कुछ भी नहीं किया जा सकता है।

3. प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में निवेदन किया है कि प्रश्नगत भूमि को अधिशेष घोषित किया गया था एवं यह पहले ही विभिन्न व्यक्तियों को आबंटित किया जा चुका है एवं याची उक्त भूमि के अर्जन की तिथि से ही इसका कब्जेदार भी नहीं है क्योंकि प्रश्नगत भूमि पहले ही वर्ष 1989-90 में विभिन्न व्यक्तियों को व्यवस्थापित किया जा चुका है।

4. मैंने अभिवचनों एवं परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार किया है। एक ही भूमि सीलिंग कार्यवाही से संबंधित विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश के आलोक में एक बात स्पष्ट है कि अर्जन कार्यवाही किसी नोटिस के बिना हुआ था और न ही याची को कोई अवसर दिया गया था, एवं तथ्य यही रहता है कि यह एक रैयती भूमि थी जो भूमि-धारक को 25.7.55 अर्थात् 22.10.1959 के काफी पहले अंतरित की गयी थी एवं अधिनियम की धारा 5(iii) के अधीन एक कार्यवाही अनिवार्य थी एवं विद्वान एकल न्यायाधीश ने भूमि सीलिंग केस सं० 24/73 में उसी से संबंधित दिनांक 15.3.2001 के आदेश के माध्यम से CWJC No. 2000 (R) में अधिसूचना को अभिखंडित किया।

5. तथ्य यही रहता है कि यह बार-बार अभिनिर्धारित किया गया है कि 22.10.1959 से पहले किए गए अंतरण को इस कार्यवाही से अलग किया जाना है एवं इसे भूमि-धारक को भूमि के तौर पर माना नहीं जा सकता है। 2000 (3) PLJR 780 में प्रकाशित एक सदृश विवाद्यक में पटना उच्च न्यायालय ने पैरा 21 पर निम्नवत अभिनिर्धारित किया है:-

> *''चूँकि मैं इस दृष्टिकोण का हूँ कि इस कार्यवाही को अधिनियम की धाराएँ 32A एवं 32B के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान के आलोक में नये सिरे से निर्णित किया जाना है, याचीगण की ओर से उठाये गए अन्य बिन्दुओं पर विचार करना अनिवार्य नहीं है। लेकिन, मैं कुछ विधिक बिन्दुओं को स्पष्ट करना चाहूँगा जिसपर राजस्व प्राधिकारियों द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है। जहाँ तक कि 22.10.59 से पूर्व किए गए अंतरण का सम्बन्ध है, इसे भूमिधारक की भूमि के तौर पर नहीं माना जा सकता है एवं इसे कार्यवाही से अलग किया जाना है। जहाँ तक कि उन भूमियों जो 22.10.59 के उपरांत लेकिन 9.9.70 के पूर्व अंतरित किए गए थे, का सम्बन्ध है, जबतक अधिनियम की धारा 5 (1)(iii) के निबंधनों में कोई बातिलीकरण कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की जाती है एवं रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेखों को बातिल नहीं किया जाता है तबतक उक्त भूमि को भूमि धारक की भूमि के तौर पर माना नहीं जा सकता है।''*

1999(1) BLJ 708 में पटना उच्च न्यायालय की एक खण्ड पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि बिहार भूमि सुधार (सीलिंग क्षेत्र का नियतिकरण एवं अधिशेष भूमि का अर्जन) अधिनियम, 1961 की धारा 11 के अधीन प्रारूप एवं धारा 15 के अधीन अधिसूचना का अंतिम प्रकाशन किए जाने से पूर्व धारा 10 के अधीन तैयार प्रारूप अभिकथन की तामीला मालिक के तौर पर अभिलिखित व्यक्तियों को कराये जाने के लिए धारा 5 (1) (iii) के अधीन नोटिस निर्गत करना आज्ञापक है एवं इसके निर्गत न किए जाने को अविधिमान्य होना अभिनिर्धारित किया गया था एवं अभिखंडित होने योग्य था।

6. अधिनियम के प्रावधानों के अधीन इसके अन्तर्गत विरचित अधिनियम एवं नियमावली के अधीन अभिप्रेत विभिन्न चरण है, जो निम्नलिखित रूप से उपवर्णित है:-

> *(i) अधिनियम की धारा 11(1) के अधीन अंतिम प्रकाशन कर लिये जाने के उपरांत धारा 15 (1) के अधीन अधिसूचना निर्गत की जाती है जिसके द्वारा अधिशेष भूमियों को अर्जित किया जाता है।*

(ii) धारा 15 (1) के अधीन अधिसूचना निर्गत किए जाने के उपरांत, अधिनियम की धारा 15 (3) के अधीन अधिशेष भूमि का कब्जा ले लिया जाता है।

(iii) अधिनियम की धारा 15(3) के अधीन अधिशेष भूमियों का अर्जन कर लेने के उपरांत ही अर्जित अधिशेष भूमि को अधिनियम की धारा 27 के निबंधनों में निस्तारित किया जा सकता है।

(iv) अधिनियम की धारा 27 के अधीन अधिशेष भूमि का निस्तारण किया जाता है जो कि इस सम्बन्ध में बनाई गई नियमावली के अध्यधीन है। अभिकथन की विस्तृत प्रक्रिया एवं रीति तथा तरीका को अधिनियम एवं नियमावली के अधीन अधिकथित किया गया है।

(v) बिहार भूमि हदबंदी नियमावली, 1963 का अध्याय-XI भूमि के व्यवस्थापन की प्रक्रियाओं का वर्णन करता है। नियम 44 के अनुसार, व्यवस्थापन समाहर्त्ता द्वारा प्रखण्ड या अंचल सलाहकार समिति से मशविरा करके की जा सकती है। ऐसे व्यवस्थापन को परवाना की मंजूरी द्वारा प्रमाणित किया जाना है जिसमें नियत लगान एवं भूमि का विवरण, बंटवारा के सम्बन्ध में संगत विशिष्टियाँ शामिल हैं एवं एक शर्त भी शामिल है कि इस प्रकार बन्दोबस्त की गयी भूमियाँ विरासती होंगी परंतु, हस्तांतरणीय नहीं होंगी। वह प्रारूप जिसमें परवाना निर्गत किया जाना है, भी L.C.E.2 रजिस्टर के अधीन भी विहित है।

7. प्रति शपथ-पत्र के पैरा 6 में किया गया कथन कहीं भी यह प्रतिबिंबित या निर्दिष्ट नहीं करता है कि अधिनियम की धारा 15(1) के अधीन अर्जन की अधिसूचना निर्गत की गयी एवं जब धारा 15 (1) के अधीन याची से कब्जा ले लिया गया था। प्रत्यर्थीगण ने यह दर्शाने के लिए कोई भी दस्तावेज संलग्न नहीं किया है जो कि कब्जा में ले लिया गया था या व्यवस्थापन परवाना की मंजूरी द्वारा किया गया था। एकमात्र दस्तावेज, जो परिशिष्ट-A श्रृंखला के तौर पर संलग्न किया गया है, रजिस्टर 8 है जो कहीं पर भी कार्यवाही की भूमियों का वर्णन नहीं करता है।

8. तथ्य यही रह जाता है कि 22.10.1959 से पूर्व किए गए अंतरण को कार्यवाही से अलग किया जाना है एवं भूमि धारक की भूमि के तौर पर नहीं माना जाना है वर्तमान मामले में, यह विवादित नहीं है कि प्रश्नगत भूमि को भूमि धारक द्वारा 25.7.1955 में ही अंतरित किया गया था। अन्यथा भी धारा 5(i)(iii) एक आज्ञापक प्रावधान है जिसका अनुपालन सीलिंग प्राधिकारियों द्वारा भूमियों को अधिशेष घोषित किए जाने से पहले किया जाना है। क्रेता को कोई नोटिस दिए बिना या जाँच किए बिना ऐसी कोई भी घोषणा अविधिमान्य एवं अधिनियम की धारा 5 (iii) के उल्लंघन में है भले ही अंतरण 22.10.1959 के उपरांत किया गया है।

9. वर्तमान में अंतरण 25.7.1955 को ही किया गया है एवं प्राधिकारियों को ऐसा अंतरण बातिल करने एवं ऐसी भूमि अर्जित करने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि अधिनियम के अधीन अर्जन के लिए अधिशेष भूमि के तौर पर घोषित करने के प्रयोजन से भूमि धारकों को भूमि के तौर पर नहीं माना जा सकता है।

10. मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है एवं भूमि सीलिंग केस सं॰ 74/03 के अधीन कार्यवाही को अभिखंडित किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

गोपाल पाठक

बनाम

झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

W.P. (S) 2288 वर्ष 2006. 2 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

(क) झारखण्ड पेंशन नियमावली–नियम 43(b)—पेंशन को रोक लिया जाना–नियम 43(b) के निबंधनों में कार्यवाही प्रारम्भ किए बिना पेंशन की कोई भी धनराशि रोका नहीं जा सकता है। (पैरा 6)

(ख) सेवा विधि–वेतन की वसूली–कर्मचारी को किये गये अतिरेक भुगतान की वसूली उसकी सेवानिवृत्ति के उपरांत नहीं की जा सकती है यदि इसे कर्मचारी की ओर से कोई कपट, दुर्व्यपदेशन या किसी अन्य चूक के कारण आहरित नहीं किया गया है। (पैरा 8)

निर्णयज विधि.–2008 (1) JCR (Jhr.) (FB)5—Relied upon; LPA No. 118 of 2005—Not applied.

अधिवक्तागण.–M/s Rahul Kumar, Mukesh Kr. Sinha, Ajit Kumar, Navin Kumar, For the Petitioner; J.C. to G.A., For the Respondents.

आदेश

इस रिट आवेदन में याचीगण ने अपनी सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं का भुगतान करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने की प्रार्थना की है एवं साथ ही दिनांक 26.7.2005 के कार्यालयी आदेश सं॰ 2446 को अभिखंडित करने की भी प्रार्थना की है जिसके द्वारा वेतनमान जो पूर्व में याची को मंजूर किया गया था, घटा दिया गया है एवं कतिपय राशि की वसूली, अतिरेक भुगतान के अभिवाक् पर, किए जाने की ईप्सा की गयी है।

2. याची को आरम्भ में एक अकुशल खलासी के तौर पर 18.5.1964 को प्रत्यर्थी के अधीन सेवा में बहाल किया गया था। बाद में, जून 1973 में, उसे कुशल खलासी के दर्जे पर प्रोन्नत किया गया था। पद जिसे याची ने अंत में 31.1.2004 को अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि से पूर्व प्राप्त किया था वह था टेक्निकल ग्रेड-II S.G. जिस पद पर उसे 14.3.1996 को नियुक्त किया गया था। बोर्ड के कर्मचारियों का वेतन अंत में 1.1.1996 के प्रभाव से संशोधित किया गया था।

याची का प्रतिविरोध यह है कि 28.11.1985 को आयोजित ट्रेड परीक्षण/साक्षात्कार में अर्हित होने पर, याची को दिनांक 14.3.1986 के आदेश सं॰ 917 के कार्यालयी आदेश के माध्यम से 725-18-905-20-1005-22-1115/- रु॰ के वेतनमान में टेक्निशीयन ग्रेड-II (इलेक्ट्रिकल) के पद पर नियुक्त किया गया था जो वही वेतनमान था जो याची अपने पूर्वतर पद पर अर्थात् स्विच बोर्ड ऑपरेटर ग्रेड-I के पद पर पहले से ही प्राप्त कर रहा था। तद्नुसार, याची ने तत्पश्चात् अपने वेतन की वार्षिक वेतनवृद्धि अर्जित किया। 31.1.2004 को उसकी सेवानिवृत्ति से पूर्व प्रत्यर्थीगण ने उसके वेतनमान के नियतीकरण के सम्बन्ध में कभी कोई विवाद नहीं उठाया। इसके अतिरिक्त, यद्यपि दिनांक 5.11.2003 के पत्र द्वारा कार्मिक उप-निदेशक, PTPS ने याची को सूचना दी कि वह 60 वर्ष का उम्र पार करेगा एवं 31.1.2004 के दोपहर बाद सेवानिवृत्त होगा एवं उसने याची को अंतिम वेतन प्रमाणपत्र सहित उसके पेंशन फार्म G.P.F. फॉर्म इत्यादि जमा करने का निर्देश दिया था। फिर भी, दूरस्थ रूप से भी याची को कोई सुझाव नहीं दिया गया था कि समय के किसी भी बिन्दु पर उसके वेतन के नियतिकरण में कोई त्रुटि थी। उपरोक्त पत्र के उत्तर में, याची ने अपनी सेवानिवृत्ति देयों के नियतिकरण एवं भुगतान के लिए पेंशन फॉर्म एवं सभी संगत दस्तावेजों को पेश किया था एवं उसके अंतिम पेंशन का 90% नियत भी किया गया था एवं याची को भुगतान किए जाने का आदेश भी दिया गया था। 90% पेंशन के भुगतान के लिए मंजूरी आदेश भी याची द्वारा अंतिम बार निकाले गए वेतन के आधार पर 24.11.2004 को पारित किया गया था। याची को हतोत्साहित करके, प्रत्यर्थीगण ने अन्य सेवानिवृत्ति देयों को निर्मुक्त नहीं किया एवं उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि से दो वर्ष से अधिक व्यतीत हो जाने के उपरांत उसे सूचित किया गया था कि उसका वेतनमान घटा दिया गया है एवं पेंशन घटे हुए दर पर नियत किया गया है एवं इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थीगण ने यह दावा करते हुए 75,982/- रु॰ तक की सीमा तक याची के सेवानिवृत्ति देयों से कोई सारवान राशि की वसूली करने का निर्णय लिया है कि यह उसके द्वारा अतिरेक भुगतान के माध्यम से उसके द्वारा निकाला गया था।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता तर्क देगें कि याची की सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं से अभिकथित संवर्धित अतिरेक धनराशि की वसूली एवं वेतनमान की कटौती पूर्णरूप से अविधिमान्य, मनमाना एवं अनवधार्य है। विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि अभिकथित अतिरेक धनराशि की वसूली के लिए एवं वेतनमान की कटौती के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा लिए गए निर्णय से पूर्व, याची को किसी नोटिस की तामीला नहीं करायी गयी थी न ही उसे यह स्पष्ट करने का कोई अवसर दिया गया था कि कटौती क्यों नहीं की जानी चाहिए एवं अभिप्रायित अतिरेक धनराशि क्यों नहीं वसूली जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, याची के विरूद्ध ऐसा कोई अभिकथन नहीं हैं कि अभिकथित अतिरेक धनराशि की निकासी के लिए, याची ने कपट या दुर्विनियोजन की किसी भी रीति का प्रयोग किया था। विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि वास्तव में, याची का वेतन नियतीकरण उचित एवं नियमावली के अनुरूप था। यदि याची को स्पष्टीकरण का अवसर दिया गया होता, तो उसने प्रदर्शित किया होता कि उसके वेतनमान के नियतिकरण में कोई असंगतता नहीं थी। यह भी तर्क किया गया है कि प्रत्यर्थीगण संभवत: किसी अतिरेक भुगतान को वसूल करने के हकदार केवल तभी होंगे यदि वे यह स्थापित कर सकें कि कोई अतिरिक्त भुगतान का आहरण किया गया था एवं तत्पश्चात् मात्र सरकारी पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन अधिकथित प्रक्रिया का आश्रय लेकर ही वसूल किया जा सकता था। यह भी अभिवाक् किया गया है कि तीन अन्य कर्मचारियों को जिन्होंने प्रत्यर्थीगण के नियोजन के अधीन याची के साथ-साथ पद ग्रहण किया था एवं जिसे वही वेतनमान जैसा कि याची को भुगतान किया गया था, दिया गया था, ऐसे भुगतान की प्रसुविधा अनुज्ञात की गयी है जबकि याची को मनमाने रूप से एक ऐसे दायित्व की ओर धकेला गया है जो वह उपगत नहीं करता था।

अपने तर्क के समर्थन में, याची के विद्वान अधिवक्ता **झारखण्ड राज्य एवं अन्य बनाम पद्मलोचन कालिन्दी, 2008(1) J.C.R. Jhr. (FB)5** के मामले में इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय पर भरोसा व्यक्त किया।

4. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता प्रत्यर्थी द्वारा उसके प्रति शपथ-पत्र में अपनाये गए अभिमत को निर्दिष्ट करके, तर्क देगें कि याची द्वारा पेश किए गए आधार पूर्णतया भ्रामक हैं एवं यह रिट आवेदन पोषणीय नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि यद्यपि याची को दिनांक 14.3.1986 के नियुक्ति आदेश द्वारा टेक्निकल ग्रेड-II के पद पर नियुक्त किया गया था, परन्तु यह निश्चित रूप से टेक्निकल ग्रेड-II के पद पर कोई प्रोन्नति के माध्यम से नहीं किया गया था। इस प्रकार, नियुक्ति की उपरोक्त तिथि अर्थात् 14.3.1986 को याची कोई प्रोन्नति सम्बन्धी प्रसुविधा पाने का हकदार नहीं था क्योंकि टेक्निकल ग्रेड-II का पद S.B.O. ग्रेड-II की प्रोन्नति रेखा के अंतर्गत नहीं आता है। फिर भी, भूल से, उसे 14.3.1886 के प्रभाव से प्रोन्नति की प्रसुविधा दी गयी थी। इस भूल का पता सत्यापन के दौरान चला था जब उसे 1.1.1986 से 14.3.2003 तक संशोधित वेतनमान में यथा अनुज्ञात वेतनमान संशोधित किया गया था एवं यह पता चला था कि उसका वेतनमान 14.3.1986 को गलत रूप से 1805/- रु॰ पर नियत किया गया था एवं ऐसा भूल वार्षिक वेतन वृद्धि जोड़े जाने एवं वेतनमानों में संशोधन तक चलता रहा। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि भूल सुधार के उपरांत, यह आकलन किया गया था कि याची ने 75,982/- रु॰ की एक अतिरेक राशि की निकासी की थी एवं इसलिए उपरोक्त राशि को उसके उपदान की भुगतेय राशि से कटौती की गयी है। विद्वान अधिवक्ता यह भी कहते हैं कि उपरोक्त अतिरेक धनराशि की कटौती करने के उपरांत, संशोधित वेतनमान के आधार पर नियत 100% पेंशन 7106/- रु॰ प्रतिमाह पर नियत की गयी थी एवं उपदान की शेष भुगतेय राशि सामूहिक बचत योजना, अवकाश भुनाई, GPF एवं पेंशन के अधिशेषों का भुगतान पहले ही उसे कर दिया गया है। पेंशन के लघुकरण के दावे के सम्बन्ध में, यह कहा गया है कि चूँकि बोर्ड ने कोषों की कमी के कारण पेंशन का लघुकरण न करने का निर्णय लिया है, इसलिए याची अपने पेंशन के लघुकरण का हकदार नहीं है।

5. निर्विवादित तथ्य जो परस्पर विरोधी निवेदनों से प्रतीत होता है, यह है कि वह समय जब वह चयनित एवं टेक्निसियन ग्रेड-II (विद्युतीय) के पद पर नियुक्त किया गया था। 14.3.1986 था, तब वह वेतनमान जो उसके लिए नियत किया गया था, वहीं था जो वह स्विच बोर्ड ऑपरेटर ग्रेड-II के पूर्ववर्ती पद पर आहरित कर रहा था। यदि ऐसा था, तो यह समझ से परे है कि प्रत्यर्थीगण किस प्रकार से यह दावा कर रहे थे कि टेक्निकल ग्रेड-II के पद पर उसकी नियुक्ति होने पर, वह वेतनमान जो उसके लिए नियत किया गया था वह उसे प्रोन्नति संबंधी प्रसुविधा द्वारा अनुज्ञात किया गया था, चूँकि स्वीकार्यत: यह वहीं वेतनमान था जो उसे स्विच बोर्ड ऑपरेटर ग्रेड-II के पूर्ववर्ती पद पर उसे भुगतान किया गया था।

अन्यथा भी, यदि प्रत्यर्थीगण को यह विश्वास करने का कारण था कि 14.3.1986 को टेक्निकल ग्रेड-II के पद पर उसकी नियुक्ति के समय वेतनमान गलत रूप से नियत किया गया था, फिर भी, जब इस प्रकार की अभिप्रायित त्रुटि का पता लगा था एवं या तो वेतनमान की कटौती या अभिप्रायित अतिरेक भुगतान की कटौती करने का निर्णय लेने से पूर्व याची को स्पष्टीकरण देने में समर्थ बनाने के क्रम में उसे नोटिस देना एवं सूचित करना प्रत्यर्थीगण के लिए अनिवार्य था। स्वीकार्यत:, याची को ऐसा कोई अवसर नहीं दिया गया था। इसके अतिरिक्त, वेतनमान में कटौती एवं अभिप्रायित अतिरेक धनराशि की वसूली के सम्बन्ध में ऐसा निर्णय याची की सेवानिवृत्ति की तिथि से दो वर्ष से अधिक समय के पश्चात् लिया गया था। स्वीकार्यत:, ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि याची ने अभिप्रायित अतिरेक धनराशि का लाभ प्राप्त करने में प्रत्यर्थीगण से कोई कपट या दुर्विनियोजन किया था। इसके अतिरिक्त, झारखंड पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के प्रावधानों के निबंधनों में याची के विरूद्ध कोई कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की गयी थी।

6. यह मुद्दा **पद्मलोचन कालिंदी (ऊपर)** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष विचारणार्थ आया। सर्वोच्च न्यायालय के कई विनिश्चयों को निर्दिष्ट करके, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन कोई कार्यवाही प्रारम्भ किए जाने का आश्रय लिये बिना इप्सित अतिरेक भुगतेय धनराशि की वसूली को कायम नहीं रखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, यह प्रतीत होता है कि यद्यपि याची ने अपने प्रति शपथ-पत्र के प्रत्युत्तर में स्पष्ट तौर पर कहा है कि तीन अन्य कर्मचारीगण, जिनका नाम प्रत्युत्तर के पैरा 5 में वर्णित है, याची सहित प्रारम्भ में अकुशल खलासी के तौर पर प्रत्यर्थीगण की सेवा में शामिल हुए थे एवं चूँकि उनलोगों की सेवा के प्रारम्भ से ही एवं टेक्निकल ग्रेड-II के पद पर उनलोगों की नियुक्ति तक उनलोगों को दिए जा रहे वेतनमानों में भिन्नता, जो कुछ भी, नहीं थी एवं जबकि अन्य तीन कर्मचारियों को जो अब सेवा से निवृत्त हो चुके हैं, उनके लिए नियत वेतनमानों का लाभ प्राप्त करने की अनुमति दी जा रही है, फिर भी, याची का वेतनमान मनमाने ढंग से घटाया गया है। उक्त घोषित कथन के प्रति शपथ-पत्र के माध्यम से प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई उत्तर दाखिल नहीं किया गया है। इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण ने एक ऐसे अभिप्रायित वाद हेतुक पर कार्रवाई करने की ईप्सा की है जो 20 वर्ष से अधिक पूर्व उद्भूत हुआ था।

7. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता **रामेश्वर प्रसाद बनाम झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड** के मामले, **L.P.A. No. 118 वर्ष 2005** में पारित इस न्यायालय के खण्ड पीठ निर्णय पर विश्वास व्यक्त करने की ईप्सा करते हैं एवं यह तर्क देते हैं कि उस मामले के तथ्य भी वर्तमान मामले के तथ्यों के सदृश थे क्योंकि उसमें के रिट याची द्वारा घटे हुए वेतनमान के आधार पर पेंशन के नियतिकरण के विरूद्ध चुनौती दी गयी थी।

8. कर्मचारी द्वारा प्राप्त अतिरेक भुगतान की वसूली करना कर्मचारी के अधिकार के सम्बन्ध में विधि के सिद्धांत विवादित नहीं है। विवाद का बिन्दू वसूली की प्रक्रिया है। वसूली की कार्यवाही करने से पूर्व कर्मचारी को सर्वप्रथम यह प्रदर्शित करना है कि कर्मचारी द्वारा अतिरेक भुगतान प्राप्त किया गया

था जिसका हकदार कर्मचारी नहीं था। द्वितीयत:, यदि इस प्रकार से प्रदर्शित किए जाने के उपरांत, यदि अतिरेक भुगतान कर्मचारी के सेवानिवृत्ति के देयों से वसूल किए जाने की ईप्सा की गयी है तो पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के परन्तुकों का आश्रय यह आकलन करने के प्रयोजन से किया जाना पड़ता है कि क्या स्वयं कर्मचारी या किसी अन्य कर्मचारी की ओर से कोई कपट, दुर्व्यपदेशन या किसी ऐसी चूकों के कारण उसे अतिरेक भुगतान किया गया था ताकि दायित्व नियत करने के उपरांत समुचित व्यक्ति से वसूली किया जा सके। सर्वोपरि, किसी अतिरेक धनराशि की वसूली के लिए कोई निर्णय लेने की कार्यवाही करने से पहले, कर्मचारी को इस बात को स्पष्ट करने में समर्थ बनाने के लिए उसे इससे पूर्व नोटिस दिया जाना चाहिए कि क्यों वह प्रस्तावित कार्रवाई, जो उसके हित के लिए हानिकारक था, नहीं किया जाना चाहिए।

रामेश्वर प्रसाद बनाम झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड (ऊपर) के मामले में निर्णय, मेरी राय में, वर्तमान मामले के तथ्यों में इस कारण से लागू नहीं होगा कि सेवानिवृत्ति देयों से अतिरेक संदत्त धनराशि की वसूली से सम्बन्धित विवाद्यक विचाराधीन नहीं था। वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थीगण यह दर्शाने में सक्षम नहीं रहे हैं कि याची की टेक्निकल ग्रेड-II पर उसकी नियुक्ति के समय उसके लिए नियत वेतनमान किसी प्रोन्नति सम्बन्धी प्रसुविधा के माध्यम से था जब, स्वीकार्यत: वेतनमान वहीं था जो याची स्विच बोर्ड ऑपरेटर ग्रेड-I के पद पर आहरित कर रहा था। द्वितीयत:, कटौती के माध्यम से उसका वेतनमान संशोधित करने एवं भुगतान की अभिप्रायित अतिरेक धनराशि की वसूली करने का प्रस्तावित निर्णय क्यों नहीं लिया जाना चाहिए, यह स्पष्ट करने का कोई अवसर याची को नहीं दिया गया था। इसके अतिरिक्त, वसूली की ईप्सा वेतनमान के नियतीकरण में अभिकथित त्रुटि के 20 वर्ष से भी अधिक समय के पश्चात् एवं याची की सेवानिवृत्ति की तिथि के दो वर्ष से अधिक समय के उपरांत की गयी है। ऐसी कार्रवाई यहाँ तक कि पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन अधिकथित प्रक्रिया का आश्रय लिए बिना किए जाने के कारण, वसूली के आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है।

9. ऊपर कथित कारणों से, मैं रिट आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, इस रिट आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है। कार्मिक उप-निदेशक, PT.P.S (प्रत्यर्थी सं॰ 6) द्वारा यथा पारित दिनांक 26.7.2005 का आक्षेपित आदेश सं॰ 2446 को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को याची द्वारा आहरित अंतिम वेतन के आधार पर उसका पेंशन नियत करने एवं तद्नुसार मासिक पेंशन के भुगतान की मंजूरी प्रदान करने एवं तद्नुसार पेंशन के अधिशेषों का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

इन संप्रेक्षणों के साथ यह रिट आवेदन निस्तारित किया जाता है।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

टेकलाल महतो

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 1136 वर्ष 2009. 18 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

(क) भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 14—समानता–मनमानापन और समानता एक दूसरे के घोषित शत्रु है–अगर मनमानापन उपस्थित है तो समानता सदा अनुपस्थित होती है। और जहाँ समानता मौजूद है तो मनमानापन सदा अनुपस्थित होता है–मनमाना निर्णय समानता का एक उल्लंघन सामने लाएगा। (पैरा 5)

(ख) सेवा विधि–पेंशन–वसूली–सेवा अवधि के दौरान किया गया अतिरेक भुगतान नैसर्गिक न्याय के नियम का अनुपालन किये बगैर उपदान से वसूल नहीं की जा सकती। (पैरा 6)

निर्णयज विधि.–2007 (4) JLJR 459; 1995 Supp.(1) SCC 18—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s K.P. Deo, G.M. Singh, For the Petitioner; M/s J.C. to G.A., S. Srivastava, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका मुख्यत: प्रत्यर्थी संख्या 6 द्वारा पारित, दिनांक 24 अक्टूबर, 2008 के आदेश (याचिका के ज्ञापांक का परिशिष्ट-1) के विरूद्ध संस्थित है, जिसके द्वारा परिशिष्ट-1 पर इस आदेश के अनुसरण में एवं सेवानिवृत्ति लाभों से विशेषकर उपदान से 1,00,471.00/- रुपए की बड़ी राशि का कटौती करने का आदेश किया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि याची को कोई नोटिस दिए बगैर एवं सुने जाने के कोई अवसर दिए बगैर उक्त राशि का वर्तमान याची के उपदान से कटौती कर ली गई है। परिकलन को किसी आधार या सुनवाई की कोई नोटिस याची को नहीं दी गई है। सम्बद्ध प्रत्यर्थीगण के मात्र एक लिपिक या प्रधान लिपिक ने पूर्वोक्त राशि का परिकलन किया है। और इसके कोई विवरण नहीं दिए गए हैं कि इस राशि पर पहुँचा कैसे गया है। इसके विपरीत, जो भी वेतन याची को दिया जाता था वह पूर्णत: झारखंड राज्य द्वारा निर्गत विधि, नियमावली विनियमों एवं नीति इत्यादि के अनुरूप था। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि अगर याची को अवसर दिया गया होता तो इन तथ्यों को सम्बद्ध प्रत्यर्थीगण के ध्यान में लाया गया होता और सुनवाई के बिना एकपक्षीय रूप से, एक मनमाना और लोभपूर्ण निर्णय प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया गया है, इस प्रकार यह अपास्त एवं निरस्त किए जाने का अधिकारी है जब नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने 2007(4) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 459 में रिपोर्ट किए गए **लक्ष्मण प्रसाद गुप्ता बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय और **1995 संपूरक (1) एस॰ सी॰ सी॰ 18** में रिपोर्ट किए गए **साहिब राम बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णय पर भी भरोसा किया है। इस प्रकार, एकपक्षीय निर्णय के परिणामत: यह याचिका आई है, अन्यथा, इस याचिका के दाखिल करने की आवश्यकता ही नहीं होती अगर नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की मात्र इस न्युनतम आवश्यकता का अनुपालन किया गया होता।''

3. मैंने प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि कटौती की गई राशि विधि के अनुरूप है क्योंकि याची को सेवारत रहते हुए राशि का अतिरेक भुगतान कर दिया गया था। राशि को लेने में प्रत्यर्थी द्वारा कोई अवैधानिकता कारित नहीं की गई है अब इस राशि की कटौती कर ली गई है और इसलिए, याचिका इस न्यायालय के द्वारा अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए।

4. दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता की सुनवाई करके और तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, मैंने मुख्यत: निम्नांकित कारणों एवं तथ्यों के कारण परिशिष्ट-1 पर

मौजूद प्रत्यर्थी संख्या 6 द्वारा पारित दिनांक 24 अक्टूबर, 2008 के आदेश को निरस्त और अपास्त करता हूँ:–

(i) परिशिष्ट–1 पर आदेश में पहुँचे गए अंक का कोई आधार दिए बगैर यह आदेश पारित किया गया है। 1,00,471/- रुपए की अंक प्रत्यर्थी के दिमाग से स्वर्ग या आकाश से नहीं आ सकता। इसका कोई आधार या परिकलन होना ही है जिसकी आपूर्त्ति प्रत्यर्थी द्वारा अनिवार्यतः करना है;

(ii) परिशिष्ट–1 से यथा दर्शाई गई राशि को अन्तिम रूप देने से पहले याची को कोई नोटिस नहीं दी गई थी;

(iii) याची को सुने जाने का कभी कोई अवसर नहीं दिया गया; एवं

(iv) माननीय सर्वोच्च न्यायालय और साथ–साथ इस न्यायालय के निर्णयों, जैसा कि इससे उपर कहा गया है की निर्णयाधार की दृष्टि में सम्बद्ध प्रत्यर्थीगण द्वारा सेवानिवृत्ति लाभों से राशि की कटौती करने के एक निर्णय पर पहुँचने से पहले कम–से–कम सुने जाने का एक अवसर दिया जाना चाहिए था।

5. परिशिष्ट–1 पर यह निर्णय एकपक्षीय एवं मनमाना है। मनमानापन और समानता एक दूसरे के घोषित शत्रु है। अगर मनमानापन उपस्थित है तो समानता सदा अनुपस्थित होती है और जहाँ समानता उपस्थित है मनमानापन सदा अनुपस्थित रहता है। मनमाना निर्णय समानता का एक उल्लंघन करेगा, अर्थात् भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का और इसलिए, एक आक्षेपित आदेश निरस्त एवं अपास्त किए जाने का अधिकारी है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों एवं कारणों के एक संचयी प्रभाव के तौर पर और न्यायिक निर्णयों का अवलोकन करते हुए, मैं एतद् द्वारा परिशिष्टि–1 पर प्रत्यर्थी संख्या 6 द्वारा पारित दिनांक 24 अक्टूबर, 2008 के आदेश को निरस्त और अपास्त करता हूँ, प्रत्यर्थीगण को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का अनुपालन करने की स्वतंत्रता सुरक्षित रखते हुए जिसमें कम–से–कम नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की न्यूनतम अर्हता का अनुपालन हो और तत्पश्चात्, वर्तमान याची के विरूद्ध कार्रवाई करेंगे।

7. चूँकि राशि की पहले ही कटौती की जा चुकी है, अतः मैं इस आदेश की प्रति प्राप्ति के तिथि से छः महीनों की अवधि के भीतर उक्त राशि को लौटा देने या याची को सुनवाई करने और विधि के अनुसार फिर से निर्णय करने का निर्देश एतद् द्वारा देता हूँ। अगर छः महिनों के भीतर कोई नया आदेश पारित नही होता, तो याची को कटौती की गई राशी वापस कर दी जाएगी।

8. उपरोक्त सम्परीक्षण की दृष्टि में, यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

मिथिलेश कुमार

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 1413 वर्ष 2006. 20 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

(क) सेवा विधि–पेंशन–मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देय–याची ने अपने पिता के मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देयों की मंजूरी का दावा जिसकी मृत्यु सामान्य रूप से तब हो गयी जब वह निर्धारित कर्म स्थापन में 10 वर्षों से कार्यरत था–उसकी माता को भी पारिवारिक पेंशन नहीं दिया गया था एवं उसकी भी मृत्यु हो गयी थी–मृतक कर्मचारी को स्थायी स्थापन में आमेलित किए जाने पर विचार नहीं किया गया था यद्यपि उसने 21.10.1984 की कट-ऑफ

तिथि से पूर्व 10 वर्षों की निरन्तर सेवा पूरी कर ली थी–अभिनिर्धारित, याची अपनी माता के पारिवारिक पेंशन एवं अपने पिता के मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देयों को प्राप्त करने का हकदार है। (पैरा 9 एवं 11)

(ख) बिहार पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट कोड–नियम 59—निर्धारित-कर्म स्थापन–याची के पिता ने निर्धारित-कर्म स्थापन में 10 वर्षों की निरन्तर सेवा की थी परन्तु उन्हें स्थायी (नियमित) स्थापन में उसके आमेलन पर विचार नहीं किया गया था–अभिनिर्धारित, स्थायी (नियमित) स्थापन में आमेलन के उसके मामले पर विचार करना राज्य सरकार का कर्त्तव्य था परन्तु यह नहीं किया गया था–आश्रितगण मृतक कर्मचारी की सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं एवं अन्य पारिणामिक प्रसुविधाओं के हकदार हैं। (पैरा 9 से 11)

निर्णयज विधि.–2005(3) JLJR 38; 2001(3) PLJR 15; SLP No. 1235 of 2002—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Ashutosh Anand, For the Petitioner; Sr.SC-II, Ms. Nehala Sharmin, J.C. A. Allam, For the Respondent-State; Mr. Sudarshan Srivastava, For the Respondent No. 5.

आदेश

इस रिट आवेदन में याची को ब्याज सहित मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति-देयों का भुगतान प्रत्यर्थीगण को करने का निर्देश निर्गतीकरण करने की प्रार्थना की गयी है जो याची के पिता स्व॰ बिन्ध्याचल प्रसाद के खाते पर भुगतेय था, जो प्रत्यर्थी राज्य सरकार के अधीन एक कर्मचारी थें एवं जिनकी मृत्यु 27.8.1975 को सामान्य रूप से हो गयी जब वह प्रत्यर्थी सं॰ 4, कार्यपालक अभियंता, यांत्रिकी खंड पलामू के अधीन सुपरवाईजर ग्रेड-III के तौर पर कार्य कर रहा था।

2. संक्षेप में, याची का मामला यह है कि उसके पिता स्व॰ बिन्ध्याचल प्रसाद को प्रारम्भ में 6.8.1965 को सहायक स्टोर-कीपर के तौर पर नियुक्त किया गया था। बाद में 3.11.1966 को उसे टाईम कीपर के पद पर प्रोन्नत किया गया था एवं तत्पश्चात् सुपरवाईजर ग्रेड III के पद पर प्रोन्नत किया गया था। उसकी मृत्यु 27.8.1975 को कार्यपालक अभियंता, सिंचाई विभाग, यांत्रिकी खण्ड, पलामू के अधीन कार्य करते हुए हो गयी।

अपने पिता की मृत्यु के उपरांत, याची अपनी माता एवं अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ गोपालगंज में अपने पैतृक गाँव में जाकर बस गया। याची द्वारा प्रत्यर्थीगण के सम्बन्धित प्राधिकारियों के समक्ष अनुकंपा के आधार पर अपनी नियुक्ति एवं अपने मृत पिता को भुगतेय मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देयों के भुगतान के लिए भी कई अभ्यावेदन दाखिल किया गया था।

तत्पश्चात्, याची की माता की मृत्यु 14.12.1991 को हो गयी थी। अपने माता एवं पिता दोनों की मृत्यु के उपरांत, याची एवं उसके दो भाई अर्थात् तारकेश्वर प्रसाद एवं अवधेश कुमार एवं एक विवाहित बहन शशि बाला परिवार के जीवित सदस्य के तौर पर शेष बच गए। तत्पश्चात् याची ने निर्देश दिए जाने पर उत्तराधिकार प्रमाण पत्र (परिशिष्ट-2) 16.6.1992 को प्राप्त किया।

यह दावा करते हुए कि स्व॰ बिन्ध्याचल प्रसाद के जीवित विधिक उत्तराधिकारीगण अर्थात् याची एवं उसके दो भाई एवं बहन सेवानिवृत्ति देयों को प्राप्त करने के हकदार थे। याची ने अपने दोनों भाइयों एवं बहन से प्राधिकार प्राप्त करके, इसके भुगतान के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण के समक्ष समावेदन किया। शपथपत्र सहित एक अभ्यावेदन एवं इसके साथ उत्तराधिकार प्रमाण पत्र संलग्न करते हुए 17.6.1992 को उत्तराधिकार प्रमाण पत्र दाखिल किया गया था। उत्तर में, याची को सूचित किया गया था कि अपने मृत पिता के सेवा पुस्तिका, अवकाश खाता एवं पुनरीक्षण अभिकथन प्रत्यर्थीगण के कार्यालय में अपेक्षित थे एवं जैसे ही दस्तावेज प्राप्त कर लिये जाते हैं, उसके स्वर्गीय पिता की मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देयों का भुगतान याची को कर दिया जाएगा।

3. याची अपने स्वर्गीय पिता के मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देयों का भुगतान करने के लिए यत्र-तत्र भटकते रहा एवं अथक प्रयास के बाद, वह अपने स्वर्गीय पिता के सेवा अभिलेख पूर्ण करवा सका एवं इसे सेवानिवृत्ति देयों का भुगतान करने के लिए अन्य संगत दस्तावेजों के साथ 27.1.2004 को सुपुर्द कर दिया। जब संपूर्ण सेवा अभिलेख प्राप्त करने के बावजूद, कोई भुगतान नहीं हुआ तो, याची CWJC No. 9408 वर्ष 2005 के माध्यम से रिट आवेदन में उच्च न्यायालय के समक्ष अभ्यावेदन किया। रिट आवेदन के अनुसरण में, महालेखाकार (A & E), बिहार, पटना ने अपने पत्र के माध्यम से प्रत्यर्थी सं॰ 4 से स्वर्गीय बिन्ध्याचल प्रसाद के मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देयों के भुगतान के लिए कदम उठाने एवं याची को भुगतान करने के लिए महालेखाकार (A & E), झारखण्ड, राँची के कार्यालय में अपेक्षित मंजूरी भेजने का आग्रह किया। फिर भी, प्रत्यर्थी संख्या 4 ने इस सम्बन्ध में कोई कदम नहीं उठाया। इन परिस्थितियों में, वर्तमान रिट आवेदन याची द्वारा दाखिल किया गया है।

4. प्रत्यर्थीगण की ओर से एक प्रति शपथ-पत्र दाखिल किया गया है। अपने प्रति शपथ-पत्र में, प्रत्यर्थीगण ने स्वीकार किया है कि याची के पिता स्वर्गीय बिन्ध्याचल प्रसाद को कार्यपालक अभियंता, सिंचाई विभाग, यांत्रिकी खण्ड, पलामू के कार्यालय में प्रत्यर्थीगण द्वारा नियुक्त किया गया था एवं उसकी मृत्यु 27.8.1975 को ही गयी थी जब वह सुपरवाईजर ग्रेड III के तौर पर कार्य कर रहा था। प्रत्यर्थीगण, द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण यह है कि याची के पिता कार्य प्रभार स्थापन में कार्य कर रहे थे एवं इस प्रकार, उसके आश्रित या तो पारिवारिक पेंशन, उपदान एवं सामूहिक बीमा, इत्यादि की प्रसुविधा पाने या अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पाने का हकदार नहीं थे। यद्यपि, दिनांक 1.9.2006 का 2760.00 रु॰ का एक चेक जो मृतक कर्मचारी के खाते पर भुगतेय विधिसम्मत देय आकलित किया गया था, जो चेक सं॰ A/4 186643 था तैयार किया गया था एवं याची को इसे संग्रहित करने की सूचना दी गयी थी, परन्तु याची इस चेक को प्राप्त करने की कार्रवाई नहीं की।

5. पक्षकारों के परस्पर विरोधी निवेदनों से, अविवादित तथ्य जो प्रतीत होते हैं, ये हैं कि याची के पिता स्वर्गीय बिन्ध्याचल प्रसाद को 6.8.1965 को सहायक स्टोर-कीपर के पद पर निर्धारित-कर्म कर्मचारी के तौर पर प्रत्यर्थी राज्य के अधीन नियुक्त था। वह अपनी नियुक्ति की तिथि से ही निरन्तर सेवा में रहा एवं उसे 5.10.1970 के प्रभाव से सुपरवाईजर ग्रेड III के पद पर प्रोन्नत किया गया था। उसकी सेवायें उसी विभाग के अंतर्गत एक स्थान से दूसरे स्थान में स्थानान्तरित किया गया था एवं अंतत: 27.8.1975 को उसकी मृत्यु 10 वर्षों की निरन्तर सेवा पूरा करने के उपरांत सेवा काल में हो गयी। मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देयों के भुगतान एवं अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की मंजूरी का दावा याची की ओर से अपने पिता की मृत्यु के तुरन्त बाद किया गया था।

6. प्रत्यर्थीगण द्वारा अपनाये गए दृष्टिकोण से, यह प्रतीत होता है कि इस तथ्य के बावजूद की याची के पिता को प्रत्यर्थीगण की सेवा में काफी पूर्व अगस्त, 1965 में बहाल किया गया था एवं निर्धारित कर्म स्थापन में 10 वर्ष से अधिक की निरन्तर सेवा की थी, फिर भी प्रत्यर्थीगण द्वारा उनकी स्थायी (नियमित) स्थापना में उसे नियमित करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया था।

7. निर्धारित-कर्म कर्मचारी के सम्बन्ध में पारिवारिक पेंशन, अवकाश भुनाई, भविष्य-निधि इत्यादि सहित सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं से सम्बन्धित विवाद्यक **राम प्रसाद सिंह एवं एक अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** [2005 (3) JLJR 38] के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष विचारणार्थ आया। राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर विरचित संगत नियमावलियों/मार्गनिर्देशों पर विचार करते हुए जिसके अधीन निर्धारित कर्म स्थापन का एक पृथक संवर्ग स्थायी स्थापन, अस्थायी स्थापन

के अतिरिक्त गठित किया गया था एवं साथ ही बिहार PWD संहिता के नियम 59 में दी गयी निर्धारित कर्म स्थापन की परिभाषा पर विचार करके, न्यायालय ने संप्रेक्षित किया था कि नियम 59 के अधीन निर्धारित कर्म स्थापन पर वाहित पदों को जो अनुरक्षण कार्य इत्यादि के लिए या किसी लम्बी अनिश्चित अवधि के लिए पूरे वर्ष अपेक्षित है, स्थायी बनाया जाना चाहिए एवं सरकार के अनुमोदन द्वारा स्थायी स्थापन में शामिल किया जाना चाहिए।

न्यायालय ने विभाग में नियोजित निर्धारित कर्म कर्मचारियों की सेवा से सम्बन्धित राज्य द्वारा निर्गत नोटिस पर भी गौर किया, जो यहाँ पर नीचे उत्कथित है:–

''विषय–निर्धारित–कर्म स्थापन की सेवा की संशोधित शर्त्तें।

निर्धारित–कर्म स्थापन, अस्थायी एवं स्थायी स्थापन एवं दैनिक मजदूरों के बीच विद्यमान सुभिन्नता को बनाये रखा जाएगा जैसा कि P.W. कोड एवं PWD एकाउंट्स कोड में दिया गया है परन्तु निर्धारित–कर्म स्थापन की सेवा की शर्त्तें अस्थायी सरकारी सेवकों की सेवा शर्त्तें अब के बाद समान होंगी।

निर्धारित–कर्म स्थापन के पदों को जो स्थायी प्रकृति के हैं, अर्थात् वर्ष में 12 महीनों के लिए एवं लम्बी तथा अनिश्चित अवधि तक अपेक्षित है, स्थायी बनाया जायगा एवं स्थायी स्थापन में शामिल किया जायगा एवं एक वर्ष की अनुमोदित सेवा वाले इन पदों पर कार्यरत व्यक्तियों को स्थायी सरकारी कर्मचारियों में शामिल किया जायेगा। इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी ली जा रही है एवं ऐसा किए जाने तक अस्थायी सरकारी सेवकों को प्रयोज्य सेवा शर्त्तें सभी निर्धारित–कर्म पदों पर लागू होंगे। [" उल्लिखित F.D. ज्ञाप सं० 1344 दिनांक 4.2.1949]"

निर्धारित–कर्म कर्मचारियों की सेवा शर्त्त के सम्बन्ध में उक्त सरकारी अधिसूचना के आधार पर एवं साथ ही **तुलसी प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** [2001(3) PLJR 15] के मामले में पटना न्यायालय की एकल पीठ के निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए, इस न्यायालय ने संप्रेक्षित किया था कि राज्य के मामलों के सम्बन्ध में निर्धारित–कर्म कर्मचारियों की सेवा शर्त्तों एवं पदों से सम्बन्धित दिनांक 4 फरवरी, 1949 की अधिसूचना के माध्यम से राज्य सरकार के मार्गनिर्देश भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन विरचित एक नियमावली समझा जायेगा। अपना संप्रेक्षण करते समय न्यायालय ने SLP No. 1235 वर्ष 2002 में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से अपने दृष्टिकोण का समर्थन प्राप्त किया था।

सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं एवं निर्धारित कर्म कर्मचारियों के पेंशन की मांग के सम्बन्ध में उठाये गए मुद्दे के सभी पहलुओं पर विचार करने के उपरांत, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने **राम प्रसाद सिंह (ऊपर)** के मामले में निम्नलिखित शब्दों में अभिनिर्धारित किया है:–

"(i) निर्धारित–कर्म कर्मचारी, जिन्होंने निर्धारित–कर्म स्थापन में एक ही पद पर पाँच वर्षों से अधिक की निरन्तर सेवा कर ली हो एवं अन्यथा पात्र हों, तो उन्हें नियुक्ति की तिथियों पर विचार किए बिना स्थायी (नियमित) स्थापन में अपनी सेवाओं को ग्रहण किए जाने के लिए विचारण का अधिकार है।

परन्तु दैनिक मजदूरी पर कार्यरत कोई निर्धारित–कर्म कर्मचारी जो कोई पद धारण नहीं किए हुए हैं, इस प्रकार हकदार नहीं है।

(ii) निर्धारित-कर्म कर्मचारी के आश्रित अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा करने का हकदार नहीं है।

(iii) नियमित वेतनमान में किसी पद पर कार्यरत निर्धारित-कर्म कर्मचारी, अपनी सेवानिवृत्ति पर एवं उनकी मृत्यु के उपरांत उनके उत्तराधिकारी/आश्रित मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं, जैसे कि पेंशन/पारिवारिक पेंशन, उपदान, अवकाश भुनाई इत्यादि G.P.F. एवं सामूहिक बीमा राशि के अतिरिक्त का दावा करने के हकदार होंगे यदि वे अन्यथा पेंशन, उपदान एवं अवकाश भुनाई अर्जित करने के लिए अपेक्षित अर्हता अवधि को पूरा करते हों।''

8. तुलसी प्रसाद सिंह (ऊपर) के मामले में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय में अंतर्विष्ट निर्देशों को स्वीकार करते हुए जो SLP No. 1235 वर्ष 2002 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया था, राज्य सरकार ने स्थायी (नियमित) स्थापन में उनकी सेवाओं को ग्रहण करने के लिए निर्धारित-कर्म स्थापन में एक ही पद के विरूद्ध निरन्तर सेवा की अर्हकारी अवधि अधिकथित करते हुए अधिसूचना निर्गत करके नियमित स्थापन में निर्धारित-कर्म स्थापन के कर्मचारियों के आमेलन के लिए 21 अक्टूबर, 1984 की कट-ऑफ तिथि नियत की थी। राज्य सरकार के उक्त पॉलिसी घोषणा का पालन करते हुए, सड़क निर्माण विभाग सहित कई विभाग ने उन सभी निर्धारित-कर्म कर्मचारियों के मामलों पर विचार करने का निर्णय लिया था जिन्हें स्थायी (नियमित) स्थापन में उनकी सेवायें ग्रहण करने के लिए 21 अक्टूबर से पहले नियुक्त किया गया था।

9. उक्त तथ्यों के आलोक में, याची के पिता जिसने 21 अक्टूबर, 1984 की कट-ऑफ तिथि से पूर्व 10 वर्षों की निरन्तर सेवा पूरा कर लिया था, वह निश्चित रूप से स्थायी (नियमित) स्थापन में अपने आमेलन के लिए विचारण के क्षेत्रान्तर्गत आ गया था। पुनरावृत्ति के लिए, राज्य के मामलों के सम्बन्ध में पदों एवं निर्धारित कर्म कर्मचारियों की सेवा शर्त्तों से सम्बन्धित 4 फरवरी, 1949 के मार्ग निर्देश भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन विरचित नियमावली समझे जाते हैं एवं, इसलिए वे राज्य सरकार पर बाध्यकारी थे। इसके अतिरिक्त, बिहार PWD कोड के नियम 59 का नियम 3 जो निर्धारित-कर्म स्थापन का वर्णन करता है, स्पष्ट रूप से अधिकथित करता है कि निर्धारित-कर्म स्थापन पर विहित पदों को जो अनुरक्षण इत्यादि के लिए पूरे वर्ष या लम्बे एवं अनिश्चित अवधि के लिए अपेक्षित हैं स्थायी बनाया जाना चाहिए एवं सरकार के अनुमोदन से स्थायी स्थापन में शामिल किया जाना चाहिए। उक्त नियमावलियों एवं मार्ग-निर्देशों के आलोक में एवं चूँकि, स्वीकार्यत: याची के पिता के निर्धारित-कर्म स्थापन में 10 वर्षों की निरन्तर सेवा कर चुकने के उपरांत, वह स्थायी (नियमित) स्थापन में आमेलन के लिए विचारित किए जाने के सीमान्तर्गत आ गया था, इसलिए स्थायी (नियमित) स्थापन में याची के आमेलन के लिए उसके पिता के मामले पर विचार करना राज्य सरकार का कर्त्तव्य था। यदि यह नहीं किया गया था, तो प्रत्यर्थीगण द्वारा इस बात का कोई कारण नहीं बताया गया है कि इस नियम की प्रसुविधा मृतक कर्मचारी को क्यों नहीं दिया गया है। इसलिए प्रत्यर्थी-राज्य ऐसा एक अभिमत नहीं अपना सकता है कि चूँकि मृतक कर्मचारी निर्धारित-कर्म स्थापन में कार्यरत था, इसलिए उसके आश्रित इस कर्मचारी के सेवानिवृत्ति प्रसुविधा का दावा करने का हकदार नहीं था।

10. न्यायालय का उक्त निष्कर्ष/सम्प्रेक्षण राज्य सरकार को निर्गत एक दिशा-निर्देश है एवं यह वर्तमान याची के मामले सहित सभी समान प्रकार के मामलों में प्रत्यर्थी राज्य सरकार पर बाध्यकारी है।

11. वर्तमान मामले के तथ्यों से, यह प्रतीत होता है कि याची के माता एवं पिता दोनों की मृत्यु हो चुकी है एवं याची सहित मृतक कर्मचारी के जीवित पुरूष पारिवारिक सदस्य वयस्क है जबकि याची

की बहन एक विवाहित महिला है। वर्तमान में उक्त से यह प्रत्यक्ष है कि पारिवारिक पेंशन का दावा करने के लिए मृतक कर्मचारी के परिवार में कोई भी जीवित नहीं है। इसके अतिरिक्त, यदि याची की माता जो मृतक कर्मचारी की विधवा थी एवं निश्चित रूप से पारिवारिक पेंशन का हकदार थी, जीवित होती, तो वह पारिवारिक पेंशन के अधिशेषों सहित पारिवारिक पेंशन का हकदार हो सकती थी जो निर्मुक्त किए जाने पर उसका हित गठित कर सकता था एवं जिसका मृतक के बच्चे हिताधिकारियों में से एक हो सकते थे। पारिवारिक पेंशन को छोड़कर, याची अन्य मौद्रिक प्रसुविधाओं का भी हकदार हो सकता है जो मृतक कर्मचारी के खाते में भुगतेय था।

12. उक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, प्रत्यर्थीगण को सेवानिवृत्ति प्रसुविधाओं एवं अन्य मौद्रिक प्रसुविधाओं का उचित आकलन करने का निर्देश दिया जाता है जो **राम प्रसाद सिंह (ऊपर)** के मामले में, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ निर्णय में अंतर्विष्ट दिशा-निर्देशों एवं मार्ग-निर्देशों के निबंधनों में, मृतक कर्मचारी के खाते में भुगतेय था एवं आकलन करने के उपरांत, इस प्रकार आकलित राशि की सूचना याची को देंगे एवं इस आदेश की तिथि से तीन माह के भीतर इसे याची को भुगतान करेंगे।

इस संप्रेक्षण के साथ, रिट आवेदन निस्तारित किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

भास्को गोप @ धमेन्द्र गोप (239 में)

सरोज खन्देत (218 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य (दोनों में)

दाण्डिक अपील सं॰ 239, 218 वर्ष 2001. 17 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 9 वर्ष 1995 में श्री सीता राम महतो, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला, द्वारा पारित दिनांक 21 जून, 2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 366A, 376/34—बलात्संग–14 वर्षीय अवयस्क बालिका का व्यपहरण एवं बलात्संग–पीड़िता की सम्मति का अभिवाक्–अभिनिर्धारित, एक अवयस्क बालिका अपने ऊपर गलत करने की सम्मति नहीं दे सकती–दोषसिद्धि कायम रखा गया। (पैरा 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Nagmani Tiwary, For the Appellants; Mr. Amaresh Kumar, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के अधिवक्ता को सुना।

2. यह अपील, सत्र विचारण सं॰ 9 वर्ष 1995 में, श्री सीता राम महतो, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा दिनांक 21 जून, 2001 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध निर्देशित है, जिस निर्दिष्ट-निर्णय के द्वारा, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त भास्को गोप @ धर्मेन्द्र गोप को भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 366 और 376 के अधीन दोषी पाया और दोनों के अंतर्गत उसे सात वर्षों के कठोर कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया। उन्होंने अभियुक्त सरोज खन्देत को भी भारतीय दण्ड संहिता की धारा 366A/34 के अधीन दोषी पाया और उसे सात वर्षों के कठोर कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया गया। दोनों ही अपीलार्थियों ने दो पृथक अपील क्रमशः दाण्डिक

अपील सं॰ 239 वर्ष 2001 एवं दाण्डिक अपील सं॰ 218 वर्ष 2001 दाखिल किया। दोनों अपीलों को एक साथ सुना गया एवं उन्हें एकल न्यायाधीश द्वारा निरस्त किया गया है।

3. अभियोजन मामले की शुरूआत 4.7.1994 को, सूचनादाता नकुल लोहार, अ॰ सा॰ 1 द्वारा दिए गए फर्दबयान के आधार पर प्रारम्भ की गई थी, जिसमें कहा गया है कि 1.7.1994 की रात्रि में, उसकी लगभग 14 वर्षीय पुत्री, लखी कुमारी, कालिपादो गोप के पुत्र भास्को गोप द्वारा ले जाई गई है एवं अपहरण के दिन से, वह उसकी पुत्री के साथ अभी भी फरार है। 4.7.1994 को नकुल लोहार, अ॰ सा॰ 1 ने उसके अपहरण के लिए एक लिखित रिपोर्ट दर्ज किया। लिखित रिपोर्ट के आधार पर, पुलिस ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 366A के साथ-साथ धारा 376 के अधीन एक मामला पंजीकृत किया। चूँकि, मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए, विद्वान दण्डाधिकारी ने मामले का संज्ञान लेने के पश्चात् मामले को सत्र न्यायालय को प्रेरित किया एवं तत्पश्चात् मामला द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा विचारित किया था।

4. विचारण के अनुक्रम में, अभियोजन ने पाँच साक्षियों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 नकुल लोहर है, पीड़ित लड़की का पिता, अ॰ सा॰ 2, लखी कुमारी है, स्वयं पीड़िता, अ॰ सा॰ 3 बूदम लोहारिन है, पीड़ित लड़की की माता, अ॰ सा॰ 4 डॉ॰ बी॰ बी॰ तोप्नों हैं एवं मामले का अन्वेषण अधिकारी अ॰ सा॰ 5 देवेन्द्र त्रिपाठी हैं। विचारण के पश्चात्, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने पक्षकारों के साक्ष्य एवं तर्कों पर विचारण करने पर जैसा उपरोक्त है, अभियुक्त को दोषी पाया।

5. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि जहाँ तक अपीलार्थी-अभियुक्त, सरोज खण्डेत से सम्बद्ध है, उसके विरूद्ध या तो बलात्संग कारित करने या पीड़ित लड़की के अपहरण करने में सहभागिता का कोई अभिकथन नहीं है। अपने प्रति-परीक्षण में अ॰ सा॰ 2 ने अभिकथित किया कि अभियुक्त, सरोज खण्डेत द्वारा कोई भूमिका नहीं निभाई गई थी एवं इसलिए वास्तव में, वह उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों के लिए दोषमुक्त होने के दायी है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि जहाँ तक अभियुक्त भास्को गोप संबंधित है, अ॰ सा॰ 2 एवं उसके पिता-अ॰ सा॰ 1 एवं माता-अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य दर्शाते हैं कि वह सम्मति देने वाली पक्षकार थी एवं अपने स्वैच्छा से, उसने अभियुक्त भास्को गोप के साथ घर छोड़ा था एवं इस प्रकार, अपहरण या बलात्संग का अभिकथन कोई आधार नहीं पाता है एवं वह भी उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्ति का हकदार है।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि जहाँ तक अभियुक्त, सरोज खण्देत संबंधित है, उसके विरूद्ध या तो अपहरण या बलात्संग कारित करने का कोई साक्ष्य नहीं है, परन्तु डॉक्टर एवं साक्षियों के साक्ष्यों से यह सिद्ध किया गया है कि घटना के समय पीड़ित लड़की लखी कुमारी अवयस्क थी एवं उसके सम्मति देने का कोई प्रश्न ही नहीं है एवं इस तरह अभियोजन ने अभियुक्त भास्को गोप के विरूद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध किया है।

7. पक्षकारों को सुनने एवं साक्ष्यों पर जाने के पश्चात्, अभियोजन ने पाँच साक्षियों का परीक्षण किया था।

(i) अ० सा० 1 नकुल लोहार है, जो कि पीड़ित लड़की का पिता है एवं उसने न्यायालय में कहा है कि घटना के दिन उसके गाँव के एक राज किशोर ने उसे सूचना दिया कि उसकी पुत्री उसके घर में नहीं है, तब उसने पूछताछ किया परन्तु अपनी पुत्री का सुराग नहीं पा सका। तीन से चार दिनों के पश्चात्, उसने सूचना पाया कि उसकी पुत्री, अभियुक्त भास्को गोप के साथ आजाद बस्ती में है, तब उसने पुलिस थाने में एक लिखित रिपोर्ट किया था। उसने लिखित रिपोर्ट में अपने हस्ताक्षर को प्रदर्श-1 से सिद्ध किया।

(ii) अ० सा० 2, पीड़ित लड़की है। उसने अभिकथन किया है कि घटना के दिन, जब वह अपने घर में सो रही थी, तब अभियुक्त भास्को गोप उसके कमरे में

दाखिल हुआ और उसे अपने साथ चलने को कहा एवं जब उसने ऐसा करने से इन्कार किया, तब उसने उसका मुँह दबाया एवं उसे घर से बाहर ले आया। घर के बाहर भी एक व्यक्ति खड़ा था, तब वे दोनों उसे एक साइकिल पर बस अड्डे ले गए एवं बस अड्डे से वह आजाद बस्ती ले जाई गई जहाँ अभियुक्त भास्को गोप ने उसे रखा था एवं उस रात्रि में उसके उपर बलात्संग कारित किया। उसने कहा कि वह वहाँ तीन रातों तक रही एवं सभी तीनों ही रात्रियों में वह भास्को गोप द्वारा बलात्संग की गई थी। इसके पश्चात्, वह उसे अपने घर वतघोर गाँव में ले आया, जहाँ पुलिस ने उसे बरामद किया था। उसने कहा कि अन्य व्यक्ति जो घर के बाहर खड़ा था, सरोज खन्देत था, परन्तु जब वह आजाद बस्ती पहुँची, वह चला गया। उसके प्रति-परीक्षण में, उसने कहा कि सरोज ने उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया था एवं उसने उससे कुछ नहीं कहा था एवं उसे सरोज के विरूद्ध कोई परिवाद नहीं है। अपने प्रति-परीक्षण में, उसने पैरा-6 में कहा कि साईकिल अभियुक्त, भास्को गोप द्वारा चलाई गई थी। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कही कि उसने बस अड्डे या आजाद बस्ती में कोई कोलाहाल नहीं मचाया था। पैरा-14 में, उसने कहा कि रिपोर्ट के समय उसके गुप्तांग से रूधिरस्त्राव हो रही थी। उसने इन्कार किया कि जब वह व्यपहरण हुई थी, उसका उसके साथ कोई प्रेम संबंध भी था।

(iii) अ० सा० 3, पीड़ित लड़की की माता ने भी अभिकथन किया है कि घटना की तारीक को, वह कमरे के बाहर बरामदा में सो रही थी। उसकी पुत्री कमरे में सो रही थी। दरवाजा केवल आधा ही बंद था, जब वह जागी, तब उसने पाई कि उसकी पुत्री वहाँ नहीं थी, एवं तब उसने किसी को अपने पति को बुलाने के लिए भेजा था। चार दिनों के पश्चात्, उसने उसे भास्को गोप के घर में पाया जहाँ से पुलिस ने उसे बरामद किया। अन्वेषण करने पर, पीड़ित लड़की ने कही कि भास्को गोप ने उसपर बलपूर्वक बलात्संग कारित किया था एवं उसने यह भी कही कि यदि वह कोलाहल मचाएगी, तो वह मार दी जाएगी।

(iv) अ० सा० 4, डॉक्टर ने कहा कि 8.7.1994, को पीड़ित लड़की के परीक्षण के दौरान, उसने पीड़ित लड़की की आयु लगभग 14 से 16 वर्ष पाई। चिकित्सीय परीक्षण के आधार पर, उसने पाया कि पीड़ित लड़की को ऋतुस्त्राव पिछले एक वर्ष से ही था एवं उसका योनिच्छेद फटा हुआ था। यद्यपि, उसने किसी बलात्संग का चिन्ह नहीं पाया था।

(v) अ० सा० 5- देवेन्द्र त्रिपाठी औपचारिक साक्षी है, जिसने कि औपचारिक प्रथम सूचना रिपोर्ट को प्रदर्श-4 के तौर पर, केस डायरी को प्रदर्श-5 के तौर पर एवं लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श-3 के तौर पर सिद्ध किया है।

8. अभिलेख पर आए मामले एवं साक्ष्यों पर जाने के पश्चात्, मैं यह पाता हूँ कि सरोज खण्देत के विरूद्ध कोई साक्ष्य नहीं है कि वह पीड़ित लड़की, लखी कुमारी के अपहरण के कार्य में सम्मिलित था। अ॰ सा॰ 1 एवं अ॰ सा॰ 3 द्वारा भी कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है। मात्र अ॰ सा॰ 2, जो कि घर के बाहर खड़ा था एवं जब वह साईकिल पर भास्को गोप द्वारा ले जाई जा रही थी, वह साईकिल के पीछे बैठा था एवं जब वह आजाद बस्ती पहुँच गई वह उन्हें छोड़कर चला गया। उसने कहा कि सरोज खण्देत ने उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया न ही उससे कुछ कहा, इस प्रकार, उसके विरूद्ध कोई साक्ष्य नहीं है जो उसे पीड़ित लड़की के अपहरण में सक्रिय सम्मिलित करे। यह प्रतीत होता है कि उसने मुख्य अभियुक्त भास्को गोप का केवल साथ दिया था। उपरोक्त सामग्री के दृष्टिकोण में, अभियुक्त सरोज खण्देत को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 366A/34 के अधीन उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया गया एवं उसके दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को अपास्त किया जाता है।

जहाँ तक कि अभियुक्त भास्को गोप से सम्बद्ध हैं, यद्यपि, अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि उसके पास बस अड्डे या आजाद बस्ती में कोलाहाल मचाने का सुअवसर था, परन्तु उसने कोई कोलाहाल नहीं मचाई एवं कथित किया कि वह धमकी के भय के अधीन थी

एवं जो कि डॉक्टर के साक्ष्यों के आधार पर एवं अ॰ सा॰ 1 एवं अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्यों के आधार पर स्वीकृत है कि घटना के समय उसकी आयु लगभग 14 वर्ष की थी एवं इसलिए उसकी सम्मति निष्प्रयोजन है। एक अवयस्क लड़की अपने ऊपर गलत कारित करने की सम्मति नहीं दे सकती है। मामले के दृष्टिकोण में, अभियोजन ने भास्को गोप @ धर्मेन्द्र गोप के विरूद्ध आरोपों को सिद्ध किया है कि उसने पीड़ित लड़की पर बलात्संग कारित किया था।

तद्नुसार, मेरे विचार में, भास्को गोप के विरूद्ध आरोपों को यथोचित संदेह से परे सिद्ध किया गया है। मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ एवं विचारण न्यायालय द्वारा भास्को गोप के विरूद्ध दोषसिद्धि एवं दण्डादेश पोषणीय है।

इसलिए, सरोज खन्देत की अपील अनुज्ञात की जाती है एवं भास्को गोप की अपील खारिज की जाती है। चूँकि, अपीलार्थी भास्को गोप जमानत पर है, उसके जमानत बन्धों को रद्द किया गया है एवं विचारण न्यायालय को दण्डादेश का अनुसरण करने के लिए उसके विरूद्ध गिरफ्तारी का अधिकार पत्र जारी करने का निर्देश दिया जाता है। अपीलार्थी सरोज खण्देत उसके जमानत बन्धों के अनुबद्धता से मुक्त किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

प्रेम रंजन (1667 में)

अमित कुमार मिश्र (1574 में)

स्वपन कुमार (3354 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य (सभी में)

W.P. (S) No. 1667, 1574 एवं 3354 वर्ष 2008. 20 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–नियुक्ति–उप-निरीक्षक एवं अन्य समान पदों पर सामान्य संवर्ग के उम्मीदवार के लिए ऊपरी आयु सीमा 35 से 25 वर्ष तक घटायी गयी थी–इस आधार पर चुनौती दी गयी कि कई वर्षों तक नियुक्ति नहीं की गयी है एवं उपरी आयु सीमा को घटाना मनमाना एवं राज्य की नीति के विरूद्ध है–राज्य सरकार को पात्रता मानदंडों के ऊपरी आयु सीमा का पुनर्विलोकन करने का निर्देश इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए दिया गया कि झारखण्ड राज्य के सृजन के पश्चात् कई वर्षों तक रिक्तियाँ संचित होने दिया गया है–पुनर्विलोकन किए जाने तक, भर्त्ती की प्रक्रिया को प्रास्थगन में रखा जाएगा। (पैरा 16 से 19)

निर्णयज विधि.–AIR 1994 SC 736; 2000 (3) PLJR 231; AIR SCW (39) 6564; 2008(3) JCR 267—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Manish Kumar (in 1574, 3354), M/s Suresh Kumar, Ranjeet Kumar (in 1667), For the Petitioners; M/s P.K. Prasad, Pratyush Kumar (in all), For the Respondents-State.

आदेश

इन सभी रिट आवेदनों में याचीगण, झारखण्ड पुलिस सेवा में पुलिस के उप-निरीक्षकों के पद पर उम्मीदवारों की भर्ती के लिए पात्रता मानदंडों में से एक के तौर पर अधिकतम आयु सीमा 24 वर्ष नियत किए जाने पर आक्षेप करते हुए प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा निर्गत विज्ञापन सं॰ 01 वर्ष 2008 (उपाबंध-2)को सम्मिलित रूप से चुनौती दी है। अवधारण के लिए उद्भूत मुख्य प्रश्न हैं:-

(i) क्या 1999 से संचित उप-निरीक्षक के रिक्तियों एवं पदों एवं वर्ष 1999 में संचित समान पदों को आक्षेपित विज्ञापन में शामिल किया गया है जो लम्बे समय तक रिक्त रहा?

(ii) क्या सामान्य संवर्ग अभ्यर्थियों के लिए उपरी आयु सीमा 1.1.2008 को 24 वर्ष के तौर पर नियत करके, उन उम्मीदवारों को, जो वर्ष 1999 में प्रश्नगत पद पर नियुक्ति के पात्र थे, उन्हें नियुक्ति से विवर्जित किया जा सकता है?

(iii) क्या कट ऑफ तिथि 1.1.1999 के बजाय 1.1.2008 के तौर पर नियत करने में प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई अविधिमान्य, मनमाना एवं दुर्भावनापूर्व है एवं विभेद का एक कार्य है?

(iv) क्या प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई भारतीय संविधान के अनुच्छेदों 14 एवं 16 का उल्लंघन करता है, जो कि इस न्यायालय द्वारा न्याय के हित में हस्तक्षेप किए जाने के योग्य है?

2. इन सभी रिट आवेदनों में याचीगण का सम्मिलित दावा यह है कि जब राज्य की पुलिस सेवा में प्रत्यर्थीगण-राज्य द्वारा भर्ती की प्रक्रिया अपनायी गयी थी तब उप-निरीक्षक के पद पर चयन के लिए अंतिम परीक्षा वर्ष 1994 में करायी गयी थी। तत्कालीन बिहार राज्य के विभाजन के उपरांत जब झारखण्ड राज्य 15.11.2000 के प्रभाव से अस्तित्व में आया, तब झारखण्ड राज्य ने उप-निरीक्षकों एवं समतुल्य पदों पर जो कुछ भी रिक्तियों को भरने के लिए कोई शुरूआत नहीं किया।

झारखण्ड राज्य ने दिनांक 12.11.2001 के ज्ञापन सं॰ 3300 के माध्यम से कतिपय संशोधनों के साथ बिहार पुलिस मैनुअल को ग्रहण किया एवं उपान्तरित खण्डों में से एक में, पुलिस सेवा में सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा 19 वर्षों से 35 वर्ष नियत किया गया है।

राज्य सरकार की अध्यपेक्षा के अनुसरण में, झारखण्ड लोक सेवा आयोग ने एक अधिसूचना 11 वर्ष 2007 निर्गत किया था जिसके द्वारा झारखण्ड पुलिस सेवा में नियुक्ति के लिए उनकी सिविल सेवा परीक्षा जे॰ पी॰ एस॰ सी॰ द्वारा आयोजित की गयी थी एवं जे॰ पी॰ एस॰ सी॰ द्वारा निर्गत तत्सम विज्ञापन में, सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष के तौर पर नियत की गयी है।

उक्त के बावजूद, आक्षेपित विज्ञापन ने अब किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक या समतुल्य होने के अन्य अपेक्षित पात्रता मानदंडों के अतिरिक्त सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा 1.1.2008 को 24 वर्ष के तौर पर नियत किया है।

3. याचीगण की व्यथा यह है कि उनलोगों ने अपना स्नातक काफी पूर्व वर्ष 2002 में पूरा कर लिया था एवं तद्द्वारा उप-निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र हो गये थे परन्तु झारखण्ड राज्य ने 2002 से भर्त्ती द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए कोई प्रयास प्रारम्भ नहीं किया एवं अब मात्र 2008 में ही प्रत्यर्थी-राज्य ने कार्यवाही की है परन्तु ऐसा करने में, उनलोगों ने सामान्य संवर्ग में ऊपरी आयु सीमा 24 वर्ष नियत करके उम्मीदवारों के साथ विभेद करने का प्रयास किया है, तद्द्वारा याची एवं अन्य समान उम्मीदवारों को अपनी ऊपरी आयु सीमा पार कर चुकने के कारण नियोजन के अवसर से विवर्जित किया है।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री मनीष कुमार तर्क देते हैं कि झारखण्ड राज्य ने बिहार पुलिस मैनुअल को अपनाया था एवं दिनांक 12.11.2001 के ज्ञापन सं॰ 3300 के

माध्यम से मैनुअल के नियम 658 में कतिपय संशोधन किए गए थे। संशोधन के माध्यम से किए गए उपान्तरण में यह घोषणा किया गया था कि नियुक्ति के लिए सामान्य संवर्ग उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष नियत की गयी है।

राज्य सरकार की अध्यपेक्षा के अनुसरण में, झारखण्ड लोक सेवा आयोग, राँची ने अधिसूचना सं॰ 11 वर्ष 2007 निर्गत किया था जिसके द्वारा झारखण्ड पुलिस सेवा में उम्मीदवारों की नियुक्ति के लिए तृतीय सिविल सेवा परीक्षा आयोजित किया गया था। अधिसूचना में भी सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष के तौर पर कायम रखा गया था।

विद्वान अधिवक्ता अग्रेतर निवेदन करते हैं कि पुलिस सेवा में सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए उक्त ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष के तौर पर नियत करने के बावजूद, प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने राज्य पुलिस सेवा में उप-निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए अधिकतम ऊपरी आयु सीमा 1.1.2008 को 24 वर्ष के तौर पर नियत करते हुए आक्षेपित विज्ञापन निर्गत किया एवं एक अनुपूरक विज्ञापन के माध्यम से आयु सीमा 1.1.2009 को 25 वर्ष तक बढ़ा दिया। विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि उप-निरीक्षक के पद पर उम्मीदवारों के चयन के लिए प्रक्रिया पहली बार झारखंड राज्य के सृजन के पश्चात् एवं अंतिम चयन परीक्षा की तिथि से 13 वर्षों से अधिक समय पश्चात् अब इप्सित किया जा रहा है। विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि झारखण्ड राज्य के सृजन के उपरांत से 5 वर्षों से अधिक समय तक रिक्तियों के संचित करके एवं सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा घटाकर अब संचित रिक्तियों को भरने की कार्यवाही प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से पूर्णतया मनमाना एवं विभेदकारी कृत्य है।

विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि स्नातक की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता का पात्रता मानदण्ड नियत करके, वह उम्र जिसपर उम्मीदवारों में से अधिकतर मैट्रिक परीक्षा में शामिल होते हैं लगभग 16 वर्ष होता है एवं स्नातक पूरा करने के लिए गणना किए गए पाँच वर्ष को जोड़ने पर, कोई उम्मीदवार सामान्यतया 21/22 वर्ष के बीच स्नातक डिग्री प्राप्त करता है। याची एवं उसके समान अन्य उम्मीदवार ने वर्ष 2002 में स्नातक डिग्री हासिल की थी एवं पात्रता मानदंड के अनुसार, उप-निरीक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र बन गया था। राज्य सरकार ने अपनी अक्रियता से वर्ष 2000 से ही जब झारखण्ड राज्य अस्तित्व में आया, रिक्तियों को भरने में असफल हुआ है एवं अब पहली बार रिक्तियाँ संचित करने के उपरांत रिक्तियों को भरने का विनिश्चिय किया है परन्तु ऊपरी आयु सीमा 25 वर्ष के तौर पर नियत करके, याची एवं उसके समान कई अन्य उम्मीदवारों को अधिकतम आयु सीमा पार कर जाने के आधार पर चयन परीक्षा में उन लोगों को शामिल होने से विवर्जित किया गया है।

इस परिप्रेक्ष्य में AIR 1994 SC 736 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों एवं 2000(3) PLJR 231 में पटना उच्च न्यायालय में निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि उपरोक्त निर्णय घोषणा करते हैं कि प्रशासनिक कार्रवाई द्वारा सेवा शर्त्तों को परिवर्तित करने के लिए एवं सेवा शर्त्तों की उपेक्षा करते हुए कोई भी संशोधन नहीं किया जा सकता है, जैसा कि राज्य की नीति में अधिकथित किया गया है।

राज्य पुलिस मैनुअल में 12.11.2001 को कराये गए संशोधन के माध्यम से नियम 658 में उपान्तरण को निर्दिष्ट करते हुए, जिसके द्वारा झारखण्ड पुलिस सेवा में इस पद पर नियुक्ति के लिए सामान्य संवर्ग उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष के तौर पर घोषित की गयी थी, विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि उपरोक्त उपान्तरण राज्य की नीति की घोषणा करता है। यह झारखंड पुलिस सेवा में उम्मीदवारों की भर्त्ती के लिए विज्ञापन सं॰ 11 वर्ष 2007 के माध्यम से जे॰ पी॰ एस॰ सी॰ द्वारा निर्गत विज्ञापन में भी प्रतिबिंबित होता है, जिसमें सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए ऊपरी

आयु सीमा 35 वर्ष नियत की गयी है। विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि राज्य सरकार द्वारा यथा घोषित नीति प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा ऊपरी आयु सीमा को 25 वर्ष तक घटाकर परिवर्तित नहीं किया जा सकता था।

विद्वान अधिवक्ता यह भी तर्क देते हैं कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 12 एवं 48A को कार्यपालिका कार्यवाही के सम्बन्ध में एवं साथ ही किसी विधायन के सम्बन्ध में, दोनों में ही लागू किया जाना चाहिए एवं इसलिए यह प्रत्यर्थी-राज्य सरकार की प्रशासनिक कार्रवाई का न्यायिक पुनर्विलोकन करने के लिए इस न्यायालय की शक्ति की परिधि के अंतर्गत है।

5. यद्यपि प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रति शपथ-पत्र दाखिल किया गया है परन्तु यह विनिर्दिष्ट रूप से याची द्वारा पेश किए गए आधारों को विवादित नहीं करता है। इसके विपरीत प्रति शपथ-पत्र इस तथ्य की अभिस्वीकृति देता है कि राज्य पुलिस सेवा में उप-निरीक्षकों के पद पर नियुक्ति के लिए 1994 से ही परीक्षायें आयोजित नहीं की जा सकी थी। प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता अभिस्वीकृति देते हैं कि पुलिस मैनुअल के नियम 658 में कांस्टेबलों के पद पर नियुक्ति के विषय में राज्य सरकार द्वारा दिनांक 12.11.2001 के ज्ञापन सं॰ 3300 के माध्यम से एक उपान्तरण किया गया था, जिसके अधीन सामान्य कोटि में कांस्टेबलों के पद पर ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष नियत की गयी है। प्रति शपथ-पत्र उन कारणों को समनुदेशित या स्पष्ट नहीं करता है कि पुलिस मैनुअल के नियम 658 में उपरोक्त उपान्तरण के बावजूद, सामान्य कोटि में उप-निरीक्षकों के पद पर नियुक्ति के उम्मीदवारों के चयन की ऊपरी आयु सीमा अब 25 वर्ष तक सीमित क्यों कर दी गयी हे एवं ऊपरी आयु सीमा में कटौती के पीछे कौन सा निर्णयाधार है।

6. यद्यपि विद्वान महाधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की कि सामान्य संवर्ग के लिए ऊपरी आयु सीमा नियत करते हुए ऊपरी आयु सीमा में संशोधन राज्य सरकार द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन एवं पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 46 के प्रावधानों के अधीन राज्यपाल की शक्तियों का प्रयोग करके राज्य सरकार के आदेशों के अधीन राज्य सरकार द्वारा निर्गत की गयी है।

तद्नुसार आक्षेपित विज्ञापन (उपाबंध-2) पुलिस महानिदेशक, झारखंड, राँची (प्रत्यर्थी सं॰ 3) द्वारा निर्गत किया गया है जिसमें ऊपरी आयु सीमा पुलिस मैनुअल के नियम 658 में किए गए उपान्तरण के अनुसार नियत की गयी है।

7. यह नोट किए जाने की जरूरत है कि आक्षेपित अधिसूचना/विज्ञापन (उपाबंध-2), यह घोषणा नहीं करता है कि पुलिस सेवा में भर्ती अधिकारियों के किसी विशेष संवर्ग के लिए या किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए निर्गत की जानी है। अधिसूचना मात्र सामान्य संवर्ग एवं साथ ही आरक्षित संवर्ग दोनों में उप-निरीक्षकों के पद सहित सेवा के संवर्गों में से प्रत्येक में कुल रिक्तियों की ही घोषणा करता है।

8. यह विवादित नहीं है कि राज्य पुलिस सेवा सहित सिविल सेवाओं के रिक्त पदों पर नियुक्ति के लिए झारखंड पुलिस सेवा आयोग के माध्यम से निर्गत किया गया था, जबकि प्रशासनिक सेवाओं एवं साथ ही पुलिस सेवाओं के पद पर भर्ती के लिए तृतीय सिविल सेवा परीक्षा आयोजित करने के लिए एक विज्ञापन हाल ही में नवम्बर, 2007 के महीने में निर्गत किया गया था। विज्ञापित सेवाओं के सम्बन्ध में सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष के तौर पर नियत की गयी थी।

9. विद्वान अधिवक्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधानों के अधीन सरकार के प्रावधानों के अधीन सरकार की सक्षमता के भीतर एक विधायी अधिनियम के तौर पर पुलिस मैनुअल

के नियम 658 में किए गए उपान्तरण/संशोधन का निर्वचन करना चाहेंगे और निवेदन करेंगे कि वह उपान्तरण जिसके द्वारा ऊपरी आयु सीमा 25 वर्ष पर नियत की गयी है, न्यायिक पुनर्विलोकन का विषय नहीं हो सकता है।

10. निर्णयों की एक श्रृंखला में, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रशासनिक एवं साथ ही विधायी कार्रवाई के मामले में प्रयोज्य न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धांतों को अधिकथित किया है। उन मामलों में जहाँ किसी विधायन का संवैधानिकता एवं/या निर्वचन, जो विधायी निकाय या कार्यकारी प्राधिकार द्वारा अपने प्रश्नगत प्राधिकार के माध्यम से किया जाता है। **भारत संघ बनाम पुष्पा रानी एवं अन्य, AIR SCW (39) 6564** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने सम्प्रेक्षित किया है कि यद्यपि भर्ती एवं अर्हता, चयन का मानदंड इत्यादि रीति विहित करने से सम्बन्धित मामला नियोक्ता के अनन्य अधिकार के अंतर्गत आयेगा, फिर भी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग ऐसे मामलों में किया जा सकता है, यदि यह दर्शाया जाता है कि नियोक्ता की कार्रवाई किसी संवैधानिक या सांविधिक प्रावधानों के विपरीत है या आत्यंतिक रूप से मनमाना है या दुर्भावना के कारण दूषित है।

जब राज्य सरकार के किसी नीति की जाँच की जा रही हो तो न्यायिक पुनर्विलोकन का कार्यक्षेत्र यह जाँच करता है कि क्या यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है या संविधान के प्रावधानों का विरोध करता है या किसी सांविधिक प्रावधान का उल्लंघन करता है या प्रत्यक्षत: मनमाना है।

11. वर्तमान मामले में याची ने आक्षेपित अधिसूचना की विधिमान्यता पर प्रश्न किया है जिसमें सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों की उपरी आयु सीमा 25 वर्ष के तौर पर नियम किया गया है एवं तद्द्वारा, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करके राज्यपाल के प्राधिकार द्वारा पुलिस मैनुअल की सुसंगत नियमावली में की गयी उपान्तरण की विधिमान्यता को भी चुनौती दी है। चुनौती इस आधार पर दी गयी है कि ऊपरी आयु सीमा का 35 वर्ष से 25 वर्ष तक घटाया जाना मनमाना है एवं राजकीय नीति के विरूद्ध है, इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 12 एवं 48A के प्रावधानों के उल्लंघन में है।

12. सरकारी पदों पर भर्ती के मामले में ऊपरी आयु सीमा के नियतिकरण से सम्बन्धित मुद्दा **डॉ॰ रविन्द्र कुमार सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 2000(3) PLJR 231 के मामले में पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एवं अपेक्षाकृत अधिक हाल में **संजीव कुमार सहाय एवं तीन अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य, 2008(3) J.C.R. 267** के मामले में झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष विचारणार्थ आया। दोनों मामलों में, यद्यपि विज्ञापन स्वास्थ्य अधिकारियों के पदों पर एवं सिविल जज, कनीय खण्ड के पद पर नियुक्ति के लिए थे एवं मामले के तथ्य सदृश थे क्योंकि प्रत्यर्थीगण-प्राधिकारियों द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए त्वरित कदम नहीं उठाये गए थे एवं ऐसी रिक्तियों को संचयित करने की अनुज्ञा दी गयी थी एवं अंतत: कई वर्षों के उपरांत ऐसी रिक्तियों को भरे जाने की ईप्सा की गयी थी एवं ऊपरी आयु सीमा को एक अनुबद्ध कट-ऑफ तिथि के संदर्भ में नियत की गयी थी। उन रिक्तियों को भरे जाने में असामान्य विलम्ब को देखते हुए, जो कई वर्षों से संचित हो गया है, न्यायालय ने **डॉ॰ रविन्द्र कुमार सिंह एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में निम्नवत् संप्रेक्षित किया है:-

> *''यद्यपि सरकार की ओर से नियुक्ति करने की कोई बाध्यता नहीं भले ही रिक्तियाँ उपलब्ध हों परंतु यदि रिक्तियों को संचित होने की अनुज्ञा दी जाती है एवं एक बार में कई नियुक्तियाँ की जाती हैं, तो निम्नतर मेधा वाले उम्मीदवारों के आने की संभावना हो सकती है□जहाँ परीक्षाओं को नियत समयान्तराल पर आयोजित किया जाता है वहाँ संभावना यह है कि उपलब्ध सर्वोत्तम लॉट की नियुक्ति होगी-अन्यथा पात्र उम्मीदवारों का अधिक आयु का हो जाना नियत समयान्तराल पर नियुक्ति न किए जाने का अवश्यंभावी परिणाम होगा।''*

13. वर्तमान मामले में वही स्थिति उत्पन्न होती है। जैसा कि प्रत्यर्थी-राज्य के प्रति शपथ-पत्र में स्वीकार किया गया है, 1994 के बाद से ही राज्य पुलिस सेवा में भर्ती के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया है। वर्ष 2000 में झारखंड राज्य के सृजन के उपरांत भी रिक्तियाँ कई वर्षों तक संचित हुईं एवं मात्र अब आक्षेपित अधिसूचना/विज्ञापन द्वारा, राज्य सरकार ने रिक्तियों को भरने का निर्णय लिया है। सामान्य संवर्ग के उम्मीदवारों के लिए ऊपरी आयु सीमा 25 वर्ष के तौर पर नियत करने से, वे सभी जो पूर्ववर्ती वर्षों के दौरान अन्यथा पात्र थे, अब अधिक उम्र के हो गए हैं एवं इसलिए आक्षेपित अधिसूचना में नियत पात्रता मानदण्ड के निबन्धनों में अर्हित नहीं हैं।

14. जैसा कि ऊपर संप्रेक्षित किया गया है, 12.11.2001 को कराये गए पुलिस मैनुअल में संशोधन के माध्यम से पुलिस मैनुअल के नियम 658 में किए गए पूर्ववर्ती उपान्तरण में, राज्य सरकार ने सामान्य संवर्ग में राज्य पुलिस सेवा में भर्ती के लिए ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष के तौर पर घोषित किया है। यदि यह राज्य नीति का एक घोषणा था, तब, कोई कारण न बताये जाने या स्पष्टीकरण पेश न किए जाने की अनुपस्थिति में, यह समझा नहीं जाता है कि ऊपरी आयु सीमा को 25 वर्ष तक क्यों घटाया गया है एवं ऊपरी आयु सीमा में कटौती से किसी प्रयोजन की पूर्ति होगी?

15. ऐसी परिस्थितियों में, याची का तर्क यह है कि ऊपरी आयु सीमा में कटौती, जैसा कि आक्षेपित विज्ञापन में इंगित किया गया है, मनमाना है एवं भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 16 के प्रावधानों के उल्लंघन में है, सारहीन नहीं है। प्रत्यक्ष रूप से ऊपरी आयु सीमा 25 वर्ष नियत करने का निर्णय इस तथ्य पर विचार करके नहीं लिया गया है कि भर्ती प्रक्रिया ऐसे पदों को भरने के लिए प्रारम्भ किए जाने की इप्सा की गयी है, जो अत्यधिक विलम्ब के पश्चात्, पिछले कई वर्षो के दौरान संचित हो गयी थी एवं यह कि विलम्ब की इस अवधि के दौरान ऐसे कई उम्मीदवार जो अन्यथा पात्र हो सकते थे, अधिक उम्र के हो जाने के कारण अनर्हित हो जायेंगे।

16. यद्यपि पुलिस सेवा में भर्ती में उन पदों से संबंधित है जिसके लिए पात्रता मानदण्ड के मानक को अन्य सरकारी सेवाओं में नियुक्ति के सम्बन्ध में मानकों से भिन्न हो सकते हैं, फिर भी पुलिस सेवाओं के पदों पर भर्ती के लिए अधिकथित मानदण्ड को युक्तियुक्तता के परीक्षण का समाधान करना चाहिए एवं किसी भी परिस्थिति में यह विभेद एवं मनमानेपन को प्रतिबिंबित नहीं कर सकता है। किसी युक्तियुक्त संतुलन को इस तथ्य के आलोक में बनाये रखा जाना है कि उम्मीदवारों को जो अन्यथा पात्र हो सकते थे, राज्य सरकार द्वारा पुलिस सेवा में रिक्तियों को भरने में किए गए विलम्ब के कारण नियोजन के अवसर से वंचित नहीं किया जा सकता है।

17. उक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, चूँकि भर्ती की रीति, चयन के मानदण्ड, इत्यादि विहित करने से संबंधित मामला राज्य सरकार के क्षेत्र के अंतर्गत है। इसलिए मामले को इस तथ्य पर विचार करते हुए ऊपरी आयु सीमा नियत करने के मामले में राज्य सरकार के पास इसकी पॉलिसी का पुनर्विलोकन करने के लिए वापस भेजा जाता है कि दिनांक 12.11.2001 के ज्ञाप सं० 3300 के माध्यम से अधिसूचित पुलिस मैनुअल के नियम 658 में किए गए संशोधन में यथा घोषित राज्य सरकार के पूर्ववत् पॉलिसी विनिश्चय के द्वारा, ऊपरी आयु सीमा 35 वर्ष के तौर पर नियत की गयी थी एवं इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि रिक्तियों को जिसे कई वर्षों से संचित होने दी गयी है झारखंड राज्य के सृजन के आठ से अधिक वर्षों के अत्यधिक विलम्ब के उपरांत भरे जाने की ईप्सा की जा रही है, तद्द्वारा कई उम्मीदवारों के अधिकारों को प्रभावित किया जा रहा है, जो पूर्वतर राज्य नीति के निबंधनों में पूर्ववर्ती वर्षों के दौरान विहित शैक्षणिक योग्यता अर्जित करने के उपरांत नियुक्ति

के पात्र हो सकते थे। एक पुनर्विलोकन किए जाने तक, आक्षेपित विज्ञापन के निबंधनों में भर्ती की प्रक्रिया प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रास्थगन में रखा जाएगा।

18. इन संप्रेक्षणों के साथ, इन सभी रिट आवेदनों W.P. (S) No. 1667 वर्ष 2008 के साथ W.P. (S) No. 1574 एवं 3354 वर्ष 2008)] को स्वीकृति के प्रक्रम पर ही निस्तारित किया जाता है।

19. इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता को दी जाए।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

गोपाल नरौने एवं अन्य (दोनों में)

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखण्ड) एवं अन्य (दोनों में)

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 4455, 4529 वर्ष 1997(P). 19 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

बिहार विश्वविद्यालय अधिनियम, 1976—धारा 35—बर्खास्तगी–राज्य सरकार की पूर्व अनुमोदन के बगैर शिक्षण एवं शिक्षकेत्तर पदों पर की गई नियुक्तियाँ अवैधानिक है–राज्य सरकार द्वारा स्थापित, पोषित या संचालित कोई विश्वविद्यालय या महाविद्यालय स्वीकृत पदों से अधिक शिक्षण एवं शिक्षकेत्तर कर्मचारी नियुक्त नहीं कर सकता–संचालक निकाय द्वारा की गई ऐसी सारी नियुक्तियाँ अवैधानिक है और विधि की दृष्टि में पोषित नहीं की जा सकती। (पैरा 12 से 14)

निर्णयज विधि.–(2005)9 SCC 129; 1997 (1) PLJR 509; 2007 (3) JLJR (SC) 194—Relied upon; AIR 1990 SC 1607; 1998 (1) PLJR 723; 2003 (3) PLJR 749—Discussed.

अधिवक्तागण.–M/s L.K. Bajla, R.K. Bhargava, For the Petitioners; Mr. Siddhartha Ranjan, For the State; Mrs. I. Sen Choudhary, For the University.

आदेश

निम्नांकित अनुतोषों के लिए वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गई है:–

(1) प्रत्यर्थी-कुलपति द्वारा पारित दिनांक 25.6.1994 के सामान्य आदेश को निरस्त करने के लिए जिसके द्वारा और जिसके अधीन इन याचीगण द्वारा दाखिल सी० डब्ल्यू० जे० सी० संख्या 8929 वर्ष 1991 में, 1.10.1993 को माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश तात्पर्यित अनुपालन में याचीगण की सेवाएं तत्काल प्रभाव से समाप्त कर दी गई थी।

(2) पत्र संख्या 2629, 2630 एवं 2631/1996 सभी दिनांक 31.5.1996 में यथा निहित आदेश को निरस्त करने के लिए जिसके द्वारा याचीगण को कुलसचिव द्वारा सूचित किया गया है कि इन याचीगण द्वारा दाखिल सी० डब्ल्यू० जे० सी० संख्या 7951 वर्ष 1994 में इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28.11.1995 के आदेश के संबंध में, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-कुलपति को राज्य सरकार को याचीगण के नामों को अग्रसारित करने का निर्देश दिया गया था, जैसा कि इसी प्रकार की स्थिति वाले अन्य कर्मचारीगण के संबंध में किया गया था, अन्य के साथ-साथ याचीगण के मामले पर अभ्यावेदन की प्राप्ति से दो सप्ताह के भीतर विचार करने के लिए याचीगण की सेवाओं की समाप्ति के आदेश की उपेक्षा करते हुए जो अस्वीकृत हो चुका था।

2. तथ्य संक्षेप में निम्नांकित रूप से कथित है:–

महाविद्यालय के संचालक निकाय ने वर्ग-III में दो सहायकों एवं एक पुस्तकालय सहायक के पद एवं वर्ग-IV में चपरासियों के चार पदों का विज्ञापन प्रकाशित किया और तद्नुसार साक्षात्कार हुए और संचालक निकाय की दिनांक 30.1.81 की बैठक में याचीगण को नियुक्ति पत्र निर्गत किए गए थे।

3. याची के अधिवक्ता के अनुसार बिहार अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड ने 14.1.80 को बिहार के विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के लिए एक स्टाफिंग पद्धति की अनुशंसा की एवं 5.1.84 को विश्वविद्यालय के कुलपति ने औपबंधिक रूप से नियुक्ति को अनुमोदित कर दिया।

4. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याचीगण 1981 से कार्य कर रहे थे एवं 1984 में उन्हें विधिवत् रूप से नियुक्त किया गया और वे 25.6.1994 तक लगातार कार्य करते रहे जब उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गई जिसे एक रिट याचिका सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 8929 वर्ष 1991 के माध्यम से चुनौती दी गई थी। पटना उच्च न्यायालय की माननीय खण्ड पीठ ने दिनांक 1.10.93 के अपने आदेश के माध्यम से इस संबंध में विवाद की जाँच करने का निदेश कुलपति को दिया कि सभी सामग्रियों एवं अभिलेखों पर विचार करने के उपरांत यह जाँचा जाय कि क्या पदें स्वीकृत थे या नहीं। इसी आदेश में यह भी निम्नांकित रूप से निर्देशित किया गया था:–

> *''यह स्पष्ट किया जाता है कि यह पाए जाने की स्थिति में कि याचीगण स्वीकृत पदों के विरूद्ध कार्य नहीं कर रहे थे, प्रत्यर्थी-कुलपति को उनकी बर्खास्तगी इत्यादि के लिए विधि के अनुसार कोई भी यथोचित कार्रवाई करने की स्वतंत्रता होगी।''*

5. तत्पश्चात्, सर्वोच्च न्यायालय तक याचिकाएं दाखिल की गई थी जिसे 25.6.1994 को खारिज कर दिया गया था। 1.10.93 के माननीय उच्च न्यायालय द्वारा निर्गत निर्देश के अनुपालन में कुलपति ने समूचे अभिलेख पर विचार करने के उपरांत एक आख्यापक आदेश द्वारा निम्नलिखित रूप से अवधारित किया:–

> *(i) कि आवेदकगण वैसे पदों को धारण किए हुए थे जिन्हें वैधानिक रूप से स्वीकृत नहीं किया गया था,*
>
> *(ii) नियुक्ति बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1976 की धारा 35 के उल्लंघन में थी।*
>
> *(iii) संचालक निकाय को याचीगण इत्यादि को नियुक्त करने का न तो कोई प्राधिकार था और न ही अधिकारिता थी।*

दिनांक 25.6.1994 के यह आदेश वर्तमान रिट याचिका में चुनौती देना इप्सित किया गया है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री एल॰ के॰ बज्ला द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि प्रत्यर्थीगण ने अत्यधिक असमुचित, अवैधानिक एवं मनमाने रूप से कार्य किया है। यह भी तर्क दिया गया है कि उन्हें तेरह वर्षों तक सेवा में रखा गया और संचालक निकाय स्टाफिंग पद्धति, जिसकी बिहार अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड द्वारा विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के लिए विधिवत् रूप से अनुशंसा की गई थी और शिक्षक एवं शिक्षकेत्तर कर्मचारीगण के पदों की संख्या नियत कर दी गई थी, पर याचीगण को नियुक्त करने में सशक्त था।

7. याची के अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि राज्य सरकार द्वारा पद की किसी स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं थी न ही किसी वित्तीय अनुमोदन की आवश्यकता थी और इस संबंध में उन्होंने निम्नांकित निर्णयों को निर्दिष्ट किया है और उन पर भरोसा किया है:–

(1) 1997(1) पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 509,

(2) 1998(1) पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 723,

(3) 2003(3) पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 749.

उन्होंने मुख्यत: 1997(1) पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ पृष्ठ के 509 पर भरोसा किया है, जो इस मुद्दे पर इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ का निर्णय है और उनके अनुसार निर्णय में अधिकथित निर्णय की दृष्टि में याचीगण सेवा में नियमित किए जाने के अधिकारी थे और राज्य सरकार की किसी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं थी।

8. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि किसी भी स्थिति में याचीगण की नियुक्ति प्रारम्भ से ही शून्य, अवैधानिक थी एवं एकमात्र इस कारण से ही टिक नहीं सकती थी कि अन्यथा भी यह स्वीकृत पदों से अधिक थी। पदों के सृजन एवं नियुक्तियों के लिए विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 35 राज्य सरकार की पूर्व अनुमति को आवश्यक बनाती हैं और यह सभी सम्बद्ध महाविद्यालयों पर लागू होती है।

9. मैंने तर्कों एवं अभिवाकों पर विचार किया है और पूर्ण पीठ के निर्णय और अन्य सम्बद्ध निर्णयों का भी परिशीलन किया है। मैं प्रारम्भ में ही झारखण्ड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम द्वारा यथा अपनाए गए बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 35 को निर्दिष्ट करना चाहूंगा और वह निम्नांकित रूप से उत्कथित है:-

35. राज्य सरकार की पूर्व-अनुमति के बिना नियुक्ति के लिए कोई पद सृजित नहीं किया जाएगा.—(1) इस अधिनियम में कुछ भी निहित होने के बावजूद, कोई विश्वविद्यालय या ऐसे एक विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कोई महाविद्यालय, सिवाय ऐसे महाविद्यालय के:-

(a) जो राज्य सरकार द्वारा यथा स्थापित, घोषित या संचालित हो; या

(b) एक धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा यथा स्थापित हो;

(i) इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के उपरांत वित्तीय दायित्वों को अंतर्ग्रस्त करने वाला कोई शिक्षक या शिक्षकेत्तर पदों को राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बिना सृजित नहीं किया जाएगा;

(ii) किसी पद से संलग्न वेतन या भत्ते की वृद्धि नहीं करेगा; या किसी नए भत्ते की मंजूरी नहीं देगा;

(iii) एक शिक्षक या शिक्षकेत्तर पद को धारण करने वाले किसी व्यक्ति को किसी विशेष वेतन या भत्ते या किसी प्रकार के अन्य प्रसुविधा को स्वीकृत नहीं करेगा जिनमें अनुग्रह पूर्वक भुगतान या वित्तीय विवक्षा रखने वाला कोई लाभ सम्मिलित हैं;

(iv) राज्य सरकार की पूर्व-अनुमति के बिना किसी विकास योजना पर किसी प्रकार का व्यय उपगत नहीं करेगा।

(2) इस अधिनियम में कुछ भी निहित होने के बावजूद इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के उपरांत उप-धारा (1) के खण्ड (a) एवं (b) में उल्लिखित महाविद्यालय को छोड़कर कोई महाविद्यालय राज्य सरकार का पूर्व अनुमोदन के बगैर किसी पदों पर किसी व्यक्ति को नियुक्त नहीं करेगा:

परन्तु यह कि विहित अर्हता धारण करने वाले उम्मीदवार द्वारा छः महीनों तक की अवधि के लिए एक शिक्षक के स्वीकृत पद को भरने के लिए राज्य सरकार के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी।

(3) इस अधिनियम या इसके अधीन बनाई गई संविधियों, नियमों या विनियमों के प्रावधानों के विरूद्ध अनियमित या अनधिकृत तरीके से की गई कोई नियुक्ति या प्रोन्नति अवैध होगी और किसी भी समय समाप्त कर दी जाएगी। ऐसी नियुक्ति या प्रोन्नति के विरूद्ध विश्वविद्यालय द्वारा उपगत व्यय लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914 के प्रावधानों के अधीन एक लोक मांग के तौर पर ऐसी नियुक्ति या प्रोन्नति करने वाले पदाधिकारी से वसूला जाएगा।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2005)9 एस॰ सी॰ पृष्ठ 129, बिहार राज्य एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एम॰ एस॰ ई॰ एस॰ के॰ के॰ महासंघ एवं अन्य** में एक इसी प्रकार के मामले पर विचार करते हुए अवधारित किया कि धारा 35 स्पष्ट रूप से पदों की स्वीकृति के लिए राज्य सरकार के पूर्व-अनुमोदन का अधिदेश करती है। सरकार की वित्तीय दायिता को अंतर्ग्रस्त करते हुए शिक्षण और साथ-साथ शिक्षकेत्तर पदों के सृजन एवं मंजूरी के लिए धारा-35 राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी या अनुमोदन को आवश्यक बनाती है।

11. फिर **वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय तदर्थ शिक्षक संघ एवं अन्य बनाम बिहार राज्य विश्वविद्यालय (सी॰ सी॰) सेवा आयोग एवं अन्य** के मामले जो 2007 (3) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ (एस॰ सी॰) पृष्ठ 194 में रिपोर्ट किया गया, में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 46 पर निम्नांकित रूप से अवधारित किया:-

''.....तथापि, हम निर्देश कर सकते हैं कि राज्य सरकार और साथ-साथ सम्बद्ध विश्वविद्यालयों के पास उन शिक्षकों की सेवाएं तत्काल रूप से समाप्त करने का विकल्प होगा, जो स्वीकृत पदों के विरूद्ध कार्य नहीं कर रहे हो या जो अपेक्षित शैक्षणिक अर्हताएं पूरी नहीं करते हो या जिनकी सेवाओं की अन्यथा आवश्यकता न हो।''

यह एक अनिवार्य पूर्व शर्त है और इस संबंध में विधि की आवश्यकता सुस्थापित है। पूर्ण-पीठ के निर्णय के संबंध में याचीगण के विद्वान अधिवक्ता की यह व्याख्या की वह उनके पक्ष में है, असत्य एवं अपोषणीय प्रतीत होती है। आक्षेपित निर्णय का पैरा 30 एवं 32 निम्नांकित रूप से उत्कथित है:-

"30. अधिनियम की धारा 35 की मेरी व्याख्या और निष्कर्ष की दृष्टि में कि स्टाफिंग पद्धति पहले ही अधिकथित की जा चुकी है जो पदों के सृजन के तुल्य है। पूर्वोक्त निर्णयों को विधि में सही नहीं कहा जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने एस० एल० पी० को अस्वीकृत कर दिया और इन आदेशों के निर्णयों/आदेशों को गुणावगुणों पर बरकरार रखने वाला नहीं कहा जा सकता। अगर स्टाफिंग पद्धति के अनुसार नियुक्तियाँ की जाती है अर्थात् स्वीकृत बल के भीतर की जाती है तो उन्हें इस आधार पर अधिनियम की धारा 35 का उल्लंघनकारी और अवैधानिक नहीं कहा जा सकता कि पदों को राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया है, बशर्ते कि उम्मीदवार निःस्संदेह पत्रता और उपयुक्तता धारण करते हो और चयन/नियुक्ति प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 16 के अनुरूप हो।''

"32. पूर्वोक्त अवधारणाओं में, अपीलार्थीगण के दावे को विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय इस आधार पर खारिज किया कि अधिनियम की धारा 35 के अधीन यथा अभिकथित राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बगैर उनकी नियुक्ति की गई थी जिसे समर्थित नहीं किया जा सकता। सामान्य अनुक्रम में, मेरे इस निष्कर्ष की दृष्टि में कि पदों के पश्चातवर्ती अनुमोदन या अस्वीकरण प्रदान करने में प्रयोजन के लिए पहले से ही की गई नियुक्तियों की वैधता पर विचार करने का विकल्प राज्य सरकार को होगा मैंने अपीलार्थीगण के मामले पर राज्य सरकार को फिर से विचार करने के लिए कहने पर विचार किया होता। तथापि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थीगण 17 वर्षों से अधिक समय से सेवा में है, मैं नहीं समझता कि यह यथोचित कार्रवाई इतने लम्बे समय के उपरांत मामले को पुनः खोलने का विवेकाधिकार का इस्तेमाल किया जाए। सीधी भर्त्ती वर्ग-II अभियांत्रिकी पदाधिकारी संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए० आई० आर० 1990 सुप्रीम कोर्ट 1607 में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने अवधारित किया है कि जहाँ प्रारम्भिक नियुक्ति नियमानुसार नहीं की जाती है परन्तु नियुक्त व्यक्ति निर्बाध रूप से नियमितीकरण तक लम्बी अवधि के लिए सेवा में बना रहता है, तो परिणामिक लाभों के प्रयोजन के लिए सेवा में व्यतीत अवधि को

परिकलित किया जाएगा। तद्नुसार, अपीलार्थीगण महाविद्यालय पर यथा प्रयोज्य स्टाफिंग पद्धति के भीतर पदों के विरूद्ध अपनी सेवाओं के नियमितीकरण के अधिकारी हैं।

12. पूर्वोक्त पूर्ण पीठ के निर्णय को पठित करने पर भी यह स्पष्ट होगा कि पदों के विरूद्ध नियुक्तियाँ अनुमोदित पदों के भीतर स्टाफिंग पद्धति के अनुसार की गई थी और इसी पृष्ठभूमि में इसे विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 35 का उल्लंघनकारी अवधारित नहीं किया गया था। वर्तमान मामले में पदों पर की गई नियुक्तियाँ अनुमोदित पदों से आगे जाकर कर दी गई थी।

13. विधि के पूर्वोक्त प्रावधान और विशेष रूप से धारा 35 और पूर्ण-पीठ के निर्णय एवं सर्वोच्च न्यायालय के प्रामाणिक निर्णयों (ऊपर) को पठित करने पर स्पष्ट होगा कि राज्य सरकार द्वारा पदों के लिए किसी स्वीकृति की अनुपस्थिति में शासी निकाय द्वारा की गई नियुक्ति एक अकृतता एवं अवैधानिक है और विधि की दृष्टि में पोषित नहीं की जा सकती।

14. यह भी स्पष्ट करना सुसंगत है कि पहले चक्र में सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 8929 वर्ष 1991 में पारित खण्ड पीठ दिनांक 11.10.1993 का आदेश, जिससे कुलपति ने विवाद की जाँच करने एवं याचीगण को हटाने के लिए यथोचित कार्रवाई करने का निर्देश दिया गया था अगर वे अस्वीकृत पद के विरूद्ध कार्य कर रहे थे, अन्तिमता प्राप्त कर चुका है, चूंकि कुलपति ने निदेश के अनुपालन में विनिर्दिष्ट रूप से कहा कि पद को न तो वैधानिक रूप से स्वीकृत किया गया था और न ही शासी निकाय को याचीगण को नियुक्त करने का कोई प्राधिकार या अधिकारिता थी और किसी भी स्थिति में नियुक्ति को तत्कालीन बिहार विश्वविद्यालय अधिनियम, 1976 की धारा 35 के उल्लंघन में अवधारित किया गया था।

15. पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थतियों पर विचार करके इस रिट याचिका के किसी गुण से रहित होने के कारण तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

बलराम मण्डल

बनाम

झारखण्ड राज्य

दाण्डिक पुनरीक्षण सं॰ 553 वर्ष 2007. 2 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

जी॰ आर॰ सं॰ 1340/2004, टी॰ आर॰ सं॰ 1457 वर्ष 2007 के संबंध में, दिनांक 19.1.2007 को मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, धनबाद द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय से उद्भूत दाण्डिक अपील सं॰ 32/07 में, श्री सुनील कुमार सिंह, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰-I, धनबाद द्वारा दिनांक 24.5.2007 को पारित निर्णय के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 471—जालसाजी–पुलिस के समक्ष जाली रि-कॉल आदेश प्रस्तुत किया गया था–विचारण न्यायालय एवं अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि याची ने जानबुझकर पुलिस के समक्ष जाली रि-कॉल आदेश प्रस्तुत किया है–दोषसिद्धि बरकरार। (पैरा 17)

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Petitioner; Mr. S.K. Srivastava, For the Opp. Party.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–यह पुनरीक्षण, जी॰ आर॰ केस सं॰ 1340/2004 एवं टी॰ आर॰ सं॰ 1457 वर्ष 2007 में मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा दिनांक 19.1.2007 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध निर्देशित है, जिस निर्णय द्वारा उन्होंने याची, बलराम मण्डल को भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 466/468/471 के अधीन दोषी पाया था एवं उसे सभी तीनों धाराओं के अधीन 2 वर्षों के सामान्य कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया। यद्यपि, सभी दण्डादेश को साथ-साथ चलते

रहने का निर्देश दिया गया था एवं दाण्डिक अपील सं॰ 32 वर्ष 2007 दिनांकित 24 मई, 2007 में श्री सुनील कुमार सिंह, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰–1 द्वारा, पारित अपील में निर्णय के विरूद्ध भी निर्दिष्ट है जिस निर्णय के द्वारा उन्होंने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 471 के अधीन अपीलार्थी को दोषी पाया एवं उसे 2 वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दण्डादेश दिया था। लेकिन, उन्होंने याची को भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 467 एवं 468 के अधीन दोषमुक्त किया था।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि पुनरीक्षण में मुख्य बिन्दु यह है कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि याची जानता था कि पुनरावाहन (recall) आदेश जो वह पुलिस के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है जो एक जाली दस्तावेज था एवं इस प्रकार भारतीय दण्ड संहिता की धारा 471 के अधीन दोषसिद्धि का निष्कर्ष विधि में अनुचित है एवं अपास्त करने योग्य है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह निवेदन किया गया है कि अभियोजन मामला, श्री आलोक कुमार, न्यायिक दण्डाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा दिए गए एक लिखित रिपोर्ट के आधार पर उसमें यह कहते हुए शुरू किया गया था कि जी॰ आर॰ केस सं॰ 434 वर्ष 1996 में, अभियुक्त, बलराम मण्डल को 25.5.93 को दोषसिद्ध किया गया था एव 1 वर्ष के कठोर कारावास भुगतने के लिए दंडित किया गया था। अभियुक्त 9.7.2002 को दाण्डिक अपील सं॰ 77/93 दाखिल किया, अपीलीय न्यायालय अवर न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की एवं अभियुक्त का जमानत बंध–पत्र रद्द किया गया था, तदनुसार, 5.9.2002 को अभियुक्त के विरूद्ध गैर–जमानती वारंट जारी किया गया था। जब, अभियुक्त नहीं आया तब 12.12.2002 को धाराएँ 82/83 के अधीन आदेशिकाएँ जारी की गई थीं। तब भी, जब अभियुक्त नहीं आया तब 7.1.2004 को आदेशिकाएँ एस॰ पी॰, धनबाद के माध्यम से जारी की गई थी। अचानक, 19.3.2004 को पुलिस न्यायालय आया एवं न्यायालय द्वारा जारी किये गये आदेशिकाएँ वापस कर दिया चूँकि रि–कॉल आदेश न्यायालय द्वारा भेजा गया था। सूचनादाता–न्यायिक दण्डाधिकारी कथित कार्यवाहियों के रि–कॉल आदेश पर आश्चर्यचकित हो गया था जो न्यायालय द्वारा जारी नहीं किया गया था न ही यह उसके द्वारा हस्ताक्षरित था एवं अभी तक दोनों ही जाली थें। यह लिखा गया था कि क्योंकि झारखण्ड उच्च न्यायालय, राँची को अभिलेख भेज दिए गए हैं, इसलिए, दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराएँ 82-83 के अधीन कार्यवाहियाँ गिरफ्तारी के वारंट को सम्मिलित करके रि–कॉल किए गए हैं। यह अभिकथित किया गया था कि सूचनादाता ने अज्ञात व्यक्तियों के साथ षड्यंत्र करके इस रि–कॉल आदेश का कूटरचना किया था एवं इसे कतरास पुलिस थाने के समक्ष प्रस्तुत किया है जिसके कारण कार्यवाहियाँ वापस कर दी गई थीं। न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा उक्त प्र॰ सू॰ रि॰ के आधार पर भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 419/420/464/468/471/120B के अधीन मामला प्रारम्भ किया गया था।

4. इसके अतिरिक्त यह भी निवेदन किया गया है कि विचारण के दौरान अभियोजन ने 8 साक्षियों को परीक्षित किया है एवं अ॰ सा॰ 4 सूचनादाता ने अपने प्र॰ सू॰ रि॰ को सिद्ध किया है साथ में उसने रि–कॉल रसीद को भी सिद्ध किया है जिसपर स्वयं द्वारा हस्ताक्षर नहीं किये जाने का दावा किया गया था।

अ॰ सा॰ 1, श्रीराम मण्डल ने विस्तृत साक्ष्य दिया एवं कहा कि जब अभियुक्त को आरक्षी उपाधीक्षक द्वारा बुलाया गया था, तो वह उसके पास गया एवं कहा कि उसे रि–कॉल आदेश कनीय अधिवक्ता द्वारा उसके सिनियर चुन्नु बाबु के माध्यम से दी गई थी एवं ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्त को कोई ज्ञान था कि दस्तावेज जाली हैं एवं इसलिए उसकी दोषसिद्धि अनुचित है एवं अपास्त होने योग्य है।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है एवं निवेदन किया कि दोनों ही अवर न्यायालयों ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि याची, बलराम मण्डल, जो कि सूचनादाता–न्यायिक दण्डाधिकारी के समक्ष जी॰ आर॰ केस सं॰ 434/96 में एक अभियुक्त था, को पूर्ण ज्ञान था चूँकि वह पूर्व में दोषसिद्ध किया गया था एवं तत्पश्चात् उसने एक अपील दाखिल किया था जिसमें उसे जमानत प्रदान की गई थी एवं तत्पश्चात् जब उसके अपील को खारिज कर दिया गया था। उच्च न्यायालय में किसी अपील को दाखिल न किए जाने के कारण गैर–जमानती गिरफ्तारी के वारंट निर्गत किया गया था। उसने जानबूझकर जाली रि–कॉल आदेश प्रस्तुत किया एवं उसे इस प्रकार पूर्ण ज्ञान था एवं जानबूझकर उसने उसी को प्रस्तुत किया क्योंकि, अ॰ सा॰ 1, श्रीराम मण्डल, उसके भाई का यह

स्वीकृत मामला है कि उसने पुलिस के समक्ष रि-कॉल आदेश प्रस्तुत किया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य पर विचारण करने के पश्चात् स्पष्ट रूप से एक निष्कर्ष दिया है कि याची को ज्ञान था कि यह एक जाली दस्तावेज है एवं उसने जानबूझकर उसको प्रस्तुत किया एवं इस प्रकार उसकी दोषसिद्धि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 471 के अधीन उचित है।

6. दोनों पक्षकारों को सुनने एवं अभिलेख पर आए साक्ष्यों का अवलोकन करने के पश्चात् मैं पाता हूँ कि मुख्य साक्षी वह अ॰ सा॰ 1, श्रीराम मण्डल है, जिसने न्यायालय के समक्ष कहा था कि जब वह अपने भाई बलराम मण्डल के साथ पिछले मामले में विचारित किए जा रहे थे एवं वे अन्यों के साथ दोषमुक्त हुए थे, परन्तु बलराम मण्डल, एक वर्ष के कारावास के लिए दोषसिद्ध हुआ था एवं उसके वरीय अधिवक्ता चुन्नु बाबू थे, अभियुक्त उनका नाम श्री एस॰ पी॰ लाल के रूप में प्रकट करता है। यह निवेदन किया गया है कि उनलोगों ने उन्हे अपील दाखिल करने के लिए 25,000/- रुपए दिए थे परन्तु जब गिरफ्तारी का वारंट आया तब वे लोग चुन्नु बाबू के पास गए एवं तद्नुसार रि-कॉल आदेश उनके कनीय अधिवक्ता द्वारा दिया गया था।

अ॰ सा॰ 1 ने कहा है कि वह कनीय अधिवक्ता का नाम नहीं जानता है, सम्भवत: उनका नाम यादव जी था। तत्पश्चात्, पैरा 7 में अ॰ सा॰ 1 ने कहा है कि जी॰ आर॰ मामले में, मामले पर चुन्नु बाबु @ एस॰ पी॰ लाल द्वारा बहस किया गया था एवं कनीय अधिवक्ता आर॰ डी॰ महतो थे। इसलिए, अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य के पश्चात्, यह प्रतीत होता है कि एस॰ पी॰ लाल के कनीय अधिवक्ता का नाम यादव जी है। पैरा 7 में वह करता है कि एस॰ पी॰ लाल के कनीय अधिवक्ता आर॰ डी॰ महतो हैं।

उसके प्रति-परीक्षण के पैरा 24 से 25 पर, उसने इन्कार किया कि चुन्नु बाबु ने अपील दाखिल करने के लिए 25,000/- रुपए की मांग की थी। इसके अतिरिक्त उसने इन्कार किया कि चुन्नु बाबु ने उनलोगों को बताया कि अभियुक्त, बलराम मण्डल जमानत पर मुक्त किया जाएगा एवं जमानतदारों के साथ आने के लिए भी कहा गया था।

7. इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1 का पूरा साक्ष्य उसके प्रति-परीक्षण के दौरान पैरा 24-25 पर खंडन किया गया था। विचारण न्यायालय अभियोजन द्वारा सभी साक्ष्यों पर विचारण करने के पश्चात् कि अभियुक्त का पूरा बचाव कि रि-कॉल आदेश उसके वरीय अधिवक्ता, चुन्नु बाबु के कनीय अधिवक्ता द्वारा दिया गया था, न्यायालय को मात्र गुमराह करने के लिए है एवं पैरा 32 में न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि मात्र अभियुक्त, बलराम मण्डल ही जाली रि-कॉल आदेश सृजित करने के लिए एवं इसे पुलिस के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए जिम्मेदार है। अपीलीय न्यायालय भी इसी निष्कर्ष पर आया था। मैंने भी साक्ष्य का अवलोकन किया है, यह स्पष्ट है कि अभियुक्त-याची, बलराम मण्डल ने जानबूझकर पुलिस के समक्ष जाली रि-कॉल आदेश प्रस्तुत किया था। मामले के उस दृष्टिकोण में, अभियुक्त-याची उचित रूप से भारतीय दण्ड संहिता की धारा 471 के अधीन दोषी पाया गया था एवं उसके अधीन दोषसिद्ध किया गया था।

18. मैं इस पुनरीक्षण आवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ, तद्नुसार यह खारिज की जाती है।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

पंजाब एण्ड सिंध बैंक एवं अन्य

बनाम

मेसर्स स्टैन कॉमोडिटिज प्रा॰ लि॰

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 269 वर्ष 2008. 14 मई, 2009 को विनिश्चित।

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हितों का प्रवर्तन अधिनियम, 2002—धारा 19(1)—वसूली-रोकड़ उधार सुविधा के माध्यम से 55 लाख रुपए

का अग्रिम लिया गया था–भुगतान नहीं हुआ–जहाँ तक 55 लाख रुपए के मूलधन की राशि की वसूली का संबंध है, बैंक को ''अधिनियम'' के प्रावधानों के अधीन ऋणी के विरूद्ध कार्यवाही करने का निर्देश दिया गया–ब्याज इत्यादि का अवधारण डी॰ आर॰ टी॰ द्वारा किया जाना है। (पैरा 5 एवं 6)

निर्णयज विधि.–(2008)1 SCC 125—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. G. Kumar, For the Appellants; M/s A.Kumar, D. Pathak, For the Respondent.

आदेश

यह अपील स्वीकार की जाती है एवं 19.5.2009 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध की जाती है।

2. इस दौरान, आक्षेपित निर्णय एवं आदेश में पैरा संख्या 52 पर विद्वान एकल न्यायाधीश का वह निर्देश, जिसने अपीलार्थी-बैंक की कार्रवाई को निरस्त एवं अपास्त किया था एवं दिनांक 29.11.2004 की नोटिस के आधार पर इसे कार्यवाही करने से और वित्तीय आस्तियों का एवं प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण और प्रतिभूति हितों का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के प्रावधान को प्रतिवर्तित करने से इसे रोका था, स्थगित बना रहेगा।

3. परिणामत:, **(2008)1 एस॰ सी॰ सी॰ 125** में रिपोर्ट किए गए **ट्रांसकोर बनाम भारत संघ एवं एक अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के निर्णयाधार की दृष्टि में, अपीलार्थी-बैंक को वित्तीय अस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हितों का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अधीन प्रत्यर्थी के विरूद्ध कार्यवाही करने की स्वतंत्रता होगी जिसमें यह स्पष्ट रूप से अवधारित किया गया है कि डी॰ आर॰ टी॰ अधिनियम के अधीन कार्यवाही एन॰ पी॰ ए॰ अधिनियम का आश्रय लेने की एक पूर्व-शर्त नहीं है और उन मामलों में अपने विवेकाधिकार का इस्तेमाल करना बैंक/वित्तीय संस्थान के ऊपर है जिनमें यह अनुमति के लिए आवेदन कर सकता और उन मामलों में जहाँ ये अनुमति के लिए आवेदन न करे, वापस लेना भी इनके ऊपर है। उसमें यह भी अवधारित किया गया है कि परिस्थितियों को वर्णित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि पूर्वोक्त अधिनियम का पहला परन्तुक धारा 19 (1) एक सक्षमकारी प्रावधान है, जो प्रावधान विविध परिस्थितियों से निपट सकता है।

4. जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंद्ध है परिस्थितियाँ इंगित करती है कि प्रत्यर्थी पहले ही 55 लाख रुपए की एक राशि का लाभ ले चुका है और इस्तेमाल कर चुका है जिसे रोकड़ उधार सुविधा के माध्यम से प्रत्यर्थी को अपीलार्थी-बैंक द्वारा प्रदान किया गया था। उक्त राशि को स्वीकार्यत: प्रत्यर्थी द्वारा इस्तेमाल किया गया है और पुनर्भुगतान के माध्यम से केवल 7 लाख रुपए की एक छोटी राशि का भुगतान बैंक को किया गया है जिससे प्रत्यर्थी के अधिवक्ता द्वारा इन्कार किया गया है। तथापि, हम इस विवाद पर किसी मत को अभिव्यक्त करने की इच्छा नहीं रखते क्योंकि इसका डी॰ आर॰ टी॰ के समक्ष न्यायनिर्णय और अवधारण किया जाएगा।

5. मामले को सरलीकृत करने के लिए, हम वित्तीय अस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हितों का प्रवर्तन अधिनियम 2002 के अधीन प्रत्यर्थी के विरूद्ध कार्यवाही करने की स्वतंत्रता अपीलार्थी-बैंक को प्रदान करना न्यायसंगत और यथोचित समझते हैं, जहाँ तक 55 लाख रुपए के मूलधन राशि का सवाल है, जो तथापि, डी॰ आर॰ टी॰ द्वारा किए गए अन्तिम अवधारण के अध्यधीन होगी, जहाँ 71 लाख रुपए के ऋण की वसूली के लिए अपीलार्थी-बैंक ने एक आवेदन दाखिल किया है।

6. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि डी॰ आर॰ टी॰ अन्तिम रूप से इसका अवधारण करेगा कि प्रत्यर्थी द्वारा बैंक को कितनी राशि का भुगतान किया जाना है और क्या समझौते के निबंधनों एवं शर्तों के अनुसार अन्तिम रूप से अधिनिर्णीत किए जाने वाले उक्त राशि का समायोजन मूलधन की राशि में या फिर चुकाए गए ब्याज से किए जाना है।

7. हम, इसलिए, दुहराते हैं कि वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हितों का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अधीन की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई डी॰ आर॰ टी॰ कार्यवाही के परिणाम के अधीन होगी जो ओ॰ ए॰ संख्या 47/2006 है।

8. उपरोक्त निर्देश की दृष्टि में, यह स्पष्ट है कि वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हितों का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 के अधीन अपीलार्थी-बैंक की कार्रवाई को निरस्त एवं अपास्त करने वाला विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्देश अगले आदेशों तक स्थगित रहेगी।

9. पूर्वोक्त आदेश के पारित होने के उपरांत प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने इसके लिए न्यायालय से एक जोरदार अपील किया की प्रत्यर्थी को बैंक के साथ वार्तालाप करने और एक बन्दोबस्त करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाए।

10. हम उसके आग्रह को स्वीकार न करने का कोई कारण नहीं पाते क्योंकि प्रत्यर्थी के उद्योग को बन्द कर देना किसी का भी आशय नहीं हो सकता जिसमें अपीलार्थी-बैंक भी शामिल है। इसलिए, बन्दोबस्त के निबंधनों का प्रस्ताव रखते हुए प्रत्यर्थी को बैंक के पास जाने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। परन्तु 55 लाख रुपए की राशि जिसे रोकड़ उधार सुविधा के माध्यम से ऋण का रूप में दिया गया था, और मूल ऋण की स्वीकृत राशि की वसूली के लिए प्रत्यर्थी के विरूद्ध कार्यवाही करने की अपीलार्थी- बैंक को स्वतंत्रता प्रदान करने वाले पूर्वोक्त निर्देश, जो न्यायालय द्वारा निर्गत किया गया था को बाधित करने की एक युक्ति के तौर पर इस स्वतंत्रता का अर्थान्वयन करना अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

बी॰ मुत्थुरमण @ बालासुब्रमण्यन मुत्थुरमण एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

दाण्डिक विविध याचिका सं॰ 59 वर्ष 2009. 16 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

(क) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—प्र॰ सू॰ रि॰ का निरस्तीकरण–खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 एवं झारखंड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 के प्रावधानों का भी उल्लंघन–अभिनिर्धारित, सूचनादाता द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद दाखिल न करके बल्कि पुलिस के समक्ष प्राथमिकी संस्थित करके प्रारम्भ किया गया अभियोजन विधि की दृष्टि में बिल्कुल अविधिमान्य, नास्ति है, इस प्रकार कायम रखने योग्य नहीं है। (पैरा 7 से 9)

(ख) खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957—धारा 22 सह-पठित झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005—अभियोजन–इस अधिनियम या इसके अधीन बने नियमावली या विनियम के अधीन कोई अभियोजन किसी प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद दाखिल करके गतिशील बनाया जा सकता है। (पैरा 7 से 9)

(ग) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 4—विशेष विधि–विशेष विधि या नियमावली के अधीन अपराधों के अन्वेषण, जाँच या विचारण पर विशेष विधि के अधीन अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप विचार किए जाने की जरूरत है जो सामान्य विधि के अधीन अधिकथित प्रक्रिया पर अग्रता रखेगा। (पैरा 7)

अधिवक्तागण.–Mr. H.K. Sikarwar, For the Petitioners; Mr. R.R. Mishra, For the State.

आदेश

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन यह आवेदन भारतीय दण्ड संहिता की धारा 468 के अधीन एवं झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 के नियम 9 के साथ-साथ झारखण्ड खनिज रियायत नियमावली, 1960 की धारा 52 के अधीन भी एवं खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धाराएँ 21 एवं 23 के अधीन मांडू पी॰ एस॰ केस सं॰ 493 वर्ष 2008 (जी॰ आर॰ सं॰ 4585 वर्ष 2008) के प्रथम सूचना रिपोर्ट को निरस्तीकरण के लिए दाखिल की गई है।

2. अभियोजन का मामला यह है कि रामगढ़ के कोई रामेश्वर राणा प्रसाद, सहायक खान अधिकारी ने गश्ती एवं निरीक्षण करने के क्रम में जब 4 ट्रकों पर बिना उनके पारगमन अनुज्ञापत्र (फॉर्म डी) के जो कि झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 के नियम 3 के अधीन आवश्यक है, कोयले से लदा हुआ पाया, तो एक जाँच किया गया था एवं यह ज्ञात हो सका था कि कोयला टाटा के घाटो कोईलवरी में लादा गया था। इस प्रकार, यह अभिकथित है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने अपने आप को ऊपर कहे गए तरीके से अपव्यय करते हुए, राज्य सरकार को एक भारी क्षति पहुँचाई है।

3. मान्डू पुलिस को दिए गए सूचना के आधार पर, ऊपर चर्चित अपराधों के अधीन मान्डू पुलिस केस सं॰ 493 वर्ष 2008 के रूप में एक मामला पंजीकृत किया गया था।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005, झारखण्ड राज्य द्वारा खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 23(C) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करके, अवैध खनन, परिवहन, खनिजों एवं उत्पादित खनिज का संग्रह करने से रोकने के क्रम में विरचित किया गया था जबकि उक्त विनियमन का खंड 9 विहित करता है कि जब भी कोई खनन पट्टाधारी अपने खान से निकाले गए खनिजों को बिना किसी वैध अनुज्ञापत्र या चालान के परिवहन करता है, तो इसे खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 एवं साथ में खनिज रियायत नियमावली, 1960 एवं झारखण्ड लघु खनिज रियायत नियमावली 2004 के प्रावधानों एवं पट्टा के शर्तों के उल्लंघन के रूप में समझा जाएगा एवं इसके लिए वह उक्त अधिनियम एवं नियमों के अधीन अभियोजित होने के लिए दायी होगा एवं इसलिए, अभिकथनों जिनपर मामला दाखिल किया गया है, 'विशेष विधायन' अर्थात्, झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 एवं खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 के परिक्षेत्र के भीतर ही आता है एवं उस परिस्थिति में ऐसे अपराध का संज्ञान, खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 22 में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान के निबंधनों में केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित परिवाद किए जाने पर ही न्यायालय द्वारा लिया जा सकता है एवं इसलिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर प्रारम्भ किया गया कोई भी अभियोजन पूर्णत: अवैध होगा। चूँकि प्रस्तुत अभियोजन प्रथम सूचना रिपोर्ट के माध्यम से प्रारम्भ की गई है, इसलिए यह अभिखंडित होने के योग्य है।

5. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने के पश्चात्, यह प्रतीत होता है कि किसी पारगमन चालान के बगैर होने पर कोयले का परिवहन करते हुए पाए जाने पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 468 के अधीन साथ ही झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 के नियम 9 साथ ही खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम की धाराएँ 21 एवं 23 के अधीन एवं खनिज रियायत नियमावली, 1960 की धारा 52 के अधीन भी एक मामला पंजीकृत किया गया था परन्तु विचारण के लिए यह प्रश्न आता है कि क्या विशेष विधि, अर्थात्, झारखण्ड खनिज पारगमन

चालान विनियमन, 2005 एवं साथ ही खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम की दृष्टिकोण में, दण्ड संहिता के अधीन अभियोजन वैध होगा?

इस मुद्दे को न्यायनिर्णित करने के लिए किसी व्यक्ति को विशेष विधि की परिभाषा पर ध्यान देने की आवश्यकता है जो कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 41 के अधीन परिभाषित है जो निम्न रूप से पठित है:–

''विशेष विधि.–एक ''विशेष विधि'' एक विशिष्ट विषय पर लागू विधि है।''

स्पष्ट रूप से ''विशेष विधि'' का मतलब विधि का वह प्रावधान है जो आमतौर पर लागू नहीं होता है परन्तु जो एक विशेष या विनिर्दिष्ट विषय या विषय के समूह में लागू होता है। अन्य शब्दों में जहाँ एक विशेष अधिनियम में एक विनिर्दिष्ट दण्ड उपबन्धित है, वहाँ यह दण्ड संहिता के अधीन सामान्य दण्ड पर अग्रता लेता है एवं यह कि जहाँ विशेष विधि के अधीन कोई विनिर्दिष्ट दण्ड उपबंधित नहीं है, वहाँ दण्ड संहिता के अधीन, देश की सामान्य विधि प्रवर्तन में आता है यदि इसके किसी भी धारा के अधीन आवश्यकताएँ संतुष्ट की गई है। मामले के उस दृष्टिकोण में, किसी व्यक्ति को यह परीक्षण करने की आवश्यकता है कि क्या खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम एवं झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 खनिजों के अवैध खुदाई, परिवहन, संग्रह आदि के लिए दण्ड विहित करता है। इस संबंध में कोई व्यक्ति झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 के खंड 9 पर ध्यान दे सकता है जो कि निम्न रूप से पठित है:–

9 (a) जब भी कोई खनन पट्टेदार किसी वैध परमिट या चालान के बिना अपने खान से प्राप्त खनिजों का परिवहन करता है तो इसे पट्टे की शर्तों एवं खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 एवं खान रियायत नियमावली, 1960 एवं झारखण्ड लघु खनिज रियायत नियमावली, 2004 के प्रावधानों, यथास्थिति का उल्लंघन समझा जायगा एवं तद्नुसार पट्टा विलेख तथा उक्त अधिनियम एवं नियमावली के दाण्डिक प्रावधानों के अधीन कार्रवाई की जायेगी।

(b) खनन पट्टाधारी अपने द्वारा रखे गए वाहकों द्वारा इन विनियमों के कठोर अनुपालन के लिए उत्तरदायी होंगे एवं वे यह सुनिश्चित करेंगे कि वाहक चेक दरवाजों/तौल पुलों पर सत्यापन के लिए आवश्यक पारगमन चालान पेश करें।

उपरोक्त प्रावधान के परिशीलन से यह सुव्यक्त रूप से स्पष्ट है कि यह उपरोक्त विनियमन के प्रावधान के उल्लंघन में खनिजों का संग्रहण एवं परिवहन होने की दशा में दण्ड विहित करता है। वैसी स्थिति होने के कारण विशेष विधायन में अंतर्विष्ट विधायन निश्चित रूप से दण्ड संहिता के अधीन विहित सामान्य दण्ड पर अग्रता प्राप्त करेगा एवं इस प्रकार, दण्ड संहिता के प्रावधानों की अधिनियम या नियमावली या यहाँ तक कि अधिनियम के अधीन बने विनियम के प्रावधान के उल्लंघन में खनिजों के परिवहन के मामले में भी कोई प्रयोज्यता नहीं होगी।

6. इसके अतिरिक्त, उक्त विनियमन के निबंधनों में दाण्डिक कार्रवाई प्रारम्भ करने की प्रक्रिया को खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 22 के अधीन विहित किया गया है जो निम्नवत पठित है:–

*''22. **अपराधों का संज्ञान.**–कोई भी न्यायालय केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में किसी प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित रूप में परिवाद किए जाने को छोड़कर इस अधिनियम या इसके अधीन बनी नियमावली के अधीन दण्डनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा।*

इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम या इसके अधीन बने विनियम जैसे झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 के प्रावधानों को मात्र एक परिवाद के माध्यम से ही गतिशील बनाया जा सकता है वह भी प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित रूप में परिवाद किए जाने पर।

7. शब्द परिवाद को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 2 के खण्ड (d) के अंतर्गत परिभाषित किया गया है जो निम्नवत पठित है:–

(d) ''परिवाद'' से इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा कार्रवाई किए जाने की दृष्टि से, मौखिक या लिखित रूप में उससे किया गया यह कथन अभिप्रेत है, कि किसी व्यक्ति ने, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात, अपराध किया है, किन्तु इसके अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट नहीं है।

***स्पष्टीकरण.**–ऐसे किसी मामले में, जो अन्वेषण के पश्चात् किसी असंज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट करता है, पुलिस अधिकारी द्वारा की गयी रिपोर्ट परिवाद समझी जायगी और वह पुलिस अधिकारी जिसके द्वारा ऐसी रिपोर्ट की गयी है परिवादी समझा जायेगा।*

उपर उल्लेख की गयी परिभाषा पर ध्यान दिए जाने पर, यदि कोई व्यक्ति लिखित रूप में परिवाद करता है तो इसे निम्नलिखित शर्तों की पूर्ति करने की आवश्यकता है:–

(1) यह किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष किया जाना चाहिए;

(2) यह उसके संहिता के अधीन कार्रवाई किए जाने की दृष्टि से किया जाना चाहिए;

(3) इसमें एक अभिकथन शामिल होना चाहिए कि ऐसे व्यक्ति ने, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात, अपराध कारित किया है;

(4) यह किसी पुलिस अधिकारी का रिपोर्ट नहीं होना चाहिए [खण्ड (d) का स्पष्टीकरण]।

स्वीकार्यत:, जहाँ तक इस मामले का सम्बन्ध है, सूचनादाता द्वारा कभी भी मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद नहीं किया गया है, यद्यपि खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 22 के अधीन, उस अधिनियम या नियमावली या इस अधिनियम के अधीन बने विनियम जैसे झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियमन, 2005 के अधीन किसी अभियोजन को किसी प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद दाखिल करके गतिशील बनाये जाने की जरूरत है। इसके अतिरिक्त, उपरोक्त अधिनियम या नियमावली के अधीन अपराधों को किसी अन्वेषण, जाँच या विचारण पर, विशेष विधि के अधीन अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप विचार किए जाने की आवश्यकता है जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 के आदेश की दृष्टि में सामान्य विधि के अधीन अधिकथित प्रक्रिया पर अग्रता रखेगा जो निम्नवत् पठित है:–

''भारतीय दण्ड संहिता और अन्य विधियों के अधीन अपराधों का विचारण:–

(1) ''भारतीय दण्ड संहिता (45 वर्ष 1860) के अधीन सभी अपराधों का अन्वेषण, जाँच और विचारण और उनके संबंध में अन्य कार्यवाही इसमें इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार की जायेगी।

(2) किसी अन्य विधि के अधीन सभी अपराधों का अन्वेषण, जाँच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इन्हीं उपबन्धों के अनुसार किन्तु ऐसे अपराधों के अन्वेषण, जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही की रीति या स्थान का विनियमन करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमित के अधीन रहते हुए की जाएगी।''

8. सभी प्रावधानों पर गौर करके, जैसा कि ऊपर में वर्णित किया गया है, अंतिम रूप से यह कहा जा सकता है कि खान एवं खनिज (विकास एवं विनियम) अधिनियम, 1957 एवं साथ ही झारखण्ड खनिज पारगमन चालान विनियम, 2005 उक्त अधिनियम एवं विनियम के परिक्षेत्र के अंतर्गत

आता है एवं इस प्रकार कोई अन्वेषण, जाँच या विचारण विशेष विधि द्वारा शासित होगा न कि सामान्य विधि के अधीन। इसलिए, सूचनादाता द्वारा परिवाद के माध्यम से नहीं बल्कि पुलिस को सूचना के माध्यम से प्रारम्भ किया गया अभियोजन बिल्कुल ही अविधिमान्य है। अन्य शब्दों में, वर्तमान अभियोजन को विधि की दृष्टि में नास्ति कहा जा सकता है एवं इसलिए, यह विधि में अवधार्य नहीं है।

9. तद्नुसार, मांडू थाना केस सं॰ 493 वर्ष 2008 (G.R. No. 4585 वर्ष 2008) की प्राथमिकी को अभिखंडित किया जाता है जहाँ तक याची का सम्बन्ध है। परिणामतः यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मो॰ अयूब अंसारी

बनाम

आयशा खातून एवं अन्य

दाण्डिक पुनरीक्षण सं॰ 580 वर्ष 2007. 7 मई, 2009 को विनिश्चित।

मुस्लिम महिला (तलाक के पश्चात् अधिकारों की सुरक्षा) अधिनियम, 1986—धारा 3(1)—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण पोषण–तलाक स्वीकृत–मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा इद्दत के लिए भरण-पोषण दैन मेहर एवं 60,000/- रुपए का एकमुश्त भरण-पोषण अनुज्ञात की गई–स्त्री संतान के लिए भी 500/- रुपए प्रति माह अनुज्ञात की गई–सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा पारित आदेश, इसके अनुपालन करने के एक निर्देश के साथ मान्य ठहराया गया। (पैरा 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Petitioner; Mr. Rajan Raj, For the Opp. Parties.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने, विविध केस सं॰ 18 वर्ष 2005 (टी॰ आर॰ सं॰ 168 वर्ष 2007) में पारित दिनांक 11.5.2007 के आक्षेपित आदेश को अपास्त करने के लिए इस दाण्डिक पुनरीक्षण को दाखिल किया है जिसके द्वारा मुस्लिम महिला (तलाक के बाद अधिकारों की सुरक्षा) अधिनियम, 1986 की धारा 3 (1) के अधीन विपक्षी-पक्षकार की ओर से दाखिल याचिका को वर्तमान याची मो॰ अयुब अंसारी को 1,051/- रुपए की एक धनराशि दैन मेहर के रूप में एवं 500/- रुपए प्रतिमाह की एक धनराशि तीन महीनों के लिए इद्दत अवधि के पालन के दौरान विपक्षी पक्षकार स॰ 1 आयशा खातुन को भुगतान करने एवं इसके अतिरिक्त एक सुरक्षित जीवन बीताने के लिए एकमुश्त भरण-पोषण का 60,000/- रुपए की सीमा तक का एक निष्पक्ष प्रावधान का भी निर्देश देते हुए अनुज्ञात की गई थी। इसके अतिरिक्त याची को निर्देश दिया गया था कि चूँकि उनके विवाह के फलस्वरूप स्त्री संतान का जन्म हुआ था, इसलिए याची, मो॰ अयुब अंसारी उसका भरण-पोषण विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 (शमा परवीन) को 500/- रुपए प्रतिमाह का भुगतान उसके वयस्क होने तक करेगा।

2. दाण्डिक पुनरीक्षण के मूल्यांकन के लिए मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 (आयशा खातुन) का विवाह याची के बड़े भाई वजीफ जाकिर के साथ हुआ था जो बाद में मर गया। तत्पश्चात्, याची ने आयशा खातुन से 11.12.1994 को अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् विवाह किया। बाद में उनसे दो पुत्रों का जन्म हुआ था जो कि याची पिता के साथ रह रहे थे। यह कहा गया था कि याची दर्जी के रूप में काम कर रहा था परन्तु उसके अनुसार उसके पास गिरिडीह के भीतरी इलाके में एक बहुत ही छोटा दर्जी का दुकान था। बाद में, उनसे विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 (शमा परवीन) का जन्म हुआ था। आयशा खातुन द्वारा कतिपय अभिकथन किए गए कि वह वर्तमान याची एवं अन्य

ससुराल वालों द्वारा शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित की जाती थी जिसके लिए उसने एक परिवाद मामला उल्लिखित सी॰ पी॰ केस सं॰ 1361 वर्ष 2001, एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, धनबाद के समक्ष दाखिल किया था। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया था कि वह अपने वैवाहिक गृह से 20.5.2001 को बाहर निकाल दी गई थी क्योंकि वह याची द्वारा किए गए अवैध माँग को करने में समर्थ नहीं हो सकी, कथित परिवाद याचिका के लंबित रहने के दौरान, याची सकारात्मक आश्वासन पर उसे अपने घर वापस ले आया परन्तु पुनः उसकी दुर्गति प्रारम्भ हो गईं परेशान होकर उसने भरण पोषण के लिए 5.5.2003 को प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, धनबाद के समक्ष दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन भरण-पोषण के लिए एक याचिका दाखिल की, परन्तु पुनः वह मनवायी गई थी एवं याची द्वारा वापस ले जाई गई जहां उसने अन्ततः उच्चारण द्वारा तलाक दे दिया था। कोई मार्ग नहीं पाकर वह अपने पैतृक गृह वापस चली गई। याची उपस्थित हुआ एवं स्वीकार किया कि उसने वि॰ प॰ सं॰ 1 (आयशा खातुन) से 11.12.1994 को उसके प्रथम पति की मृत्यु के पश्चात जो कि उसका बड़ा भाई, वजीफ जाकिर था, विवाह किया था। याची ने स्पष्ट किया कि इन कारणों से किसी धनराशि की मांग करना निश्चय ही अस्वभाविक था कि आयशा खातून पहले ही उसके बड़े भाई के साथ विवाहित पत्नी के रूप में सात वर्षों तक, उसकी मृत्यु तक रह चुकी थी। इसी प्रकार, यह अभिकथन कि याची को उसके पुनः विवाह की पूर्व संध्या पर एक सिलाई मशीन, साईकिल एवं कपड़े दी गई थी, स्पष्ट झूठ था। याची ने स्वीकार किया कि उसकी पत्नी आयशा खातुन से उसके दो पुत्र हुए थे परन्तु उसी समय उसने वि॰ प॰ सं॰ 2 शमा परवीन की पैतृकता से इनकार किया जिसने ''तलाक'' की घोषणा के एक वर्ष पश्चात् जन्म लिया था एवं संगत समय पर आयशा खातुन ने गर्भधारण नहीं किया था। याची आगे स्पष्ट करता है कि 29.4.2003 को ''तलाक'' की घोषणा के तुरन्त पश्चात् ही साक्षियों की उपस्थिति में, उसने 2551/- रुपए का कुल योग तुरन्त ही भुगतान किया जो देन मेहर की राशि थी एवं 1500/- रुपए इद्दत की संप्रेषण अवधि के लिए भुगतान किया एवं इस प्रकार से सभी बकायों का भुगतान उसे याची द्वारा दिया गया था। अन्ततः याची ने वि॰ प॰ सं॰ 2 शमा परवीन के भरण पोषण के लिए कोई भी भुगतान करने से इनकार किया इस कथित कारणों से कि उसने उसकी पैतृकता नहीं ली है।

3. विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों एवं पक्षकारों की ओर से पेश किए गए तर्कों के आधार पर एक विस्तृत चर्चा करके अभिनिर्धारित किया था कि कि इसका कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं था कि याची ने 1,051/- रुपए की राशि दैन मेहर के लिए एवं 1,500/- रुपए इद्दत की संप्रेक्षण अवधि के लिए दी थी। आगे यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि याची अयुब अंसारी अपना उत्तरदायित्व का निर्वहन करने में असमर्थ हो गया था कि वि॰ प॰ सं॰ 2 शमा परवीन उसकी पुत्री नहीं थी क्योंकि विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 ने अपना भार यह कहते हुए स्थानान्तरित कर लिया था कि वि॰ प॰ सं॰ 2 याची की पुत्री थी। ऐसे परिस्थिति में, याची पर उसकी स्त्री संतान का पोषण उसके वयस्क होने तक करने का भार था।

4. विवाद्यक सं॰ 5 पर परिचर्चा करते समय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि याची गिरिडीह में अपनी जीविका अर्जित करने के लिए एक दर्जी था एवं यह कि उसके पिता यह प्रमाणित करने के लिए आगे नहीं आए कि याची उसके ऊपर आश्रित था क्योंकि वह अपने पिता के दर्जी के व्यवसाय में एक सहायक था। यह उचित रूप से अभिनिर्धारित किया गया कि याची कोई भी साक्ष्य को पेश करने में असमर्थ था कि वि॰ प॰ सं॰ 1 (आयशा खातुन) कमाने एवं स्वयं को एवं अपनी महिला संतान का पोषण करने में सक्षम थी इसलिए, याची द्वारा वि॰ प॰ सं॰ 1 (आयशा खातुन) को उसके शरीर एवं आत्मा की सुरक्षा के लिए 60,000/- रुपए के एक योग का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था एवं मेरी दृष्टि में यह राशि उसके बाकी के जीवन के भरण पोषण के लिए एक अपर्याप्त राशि थी। यद्यपि चूँकि वि॰ प॰ सं॰ 1 ने अपनी ओर से या अपनी लगभग तीन वर्षीय अवयस्क पुत्री वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से कोई पुनरीक्षण दाखिल नहीं किया है इसलिए मेरे पास अभिनिर्धारित करने का कारण है कि एकमुश्त भरण-पोषण की 6,0000/- रुपए तक की राशि वि॰ प॰ सं॰ 1 (आयशा खातुन) के साथ न्याय की पूर्ति करेगा। इसी प्रकार, मैं विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ के इस निष्कर्ष से हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ कि वि॰ प॰ सं॰ 2 को 500/- रुपए प्रतिमाह भरण-पोषण के रूप में दिया जाय जब तक

वह वयस्कता प्राप्त नहीं करती है, इसके अतिरिक्त 1,051/- रुपए तक की एक राशि, दैन मेहन (डावर का अवशेष) की राशि के तौर पर वि॰ प॰ सं॰ 1 (आयशा खातून) को दिए जाने का भी मैं कोई कारण नहीं पाता हूँ। याची के विद्वान अधिवक्ता 11.5.2007 को विविध केस सं॰ 18 वर्ष 2005 में विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई विश्वासजनक आधार दर्शाने में असमर्थ रहे एवं इसके अनुपालन के एक संप्रेक्षण के साथ इसे मान्य ठहराया गया था।

5.यह दाण्डिक पुनरीक्षण, ऊपर कथित कारणों से अभिखंडित की जाती है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

रीता सिंह @ रीता देवी

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 1003 वर्ष 2008. 20 मई, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482 सह-पठित धारा 320—निरस्तीकरण—सूचनादाता ने शपथपत्र दाखिल किया कि कुछ गलतफहमी के कारण उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट संस्थित की—अभिनिर्धारित, यद्यपि अपराध प्रशमनयोग्य नहीं है, परन्तु चूँकि सूचनादाता स्वयं समूची दाण्डिक कार्यवाही के निरस्तीकरण का समर्थन कर रहा है, प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं समूची दाण्डिक कार्यवाही निरस्त की जाती है। (पैरा 6 से 8)

निर्णयज विधि.—(2003) 4 SCC 675—Relied upon.

अधिवक्तागण.—Mr. P.P.N. Roy, For the Petitioner; Mr. Jyoti Pd. Sinha, For the Informant; Mr. APP, For the State.

आदेश

याची की ओर से विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय और साथ-साथ सूचनादाता देवेन्द्र प्रसाद सिंह को सुना, जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ है और साथ-साथ उसके अधिवक्ता को भी सुना।

2. सूचनादाता देवेन्द्र प्रसाद द्वारा पुलिस को लिखित में दी गई सूचना के आधार पर याची एवं उसके पति विश्वनाथ सिंह के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 498A, 306/34 के अधीन एक प्रथम सूचना रिपोर्ट मानगो (एम॰ जी॰ एम॰/पुलिस थाना केस संख्या 23/2008, दर्ज की गई, जिसमें उसने अभिकथित किया कि उसकी पुत्री चन्दा कुमारी का विवाह वर्ष 1994 में याची के पुत्र, प्रदीप कुमार सिंह के साथ हुआ था और उनके विवाह-बंधन से दो पुत्र उत्पन्न हुए थे जो अब विद्यालय जाने वाले बच्चे हैं। उसने अभिकथित किया कि उसकी पुत्री सुखी विवाहित जीवन व्यतीत कर रही थी परन्तु पिछले कुछ दिनों से उसने शिकायत की थी कि उसके श्वसुर एवं सास ने उसके साथ बुरा-बर्ताव प्रारम्भ कर दिया था और अभियुक्त व्यक्तियों की प्रेरणा पर उसे अपने जीवन पर भी खतरा था। उसने यह भी अभिकथित किया कि रिपोर्ट की तिथि को उसे अपने दामाद से सूचना प्राप्त हुई कि उसकी पुत्री का देहान्त हो चुका है और इसलिए, उसने अभिकथित किया कि उसकी पुत्री ने अपने ससुराल वालों के दुर्व्यवहार के कारण आत्महत्या कर ली।

3. मामला दर्ज कराने के उपरांत पुलिस ने अन्वेषण प्रारम्भ किया और आरोप-पत्र दाखिल किया जिसके आधार पर याची के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 498A, 306/34 के अधीन अपराध के लिए संज्ञान लिया गया।

4. संज्ञान लेने वाले दिनांक 15.3.2008 के आदेश और साथ-साथ समूचे दाण्डिक अभियोजन को इस आवेदन में याची द्वारा चुनौती दी गई है मुख्यतः इस आधार पर कि अगर प्रथम सूचना रिपोर्ट

में लगाए गए अभिकथन सत्य माने जाते हैं तो उसके विरूद्ध कोई दाण्डिक अपराध नहीं बनता है।

5. सूचनादाता, अर्थात्, मृतक बहू के पिता अर्थात् देवेन्द्र प्रसाद सिंह, जो गोड्डा न्यायालय में वकालत करने वाले एक वरीय अधिवक्ता हैं और अधिवक्ता संघ के अध्यक्ष भी हैं, उपस्थित हुए हैं और उसमें यह कथित करते हुए शपथपत्र दाखिल किया है कि तथ्य की कुछ गलतफहमी और भूल के कारण उन्होंने याची एवं उसके पति के विरूद्ध एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर दी, जो उसके समधी और समधिन है और कहते हैं कि विवाद का पहले ही सौहार्दपूर्ण रूप से निपटारा हो चुका है और इसलिए, अगर संज्ञान लेने वाले आदेश और समूची दाण्डिक कार्यवाही को निरस्त कर दिया जाता है तो उन्हें इसपर कोई अभ्यापति नहीं है।

6. "(2003)4 एस॰ सी॰ सी॰ 675 में रिपोर्ट किए गए **बी॰ एस॰ जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य''** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि अगर न्याय को लक्ष्यों को पूरा करने हेतु प्रथम सूचना रिपोर्ट का निरस्त किया जाना आवश्यक हो जाता है, तो धारा 320 निरस्तीकरण की शक्ति के इस्तेमाल में एक वर्जन नहीं होगी। इस प्रकार, उच्च न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का इस्तेमाल करके दाण्डिक कार्यवाही या प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद को निरस्त कर सकता है और संहिता की धारा 320, संहिता की धारा 482 के अधीन शक्तियों की सीमित या प्रभावित नहीं करेगी।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी अवधारित किया गया है कि यह सुस्थापित है कि धारा 482 के अधीन शक्तियों का कोई सीमा नहीं है। निस्संदेह, जहाँ शक्तियाँ अधिक हो, तो ऐसी शक्तियों की अवलम्ब लेते हुए पूरी सावधानी एवं सतर्कता बरतना आवश्यक हो जाता है। ऐसी शक्तियों का इस्तेमाल प्रत्येक मामले के तथ्य एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा परन्तु एकमात्र उद्देश्य किसी न्यायालय की आदेशिका का दुरूपयोग रोकना या अन्यथा रूप से न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करना होगा।

7. वर्तमान मामले में, जब स्वयं सूचनादाता ही समूची दाण्डिक कार्यवाही के निरस्तीकरण का समर्थन कर रहा है और इस प्रकार, दोषसिद्धि की लगभग कोई संभावना नहीं होगी क्योंकि पक्षों ने पहले ही न्यायालय के बाहर अपने विवाद का समाधान कर लिया है और, अतएव, ऐसी एक परिस्थिति में, कार्यवाही को निरस्त करने के लिए अन्तर्निहित शक्ति का इस्तेमाल न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने और पक्षो को शान्तिमय जीवन व्यतीत करने देने के लिए होगा। पक्षों के बीच निपटान विशुद्ध प्रतीत होता है और इसलिए, पूर्वोक्त बी॰ एस॰ योशी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के सम्परीक्षण के दृष्टि में वैवाहिक विवाद के विशुद्ध समाधान को प्रोत्साहित करना न्यायालय का कर्तव्य है।

8. मामले की इस दृष्टि में, वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों में भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 498A, 306/34 के अधीन अपराध यद्यपि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 320 के अधीन प्रशमन योग्य नहीं है, परन्तु मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, संज्ञान लेने वाले दिनांक 15.3.2008 का आदेश के साथ-साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट मांगी (एम॰ जी॰ एम॰) पुलिस थाना केस संख्या 23 वर्ष 2008, जी॰ आर॰ केस संख्या 132/2008 से उद्भूत होने वाला समूचा दाण्डिक अभियोजन एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

झारखण्ड राज्य खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड

बनाम

छेदी मिस्त्री एवं अन्य

सिविल पुनरीक्षण सं॰ 72 वर्ष 2006. 8 मई, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–पेंशन–राज्य का विभाजन–झारखण्ड राज्य खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड के गठन की अधिसूचना के पूर्व कर्मचारी बिहार राज्य खादी उद्योग बोर्ड से सेवानिवृत्त

हुआ–अभिनिर्धारित, चूँकि रिट याची की सेवानिवृत्ति के काफी बाद परिसम्पतियों एवं देयताओं का बंटवारा हुआ है, झारखण्ड राज्य सेवानिवृत्ति लाभों के तौर पर रिट याची को भुगतान की जाने वाली राशि की प्रतिपूर्ति के लिए बिहार राज्य एवं बिहार खादी ग्राम उद्योग बोर्ड के पास जाएगा। (पैरा 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. P.K. Prasad, For the Petitioner; Mr. R. Satendra, For the Respondents.

आदेश

इस आवेदन द्वारा याची–झारखण्ड राज्य खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 4147/2005 में पारित दिनांक 15.5.2006 के निर्णय एवं आदेश का पुनर्विलोकन इप्सित करता है, जिसके द्वारा इस न्यायालय की एक पीठ ने इस याची–झारखण्ड राज्य खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड (संक्षेप में 'झारखण्ड बोर्ड') को रिट याची जो 31.3.2003 को सेवानिवृत्त हुआ था, को सेवानिवृत्ति बकायों का भुगतान करने का निर्देश इस आधार पर दिया था कि झारखण्ड बोर्ड को रिट याचिका में एक पक्ष के तौर पर अभियोजित नहीं किया गया था एवं यह कि झारखण्ड बोर्ड को दिनांक 17.12.2004 की अधिसूचना के माध्यम से गठित किया गया था। याची ने इसलिए तर्क दिया कि सेवानिवृत्ति बकायों का भुगतान करने की दायिता बिहार राज्य खादी ग्राम उद्योग बोर्ड (संक्षेप में 'बिहार बोर्ड') पर थी क्योंकि याची झारखण्ड बोर्ड के गठन के काफी पूर्व 31.3.2003 को सेवानिवृत्त हुआ था।

2. रिट याचिका के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि रिट याची ने झारखण्ड राज्य, जिला खादी ग्राम उद्योग पदाधिकारी, जिला कार्यालय, बिहार खादी ग्राम उद्योग बोर्ड, हजारीबाग, बिहार राज्य, बिहार खादी ग्राम उद्योग बोर्ड के अध्यक्ष एवं मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी को पक्षकार बनाते हुए रिट याचिका दाखिल किया। रिट याचिका को ग्रहण करने के लिए 2.9.2005 को अंगीकार किया गया था एवं बिहार राज्य के साथ–साथ झारखण्ड राज्य दोनों को ही मामले में अनुदेश इप्सित करने का निर्देश दिया गया। झारखंड राज्य की ओर से कोई प्रति शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया था। तथापि, बिहार बोर्ड की ओर से एक प्रति–शपथपत्र दाखिल किया गया था। उक्त शपथ पत्र में यह कहा गया था कि 58 वर्ष की आयु पूर्ण होने के बाद रिट याची हजारीबाग से उत्पादन सहायक के पद से 31.12.2003 को सेवानिवृत्त हुआ था। यह कहा गया है कि झारखण्ड राज्य के अस्तित्व में आने के उपरांत, दिनांक 31.3.2003 को अधिसूचना के माध्यम से झारखण्ड बोर्ड का गठन किया गया था एवं दिनांक 19.7.2003 की अधिसूचना के माध्यम से कार्यपालक पदाधिकारी की नियुक्ति की गई थी। प्रति–शपथपत्र में यह भी कहा गया था कि बिहार बोर्ड एवं नवगठित झारखण्ड बोर्ड की परिसम्पत्तियों एवं देयताओं का भारत सरकार के दिनांक 13.9.2004 के आदेश के माध्यम से बंटवारा कर किया गया है एवं तत्पश्चात झारखण्ड राज्य ने भी दिनांक 3.1.2005 के ज्ञापन द्वारा एक आदेश निर्गत किया। प्रत्यर्थी–बिहार बोर्ड ने यह भी कहा कि वैसे कर्मचारी, जो झारखण्ड राज्य में कार्य कर रहे हैं, प्रत्यक्षत: झारखण्ड बोर्ड के नियंत्रण के अधीन आ गए हैं।

3. बिहार राज्य द्वारा दाखिल प्रति–शपथपत्र में, यह कहा गया है कि सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 12124/93 एवं एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 383/2000 में पटना उच्च न्यायालय की एक खण्ड पीठ ने अवधारित किया कि बिहार बोर्ड के कर्मचारीगण के भुगतान के लिए धन निर्गत करने का दायित्व बिहार राज्य पर है।

4. दिनांक 31.3.2003 की अधिसूचना के माध्यम से झारखण्ड बोर्ड का गठन किया गया था परन्तु भारत सरकार के (गृह मंत्रालय) आदेश संख्या 12025/19/2004-एस॰ आर॰ दिनांक 13.9.2004 के माध्यम से दोनों राज्यों के बीच दोनों बोर्डो की सम्पत्तियों एवं दायित्वों का बँटवारा किया गया था। तथापि, चूँकि झारखण्ड राज्य या झारखण्ड बोर्ड द्वारा कोई प्रति–शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया था, अत: याची को सेवानिवृत्ति लाभों को निर्गत करने का निर्देश न्यायालय ने झारखण्ड राज्य एवं झारखण्ड बोर्ड को भी कर दिया।

5. वर्तमान पुनर्विलोकन आवेदन को 25.6.2007 को सुना गया था और इस न्यायालय ने निम्नांकित आदेश पारित किया था:–

"25.6.2007 : प्रत्यर्थी संख्या 1, जो रिट याची है, श्री राजीव आनन्द अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हैं।

प्रत्यर्थी संख्या 3 से 5 को नोटिस निर्गत किया जाय, जिनके लिए सामान्य प्रक्रिया के अधीन अपेक्षाओं इत्यादि को अवश्य ही एक सप्ताह के भीतर दाखिल कर देना है।

इस मामले को चार सप्ताह के उपरांत रखा जाए।

यह स्पष्ट किया जाता है कि पुनर्विलोकन याचिका के लंबित रहने का अर्थ डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 4147 वर्ष 2005 में पारित आदेश का स्थगन नहीं होगा। तथापि, यह सम्परीक्षित किया जाता है कि पुनर्विलोकन याचिका सफल होने की स्थिति में, राशि की प्रतिपूर्ति करने के लिए जिसका भुगतान याची को किया जाएगा बिहार राज्य खादी ग्राम उद्योग बोर्ड को यथोचित निर्देश निर्गत किया जा सकता है।

6. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि रिट याची की सेवानिवृत्ति के काफी बाद परिसम्पतियों एवं देयताओं का विभाजन किया गया है, दिनांक 15.5.2006 का आदेश इस सीमा तक उपान्तरित किया जाता है कि याची झारखण्ड बोर्ड एवं झारखण्ड राज्य सेवानिवृत्ति लाभों के माध्यम से रिट याची को भुगतान की जाने वाली राशि की प्रतिपूर्ति के लिए बिहार राज्य एवं बिहार बोर्ड के पास जाएंगे।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

अरूण कुमार सिन्हा एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W. P. (S) No. 159 वर्ष 2003. 2 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–वरीयता–कोई व्यक्ति संवर्ग में प्रविष्टि/नियुक्ति की क्रमिक तिथि से ही वरीयता/प्रोन्नति का दावा कर सकता है न कि अन्यथा। (पैरा 7)

निर्णयज विधि.–2007 (4) JCR 513—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Delip Jerath, For the Petitioners; Mr. Kalyan Roy, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों के लिए दाखिल की गयी है:–

(i) आरक्षी उप–महानिरीक्षक (कार्मिक) झारखण्ड, राँची के हस्ताक्षराधीन निर्गत ज्ञाप सं॰ 3926 में अंतर्विष्ट दिनांक 2.6.2002 की उस पदक्रम सूची को अभिखंडित करने के लिए एक यथोचित रिट/आदेश/निर्देश के निर्गतीकरण करने के लिए, जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन एक पदक्रम सूची तैयार किया गया है जिसमें उन व्यक्तियों को जो याचीगण के संवर्ग से बाहर है, जिनका नाम क्रम सं॰ 13 से 25 के बीच अंकित है, याचीगण से वरीय मानते हुए इस प्रकार शामिल किया गया है;

(ii) याचीगण को उस पदक्रम सूची के आधार पर आरक्षी उपाधीक्षक के पद पर प्रोन्नति किए जाने के मामले पर विचार करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने के लिए, जो उस संवर्ग से तैयार किया जाना है जिससे याचीगण संबंधित है:–

संक्षेप में तथ्य निम्नलिखित रूप से उपवर्णित है:–

2. याचीगण वर्ष 1975-76 में सीधे तौर पर आरक्षी उप–निरीक्षक के तौर पर बहाल किये गये थे एवं उन्हें निरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया था। लेकिन, ज्ञाप सं॰ 3923 के माध्यम से निर्गत दिनांक 2.6.2002 के पदक्रम सूची में क्रम सं॰ 13 से 25 तक में स्टेनो उप–निरीक्षक के पद पर सीधे तौर पर नियुक्त व्यक्तियों को शामिल किया गया है जो वर्ष 1982-83 में उप–निरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किए गए थे।

3. याचीगण के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य प्रतिवाद यह है कि क्रम सं॰ 13 से 25 में शामिल व्यक्तियों के सम्बन्ध में दिनांक 2.6.2002 का पदक्रम सूची प्रत्यक्षत: अविधिमान्य एवं अनवधार्य है क्योंकि स्टेनो उप–निरीक्षक एक पृथक संवर्ग सृजित करते थे एवं अन्यथा भी उनलोगों को वर्ष 1982-83 में अर्थात् याचीगण के वर्ष 1975-76 में उप–निरीक्षक के पद पर प्रत्यक्ष रूप से नियुक्त किए जाने के काफी बाद उप–निरीक्षक संवर्ग में विलय किया गया था।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने एक सदृश विवाद्यक पर CWJC No. 6371 वर्ष 1990 में इस न्यायालय की खंड पीठ द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश पर भरोसा किया एवं इसे निर्दिष्ट किया है जिसमें, पैराग्राफ–11 पर निम्नवत अभिनिर्धारित किया गया था:–

> *"11. वर्तमान मामले के तथ्यों एवं वरीयता के अवधारण पर शासन करने वाले सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया जाना है कि याचीगण एवं प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 19 की आपसी वरीयता को अवधारित करने के प्रयोजन से आरक्षी उप–निरीक्षक के संवर्ग में इन व्यक्तियों की प्रविष्टि/नियुक्ति की क्रमिक तिथियाँ ही एकमात्र सुसंगत आधार हो सकती हैं एवं न तो एक अन्य संवर्ग में याचीगण की प्रथम नियुक्ति की तिथि एवं न ही उनके क्रमिक पदों पर प्रतर्थीगण की सम्पुष्टि की तिथि ही उक्त प्रयोजनार्थ किसी काम का है।"*

5. उस आदेश के विरूद्ध विशेष अनुमति याचिका (सिविल) सं॰ 568 वर्ष 1994 दायर किया गया था, वह भी दिनांक 14.2.1994 के आदेश के माध्यम से खारिज हुआ था।

6. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता निष्पक्षता से स्वीकार करते हैं कि यह मुद्दा अब अनिर्णित नहीं है एवं इस माननीय न्यायालय की एक खण्ड पीठ ने **2007 (4) J.C.R. पृष्ठ 513** में प्रकाशित अपने आदेश में प्रश्नगत विवाद्यक याचीगण के पक्ष में निर्णित किया है।

7. मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में एवं सुस्थापित विधि की दृष्टि में, कोई व्यक्ति मात्र उस संवर्ग में प्रविष्टि/नियुक्ति की क्रमिक तिथि से ही वरीयता/प्रोन्नति का दावा कर सकता है।

8. वर्तमान मामले में इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि पुलिस उप–निरीक्षक के संवर्ग में याचीगण को मात्र सीधी नियुक्ति के माध्यम से 1975-76 में ही नियुक्त किया गया था जबकि 2002 के पदक्रम सूची में क्रम सं॰ 13 से 25 तक के व्यक्तियों को वर्ष 1982-83 में उप–निरीक्षक के संवर्ग में लाया या प्रोन्नत किया गया था एवं इस प्रकार वे लोग संवर्ग में लाये जाने से पूर्व भी वरीयता का दावा नहीं कर सकते हैं।

9. मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए एवं स्वीकृत तथ्यों एवं निर्णयज विधि की दृष्टि में, रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

रामलगन ओरांव एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 5772 वर्ष 2008. 31 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–वेतनमान–की वापसी–याचीगण को पिछले 13 वर्षों से B.Sc प्रशिक्षित वेतनमान दिया गया था–महालेखाकार द्वारा उठाये गये आक्षेप के कारण वेतनमान वापस ले लिया गया एवं वसूली का आदेश दिया गया–अभिनिर्धारित, सुनवाई का अवसर दिए बिना, महालेखाकार कार्यालय की रिपोर्ट क्रियान्वित करके प्रसुविधा की वापसी अविधिमान्य एवं नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के विरूद्ध है। (पैरा 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Deva Kant Roy, For the Petitioners; Sr. S.C.-I, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका मुख्य रूप से इन कारणों से दायर की गयी है कि इस मामले में एक लेखा–परीक्षक ने आक्षेप किया है कि याचीगण B.Sc प्रशिक्षित वेतनमान के हकदार नहीं है। इस प्रसुविधा को जो वर्ष 1995 में पहले से ही याचीगण को विस्तारित कर दिया गया था, एक दशक से अधिक की अवधि के उपरांत अर्थात् वर्ष 2006 में सुने जाने का कोई अवसर प्रदान किए बिना उपाबंध 7 एवं 8 के माध्यम से वापस ले लिया गया है, इस प्रकार, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है।

2. याचीगण के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि वास्तव में याचीगण को B.Sc. प्रशिक्षित वेतनमान मंजूर करने में कोई भूल नहीं हुआ था क्योंकि याचीगण B.Sc. डिग्रीधारी थे एवं वे लोग B.Sc. प्रशिक्षित वेतनमान के हकदार थे। यद्यपि, प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई नोटिस निर्गत किया गया होता, तो याचीगण सही तथ्यात्मक एवं विधिक स्थिति से प्रत्यर्थीगण को अवगत कराया होता तो वर्तमान याचिका से बचा जा सकता था। इस प्रकार, याचिका को मात्र इसी आधार पर ही अनुज्ञात किया जा सकता है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धाँत का उल्लंघन हुआ है। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि लेखा–परीक्षक की रिपोर्ट साक्ष्य का एक निश्चायक भाग नहीं है और न ही यह याची के विरूद्ध कार्रवाई प्रारम्भ करने के लिए न्यूनतम अपेक्षा की उपेक्षा कर सकता है अर्थात् नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने की। लेखा–परीक्षक की रिपोर्ट एक डिक्री नहीं है। सुने जाने का अवसर प्रदान करने के लिए नोटिस दिया जाना है, जो याचीगण को नहीं दिया है, एवं इसलिए, याचिका के ज्ञाप का उपाबंध 7 एवं 8 का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

3. मैंने प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता को सुना है, जिन्होंने निवेदन किया है कि याचीगण B.Sc प्रशिक्षित वेतनमान के हकदार नहीं है, इसलिए, महालेखाकार ने दिनांक 26 अप्रैल, 2006 के अपने पत्र के अनुसार आक्षेप किया है एवं परिणामस्वरूप, उपाबंध 7 एवं 8 का आदेश प्रत्यर्थीगण के सम्बन्धित प्राधिकारीगण द्वारा क्रमश: 1.9.2006 एवं 4.10.2008 को पारित किया गया था।

4. दोनों पक्षों को सुनने एवं मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, मैं एतद्द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित कारणों एवं तथ्यों पर याचिका के ज्ञापन, जो कि दिनांक 4.10.2008 का है, के उपाबंध 7 एवं 8 के अनुसार याचीगण से धनराशि की वसूली को अभिखंडित एवं अपास्त करता हूँ, अर्थात:–

(i) याचीगण को याचिका के ज्ञाप के उपाबंध-6 के अनुसार वर्ष 1995 के प्रभाव से B.Sc. प्रशिक्षित वेतनमान दिया गया था;

(ii) एक दशक की अवधि तक वर्तमान याचीगण के कार्य के बारे में प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई शिकायत नहीं की गयी है, अन्यथा भी, याचीगण को किसी भी कारण से इस प्रभाव का कोई नोटिस, जो कुछ भी निर्गत नहीं किया गया है कि याचीगण को B.Sc प्रशिक्षित वेतनमान गलत रूप से दिया जा रहा था;

(iii) केवल तभी जब महालेखाकार कार्यालय ने दिनांक 26 अप्रैल, 2006 को एक पत्र दिया, तभी प्रत्यर्थीगण ने विधि की प्रक्रिया का पालन किए बिना एवं नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत की न्यूनतम अपेक्षा का पालन किए बिना इन प्रसुविधाओं को वापस ले लिया है, दिनांक 4.10.2008 को एक आदेश पारित किया गया है जो याचिका के ज्ञाप के उपाबन्ध-8 पर है, जिसके द्वारा B.Sc. प्रशिक्षित वेतनमान हटा लिया गया है, जो वर्ष 1995 में दिया गया था। इस प्रकार, 13 वर्ष के उपरांत कोई नोटिस दिए बिना, सुने जाने का कोई अवसर प्रदान किए बिना, उपाबन्ध-8 का आदेश सम्बन्धित प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण द्वारा पारित किया गया है;

(iv) महालेखाकार कार्यालय द्वारा लिखित पत्र साक्ष्य का निश्चायक भाग नहीं है और न ही यह याचीगण को दी गयी प्रसुविधा को वापस लेने से पहले न्यूनतम प्रक्रिया अर्थात् नैसर्गिक न्याय का पालन किए जाने की अपेक्षा की उपेक्षा करने की अनुमति प्रत्यर्थीगण को देता है। महालेखाकार की रिपोर्ट कभी भी प्रत्यर्थीगण को किसी न्यायालय के एक डिक्री के तौर पर मानने की अनुमति नहीं देता है। प्रत्यर्थीगण द्वारा किसी राशि की सीधी वसूली नहीं की जा सकती है। याचीगण को नोटिस दी जानी चाहिए थी एवं याचीगण की सुनवायी की जानी चाहिए थी। यह प्रक्रिया पालन किया जाना अपेक्षित है, भले ही वसूली महालेखाकार कार्यालय की रिपोर्ट पर आधारित हो;

(v) मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, यह तथ्य पर स्वीकृत स्थिति है कि याचीगण को उस प्रसुविधा को वापस लेने के लिए कोई नोटिस नहीं दी गयी थी और न ही सुनवायी की गयी थी, जो पहले ही वर्ष 1995 में (याचिका के ज्ञाप के उपाबंध-6 के अनुसार) याचीगण को मंजूर किया गया था। याचीगण को B.Sc. प्रशिक्षित वेतनमान विगत 13 वर्षों से दिया गया था, एवं इसलिए, मैं सम्बन्धित प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश अभिखंडित एवं अपास्त करता हूँ जो, दिनांक 4.10.2008 के उपाबंध-8 पर है क्योंकि यह नैसर्गिक न्याय के उल्लंघन में है।

5. उपरोक्त तथ्यों एवं कारणों के संचयी प्रभाव के तौर पर, उपाबन्ध-7 एवं 8 के आदेश को, एतद्द्वारा अभिखंडित एवं अपास्त किया जाता है, एवं प्रत्यर्थीगण विधि की प्रक्रिया का पालन करने के लिए स्वतंत्र हैं एवं वे महालेखाकार कार्यालय के किसी रिपोर्ट को क्रियान्वित करने से पूर्व याचीगण को सुने जाने का एक अवसर प्रदान करेंगे।

उपरोक्त आदेश की दृष्टि में यह रिट याचिका निस्तरित की जाती है।

यदि प्रसुविधा को वापस लिए जाने के लिए सुने जाने का कोई अवसर याचीगण को प्रदान किया जाता है, तो सम्बन्धित प्राधिकारी स्वतंत्र रूप से निर्णय करेंगे एवं उपरोक्त आदेश द्वारा प्रभावित हुए बिना।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

विवेक सरावगी (नाबालिग)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3242 वर्ष 2008. 16 जनवरी, 2009 को विनिश्चित।

रांची नगर निगम–ध्वंसीकरण–याची द्वारा परिनिर्मित दीवार को सम्मिलितकर भवन सन्निर्माण के गिराये जाने की नोटिस को चुनौती दी गयी–भूमि की माप के बारे में विवाद–अभिवाक् कि माप 1935 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण के नक्शा के आधार पर किया जाना चाहिए–स्थापित विधि यह है कि नवीनतम सर्वेक्षण अभिभावी होगा–1935 के पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण के नक्शे के आधार पर एक नवीन माप कराने का निर्देश प्राधिकारियों को सम्मिलितकर सभी सम्बन्धित पक्षकारों की उपस्थिति में दिया जाता है और मात्र तत्पश्चात् अतिक्रमण को हटाये जाने की कार्यवाही विधि की सम्यक् प्रक्रिया का अनुपालन करने के पश्चात् की जा सकती है।

(पैरा 14)

निर्णयज विधि.–AIR 1963 SC 361; WP(C) No. 3075 of 2002; 2003(2) JCR 134 (Jhr.)—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s. P.P.N. Roy, Lalit Kumar Lal, For the Petitioner; M/s Ray Rajat Nath, Gautam Rakesh, For the Respondents.

आदेश

इस रिट आवेदन में याची ने वार्ड सं॰ 18, पुरानी पिरी टोला, बूटी सड़क, करमटोली, रांची के अन्तर्गत रैयती प्लॉट सं॰ 615 एवं 616 से सम्बन्धित भूमि पर याची द्वारा परिनिर्मित सीमा दीवार को सम्मिलितकर भवन सन्निर्माणों को गिराने से प्रत्यर्थीगण को अवरूद्ध करने वाला एक निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है।

2. याची का मामला यह है कि एम॰ एस॰ सं॰ 46, पी॰ एस॰ हातमा, (रांची) के तत्सम खाता सं॰ 95, खेवट सं॰ 2, गांव, हातमा, पी॰ एस॰ रांची के अधीन पुनरीक्षण सर्वेक्षण प्लॉट सं॰ 615-616 (नगरपालिका सर्वेक्षण प्लॉट सं॰ 461) से सम्बन्धित इस मामले में निर्देश के अधीन भूमि विद्यमान भवन सन्निर्माण, सीमा दीवार, वृक्षों एवं पौधों के साथ पूर्वस्वामी मौलवी कमरूल होदा द्वारा याची के पूर्वज अर्थात् मानिक चन्द सरावगी के पक्ष में रजिस्ट्रीकृत एवं निष्पादित किये गये एक विक्रय-विलेख के आधार पर वर्ष 1963 में खरीदी गयी थी। 1995 में किये गये एक पारिवारिक विभाजन पर 49 डेसिमल, 167 वर्गफीट की माप की होने वाली संपूर्ण भूमि को, याची के पिता, स्व॰ सुरेन्द्र कुमार सरावगी के अनन्य हिस्से में आबंटित किया गया। तत्पश्चात्, याची के पिता ने रांची क्षेत्रीय विकास प्राधिकरण (आर॰ आर॰ डी॰ ए॰) द्वारा मंजूर की गयी भवन योजना के अनुसार पूर्वोक्त भूमि के एक भाग पर दो बहु-मंजिली भवन का निर्माण कराया।

पश्चात्वर्ती तौर पर, दिनांक 29.5.2000 के एक व्यवस्थापन विलेख द्वारा अभिलिखित किये गये सुरेन्द्र सरावगी एवं उसके पौत्र विवेक सरावगी के बीच के एक पारिवारिक व्यवस्थापन के आधार पर, माप 11 कट्ठा, 5 छटाक मात्र की होने वाले प्लॉट सं॰ 615 में भूमि का रिक्त भाग याची विवेक सरावगी को आबंटित किया गया। ऐसे व्यवस्थापन पर, याची ने दाखिल खारिज केस सं॰ 240R.27/2004-05 में सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किये गये आदेश के अनुसरण में राजस्व अभिलेखों में अपने नाम का दाखिल खारिज करवाया और याची, झारखंड राज्य को उसके लिए किराये का नियमित रूप से भुगतान करता रहा था। याची के नाम को नगरपालिका-अभिलेखों में दाखिल खारिज करवायी गयी और वह भी रांची नगर निगम को करों का संदाय कर रहा था।

चूँकि सीमा जो मूलरूप से विद्यमान थी, क्षतिग्रस्त हो गयी थी, उसका समय-समय पर मरम्मत कराया जाता था।

3. 8.7.2005 को अपने पितामह के माध्यम से याची को एक नोटिस की तामीला उसमें इस बात को सूचित करते हुए सर्किल अधिकारी नगर अंचल, रांची के कार्यालय द्वारा करायी गयी कि नगरपालिका प्लॉट सं॰ 344-345 की भूमि को 9.7.2004 को मापी जाने के लिए समय निर्धारित की गई थी एवं सभी व्यक्तियों से उनके क्रमिक दस्तावेजों के साथ मापन के समय मौजूद होने की अपेक्षा की गयी थी। यद्यपि भूमि सर्किल अधिकारी, ग्रामीणों एवं याची के पितामह की उपस्थिति में मापी गयी

थी, लेकिन किन्हीं कागजातों या दस्तावेजों की मांग उसके भूमि के सम्बन्ध में याची से सर्किल अधिकारी द्वारा नहीं की गयी थी। मापने के पश्चात् भी, किन्हीं निष्कर्षों की पूर्ति याची को नहीं की गयी और न ही उसकी भूमि का सीमांकन किया गया था और न ही सर्किल अधिकारी ने सार्वजनिक भूमि के किसी भाग पर याची द्वारा कोई अधिक्रमण पाया है। फिर भी, 18.8.2005 को याची को अति आश्चर्यचकित करते हुए प्रस्तावित माप के बारे में याची को कोई पूर्व नोटिस या सूचना दिये बिना भी रांची नगर निगम द्वारा एक नवीन माप किया गया। मापन की प्रक्रिया में, रांची नगर निगम के प्राधिकारीगण ने याची द्वारा विरोध के बावजूद भी याची के परिसर में एक रेखा खींचा। याची ने नगर निगम के सम्बन्धित प्राधिकारियों के समक्ष एक अभ्यापति याचिका दाखिल किया और यह मांग किया कि उसकी भूमि की माप एक अर्हित इन्जीनियर/सर्वेक्षक द्वारा की जाय एवं यह भी आश्वासन दिया था कि यदि, ऐसे मापन पर, याची द्वारा सार्वजनिक भूमि के किसी भाग का कोई अतिक्रमण किया जाना पाया जाता है तो वह तत्परता से ऐसे अधिक्रमण को हटा देगा। और आगे, याची ने पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण नक्शे के अनुसार एक अर्हित सर्वेक्षक के जरिये 25.8.2005 को अपनी भूमि की माप करवायी एवं उसे संपुष्ट किया गया था की उसकी ओर से किसी सार्वजनिक भूमि का कोई अतिक्रमण नहीं हुआ था। याची ने सर्वेक्षक द्वारा जारी किये गये प्रमाणपत्र एवं सर्वेक्षक द्वारा तैयार किये गये अति अधिरोपित नक्शे की एक प्रति के साथ प्रत्यर्थी सं० 2 अर्थात् रांची नगर निगम के उप-मुख्य कार्यपालक अधिकारी के समक्ष 29.8.2005 को सर्वेक्षक का रिपोर्ट प्रस्तुत किया।

फिर भी, एकाएक 12.9.2005 को याची उसमें यह धमकी देने वाली नोटिस की प्राप्ति पर 24 घण्टों के भीतर एक अभिकथित अतिक्रमण हटाने का याची को निर्देश देने वाली प्रत्यर्थी नगर निगम द्वारा जारी की गयी एक नोटिस दिनांकित 9.9.2005 को तामीला करवायी गयी कि यदि तात्पर्यित अतिक्रमण याची द्वारा नहीं हटाया गया, तो नगर निगम याची के खर्चे पर अभिकथित अतिक्रमण हटायेगी।

4. व्यथित होकर, याची ने रांची नगर निगम द्वारा जारी की गयी पूर्वोक्त नोटिस (उपाबंध-3) को अभिखंडित करने के लिए रिट याचिका सं० 5240 वर्ष 2005 दाखिल करके इस न्यायालय में समावेदन किया। रिट याचिका का निस्तारण लंबित रखते हुए, इस न्यायालय ने आक्षेपित नोटिस के प्रवर्तन को स्थगित करते हुए 16.9.2005 को एक अंतरिम आदेश पारित किया। ऐसी नोटिस के बावजूद भी, प्रत्यर्थी नगर निगम ने यह घोषणा करते हुए पूर्वोक्त रिट याचिका में एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया कि याची की सीमा दीवार 9.9.2005 अर्थात् स्थगन का अंतरिम आदेश पारित करने के पूर्व गिरा दी गयी थी। प्रति शपथपत्र में यथा प्रकथित ऊपर के कथन पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने इस आधार पर पूर्वोल्लिखित रिट याचिका का निपटारा कर दिया कि चूँकि तात्पर्यित अतिक्रमण पहले से ही हटा लिया गया था इसलिए किसी और आदेश के पारित किये जाने की अपेक्षा नहीं थी। न्यायालय ने आगे यह सम्प्रेक्षण किया कि याची को गलती करने वाले अधिकारियों के विरूद्ध समुचित कदम उठाने की स्वतंत्रता थी यदि याची यह स्थापित कर सके कि ऐसे किसी अधिकारी ने न्यायालय की अवमानना कारित की थी और समुचित अनुतोष के लिए सक्षम अधिकारिता के न्यायालय के समक्ष भी समावेदन कर सकेगा।

तत्पश्चात याची ने गिरायी गयी सीमा दीवार के नुकसानों एवं मरम्मतों के खर्चे हेतु प्रतिकर का दावा करने वाली एक दूसरी रिट याचिका दाखिल की उल्लिखित : डब्ल्यू० पी० सं० 6306 वर्ष 2005. इस न्यायालय ने दिनांक 28.3.2006 के आदेश के द्वारा यह अभिनिर्धारित करके रिट याचिका का निपटारा कर दिया था कि प्रश्नगत भूमि पर अधिकार, हक एवं हित से सम्बन्धित विवाद को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन निर्णीत नहीं किया जा सकता है।

5. प्रत्यर्थी-निगम के इस दावे का खंडन करते हुए कि याची ने एक सार्वजनिक नाला/नाली पर अतिक्रमण किया था, जो पुनरीक्षण सर्वेक्षण सं० 615-616 में कभी भी प्रदर्शित नहीं किया गया था,

याची ने सीमा दीवार के अवैधानिक ढ़हाई के विरूद्ध शिकायत करते हुए प्रशासक, रांची नगर निगम के समक्ष अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जो उसकी भूमि पर अस्तित्व रखती थी।

उत्तर में, याची को प्रशासक द्वारा यह सूचित किया गया कि पुनरीक्षण सर्वेक्षण वर्ष 1929 के अनुसार तैयार किये गये नगरपालिकीय सर्वेक्षण नक्शे में, एक नाला प्लॉट सं॰ 458 की भूमि पर प्रदर्शित किया गया था और यह कि यदि निगम ने नगरपालिका सर्वेक्षण प्लॉट सं॰ 458 में नाले पर किया गया कोई अवैध सन्निर्माण पाया तो नगर निगम को उसे गिराने के लिए आबद्ध होगा।

एक भूल से किये गये विश्वास पर निगम द्वारा उठाए गये विवाद पर विचार करके कि याची की भूमि नगर निगम सर्वेक्षण प्लॉट सं॰ 458 के एक भाग का गठन करती थी, जो याची के अनुसार, तत्स्थानी नगर निगम प्लॉट सं॰ 461 का गठन करती है, याची ने इस प्रस्ताव का 10.6.2006 को निगम के सम्बन्धित प्राधिकारी के समक्ष एक नवीन अभ्यावेदन (उपाबन्ध-7) दाखिल किया कि प्लॉट की एक संयुक्त माप वर्ष 1935 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण व्यवस्थापन नक्शा के अनुसार नये सिरे से की जाय ताकि यह विनिश्चिय किया जा सके कि क्या याची की सीमा दीवार सार्वजनिक भूमि के अतिक्रमण में है या नहीं।

याची के प्रस्ताव को मानकर, उप-प्रशासक रांची नगर निगम ने यह सूचित किया कि माप याची की उपस्थिति में 12.12.2007 को की जायेगी। लेकिन 1963 से भूमि पर दावा करने के अपने अधिकार एवं कब्जे के सम्बन्ध में सभी अपेक्षित दस्तावेज याची द्वारा पेश किए जाने एवं 1935 के पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण नक्शे के अनुसार माप कराने के उसके आग्रह के बावजूद प्रत्यर्थीगण ने वर्ष 1929 के सर्वेक्षण के आधार पर स्वीकार्यरूपेण तैयार किये गये नगरपालिका सर्वेक्षण नक्शा के अनुसार माप किया और ऐसी माप पर एक नयी नोटिस की उस सीमा दीवार को हटाने के लिए याची को पुनः तामीला करायी गयी जो अभिकथित तौर पर सार्वजनिक भूमि के अतिक्रमण किए गए भाग पर थी।

इस बात पर विश्वास करके कि प्रत्यर्थी, नगर निगम याची की सीमा दीवार को गिराने पर तुला है, याची ने अपनी सीमा दीवार को गिराने से प्रत्यर्थी नगर को अवरूद्ध करने वाले एक आदेश प्रार्थना करते हुए वर्तमान रिट याचिका दाखिल किया। किन्तु, जैसा ऊपर उल्लिखित है, इस न्यायालय ने ध्वंसीकरण के आक्षेपित नोटिस के स्थगन का एक अंतरिम आदेश पारित कर सकने के पूर्व ही, सीमा दीवार प्रत्यर्थीगण द्वारा गिरा दी गयी थी एवं जब यह तथ्य इस न्यायालय की जानकारी में लाया गया तब रिट याचिका का निपटारा निष्फल होने के रूप में कर दिया गया।

6. स्वीकृति के प्रक्रम पर याची द्वारा दिये गये तर्कों के अनुक्रम के दौरान याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने यह प्राख्यान करते समय कि याची ने किसी नगरपालिकीय भूमि पर अतिक्रमण नहीं किया था, यह तर्क दिया था कि ऐसे एक तथ्य की पुष्टि वर्ष 1935 में किये गये पुनरीक्षण सर्वेक्षण से संबंधित मापों द्वारा की जा सकती है न कि वर्ष 1929 में किये गये नगरपालिका सर्वेक्षण से संबंधित मापों द्वारा। **अर्जुन खालको बनाम रांची नगर निगम [डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3075 वर्ष 2002]** के मामले में दिनांक 12.5.2004 के आदेश, **दुर्गा सिंह बनाम थोलू (ए॰ आई॰ आर॰ 1963 एस॰ सी॰ 361)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि विधि के सुस्थापित सिद्धान्तों के अनुसार, नवीनतम सर्वेक्षण अभिभावी होगा। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने **द्वारिका सोनार बनाम मोस्मात बिलगूली, [2003(2) जे॰ सी॰ आर॰ 134 (झा॰)]** के मामले में निर्णय पर भी विश्वास किया।

ऊपरोक्त तर्कों एवं साथ ही स्वीकृत तथ्य पर विचार करके कि याची का नाम उसके द्वारा दावाकृत भूमि की माप के साथ इसके बाबत सरकारी राजस्व अभिलेख में नामांतरित हो जायेगा और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि क्षेत्र के भीतर भूमियों का पुनरीक्षण सर्वेक्षण वर्ष 1935 में किया गया एवं इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि विवाद याची की उस भूमि की सीमा दीवार के सीमांकन के वास्तविक क्षेत्र को अभिनिश्चित करने के प्रश्न पर था जिसको संभवत: 1935 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण माप के आधार पर भूमि को नये सिरे से माप करके व्यवस्थापित किया जा सकता था, इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांकित 22.8.2008 द्वारा याची के नाम से अभिलिखित भूमि से सम्बन्धित राजस्व अभिलेखों के अनुसार उपायुक्त द्वारा प्राधिकृत किये गये एक सर्वेक्षण अमीन के माध्यम से याची की भूमि की माप करने के लिए तथा वर्ष 1935 के पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण के आधार पर सीमा को सीमांकित करने के लिए उपायुक्त, रांची को निर्देश दिया था।

निर्देश के अनुपालन में, नयी माप प्रकाशित तौर पर की गयी और रिपोर्ट उप-आयुक्त द्वारा प्रस्तुत की गयी है।

7. नगर निगम की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है। प्रत्यर्थी द्वारा ग्रहण किया गया प्रमुख अभिमत यह है कि वर्तमान रिट याचिका पोषणीय नहीं है क्योंकि याची ने पूर्व अवसर पर स्वयं को वही अनुतोष देने के लिए समरूपी रिट याचिकाएं [डब्ल्यू० पी०(सी०) सं० 5240 वर्ष 2005 एवं 6306 वर्ष 2005] दाखिल की थी और दोनों रिट याचिकाएं इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गयी थी। यह आगे निवेदन किया गया है कि यद्यपि पूर्वतर रिट याचिका सं० 5240 वर्ष 2005 में इस न्यायालय में याची की सीमा दीवार के गिराये जाने के आदेश के विरूद्ध 16.9.2005 को स्थगन का एक अंतरिम आदेश पारित किया था, लेकिन ऐसा ध्वंसीकरण अंतरिम आदेश के पारित होने से पूर्व भी 9.9.2005 को किया गया था। द्वितीय रिट याचिका सं० डब्ल्यू० पी० 6306 वर्ष 2005 जिसमें याची ने पूर्वी सीमा दीवार एवं उसके परिसर के प्रवेश द्वार के नुकसान/ध्वंसीकरण के लिए मुआवजा के संदाय का दावा किया था एवं उसके परिसर के प्रवेश द्वार, को उसकी शिकायत के निस्तारण के लिए सिविल न्यायालय के समक्ष समावेदन करने के याची को एक निर्देश के साथ इस न्यायालय द्वारा निपटाया भी गया क्योंकि उसमें पैदा हुए मुद्दे प्रश्नगत भूमि पर अधिकार, अभिधान एवं हित का दावा याची से सम्बन्ध रखते थे। प्रत्यर्थी का आगे तर्क यह है कि यद्यपि स्वीकार्यरूपेण सीमा दीवार को 9.9.2005 को निगम द्वारा गिराया गया फिर भी याची ने सक्षम प्राधिकारी से सहमति के बिना सीमा दीवार का पुनर्निर्माण किया, जो नगर निगम के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, याची द्वारा सार्वजनिक नाली के अतिक्रमण का एक कार्य है। चूँकि याची ने सीमा दीवार का सन्निर्माण कर दिया है, इसलिए प्रत्यर्थी निगम ने अतिक्रमण को हटाने के लिए याची को निर्देशित करने वाली आक्षेपित नोटिस जारी किया है। प्रत्यर्थियों ने याची के दावे को विवादित बना दिया है कि सीमा दीवार मूल रूप से वर्ष 1963 में भूमि के क्रय के पहले से ही भूमि पर विद्यमान थी। यह आगे तर्क दिया गया है कि याची के आग्रह पर, भूमि की माप 12.12.2007 को करायी गयी और सर्किल अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गयी दिनांक 14.12.2007 की माप रिपोर्ट से, यह पाया गया कि सीमा दीवार का परिनिर्माण अतिक्रमण के रूप में सार्वजनिक नाली पर किया गया।

8. एक मध्यक्षेप आवेदन-पत्र इस आधार पर रिट याचिका में मध्यक्षेप करने हेतु अनुज्ञा की मांग करते हुए, एक संघ अर्थात् बस्ती बिकास मंच समिति, करमटोली, रांची की ओर से दाखिल किया गया कि इस रिट याचिका में दिये गये निर्णय से समिति के सदस्यों के हित पर प्रतिकूल तौर पर प्रभाव पड़ने की संभावना है। IA याचिका के जरिये, यह स्पष्ट करने की ईप्सा की गयी है कि मध्यक्षेपी संघ ने करमटोली के पुरानी पिरीटोला बरियातू रोड़, रांची को एक पहुँच सड़क की व्यवस्था करने के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को एक निर्देश के लिए प्रार्थना करने वाली डब्ल्यू० पी०(पी० आई० एल०) 47 वर्ष

2004 दाखिल किया था। वर्तमान रिट याचिका में विवाद में अन्तर्ग्रस्त भूमि करमटोली के पुरानी पिरीटोला, बरियातू सड़क, रांची के निवासियों को एक पहुँच सड़क की व्यवस्था करने वाली एक मात्र भूमि है, जिसका याची द्वारा अतिक्रमण किया गया है। मध्यक्षेपी का तर्क यह है कि याची को मात्र अपनी भूमि तक परिसीमित रहना चाहिए एवं न कि किसी सार्वजनिक भूमि पर और यह कि याची को उस नगरपालिका सर्वेक्षण नक्शे का पालन करने के लिए बाध्य है जो घोषणा करता है कि विवाद के अधीन भूमि वास्तव में एक सार्वजनिक भूमि है।

IA याचिका का प्रत्युत्तर दाखिल करके, याची ने यह कथन करने वाले मध्यक्षेपी के दावे का प्रत्याख्यान किया है और उसको विवादित बनाया है कि मध्यक्षेपकर्तागण नगर निगम के यंत्र है और वर्तमान रिट याची में विवाद में वे बिल्कुल आवश्यक पक्षकार नहीं हैं और ऐसे मध्यक्षेपकर्तागण स्वयं सार्वजनिक भूमि का अतिक्रमण करने वाले प्रतीत होते हैं।

9. तथ्यों से जो पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता के विरोधी तर्कों से प्राप्त होते हैं, यह प्रतीत होता है कि याची का स्थिर मामला यह है कि उसके पूर्वज ने प्लॉट सं० 615-616 की भूमि खरीदी थी जिसको न केवल पुनरीक्षण सर्वेक्षण नक्शा प्लॉट सं० 461 विनिर्दिष्ट करने वाले अपितु वर्ष 1935 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण नक्शे के अनुसार इसकी सीमाओं के साथ में भूमि के क्षेत्रफल को भी विनिर्दिष्ट करने वाले विक्रय-विलेख के तत्सम काफी पूर्व वर्ष 1963 में नगरपालिकीय प्लॉट सं० 461 से सम्बन्धित, 1935 के नगरपालिका सर्वेक्षण के अनुसार संख्यांकित किया गया। यह आगे प्रतीत होता है कि रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के आधार पर भूमि के पूर्वोक्त अंतरण को स्वीकार कर, उस क्रेता के नाम को जो याची का पूर्वज था, न केवल सरकारी राजस्व अभिलेख में बल्कि नगरपालिकीय अभिलेखों में नामान्तरित किया गया।

भूमि के क्रय की तारीख से इसके संपूर्ण क्षेत्रफल के अधिभोग में याची को पाने के पश्चात्, प्रत्यर्थी नगर पालिका अधिकारियों ने वर्ष 2005 में प्रथम बार यह अभिकथन करते हुए एक विवाद प्रस्तुत किया कि याची ने सार्वजनिक भूमि के एक भाग पर अतिक्रमण किया था जिसका उनके अनुसार, नगरपालिका सर्वेक्षण नक्शा के आधार पर पता लगाया गया। याची ने इस आधार पर नगरपालिका सर्वेक्षण नक्शा की यथार्थता का प्रत्याख्यान किया है और उसको विवादित बनाया है कि इसको 1935 के पश्चातवर्ती सर्वेक्षण नक्शे के बजाय 1929 के पुनरीक्षित सर्वेक्षण नक्शे के आधार पर तैयार किया गया था।

10. एक पूर्वतर अवसर पर याची से सीमा दीवार के गिराये जाने की दी गयी धमकी के विरूद्ध इस न्यायालय के समक्ष उसने डब्ल्यू० पी० सं० 5240 वर्ष 2005 होने वाली रिट याचिका में एक विवाद उठाया था। रिट याचिका इस तथ्य के आधार पर रोक दी गयी कि सीमा दीवार रिट याचिका में याची की प्रार्थना पर कोई निर्णय लिये जा सकने के पूर्व ही प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा गिरा दी गयी। नगर निगम की पूर्वतर आक्षेपित अधिसूचना के विरूद्ध याची द्वारा दाखिल की गयी पश्चातवर्ती रिट याचिका सं० 3075 वर्ष 2002 में जिसके अधीन याची को अभिकथित अतिक्रमण को हटाने का निर्देश दिया गया, इस न्यायालय ने नियत कालावधि के अन्दर प्रश्नगत भूमि का एक नये सिरे से माप कराने के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को निर्देश दिया था और यदि यह पाया जाता है कि याची ने किसी सार्वजनिक भूमि पर अतिक्रमण किया है तो विधि के अनुसार अतिक्रमण को हटाया जाय। आगे यह निर्देश दिया गया कि जबतक ऐसी माप नहीं होती तब तक प्रश्नगत भूमि पर निर्माणों में से किसी को भी नहीं गिराया जाना चाहिए। उक्त आदेश 12.5.2004 को पारित किया गया था।

11. प्रत्यर्थी नगर निगम की ओर से विद्वान अधिवक्ता यह सूचित करेंगे कि पूर्वोक्त निर्देश के अनुपालन में नये सिरे से माप की गयी जिसमें यह पाया गया कि याची ने सार्वजनिक भूमि के कतिपय भाग पर अतिक्रमण किया था और इसलिए अतिक्रमण को हटाने के लिए एक नयी नोटिस की याची को तामीला करायी गयी। व्यथित होकर याची ने यह दर्शाने वाली यह रिट याचिका दाखिल की है कि

यद्यपि पूर्वतर रिट याचिका में इस न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में, एक नये सिरे से माप निगम द्वारा की गयी लेकिन वैसा करते समय, प्रत्यर्थी ने 1935 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण में तैयार किये गये नक्शे के अनुसार माप करने के लिए याची के अनुरोध की जानबूझकर उपेक्षा की थी और अनुचित रूप से 1929 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण के अनुसार तैयार किये गये नक्शे के आधार पर माप करने का आग्रह किया था।

12. याची के तर्कों पर विचार करने पर और **दुर्गा सिंह बनाम थोलू (ऊपर)** एवं **द्वारिका सोनार बनाम विलगुली (ऊपर)** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत निर्णयाधार के प्रकाश में इस न्यायालय ने 1935 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण नक्शा के आधार पर एक सरकारी सर्वेक्षण अमीन के माध्यम से याची की भूमि की नये सिरे माप करवाने के लिए एवं रिपोर्ट को प्रस्तुत करने के लिए उप-आयुक्त को निर्देश दिया था।

चूँकि रिपोर्ट को प्रस्तुत किया गया है लेकिन उसके अधूरा होने के कारण प्रत्यर्थियों द्वारा विवादित बनाया गया है और इस मामले में उठाये गये विवाद को हल करने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि यह याची के पास वाली भूमि के मुकाबले में उसकी भूमि के विनिर्दिष्ट माप को उपदर्शित नहीं करता है। उक्त से यह यह प्रतीत होता है कि पूर्वतर रिट याचिका में इस न्यायालय के पूर्वतर निर्देश के अनुसरण में भी प्रत्यर्थी ने माप किया लेकिन यह 1929 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण के आधार पर स्वीकार्यरूपेण तैयार किये गये नगरपालिका सर्वेक्षण नक्शे के मात्र आधार पर किया गया था। अतएव, विवाद को ऐसे मापन के आधार पर अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता था और याची को ऐसे मापन के आधार पर अभिलिखित किये गये निष्कर्षों के विरूद्ध यथार्थ शिकायत थी। यह आगे प्रतीत होता है कि यद्यपि इस न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में, एक नये सिरे से माप 1935 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण नक्शे के आधार पर तात्पर्यित रूप से की गयी लेकिन जैसा कि प्रत्यर्थी नगर निगम की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा दर्शित किया गया, वह अधूरी है क्योंकि यह 1935 के सर्वेक्षण नक्शे के साथ समरूपी निर्देश से विक्रय-विलेख में विनिर्दिष्ट मापों के अनुसार याची की भूमि के सीमांकन का उल्लेख नहीं करता है।

प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता एवं मध्यक्षेपी की ओर से विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि 1929 के एक सर्वेक्षण नक्शा में, एक सार्वजनिक नाला मौजूद होना प्रदर्शित किया गया, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वीकृत नहीं किया जा सकता है कि कोई ऐसा नाला 1935 के पश्चातवर्ती पुनरीक्षण सर्वेक्षण नक्शा में प्रदर्शित किया गया प्रतीत होता है। अन्यथा भी, **दुर्गा सिंह (ऊपर)** तथा **द्वारिका सोनार (ऊपर)** के पूर्वोल्लिखित दोनों मामले में निर्धारित निर्णायाधार के अनुसार, दो पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण नक्शे में से, पश्चातवर्ती सर्वेक्षण में तैयार किया गया नक्शा अभिभावी होगा।

13. नगर निगम की ओर से विद्वान अधिवक्ता का तर्क कि रिट याचिका एक सिविल न्यायालय को उसकी शिकायत को निर्दिष्ट करने के लिए याची को निर्देशित करने वाली पूर्वतर रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए पोषणीय नहीं है, को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वर्तमान मामले में उठाये गये प्रश्न का सम्बन्ध विधि की प्रक्रियाओं के अनुसार सर्वप्रथम स्वयं उनका समाधान किये बिना याची के विद्यमान भवन सन्निर्माणों को गिराने की उनकी इच्छा से प्रत्यर्थी नगर निगम द्वारा की गयी कार्यवाही से है कि याची ने किसी सार्वजनिक भूमि पर अतिक्रमण किया है। और अधिक, मात्र नगरपालिका सर्वेक्षण नक्शा के आधार पर माप करने के लिए नगर निगम के प्रत्यर्थी प्राधिकारियों का आग्रह जो 1929 के पुनरीक्षण सर्वेक्षणीय के आधार पर स्वीकार्यरूपेण तैयार किया गया था, को भी विवादित बना दिया गया है और उसको याची द्वारा चुनौती दी गयी है।

14. चूँकि इस रिट याचिका में इस न्यायालय के आदेश के अनुसरण में की गयी माप की नवीन रिपोर्ट सूचना की सम्पूर्ण विशिष्टियों पर विचार नहीं करती है, विशेष तौर पर पासवाली भूमियों के मुकाबले में, विनिर्दिष्ट माप द्वारा याची की भूमि के सीमांकन से सम्बन्धित सूचना पर, तो मेरी राय में, उन पास वाली भूमियों के मुकाबले में 1935 के पुनरीक्षण सर्वेक्षण के नक्शे के आधार पर उसके द्वारा पेश किये गये विक्रय विलेखों में यथाविनिर्दिष्ट याची की भूमि की नये सिरे से माप उपायुक्त के परामर्श से करना ही नगरपालिका प्राधिकारियों के लिए एकमात्र उचित होगा जो याची की भूमि के सीमांकित क्षेत्र से परे है। ऐसा मापन उपायुक्त द्वारा प्रतिनियुक्त सरकार के अधिकारी की उपस्थिति में तथा सुनवाई का पर्याप्त अवसर उन्हें प्राप्त करने के पश्चात् याची तथा सभी सम्बन्धित व्यक्तियों की उपस्थिति में सरकारी अमीन द्वारा किया जाना चाहिए और यदि ऐसे मापन पर और दस्तावेजों पर विचार करने पर यह पाया जाता है कि याची ने किसी सर्वजनिक भूमि पर अतिक्रमण करके कोई निर्माण किया है तो नगर निगम विधि की सम्यक् प्रक्रिया के माध्यम से ऐसे अतिक्रमण को हटवाने के लिए स्वच्छंद या स्वतंत्र होगा।

15. उक्त सम्प्रेक्षणों के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

प्रत्यर्थी-राज्य एवं नगर निगम के विद्वान अधिवक्ता को इस आदेश की एक प्रति दी जाय।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

सी॰ वी॰ फ्रांसिस

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 4057 वर्ष 2004. 22 मई, 2009 को विनिश्चित

सेवा विधि–स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति–स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने वाला आवेदन प्रभावी नहीं होगा जबतक कि इसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा लिखित में स्वीकार न किया जाए–योजना के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने वाले कर्मचारी के आग्रह को स्वीकारने या अस्वीकारने में सक्षम प्राधिकारी को पूर्ण विवेकाधिकार है। (पैरा 11 एवं 12)

निर्णयज विधि.–(2002)9 SCALE 519; (2004)1 SCALE 621—Relied on; (2006)6 SCC 704; (2000)7 SCC 390.—Not applicable.

अधिवक्तागण.–M/s Binod Poddar, A.R. Choudhary, Deepak Sinha, Vikas Pandey, Piyush Poddar, For the Petitioner; M/s Rajiv Ranjan, Y.N. Mishra, For the Respondents.

आदेश

वी॰ आर॰ एस॰ 98 के अधीन याची की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के संबंध में याची द्वारा दाखिल अभ्यावेदन का अन्य के साथ-साथ इसका निस्तारण करने का प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देश देने वाले दिनांक 23.4.1999 के आदेश, जो ओ॰ पी॰ संख्या 10649 वर्ष 1999-P में माननीय केरल उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया था, के अनुसरण में प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश संख्या SAIL-III 12(36)/98 बी॰ एस॰ एल॰ दिनांक 11.10.1999 को निरस्त करने के लिए एक यथोचित रिट या उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट के लिए वर्तमान रिट याचिका में प्रार्थना करता है। याची इस घोषणा के लिए भी प्रार्थना करता है कि वह अपने आवेदन की तिथि के प्रभाव से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के आधार पर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पाने पर और सभी पारिणामिक लाभों के साथ याची के आवेदन की तिथि के प्रभाव से याची अवमुक्त किए जाने का अधिकारी है।

2. तथ्य, संक्षेप में, निम्नांकित रूप से वर्णित है:–

वर्तमान मामले में यह प्रतीत होता है कि याची बी॰ एस॰ एल॰ में एक प्रबंधक के तौर पर कार्य कर रहा था और उसने सेवाओं में वर्ष 1973 में योगदान दिया था और तत्पश्चात् यह 20.2.1998 को सेल की एक ईकाई बन गया था। आदेश संख्या PER/RR/165 दिनांक 20.2.1998 के अनुसार एक वी॰ आर॰ एस॰ योजना लाई गई थी और याची के अनुसार उसने 7.4.1998 को आवेदन किया था। याची सुसंगत समय पर बोकारो इस्पात लिमिटेड में प्रबंधक, ईलेक्ट्रिकल डाटा प्रोसेसिंग के तौर पर कार्य कर रहा था। 6.4.98 को याची ने अपने नियंत्रक पदाधिकारी के समक्ष यात्रा भत्ता के लिए आवेदन किया जिसे इन्कार कर दिया गया था। कुछ नहीं सुनने पर उसने प्रबंध निदेशक, बोकारो इस्पात प्लान्ट के समक्ष एक अभ्यावेदन किया जो उक्त योजना के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति आवेदन को स्वीकृत करने के लिए सक्षम प्राधिकारी था और 30.4.98 से अवमुक्त किए जाने का भी आग्रह किया। याची ने अवकाश के लिए आवेदन किया और उसे 30.4.98 से 31.5.98 तक की उपार्जित अवकाश स्वीकृत किया गया था और इसी दौरान उसे संयुक्त राज्य अमेरिका से भी एक नौकरी का प्रस्ताव आया जिसमें उसे डॅयूटी के लिए रिपोर्ट करना आवश्यक था। याची ने 1.6.98 से 30.6.98 तक के लिए उपार्जित अवकाश हेतु पुन: आवेदन किया। 26.6.98 को याची ने 1.7.98 से उससे ड्यूटी में योगदान देने की मांग करने वाला एक पत्र प्राप्त किया और याची ने हाजिर होने के बजाय, फिर से 1.7.98 से 31.7.98 तक के उपार्जित अवकाश हेतु आवेदन किया। तथापि, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 3.8.98 के पत्र में उसे सूचित किया कि छुट्टी की अवधि विस्तार का उसका आवेदन स्वीकृत नहीं किया गया था और इस प्रकार वह किसी स्वीकृत छुट्टी के बिना ड्यूटी से अनुपस्थित था जिसके लिए ड्यूटी से अनधिकृत अनुपस्थिति हेतु अनुशासनिक कार्यवाही प्रारम्भ करना इप्सित किया गया था। प्रत्यर्थीगण ने 10 दिनों के भीतर उसे ड्यूटी पर रिपोर्ट करने को कहते हुए दिनांक 14.8.98 को एक पत्र भेजा जिसमें विफल होने पर अनुशासनिक कार्रवाई प्रारम्भ की जानी थी। प्रत्यर्थी संख्या 5 ने अन्तत: 21.10.98 को एक ज्ञापांक यह कहते हुए निर्गत किया कि ड्यूटी से अनधिकृत उपस्थिति के लिए अनुशासनिक जाँच कराना इप्सित किया जाना था। याची ने 2.11.98 को आरोपों पर अपना जवाब दिए जिसके उपरांत 15.4.98 के प्रभाव से उसके वी॰ आर॰ एस॰ आवेदन को स्वीकारने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 5 से आग्रह करते हुए 26.11.98 को एक अन्य अभ्यावेदन दाखिल किया।

3. 16.1.99 को उप-प्रमुख, कार्मिक प्रबंधक ने याची को सूचित किया कि 7.4.98 को जमा किया गया उसका वी॰ आर॰ एस॰ आवेदन अनुशंसा के लिए प्रत्यर्थी संख्या 5 को भेजा गया था परन्तु आग्रह पर विचार नहीं किया गया था और इसे मौखिक रूप से स्पष्टीकृत किया गया था। पत्र में यह विनिदिष्ट रूप से इंगित किया गया था कि वी॰ आर॰ एस॰ योजना की वैधता पहले ही समाप्त हो चुकी है और इस प्रकार यह उपधारणा कि योजना समाप्त होने के उपरांत भी यह लम्बित था, प्रत्यक्षत: त्रुटिपूर्ण थी। यह भी इंगित किया गया कि स्वीकृत छुट्टी 30.6.98 को समाप्त हो गई थी और याची 1.7.98 को ड्यूटी पर रिपोर्ट करने के लिए बाध्य था परन्तु उसने ड्यूटी पर रिपोर्ट नहीं किया और इसके बजाय अवकाश की अवधि विस्तार के लिए पुन: आवेदन किया जिसे मंजूर नहीं किया गया था। इस प्रकार याची अनधिकृत रूप से 1.7.98 से अनुपस्थित था और 3.8.98 और इसके वाद 14.8.98 को दो निबंधित पत्र ड्यूटी पर रिपोर्ट करने के लिए भेजे गए थे परन्तु याची बुरी तरह विफल रहा और ड्यूटी से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा और उपरोक्त पत्रों का जवाब तक नहीं दिया और इसी पृष्ठभूमि में बचाव का लिखित कथन मांगा गया था और प्राप्त होने पर, इसे असंतोषजनक पाया गया और तद्नुसार अनुशासनिक कार्यवाही प्रारम्भ की गयी थी।

4. याची ने बाध्य होकर केरल उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका ओ॰ पी॰ संख्या 10649 वर्ष 1999 P दाखिल किया और दिनांक 23 अप्रैल, 1999 के एक आदेश के माध्यम से रिट याचिका का निस्तारण किया गया प्रत्यर्थी को यह निदेश देते हुए कि वह अनुशासनिक कार्रवाई और वी॰ आर॰ एस॰ आवेदन के संबंध में लम्बित अभ्यावेदन का निस्तारण करे। केरल उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुपालन में सचिव, भारत सरकार, इस्पात एवं खान ने इसके दोनों पक्षों अर्थात् बोकारो

इस्पात लिमिटेड् और वर्तमान याची को पूर्ण अवसर प्रदान करने और प्रत्येक दस्तावेज, जो आक्षेपित आदेश में विनिर्दिष्ट किया गया है, पर विचार करने के उपरांत 11 अक्टूबर, 1999 को एक विस्तृत आख्यापक आदेश के माध्यम से अभ्यावेदन का निस्तारण किया और अन्तिम रूप से अवधारित किया कि 1998 की वी॰ आर॰ एस॰ योजना को स्वीकारना या अस्वीकारना प्रबंधन का विशेषाधिकार था और वी॰ आर॰ एस॰ के अधीन स्वीकारण को कोई भी एक अधिकार के तौर पर दावा नहीं कर सकता। इसमें यह भी अवधारित किया कि दिनांक 6.4.98 के पत्र के माध्यम से यह विनिर्दिष्ट रूप से अभिलिखित किया गया था कि वी॰ आर॰ एस॰ आवेदन के बदले में उसके यात्रा भत्ता आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया था और उसे इसकी जानकारी थी और तद्नुसार प्रबंधन के निर्णय को बरकरार रखा गया था।

5. याची ने केरल उच्च न्यायालय के समक्ष एक अन्य रिट याचिका, ओ॰ पी॰ संख्या 26659 वर्ष 1999 (डब्ल्यू) दिनांक 11.10.1999 के आदेश को चुनौती देते हुए दाखिल किया जिसपर एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया था और अन्ततः दिनांक 5.6.04 के अपनी आदेश के माध्यम से केरल उच्च न्यायालय ने मामले के गुणावगुणों में जाए बगैर याची द्वारा दाखिल रिट याचिका को खारिज कर दिया यह अवधारित करते हुए कि क्षेत्रीय अधिकारिता के आधार पर यह टिकने योग्य नहीं थी। इसी पृष्ठभूमि में वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दाखिल की गयी है।

6. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री बिनोद पोद्दार ने निवेदन किया है कि वी॰ आर॰ एस॰ आवेदन 6.4.98 को अस्वीकृत किया जाना ही प्रकटतः त्रुटिपूर्ण है क्योंकि याची ने 7.4.98 को वी॰ आर॰ एस॰ के लिए आवेदन किया था। याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा उठाया गया दुसरा तर्क यह है कि वी॰ आर॰ एस॰ की अस्वीकृति की कोई सूचना नहीं दी गई थी और यह तर्क कि इसे प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा मौखिक रूप से स्पष्ट किया गया भी असत्य था। उन्होंने सक्षमता को भी चुनौती दी है और कहा है कि याची E-4 श्रेणी में था और योजना के अनुसार उसके आवेदन पर विचार करने के लिए सक्षम प्राधिकारी प्रबंध निदेशक था। उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि प्रत्यर्थी की कार्रवाई भेदभावपूर्ण थी क्योंकि इसी प्रकार की परिस्थितियों में इसी विभाग के दो व्यक्तियों अर्थात्, श्री चक्रवर्ती एवं श्री एन॰ के॰ सिन्हा को वी॰ आर॰ एस॰ योजना प्रदान की गई थी और याची के मामले पर प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया था और इस प्रकार समूची कार्रवाही मनमाना एवं अवैधानिक थी। यह भी निवेदन किया गया है कि विभागीय कार्यवाही प्रकटतः अवैधानिक और मनमाना थी और दिमाग का बिल्कुल इस्तेमाल किए बगैर प्रारम्भ की गई थी और इस कारण अपास्त किए जाने की दायी था। अपने तर्क का समर्थन करने के लिए उन्होंने **(2006)6 एस॰ सी॰ सी॰ 704 एवं (2000)7 एस॰ सी॰ सी॰ 390** को निर्दिष्ट किया है और इसपर भरोसा किया है।

7. प्रत्यर्थीगण ने अपने उत्तर में निवेदन किया है कि कर्मचारी के वी॰ आर॰ एस॰ आवेदन को नियोक्ता द्वारा विभिन्न मापदंडों पर विचारित किया जाता है जैसे कि सुपुर्द किए गये कार्य का महत्व, एक कार्य की विशिष्ट प्रकृति को लेकर कर्मचारी के कार्य पर तैनाती की अत्यावश्यकता और ऐसा नहीं है कि इसे एक अधिकार के विषय के तौर पर स्वीकार किया जाना होता है। यह भी निवेदन किया गया है कि जबतक कि वी॰ आर॰ एस॰ योजना स्वीकृत और संप्रेषित नहीं की जाती है, यह कोई विधिक अधिकार प्रदान नहीं करती। उन्होंने वी॰ आर॰ एस॰ के खण्ड 11 को भी निर्दिष्ट किया है जो निम्नांकित रूप से पठित है।

> *''यह योजना किसी कर्मचारी को सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के उसके आग्रह को स्वीकार किए जाने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करती। सक्षम प्राधिकारी को किसी कर्मचारी से प्राप्त उसकी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आग्रह को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का पूर्ण विशेषाधिकार होगा।''*

8. यह भी निवेदन किया गया है कि याची ने वी॰ आर॰ एस॰ की किसी स्वीकृति के बिना एवं किसी संप्रेषण के बिना एकपक्षीय रूप से कल्पित एवं उपधारित किया और छुट्टी पर चला गया यह जानने के लिए प्रतीक्षा किए बगैर कि क्या वी॰ आर॰ एस॰ के लिए उसके आवेदन को स्वीकार किया गया है या नहीं और एक आकर्षक वैकल्पिक नौकरी में योगदान देने के लिए चला गया जो ड्यूटी से

अनधिकृत अनुपस्थिति के तुल्य है और इसी पृष्ठभूमि में याची के विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाही प्रारम्भ की गई थी। ड्यूटी पर योगदान देने के लिए बार-बार स्मरण-पत्र भेजे गए, जिसे याची ने स्वीकार किया है, और बार-बार समय दिया गया फिर भी उसने योगदान नहीं दिया।

9. मैंने प्रतिद्वंदी निवेदनों, अभिवाकों एवं विषय पर निर्णयज विधि पर विचार किया है। वर्तमान मामले में, इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन को स्वीकार नहीं किया गया था एवं न ही स्वीकृति का कोई संप्रेषण भेजा गया था। यह तथ्य स्वयं याची के आचरण से भी सिद्ध होता है जब उसने बार-बार अर्जित अवकाश और उसके बाद अवकाश के अवधि विस्तार के लिए आवेदन किया और, इस प्रकार, नियोक्ता एवं कर्मचारी के संबंध की समाप्ति नहीं हुई थी। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के खण्ड 11 के अनुसार भी केवल स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन करने से ऐसा कोई अधिकार नहीं मिल पाता कि सक्षम प्राधिकारी को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति को स्वीकार ही करना है बल्कि इस योजना ने स्पष्ट रूप से प्रावधान किया था कि सक्षम प्राधिकारी को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए किसी कर्मचारी के आवेदन को स्वीकारने या अस्वीकारने का पूर्ण विशेषाधिकार था। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन की तिथि से एक दिन पहले स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन की अस्वीकृति के बारे में दिया गया तर्क तथ्य का एक विवादित प्रश्न है। तथापि, याची दिनांक 6.4.1998 के पत्र का लेखक है जिसमें उसने अपने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन के बदले अपने नियंत्रक पदाधिकारी के समक्ष यात्रा भत्ता के लिए आवेदन किया था और प्रत्यर्थी प्राधिकार द्वारा यह विनिर्दिष्ट रूप से अभिलिखित और हस्ताक्षरित था कि यात्रा भत्ता के लिए उसके आवेदन को अस्वीकार किया जाता है।

10. जहाँ तक याची के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट और भरोसा किए गए **(2006)6 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 704** एवं **(2000)7 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 390** का सवाल है, यह स्पष्ट करना सुसंगत है कि प्रथम निर्णय में मुद्दा अनुमोदन और अनुमोदन की इस व्याख्या से संबंधित था कि इसे स्वीकृति या अनुमोदन के तौर पर बताया जा सकता है या नहीं। प्रश्नाधीन द्वितीय मुद्दा विधायी कार्य/शक्ति के प्रत्यायोजन और स्वीकृति के आदेश को संप्रेषित नहीं करने में गलत प्रक्रिया को अपनाने के संबंध में था और इस प्रकार यह वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता। दूसरे मामले में मुद्दा मुख्यत: विभागीय कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान इस्तेमाल करने की रीति और अभिकथित कदाचार के लिए कारण-पृच्छा से संबंधित था दूसरे मामले में स्वत: योजना ने ही कतिपय शक्तियाँ और विवेकाधिकार प्रदान की थी इस दायित्व के साथ की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के आवेदन को किस प्रकार स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाना था। उस मामले में प्रस्ताव प्रबंधन की ओर से था जिसे स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए उसमें के याची द्वारा स्वीकार कर लिया गया था और इस प्रकार यह वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक सदृश मामले पर विचार करते हुए **(2002)9 स्केल पृष्ठ 519 (बैंक ऑफ इण्डिया बनाम ओ॰ पी॰ स्वर्णकार)** के पैरा 50, 60, 65 एवं 66 पर निम्नांकित रूप से अवधारित किया:-

> *"50. बार में उठाए गए इस तर्क को स्वीकारना कठिन है कि नियोजन की संविदा भारतीय संविदा अधिनियम द्वारा शासित नहीं होगा। नियोजन की एक संविदा, संविदा की भी एक विषय-वस्तु है। जबतक कि एक संविधि या सांविधिक नियमों द्वारा संचालित न हो भारतीय संविदा अधिनियम के प्रावधान ही संविदा के निर्माण और इसके अवधारण पर भी लागू होगी। कतिपय न्याय संगत अपवादों के अध्यधीन एक बर्खास्त कर्मचारी की पुनर्बहाली के लिए एक निदेश के माध्यम से संविदा का विनिर्दिष्ट निष्पादन भी विधि में अनुमान्य है।*
>
> *60. स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने वाले कर्मचारीगण का आग्रह तब तक प्रभावी नहीं होना था जबतक कि इसे सक्षम प्राधिकार द्वारा लिखित में स्वीकार न कर*

लिया जाए। योजना के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने वाले कर्मचारी के आग्रह को स्वीकार करने या अस्वीकारने का पूर्ण विवेकाधिकार सक्षम प्राधिकार को था। उक्त योजना के प्रावधान पर विचार करने के लिए एक प्रक्रिया अधिकथित की गई है इस प्रभाव का कि एक कर्मचारी जो स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने का आशय रखता है, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने का प्रस्ताव चिन्हित विहित प्रपत्र में दो प्रतिलिपि में विधिवत् रूप से पूर्ण आवेदन प्रस्तुत करेगा और इस प्रकार प्राप्त किए गए आवेदन पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा पहले आओ पहले पाओ आधार पर विचार किया जाएगा इसलिए अधिकथित प्रक्रिया इंगित करती है कि कर्मचारी का आवेदन एक प्रस्ताव होगा जिसपर बैंक द्वारा इसके लिए अधिकथित प्रक्रिया के निबंधनों में विचार किया जा सकेगा। इसका कोई आश्वासन नहीं है कि ऐसी एक आवेदन को विचार किए वगैर स्वीकार कर लिया जाएगा।

65. एकबार यह अवधारित हो जाने पर कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 के प्रावधान प्रयोज्य होंगे, योजना की प्रकृति स्वीकार्यतः संविदात्मक होने से अधिनियम के प्रावधान लागू होंगे। योजना उपर नोटिस किए गए प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए मात्र विचार करने के एक आमंत्रण का गठन करेगी और एक प्रस्ताव का नहीं।

66. एक प्रस्ताव किया जाता है जब एक व्यक्ति एक अन्य के किसी कार्य को करने से अलग होने या करने की अपनी इच्छा को सामने रखता है ऐसी कार्य या इससे अलग रहने को लेकर अन्य की सहमति प्राप्त करने के दृष्टिगत रखते हुए [देखें धारा 2(a)] यहाँ पर बैंक ने योजना के कारण से या अन्यथा किसी कार्य को करने या अलग रहने की अपनी इच्छा अभिव्यक्त नहीं की है ऐसे कार्य को लेकर कर्मचारीगण की सहमति प्राप्त करने के दृष्टिगत रखते हुए। इसे दोबारा कहना पड़ेगा कि ऐसे आवेदन की स्वीकृति एवं खारिज करने में बैंक की शक्ति न केवल पूर्ण-रूप से विवेकाधीन है, बल्कि यह जैसा कि इसके उपर नोट किया गया है, योजना को संशोधित, विखंडित भी कर सकता है। इसलिए, योजना को एक प्रस्ताव नहीं कहा जा सकता जो कर्मचारी की स्वीकृति पर एक तय हुई संविदा में फलीभूत हो जाएगा।

12. (2004)1 स्केल पृष्ठ 621 (पंजाब नेशनल बैंक बनाम वीरेन्द्र कुमार गोयल) में यह दृष्टिकोण दुहराया गया था जिसमें यह विनिर्दिष्ट रूप से अवधारित किया गया था कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने वाले कर्मचारी का आग्रह प्रभावी नहीं होगा जबतक कि इसे सक्षम प्राधिकार द्वारा लिखित में स्वीकृत और संप्रेषित न किया जाए।

13. भारतीय संविदा अधिनियम की धाराएं 3 एवं 4 के अधीन एक प्रस्ताव को संप्रेषित करना होता है और संप्रेषण पूर्ण तब होता है जब इसकी जानकारी उस व्यक्ति को दी जाती है जिसे यह किया जाता है। इसी प्रकार, धारा 5 प्रावधान करती है कि स्वीकृति के पहले प्रस्ताव का प्रतिसंहरण किया जा सकता है और अधिनियम की धारा 7 प्रावधान करती है कि किसी प्रस्ताव को एक वचन में सम्परिवर्तित करने के लिए, इसकी स्वीकृति को अनिवार्यत: आत्यन्तिक होना होता है और प्रस्थापक को संप्रेषित करना होता है और इसके उपरांत ही यह प्रवर्तनीय और संविदा अधिनियम के अधीन बाध्यकारी बनता है।

14. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, किसी प्रोद्भूत या निहित विधिक अधिकार की अनुपस्थिति में और इस तथ्य की दृष्टि में कि न तो प्रस्ताव स्वीकार किया गया था और न ही इसे संप्रेषित किया गया था, याची की यह उद्घोषणा हेतु प्रार्थना विधि की दृष्टि में प्रकटत: पोषणीय नहीं है कि याची स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के आधार पर उस तिथि से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पाने का अधिकारी है जिस तिथि को उसने आवेदन किया था।

15. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करने के उपरांत, यह रिट याचिका किसी गुणागुण से रहित होने के कारण तद्नुसार खारिज की जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

श्रीमती ऐलिस पूर्ती

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

अवमान केस (C) सं॰ 16 वर्ष 2008. 25 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 215—अवमान–न्यायालय के निर्देश पर 12% ब्याज एवं लागत के साथ याची को उसके सेवानिवृत्ति बकायों का भुगतान किया गया था–तीन महीनों के भीतर पदाधिकारी के वेतन से लागत एवं ब्याज की राशि वसूलने या वसूलने की एक कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए नया निर्देश दिया गया। (पैरा 5)

अधिवक्तागण.–Mr. M.M. Pan, For the Petitioner; S. Srivastava, For the Opp. Parties.

आदेश

दिनांक 9.8.2006 के आदेश को निर्दिष्ट किया जा सकता है, जो निम्नांकित रूप से पठित है:–

''दिनांक 28.7.2006 के आदेश को निर्दिष्ट किया जा सकता है, जो निम्नांकित रूप में पठित है:–

''यह उन उदाहरणों में से एक है जो दर्शाएगा कि अधिकारीगण किस प्रकार इस न्यायालय के आदेश का अनुपालन नहीं करने का हठ करते हैं।

याची 60 वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के उपरांत 31.12.91 को सेवानिवृत्त हुआ। जब उसे उसके सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान नहीं किया गया, तो उसने रिट याचिका अर्थात् सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 2162/99R दाखिल करके इस न्यायालय का आश्रय किया। दो महीनों के भीतर अवकाश भुनाई (leave encashment) समेत बकायों का भुगतान करने का प्रत्यर्थीगण को एक निर्देश के साथ रिट याचिका का निस्तारण किया गया जिसमें विफल होने पर राशि पर 12% ब्याज लगना था। जब निर्देश एवं आदेश का अनुपालन नहीं किया गया तो याची ने वर्तमान अवमान वाद दाखिल किया। 10.4.2003 को इस न्यायालय ने प्रत्यर्थीगण को तीन सप्ताह के भीतर भुगतान निर्गत करने का निर्देश दिया क्योंकि आदेश अन्तिमता प्राप्त कर चुका था। प्रत्यर्थीगण ने सिविल पुनर्विलोकन संख्या 81 वर्ष 2002 दाखिल किया जिसे इस न्यायालय द्वारा पारित एक युक्तिसंगत आदेश द्वारा 19.3.2004 को खारिज कर दिया गया। तब याची ने एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 295/2004 दाखिल किया इसे भी इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा खारिज कर दिया गया। फिर प्रत्यर्थीगण ने एक अन्य अपील एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 490 वर्ष 2004 दाखिल किया और इसे भी इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा खारिज कर दिया गया। इस तथ्य के बावजूद, आज तक याची के बकायों का भुगतान नहीं किया गया है, जो अब 74-75 वर्ष की एक वृद्ध महिला हो चुकी है।

पूर्वोक्त परिस्थितियों में, इस मामले को 9 अगस्त, 2006 को सामने रखा जाय। उस दिन, जिला शिक्षा अधीक्षक याची को देय सभी बकायों के संबंध में 12% ब्याज के साथ एक चेक समेत उपस्थित होगा। याची को भुगतान की जाने वाली लागत के रूप में वह 25,000/- रुपए का भी एक चेक लाएगा। अगर, इस आदेश का अनुपालन नहीं किया जाता है तो जिला शिक्षा अधीक्षक उस दिन परिणाम भुगतने के लिए तैयार होकर आएगा।

इस आदेश की एक प्रति स्थायी अधिवक्ता को सौंपी जाए।

जिला शिक्षा अधीक्षक, राँची द्वारा एक कारण–पृच्छा दाखिल की गई है, अन्य के साथ–साथ यह कहते हुए कि अभिसाक्षी ने निदेशक, प्राथमिक शिक्षा, झारखण्ड,

राँची को धन आबंटन के लिए कहा था और स्वीकृति के उपरांत निम्नांकित राशि भुगतान किए जाने के लिए तैयार है:-

(i) कालबद्ध प्रोन्नति का अन्तर	*33,860/- रुपए*
(ii) 1.1.1991 से 31.12.1992 का वेतन	*55,933/- रुपए*
(iii) अवकाश भुनाई (leave encashment)	*9,613/- रुपए*
(iv) ब्याज की राशि @ 12%	*16,350/- रुपए*
(v) मुकदमा व्यय की राशि	*25,000/- रुपए*
कुल :□2,93,956/- रुपए	

यह भी कहा गया है कि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका भी लंबित है। जिला शिक्षा अधीक्षक पूर्वोक्त राशि का चेक लेकर आए हैं। चेक को याची के हवाले कर दिया जाए, जो न्यायालय में उपस्थित है इस विनिर्दिष्ट निर्देश के साथ की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति याचिका अनुज्ञात किए जाने की स्थिति में, समुची राशि को याची द्वारा विभाग को लौटाना होगा। यह भी आदेश किया जाता है कि अगर पूर्वोक्त एस० एल० पी० खारिज कर दी जाती है तो व्यय एवं ब्याज की राशि, जिसका याची को भुगतान किया गया है, की वसूली जिला शिक्षा अधीक्षक, राँची के वेतन से की जाएगी, जिनकी लापरवाही से याची को राशि का भुगतान नहीं किया जा सका।

इस निर्देश के साथ यह कार्यवाही हटाई जाती है। पदाधिकारी को उपस्थिति में छूट दी जाती है।

2. यहाँ पर उल्लिखित करना समीचीन है कि पूर्व के मुख्य रिट याचिका में पारित आदेश के विरूद्ध प्रत्यर्थीगण द्वारा एक एस० एल० पी० दाखिल किया गया था जो 30.10.2006 को खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 28.7.2006 के पूर्वोक्त आदेश के विरूद्ध दोबारा एस० एल० पी० दाखिल किया और यह भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया।

3. अब जिला शिक्षा अधीक्षक, राँची द्वारा कारण-पृच्छा दाखिल किया गया है अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए कि पेंशन एवं उपदान के पुनरीक्षण के लिए आवश्यक कागजात महालेखाकार, झारखण्ड, राँची को भेज दिए गए हैं। महालेखाकार द्वारा दाखिल कारण-पृच्छा में यह कहा गया है कि पेंशन को पुनरीक्षित कर दिया गया है।

4. इसमें ऊपर उजागर किए गए तथ्य दर्शाएँगे कि पेंशन लाभों के भुगतान के मामले में एक महिला शिक्षिका, जो 1991 में सेवानिवृत्त हुई, को प्रत्यर्थीगण के पदाधिकारियों द्वारा किस प्रकार परेशान किया गया। 15 वर्षों से अधिक समय बाद ही ब्याज और 25,000/- रुपए के व्यय के साथ सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान किया गया है। इसी कारण से दिनांक 9.8.2006 के आदेश में यह सम्परीक्षित किया गया था कि एस० एल० पी० के खारिज किए जाने की स्थिति में व्यय एवं ब्याज की राशि की वसूली जिला शिक्षा अधीक्षक, राँची के वेतन से की जाएगी।

5. जिला शिक्षा अधीक्षक, राँची के वेतन से व्यय एवं ब्याज की वसूली के लिए उठाए गए कदम को लेकर सचिव, मानव संसाधन विकास विभाग, झारखण्ड, राँची द्वारा कोई शपथ-पत्र दाखिल नहीं किया गया है। एक बार फिर यह न्यायालय सचिव, मानव संसाधन विकास विभाग, झारखण्ड, राँची को पदाधिकारी के वेतन से या एक वसूली की कार्यवाही प्रारम्भ करके व्यय एवं ब्याज की राशि वसूलने का निर्देश देता है। आज से तीन महीनों के भीतर इस निर्देश का अनिवार्यत: अनुपालन किया जाय और इस न्यायालय द्वारा परिशीलन के लिए इस न्यायालय के महा-रजिस्ट्रार को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी।

6. पूर्वोक्त निर्देशों एवं सम्परीक्षणों के साथ यह अवमान आवेदन निस्तारित किया जाता है।

7. इस आदेश की एक प्रति राज्य के अधिवक्ता को सौंपी जाय।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

मो॰ सुहैल खान

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 266 वर्ष 2008. 1 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–नियुक्ति–कॉन्स्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए याची की शैक्षणिक अर्हता पर विचार किए बगैर नियुक्ति से वंचित किया जाना–12 सप्ताह के भीतर याची की शैक्षणिक अर्हता पर विचार करने का निर्देश प्रत्यर्थी को दिया गया क्योंकि वह योजना के अनुसार 17 अंकों का अधिकारी था। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.–Dr. S.N. Pathak, For the Petitioner; J.C to A.G., For the State.

आदेश

वर्तमान याचिका मुख्यत: इन कारणों से दाखिल की गई है कि यद्यपि याची पूर्ण रूप से अर्हता प्राप्त है और यद्यपि उसने सभी परीक्षाओं को उत्तीर्ण किया है, जिन्हें पुलिस कान्स्टेबुल के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए उत्तीर्ण करना आवश्यक था, परन्तु उसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने और अर्हता के आधार पर उपयुक्त अंक नहीं दिए गए हैं, विशेषकर कला संकाय में उसके द्वारा इण्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि प्रारम्भ में यह आवश्यक सूचना दे दी गई थी कि उसने पहले ही वर्ष 1997 में इण्टरमीडिएट कला परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका है और जैसा कि याची द्वारा दाखिल संपूरक शपथपत्र में कहा गया है, उसने लिखित परीक्षा के समय आरक्षी उप-महानिरीक्षक को आवश्यक प्रमाण-पत्र भी सुपुर्द कर दिया था और इसलिए, अगर उसके आई॰ ए॰ के प्रमाण-पत्र पर उपयुक्त रूप से विचार किया गया होता तो उसने 17 अंक प्राप्त किया होता, जो प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र के अनुच्छेद 13 के अनुसार चयन के लिए पर्याप्त था और इसलिए, याची को पुलिस कांस्टेबुल के पद के लिए चयनित उम्मीदवार के तौर पर घोषित किया जाना चाहिए था और पुलिस कान्स्टेबुल के पद पर याची को नियुक्ति देने के लिए शीघ्रताशीघ्र आवश्यक औपचारिकता को पूरी कर लेनी चाहिए थी।

3. मैंने प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थिति होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है, जिन्होंने निवेदन किया है कि याची को अंक देने में प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई त्रुटि कारित नहीं की गई है। जैसा कि प्रति-शपथपत्र में कहा गया है, याची ने अपने प्रदर्शन और शैक्षणिक अर्हता के आधार पर 16 अंक प्राप्त किया है और, इसलिए, उसे चयनित नहीं किया गया है। अगर उसने 16 अंक की बजाय 17 अंक प्राप्त किया होता तो वह पुलिस कान्स्टेबुल के पद पर चयनित कर लिया गया होता, और, इसलिए, यह याचिका खारिज किए जाने के योग्य है।

4. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनकर और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों का अवलोकन करके यह प्रतीत होता है कि:–

(i) प्रत्यर्थीगण द्वारा दिए गए सामान्य विज्ञापन के अनुसरण में वर्तमान याची ने पुलिस कान्स्टेबुल के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया था;

(ii) वह प्रत्यर्थीगण द्वारा संचालित विभिन्न परीक्षाओं में भी सम्मिलित हुआ है और इन परीक्षाओं में उसे सफल घोषित किया गया है;

(iii) अंकों के आबंटन को देखते हुए कि कुछ अंक शैक्षणिक अर्हता के लिए आबंटित किए गए हैं, याची ने अपने आवेदन में उल्लेख किया है कि वह कला संकाय में इण्टरमीडिएट की परीक्षा में सम्मिलित हुआ है और उसने उक्त परीक्षा उत्तीर्ण भी की है;

(iv) जैसा कि 27 मार्च, 2009 को याची द्वारा दाखिल संपूरक शपथपत्र में कहा गया है, लिखित परीक्षा के समय आई० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने का आवश्यक प्रमाण-पत्र भी आरक्षी उप-महानिरीक्षक को सुपुर्द कर दिया गया था;

(v) प्रति-शपथपत्र से यह प्रतीत होता है कि याची को कुल 16 अंक दिए गए थे और, इसलिए, वह चयनित नहीं किया गया था;

(vi) प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रति-शपथपत्र का अवलोकन करने पर यह प्रतीत होता है कि अगर याची ने 17 अंक प्राप्त किए होते तो वह चयन सूची में होता;

(vii) मामले के तथ्यों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण ने इस तथ्य का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया है कि याची पहले ही वर्ष 1997 में इण्टरमीडिएट की कला संकाय की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था। इस तथ्य को आवेदन में उल्लिखित किया गया था और याची द्वारा दाखिल संपूरक शपथपत्र के अनुसार आरक्षी उप-महानिरीक्षक के समक्ष आवश्यक प्रमाण-पत्र को प्रस्तुत भी किया गया था;

(viii) अगर प्रत्यर्थीगण द्वारा इस तथ्य का उचित रूप से मूल्यांकन किया गया होता तो याची ने 16 अंक की जगह 17 अंक प्राप्त किया होता और प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 13 के अनुसार वह चयन सूची में होता।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि नियुक्ति के समय इसी प्रकार की स्थिति वाले व्यक्तियों को शैक्षणिक अर्हता के सत्यापन के लिए बुलाया भी गया था। अगर शैक्षणिक अर्हता के संबंध में दस्तावेजों के सत्यापन पर प्रत्यर्थीगण द्वारा ध्यान रखा गया होता तो याची चयन सूची में होता।

6. पूर्वोक्त तथ्यों एवं कारणों को एक संचयी प्रभाव के तौर पर और विशेषकर इस तथ्य को देखते हुए कि याची पहले ही वर्ष 1997 में कला संकाय से इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था और इस तथ्य के देखते हुए भी उसके आवेदन प्रपत्र में शैक्षणिक अर्हता का संदर्भ था और तथ्य को भी देखते हुए कि लिखित परीक्षा के समय याची द्वारा आरक्षी उप-महानिरीक्षक के समक्ष आवश्यक दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे, प्रत्यर्थीगण द्वारा अंक प्रदान करने की संबंधी योजना के अनुसार वह 17 अंको का अधिकारी है और इसलिए, मैं एतद् द्वारा सम्बद्ध प्रत्यर्थीगण का निर्देश देता हूँ कि वे पूर्वोक्त पहलु और इस न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णयों पर विचार करें और उक्त पद पर वर्तमान याची की नियुक्ति के लिए आवश्यक आदेश पारित करें, अगर वह अन्यथा निरर्हित नहीं पाया जाता है और यह इतनी शीघ्रता से हो कि यह प्रक्रिया इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तिथि से 12 सप्ताह की एक अवधि के भीतर पूरी कर ली जाए।

7. यह रिट याचिका, तद्नुसार, अनुज्ञात की जाती है और निस्तारित की जाती है।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

राम चन्द्र राम

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 3462 वर्ष 2000(R). 19 मई, 2009 को विनिश्चित।

बिहार पेंशन नियमावली, 1950—नियम 43(b)—वसूली–प्रोन्नति प्रदान की गई परन्तु बाद में यह आदेश किया गया कि इसे कल्पित प्रोन्नति माना जाय–प्रोन्नत पद पर वेतन के भुगतान को भूतलक्षी प्रभाव से वसूला गया–अभिनिर्धारित, वसूली का आदेश दण्डात्मक है और सिविल परिणामों को अंतर्ग्रस्त करता हैं जिसे नियम 43(b) के अधीन एक कार्यवाही को प्रारम्भ किए बगैर और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन किए बगैर नहीं किया जा सकता। (पैरा 6 से 8)

निर्णयज विधि.–2007(4) JLJR 459—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s M.M. Pal, Leena Mukherjee, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar Mahta, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका निम्नांकित अनुतोषों के लिए दाखिल की गई है:–

(A) प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा निर्गत दिनांक 9 अगस्त, 2000 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन उप–आयुक्त, गिरिडीह को 1.1.96 के प्रभाव से 5,500-9,000/- के वेतनमान में याची के वेतनमान को पुनर्निधारित करने का निर्देश दिया गया था ताकि वे अतिरेक राशि की वसूली में सक्षम हो सके यह अवधारित करने के उपरांत कि याची को गलत तरीके से 6,500–10,500/- रुपए के वेतनमान का भुगतान किया गया है।

(B) दिनांक 13 फरवरी, 1999 के वित्त विभाग की अधिसूचना के आधार पर प्रत्यर्थीगण को दिनांक 9 अगस्त, 2000 के आदेश को प्रभावी न बनाने और 8,000-13,500/- के वेतनमान में उसके वेतन को पुनःनिर्धारित करने और उसपर सभी पारिणामिक लाभों को प्रदान करने का निर्देश दिया जाए।

(C) प्रत्यर्थीगण के सुपर चयनित श्रेणी का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए जिसे दिनांक 18 अगस्त, 1994 के कार्यालय आदेश के बावजूद, 1994 से रोक रखा गया है।

(D) 1.1.96 के प्रभाव से उसके वेतन, को 8,000–13,500/- रुपए के वेतनमान में पुनःनिर्धारण करने के उपरांत प्रत्यर्थीगण को उसकी पेंशन नियत करने और बिना किसी अतिरिक्त विलम्ब के सभी बकायों का भुगतान करने का निदेश दिया जाए।

(E) प्रत्यर्थीगण को वैकल्पिक रूप से अतिरेक भुगतान को अभिकथित करते हुए किसी राशि की कटौती न करने का निर्देश दिया जाए और एक युक्तिसंगत अवधि के भीतर उसके सभी बकायों का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए।

2. संक्षेप में, तथ्य निम्नांकित रूप से वर्णित है:–

याची को प्रारम्भ में खाद्य एवं नागरिक आपूर्त्ति विभाग, बिहार, पटना के अधीन एक आपूर्त्ति पदाधिकारी के तौर पर 1 मार्च, 1966 को नियुक्त किया गया था और समय-समय पर प्रोन्नत किया गया था। दिनांक 30.4.76 के आदेश के माध्यम से याची को सहायक विपणन पदाधिकारी के पद पर प्रोन्नत किया गया था और दिनांक 6 अगस्त, 1983 के आदेश के माध्यम से उसे विपणन पदाधिकारी के पद

पर प्रोन्नत किया गया था। जब याची विपणन पदाधिकारी के तौर पर पदस्थापित था तो पांचवें वेतन आयोग की अनुशंसा के अनुसार उसके वेतनमान को वित्त अधिसूचना दिनांक 23.10.90 के माध्यम से 1.1.1986 के प्रभाव से 2,000-3,800/- रुपए के वेतनमान में पुनरीक्षित किया गया था और इसकी सूचना जिला लेखा पदाधिकारी के द्वारा दिनांक 11.12.1990 को अपने पत्र के माध्यम से दे दी गई थी। यह कि एक अन्य कार्यालय आदेश दिनांक 16.12.85 द्वारा याची को 2,400-4,150/- रुपए के वेतनमान में 1.4.81 के प्रभाव से वरीय चयनित श्रेणी दी गई थी और दिनांक 18 अगस्त, 1994 के कार्यालय आदेश द्वारा उसे लोहरदग्गा में सहायक आपूर्त्ति पदाधिकारी के तौर पर पदस्थापित किया गया था। याची को पाँच अन्य के साथ रिक्त स्वीकृत पदों के विरूद्ध दिनांक 17.12.1996 के एक कार्यालय आदेश द्वारा स्थानांतरित और जिला आपूर्त्ति पदाधिकारी के पद पर पदस्थापित किया गया था और वह सेवानिवृत्ति की तिथि यानि 31.1.2000 तक इसपर बना रहा था और उसने 6,500-10,500/- रूपये के वेतनमान में गिरिडीह में जिला आपूर्त्ति पदाधिकारी के तौर पर कार्य किया था। सेवानिवृत्ति के उपरांत 6,500-10,500/- रूपये के वेतनमान में सभी लाभों का परिकलन करने के बाद उसके अनुज्ञेय बकायों का भुगतान किया गया था वित्त विभाग के दिनांक 13 फरवरी, 1999 की अधिसूचना द्वारा यथा संशोधित पुनरीक्षित वेतनमान अर्थात् 8,000-13,500/- के वेतनमान में नहीं। व्यथित होकर याची ने पुनरीक्षित वेतनमान के अनुसार लाभ को प्रदान करने के लिए अभ्यावेदन के माध्यम से सम्बद्ध प्राधिकारीगण के समक्ष कई बार आवेदन किया परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। उसके अभ्यावेदन के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् उप-आयुक्त, गिरिडीह द्वारा दिनांक 9.8.2000 को एक पत्र निर्गत किया गया जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन यह सूचित किया गया कि जिला आपूर्त्ति पदाधिकारी के तौर पर 1.1.96 के प्रभाव से याची का वेतनमान 6,500-10,500/- रू॰ के तौर पर उल्लिखित है जबकि याची की प्रोन्नति उस वेतनमान में नहीं की गई थी और वह मूलतः विपणन पदाधिकारी के पद के वेतनमान में था और तद्नुसार 1.1.96 के प्रभाव से उसके वेतन को 5,500-9,000/- रू॰ के वेतनमान में नियत किया जाना था और अतिरेक राशि के वसूलने और पेंशन दस्तावेज को तद्नुसार निर्धारित और सही करने को कहा गया जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती देना इप्सित किया गया है।

3. वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याची ने एक संशोधन याचिका (अन्तर्वर्ती आवेदन संख्या 2804 वर्ष 2007) दाखिल किया जिसके द्वारा उसने एक निर्देश इप्सित किया है जो मौद्रिक लाभ के साथ 1.1.96 के भूतलक्षी प्रभाव के साथ दिनांक 22.6.2007 के प्रोन्नति आदेश को उपान्तरित करने और साथ-साथ 1.1.96 के प्रभाव से 8,000-13,500 रू॰ के पुनरीक्षित वेतनमान के आधार पर उसके पेंशन लाभ को पुनर्निर्धारित करने के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश करे। यह भी इंगित किया गया था कि सरकार के उप-सचिव द्वारा 22 जून, 2007 को एक अधिसूचना निर्गत की गई थी, जिसके द्वारा, याची समेत 15 व्यक्तियों को 1 जनवरी, 1996 के प्रभाव से 6,500-10,500/- रू॰ के वेतनमान में जिला आपूर्त्ति पदाधिकारी के पद पर प्रोन्नत किया गया था।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि पेंशन से की गई वसूली अवैधानिक थी और बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43 (b) के प्रावधानों के विरूद्ध थी और **लक्ष्मण प्रसाद गुप्ता बनाम झारखण्ड राज्य** 2007(4) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 459 के मामले में प्रकाशित इस माननीय न्यायालय की पूर्ण-पीठ के निर्णय का भी उल्लंघनकारी थी। मामले का दूसरा पहलु यह है कि 6,500-10,500/- रू॰ के वेतनमान में वेतन एकबार निर्धारित हो जाने के उपरांत 1 जनवरी, 1996 के प्रभाव से सभी लाभों के साथ पेंशन को तद्नुसार निर्धारित करना चाहिए और 1997 के प्रभाव से नहीं क्योंकि 2007 की प्रोन्नति आदेश स्वयं ही 1 जनवरी, 1996 के प्रभाव को प्रकट करता है।

5. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि एक सुविचारित आदेश द्वारा प्रत्यर्थीगण ने उस सीमा तक याची की प्रार्थना अस्वीकृत कर दी है क्योंकि 2007 का प्रोन्नति आदेश कल्पित प्रकृति का था और याची को 5,500-9,000/- रू॰ के वेतनमान जो विपणन पदाधिकारी का संशोधित वेतनमान था, के बजाय त्रुटिपूर्ण रूप से 6,500-10,500/- रू॰ का

वेतनमान अनुज्ञात किया गया था। यह भी निवेदन किया गया है कि याची के वेतनमान के नियतीकरण, जिस वेतनमान का याची अधिकारी था, के उपरांत अतिरेक राशि अगर याची द्वारा आहरित की गई हो, की वसूली के लिए किसी कारण–पृच्छा नोटिस की आवश्यकता नहीं थी।

6. मैंने अभिवाकों एवं प्रतिद्वंदी निवेदनों पर विचार किया है। वसूली के आदेश की प्रकृति दण्डात्मक है और सिविल परिणामों को अंतर्ग्रस्त करता है और, इस प्रकार, नैसर्गिक न्याय के आधारभूत सिद्धांत का अनिवार्यत: अनुपालन किया जाना है और इसकी अनुपस्थिति में यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकर्त्ता है। यह भी इंगित करना सुसंगत है कि बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43 (b) के अधीन एक सांविधिक वर्जन भी है, जिसपर इस माननीय न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा विचार किया गया है। वर्तमान मामले में न तो सरकार और न ही सक्षम प्राधिकारी ने नियम 43(b) के अधीन किसी कार्यवाही को प्रारम्भ किया है और न ही वसूली के लिए सेवा अवधि के दौरान कोई कार्यवाही प्रारम्भ की गई थी। नियम 43(b) के अधीन परिसीमा की विहित अवधि व्यतीत हो जाने पर कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की जा सकती।

7. चाहे जो भी स्थिति हो, तथ्य यह रह जाता है कि याची ने 17.12.1996 के प्रभाव से जिला आपूर्त्ति पदाधिकारी, गिरिडीह के पद पर कार्य किया परन्तु प्रत्यर्थी की गलतियों के कारण प्रोन्नति का आदेश निर्गत नहीं किया गया था। तथापि, कल्पित रूप से 1.1.96 के प्रभाव से दिनांक 22.6.2007 के प्रोन्नति आदेश द्वारा इसे सही कर लिया गया था। इस प्रकार, प्रत्यर्थी अपने ही व्यतिक्रम का लाभ नहीं उठा सकते और सेवानिवृत्ति के उपरांत वसूली का आदेश नहीं कर सकते। याची को 14 अन्यों के साथ–साथ 1 जनवरी, 1996 के प्रभाव से अन्तत: कल्पित रूप से प्रोन्नति की गई थी और इस प्रकार प्रत्यर्थीगण 1.1.96 के प्रभाव से प्रोन्नति के लाभ को रोक नहीं सकते विशेषकर तब जब अन्य लोगों को 1 जनवरी, 1996 के प्रभाव से ही उक्त लाभ प्रदान किया गया है।

8. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा निर्गत दिनांक 9 अगस्त, 2000 का वसूली आदेश एतद् द्वारा निरस्त किया जाता है एवं 6,500-10,500/- रू॰ के वेतनमान से आहरित अन्तिम वेतन के अनुसार पेंशन को तद्नुसार निर्धारित किया जाए, जैसा कि स्वयं प्राधिकारियों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था। अगर कोई वसूली की गई है तो इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर इसको लौटा दिया जाएगा।

9. तद्नुसार इसमें ऊपर इंगित सीमा तक इस रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्तिगण

अर्चना कुमारी

बनाम

रजनीश कुमार

एफ॰ ए॰ सं॰ 201 वर्ष 2008. 24 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955—धारा 13—तलाक की डिक्री–अधिनियम की धारा 13 का अधिदेश को अनुपालन किए बगैर लोक अदालत द्वारा डिक्री पारित की गई–लोक अदालत द्वारा पारित तलाक का आदेश अपास्त–तथापि, परिवार न्यायालय द्वारा वाद के निस्तारण तक पति को 4000/- रुपए प्रति महीने भुगतान पत्नी को करने का निदेश दिया गया।

(पैरा 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–M/s Ritu Kumar, Ravi Kumar Singh, For the Appellant; Mr. Arun Kumar, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. मामले की सुनवाई 18.3.2009 को की गई थी और निम्नांकित आदेश पारित किया गया था:–

4.3.2009 को हमने विस्तार से मामले की सुनवाई की और हमने पक्षों को अपना दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ करना कठिन पाया। पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने भी ऐसा ही दृष्टिकोण प्रकट किया। तथापि बहस के अनुक्रम में, प्रत्यर्थी–पति के लिए उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश तिवारी द्वारा इसपर सहमति दी गई कि प्रत्यर्थी 1,50,000/- रुपए की एक राशि का भुगतान करेगा और उन सभी सामानों को लौटा देगा जो उसे विवाह के समय दिए गए थे। आज प्रत्यर्थी–पति और उसके पिता, जो न्यायालय में उपस्थित थे, ने अपने अधिवक्ता को बदल दिया और श्री मुख्तार खाँ को अधिवक्ता बनाया, श्री मुख्तार खान ने तर्क रखा कि प्रत्यर्थी अन्तिम तिथि को किए गए वायदो को पूरा करने की स्थिति में नहीं है।

आज अपीलार्थी द्वारा संपूरक शपथपत्र दाखिल किया गया है, अन्य के साथ–साथ यह कहते हुए कि विवाह के समय प्रत्यर्थी को निम्नांकित सामान दिए गए थे:–

(i) 1,51,000/- रुपए (एक लाख इक्यावन हजार रुपए) नकद के तौर पर;

(ii) 55,000/- रुपए (पचपन हजार रुपए) का तीन ग्राम सोना;

(iii) 40,300/- रुपए (चालीस हजार तीन सौ रुपए) की एक हीरो होण्डा मोटरसाईकिल;

(iv) पीतल का बर्तन का एक सेट जिसमें डोंगा, जार, कड़ाही, करछुल, छोलनी, हुण्डी एवं मसाला का बॉक्स सम्मिलित हो जो 6,000/- रुपए (छः हजार रुपए) के थे;

(v) 2,300/- रुपए (दो हजार तीन सौ रुपए) के मूल्य का स्टील के बर्तनों का एक सेट जिनमें ड्रम इत्यादि सम्मिलित था;

(vi) 1,500/- रुपए (एक हजार पाँच सौ रुपए) का स्टील के बर्तनों का एक पूरा सेट जिनमें प्लेट, लोटा, कटोरा, कलश एवं अन्य सामान सम्मिलित है;

(vii) 1,800/- रुपए (एक हजार आठ सौ रुपए) की एक मिक्सर मशीन;

(viii) 3,600/- रुपए (तीन हजार छह सौ रुपए) की एक स्टील की अलमारी;

(ix) डबल बेड, तोषक, बेड–शीट एवं रजाई 15,000/- रुपए (पन्द्रह हजार रुपए के);

(x) बारात के खर्चों का 30,000/- रुपए (तीस हजार रुपए)

(xi) धर्मशाला के किराए का 9,800/- रुपए (नौ हजार आठ सौ रुपए);

(xii) बैंड के खर्चे का 5,000/- रुपए (पाँच हजार रुपए);

(xiii) लाइट के खर्चे का 3,000/- (तीन हजार रुपए);

(xiv) शर्ट, पैण्ट एवं सूट का 7,000/- (सात हजार रुपए);

(xv) साड़ी के 7,000/- रुपए (सात हजार रुपए);

(xvi) 25 बराती के शर्ट पैन्ट का 10,000/- रुपए (दस हजार रुपए);

हम प्रत्यर्थी को एक और मौका देते हैं ताकि सत्य उसे और उसके पिता को समझ आए और वे विवाद को सदा के लिए समाधान कर सके।

इस मामले को 27 मार्च, 2009 को रखा।''

3. प्रारम्भ से ही, हम यह अवश्य स्पष्ट करेंगे कि द्वितीय पैरा की द्वितीय समान् में टंकन अर्थात् 55,000/- रू॰ की त्रुटि है, यह प्रतीत होता है कि 5,000/- रुपए की जगह इसे गलती से 55,000/- रुपए टंकित कर दिया गया था।

4. तथापि, प्रत्यर्थी जो अपने पिता के साथ उपस्थित हुआ है, पूर्वोक्त सामान एवं/या उक्त सामानों के मूल्य को वापस करने के लिए तैयार नहीं है, अत: गुणावगुणों पर अपील का निस्तारण करने के अतिरिक्त हमारे पास कोई विकल्प नहीं है।

5. प्रथम दृष्टया, आक्षेपित आदेश एवं तलाक की डिक्री विधि में त्रुटिपूर्ण है। तलाक की याचिका 1.5.2008 को दाखिल की गई थी जब अपीलार्थी-पत्नी एक ही घर में प्रत्यर्थी-पति के साथ रह रही थी। सम्मनों के निर्गत होने से पूर्व, अपीलार्थी को पति/प्रत्यर्थी द्वारा वाद में उपस्थित कराया गया था। मामले को अन्नत: लोक अदालत को वापस कर दिया गया था। 30.8.2008 को पारस्परिक तलाक के लिए लोक अदालत के समक्ष एक याचिका दाखिल की गई थी। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के प्रावधान का अनुपालन करने से पहले ही लोक अदालत ने तलाक की डिक्री पारित कर दी।

6. अत: हमारे सुविचारित मत में, लोक अदालत द्वारा पारित तलाक का आक्षेपित आदेश और अधीनस्थ न्यायालय द्वारा संपुष्ट आदेश विधि में टिक नहीं सकता, जो एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामत:, अपील अनुज्ञात की जाती है और गुणावगुणों पर वाद का निर्णय करने के लिए मामले को अधीनस्थ न्यायालय में प्रति-प्रेषित किया जाता है।

7. स्वीकार्यत: पूर्वोल्लिखित अवैधानिक डिक्री के पारित होने के उपरांत, अपीलार्थी अपने माता-पिता के साथ रह रही है। अत: हम वाद के निस्तारण तक प्रत्यर्थी/पति को भरण-पोषण के तौर पर उसे 4,000/- रू॰ प्रति महीना भुगतान करने का निर्देश देते हैं। प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, धनबाद को एक युक्तिसंगत निर्णय पारित करके गुणावगुणों पर वाद की सुनवाई एवं निस्तारण करने का यथासंभव जल्द से जल्द निर्देश दिया जाता है और इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुतीकरण की तिथि से पाँच महीनों की एक अवधि के भीतर ऐसा करना श्रेयस्कर होगा।

माननीय रमेश कुमार मेराठिया, न्यायमूर्ति

मेसर्स सरावगी टेक्सटाईल्स, संतोष कुमार सरावगी, गाँधी चौक, अपर बाजार, राँची के माध्यम से

बनाम

अजय मोदी एवं एक अन्य

सिविल पुनरीक्षण सं॰ 73 वर्ष 2006. 19 मई, 2009 को विनिश्चित।

अभिधान (निष्कासन) वाद सं॰ 28 वर्ष 2002 में, विद्वान मुंसिफ, राँची, श्री राजेश शरण सिंह द्वारा पारित दिनांक 17.6.2006 के उस निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध।

बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं निष्काषण) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 14(8)—कब्जे की वापसी-व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर निष्काषण का आदेश पारित किया गया था-किरायेदार आंशिक निष्काषण का एक मामला स्थापित करने में असफल रहा-मकानमालिक का यह अभिवाक् स्वीकार किया गया कि आंशिक निष्काषण उसकी

अपेक्षा को पूरा नहीं करेगा–याची को 30 दिनों के भीतर वादित परिसर खाली करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.–1995 BBCJ 711; 2003 (2) PLJR 345; 1993 (1) PLJR 87; 2001(1) PLJR 580; 1985 PLJR 390; AIR 1967 SC 1134; (2006)6 SCC 94; (2008)13 SCC 758; 2009(2) BLJ JHC 47; 2009(2) JLJ JHC 188.—Discussed with.

अधिवक्तागण.–M/s P.K. Prasad, V.K. Prasad, Ayush Aditya, For the Petitioner; M/s B. Poddar, Mr. Pradip Modi, For the Respondents.

रमेश कुमार मेराठिया, न्यायमूर्ति.–यह सिविल पुनरीक्षण आवेदन बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं निष्काषण) नियंत्रण अधिनियम (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 14(8) के अधीन अभिधान (निष्कासन) वाद सं॰ 28 वर्ष 2002 में विद्वान मुंशिफ द्वारा पारित दिनांक 17.6.2006 के उस निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध दाखिल किया गया है जिसमें अधिनियम की धारा 11(1)(c) के अधीन वादी–विपक्षी पक्षकार सं॰–1 अजय मोदी की निजी आवश्यकता के आधार पर वादी/विपक्षी पक्षकारों की ओर से दाखिल निष्कासन के लिए वाद डिक्री किया गया था।

2. संक्षेप में वादी का मामला निम्नवत है। वादी सं॰ 1-अजय मोदी वर्ष 1994 में राँची से नागपुर चला गया एवं फोसिको इंडिया लि॰ का सी॰ एण्ड एफ॰ का अपना कारोबार प्रारम्भ किया। उक्त कंपनी ने नागपुर में अपना कारोबार बन्द कर दिया एवं तद्नुसार दिनांक 2.1.2001 के पत्र (प्रदर्श–2) के द्वारा अजय मोदी के साथ सी॰ एण्ड एफ॰ करार 13.10.2001 के प्रभाव से समाप्त कर लिया। अजय मोदी ने उक्त कारोबार के समाप्त हो जाने पर वापस राँची आने का निर्णय किया क्योंकि नागपुर में उसके परिवार का भरण–पोषण कठिन था। वाद परिसर कारोबार प्रारम्भ करने के प्रयोजन से उपयुक्त था। वादी सं॰ 2 आशीष मोदी के पास मेसर्स बालाजी इण्टरप्राईजेज की नाम एवं शैली पर अपना कारोबार है। वादी सं॰ 1 के पास कारोबार प्रारम्भ करने के लिए कोई अन्य परिसर नहीं है। वादी सं॰ 1 को संपूर्ण वाद परिसरों की जरूरत है क्योंकि जिस प्रकार का कारोबार वह प्रारम्भ करना चाहता है वह वादित परिसर के एक भाग में प्रारम्भ नहीं हो सकता है। प्रतिवादी ने पास की गली में एक दुकान खरीदा है, परन्तु बारम्बार आग्रह के बावजूद वादित परिसर खाली नहीं किया गया है।

3. संक्षेप में प्रतिवादी का मामला निम्नवत है। अजय मोदी अभी भी नागपुर में रह रहा है एवं वहाँ अपना कारोबार चला रहा है। वाद इसलिए दाखिल किया गया था क्योंकि प्रतिवादी वर्धित किराया एवं पगड़ी का भुगतान करने को तैयार नहीं था। वादीगण बहुमंजिला बाजार भवन बनाना चाहते हैं एवं इसलिए निष्काषण का दावा मिथ्या एवं मनगढ़ंत आधार पर किया जा रहा है। इस भवन में अन्य परिसर भी उपलब्ध हैं जिसमें वादित परिसर स्थित है, एवं इसलिए, अपेक्षा जिसका अभिवाक् किया गया है, न तो यथार्थ था और न ही युक्तिसंगत। जिस प्रकार का कारोबार अजय मोदी प्रारम्भ करना चाहता है वह वादित परिसर के एक भाग में चला सकता है।

4. वादीगण ने मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य पेश किया। प्रतिवादीगण ने मौखिक साक्ष्य पेश किया। विचारण न्यायालय ने वाद को डिक्रीत किया, जिसके विरूद्ध सिविल पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किए गए हैं।

5. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने मौखिक एवं लिखित निवेदन किया।

6. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने विचारण न्यायालय के निर्णय की विभिन्न आधारों पर आलोचना की है।

(i) उनका पहला प्रतिवाद कि विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य पर विचार नहीं किया है, उचित नहीं है। यह प्रतीत होगा कि विवाद्यकों की विरचना के उपरांत पैराग्राफ 8 से लेकर पैराग्राफ 19 तक विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य पर विचार किया एवं तब पैराग्राफ 20 एवं 21 पर अभिनिर्धारित किया कि वादीगण की अपेक्षा यथार्थ है।

(ii) उनका अगला प्रतिवाद यह है कि यथार्थ निजी आवश्यकता पर विचारण न्यायालय का निष्कर्ष अनुचित है क्योंकि वादपत्र में किए गए मामले में अजय मोदी का कारोबार समाप्त हो गया था एवं वह अपने परिवार का भरण-पोषण करने में कठिनाईयों का सामना कर रहा था; एवं इसलिए उसे कारोबार प्रारम्भ करने के लिए वादित परिसर की आवश्यकता थी एवं इसके अतिरिक्त आयकर रिटर्न के रोके जाने के लिए प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए था जो यह प्रकट कर सकता था कि क्या वह नागपुर में अपना कारोबार चला रहा था या नहीं एवं क्या उसका आय इस सीमा तक घट चुका था कि वह वापस राँची आना चाहता था।

ये सभी प्रतिवाद भी ग्राह्य नहीं है। मकानमालिक को अपनी निजी आवश्यकता का दावा करने या प्रमाणित करने के लिए निष्क्रिय बैठे रहना अपेक्षित नहीं है एवं उस स्थान पर निवास करने के लिए अपेक्षित नहीं है जहाँ वादित परिसर स्थित है। मगनलाल बनाम नानासाहेब (2008)13 SCC 758 के मामले में पैराग्राफ-25 पर यह सम्प्रेक्षित किया गया था कि उस व्यक्ति के लिए जिसने वाद प्रारम्भ किया है, निष्क्रिय बैठे रहना अपेक्षित नहीं है। सिविल पुनरीक्षण सं० 3 वर्ष 2009 में रवि कांत नेवटिया बनाम श्रीमती गायत्री देवी [2009 (2) BLJ 47 JHC; 2009 (2)JLJ 188 JHC] में दिनांक 8.4.2009 के निर्णय को भी देखा जा सकता है। अजय मोदी ने यह दर्शाने के लिए प्रदर्श 2 को प्रमाणित किया है कि नागपुर में उसका सी० एण्ड एफ० कारोबार 31.10.2001 के प्रभाव से बन्द हो गया था। प्रतिवादी (ब० सा० 6) ने स्वयं कहा कि वह नहीं जानता है कि वह नागपुर में कौन सा कारोबार चला रहा है (पैराग्राफ-16)। इसलिए अजय मोदी ने प्रमाणित किया कि नागपुर में उसका कारोबार बन्द हो गया था एवं उसे वादित परिसर की आवश्यकता थी, जबकि प्रतिवादी अपना मामला प्रमाणित नहीं कर सका कि नागपुर में अजय मोदी का कारोबार बन्द नहीं हुआ था एवं उसे वादित परिसर की आवश्यकता नहीं थी। पक्षकारों ने मुख्य विवाद्यक पर अपने अभिवचनों के अनुसार साक्ष्य पेश किया, कि क्या वादीगण को वाद परिसर की आवश्यकता थी अथवा नहीं। इसलिए कोई पृथक निष्कर्ष अपेक्षित नहीं था जैसा कि श्री प्रसाद द्वारा प्रतिवाद किया गया था।

पुनः यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि प्रतिवादी की प्रार्थना पर न्यायालय द्वारा अजय मोदी से अपना आयकर रिटर्न पेश करने को कहा गया था, एवं इसलिए, कोई प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने का कोई प्रश्न ही नहीं है। AIR 1967 SC 1134 रामरती कुँअर इत्यादि (पैराग्राफ 9 एवं 10) में प्रकाशित एवं (2006)6 SCC 94 स्टैंडर्ड चाटर्ड बैंक इत्यादि (पैराग्राफ-53) में प्रकाशित निर्णय देखा जा सकता है।

(iii) श्री प्रसाद का अगला तर्क यह है कि वादीगण के साक्षी हितबद्ध साक्षी थे, भी गाह्य नहीं है। उनलोगों के प्रति शपथ-पत्र में उनके परिसाक्ष्यों पर अविश्वास करने के लिए कुछ भी नहीं है। मात्र इस आधार पर कि वे लोग हितबद्ध साक्षी हैं, उनके परिसाक्ष्यों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

(iv) श्री प्रसाद का अगला तर्क कि अजय मोदी को पर्याप्त स्थान उपलब्ध है, पूर्णतया अग्राह्य है। अपने प्रति शपथ-पत्र के पैराग्राफ-1 में, स्वयं प्रतिवादी ने ब० सा० 6 के तौर पर कहा है कि रिक्त स्थान जो उसने अपने मुख्य परीक्षा में निर्दिष्ट किया है, पिछले भाग में है, बुरी हालत में है एवं छोटा परिसर था। पैराग्राफ-29 में, उसने आगे कहा कि वह उक्त परिसर को कम किराया पर भी नहीं लेगा। आगे ब० सा० 7 जो ब० सा० 6 का पुत्र है, ने अपने प्रति-परीक्षण के पैराग्राफ-14 एवं 15 में यह भी कहा है कि वे लोग उस रिक्त स्थान में स्थानान्तरित होने के इच्छुक नहीं है, जो वादी सं० 1 को अपना कारोबार चलाने के लिए उपलब्ध होना कहा गया है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अजय मोदी को अपने कारोबार के लिए कोई अन्य उपयुक्त स्थान उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त, यह कहकर कि वादीगण को अन्य स्थान उपलब्ध है, एक प्रकार से प्रतिवादीगण ने उसका जरूरत को स्वीकार किया है।

(v) श्री प्रसाद ने अंततः यह प्रतिवाद किया कि आंशिक निष्काषण के सम्बन्ध में आज्ञापक प्रावधान का अनुपालन विचारण न्यायालय द्वारा नहीं किया गया है।

यह प्रतिवाद भी टिकाउ नहीं है। साक्ष्य में यह आया है कि वादित परिसर लगभग 700-800 वर्ग फीट (अ० सा० 1- पैराग्राफ-16, अ० सा० 2 पैराग्राफ 18) का है जबकि प्रदर्श 4 एवं 4/A के अनुसार अजय मोदी को अपना कारोबार चलाने के प्रयोजन से 800-1000 वर्ग फीट स्थान की आवश्यकता है। विचारण न्यायालय ने आंशिक निष्काषण के सम्बन्ध में विवाद्यक स० 4 विरचित किया। यह प्रतीत होगा कि व्यक्तिगत आवश्यकता के सम्बन्ध में मुख्य विवाद्यक से संबंधित साक्ष्यों पर विचार करते समय, विचारण न्यायालय ने साथ-ही-साथ आंशिक निष्काषण के विवाद्यक से संबंधित साक्ष्यों पर भी विचार किया एवं तब अंततः इसने अभिनिर्धारित किया कि मकान मालिक को सम्पूर्ण वादित परिसर की आवश्यकता थी जो दो भागों में विभाजित किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं है एवं यह कि आंशिक निष्काषण मकानमालिक की जरूरत को पूरा नहीं करेगा।

7. प्रतिवादी ने ही इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन के साथ एक मानचित्र उपाबन्ध-A के तौर पर संलग्न किया है, जो वादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा विवादित नहीं है। यह स्वीकृत स्थिति है कि, वादित परिसर के एक भाग में, वादी सं॰ 2 अपनी दुकान चला रहा है एवं वादित परिसर के दूसरी ओर, वादीगण का चचेरा भाई अपनी स्वयं की दुकान चला रहा है एवं यह कि सड़क पर वादित परिसर का आगे का भाग 17 फीट 7 इंच है। 1985 PLJR 390 में प्रकाशित **श्रीमती वीणा रानी बनाम श्रीमती ईश्राती अमानुल्लाह** के मामले में खंड पीठ निर्णय के पैराग्राफ-12 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आंशिक निष्काषण का आदेश पारित करने की शक्ति का प्रयोग ऐसी रीति से नहीं किया जा सकता है मानो न्यायालय को प्रश्नगत भवन का विभाजन दो सह-शेयरधारकों के बीच करना हो।

8. इसके अतिरिक्त, लिखित अभिकथन के पैराग्राफ-18 में, प्रतिवादी ने सरल रूप से कहा जिस प्रकार का कारोबार वादी सं॰ 1 प्रारम्भ करना चाहता है, वह वादित परिसर के एक भाग में चल सकता है, परन्तु यहाँ पर यह उल्लेख करना संगत है कि प्रतिवादी की ओर से यह प्रमाणित करने के लिए कोई साक्ष्य, जो कुछ भी, पेश नहीं किया गया था कि वादी सं॰ 1 की आवश्यकता आंशिक निष्काषण द्वारा पूरी हो सकती थी यद्यपि वादीगण द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि सम्पूर्ण वाद परिसर इस प्रयोजन से अपेक्षित था, [2001(1) PLJR 580 **तरूण कुमार गुप्ता बनाम पार्वती देवी** के पैराग्राफ 11 को देखा जा सकता है। दूसरी ओर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वादीगण ने मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य के माध्यम से यह प्रमाणित किया है कि वादित परिसर का क्षेत्रफल लगभग 700-800 वर्ग फीट है एवं सम्पूर्ण वादित परिसर ही विद्युत उपस्करों एवं हार्डवेयर का कारोबार प्रारम्भ करने के लिए अपेक्षित है। 1993 (1) PLJR पृष्ठ 87 में प्रकाशित **मेसर्स बाटा इंडिया लि॰ बनाम डॉ॰ मो॰ कमरूज्जमा** के मामले में पैरा-6 पर निम्नवत् अभिनिर्धारित किया गया है:-

''पैरा-6. यह प्रतीत होगा कि जबकि मुख्य खंड इसमें वर्णित आधार पर किरायेदार का निष्काषण सुनिश्चित करने का हकदार भू-स्वामी को बनाता है, परंतु इसका परन्तुक इसके बारे में जाँच कराने का आदेश न्यायालय को देता है कि क्या वादीगण की जरूरतों को परिसर से किरायेदार को आंशिक निष्कासन करके सारतः पूरा किया जा सकता है। प्रश्न यह है कि यह किसे प्रमाणित करना है कि आंशिक निष्कासन द्वारा अपेक्षा की पूर्ति सारतः की जा सकती है। हमारी राय में, मकान मालिक पर इस सम्बन्ध में प्रमाणित करने का बोझ नहीं डाला जा सकता है। उसके यह प्रमाणित कर देने के उपरांत कि उसे 'भवन' की आवश्यकता है, जिसका अभिप्राय है सम्पूर्ण वादित परिसर, उससे साक्ष्य द्वारा यह प्रमाणित करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती या कहा नहीं जा सकता कि उसकी जरूरत की पूर्ति मात्र आंशिक निष्काषण द्वारा ही पूरी हो सकती है। वह उससे इसका विपरीत प्रमाणित करने को कहने के तुल्य होगा। हमारी राय में, एकबार जब मकानमालिक ने परिसर को अपनी जरूरत को प्रमाणित कर दिया है, तो दायित्व किरायेदार पर स्थानान्तरित हो जाता है। अभिव्यक्ति ''एवं किरायेदार ऐसे अधिभोग पर सहमत होता है'', इस दृष्टिकोण को प्रबल करता है कि आंशिक निष्काषण के प्रश्न पर जाँच करते समय किरायेदार को ही परिसर के आंशिक अधिभोग की अपनी इच्छा एवं स्वेच्छा अभिव्यक्त करना

है एवं यह दर्शाना है कि परिसर के मात्र एक भाग से उसे निष्काषित करके एवं उसे इसके शेष भाग का अधिभोगी बने रहने की अनुज्ञा देकर वादीगण की जरूरतों को सारतः पूरा किया जा सकता है। आंशिक निष्काषण के बिन्दु पर प्रतिवादी के साक्ष्य का कोई भी भाग हमारी नोटिस में नहीं लाया गया था इसलिए हम यह समझने में असमर्थ हैं कि याची किस प्रकार से आंशिक निष्काषण के प्रश्न पर प्राप्त निष्कर्ष की आलोचना इस आधार पर कर सकता है कि इस बिन्दु पर कोई विनिर्दिष्ट साक्ष्य नहीं है।''

बाटा इंडिया लिमिटेड (ऊपर) के निर्णय का **पालन फुड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया बनाम विशुन प्रोपर्टीज एण्ड इण्टरप्राईजेज एवं अन्य 1995 BBCJ 711** के मामले में प्रकाशित किया गया था एवं उक्त विनिश्चय के विरूद्ध विशेष अनुमति याचिका को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खारिज किया गया था। 2003 (2) PLJR 345 में प्रकाशित **श्रीमती सुशीला देवी एवं अन्य बनाम श्री लखन लाल साह एवं अन्य** के मामले में निर्णय, जिसपर श्री प्रसाद द्वारा विश्वास व्यक्त किया गया है, प्रतिवादी को किसी मदद का नहीं है। यह प्रतीत होता है कि उस मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में आंशिक निष्काषण के प्रश्न पर विचार करने के लिए मामले को प्रतिप्रेषित किया गया था। इसके अतिरिक्त, **बाटा इंडिया लिमिटेड (ऊपर)** का निर्णय विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष पेश नहीं किया गया था। अन्य निर्णय, जिसपर श्री प्रसाद द्वारा विश्वास व्यक्त किया गया था, भी उसके किसी मदद का नहीं है। उन मामलों में, आंशिक निष्काषण का प्रश्न उन मामलों के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रतिप्रेषित किया गया था। इसमें यह मामला, जैसा कि ऊपर में पहले ही नोटिस किया गया है, यह पाया गया है कि आंशिक निष्काषण वादीगण की जरूरत को पूरा नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी ने इस पहलू पर कोई साक्ष्य पेश नहीं किया। इसलिए, आंशिक निष्काषण के प्रश्न पर विचार करने के लिए मामले को प्रतिप्रेषित करने का कोई मामला निर्मित नहीं हुआ है।

8. सम्पूर्ण मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के उपरांत, मैं पाता हूँ कि वाद को उचित रूप से ही विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा डिक्रीत किया गया है। याची को 30 दिनों के भीतर वादित परिसर खाली करने का निर्देश दिया जाता है, जिसमें असफल रहने पर वादीगण न्यायालय की प्रक्रिया द्वारा वादित परिसर पर कब्जा वापस लेने का हकदार होंगे। लेकिन कोई व्यय नहीं।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

मेसर्स विजय माईनिंग कंपनी लि॰

बनाम

बिहार राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 1594 वर्ष 2000(R). 21 मई, 2009 को विनिश्चित।

विद्युत विधि–हाई टेंशन करार–खण्ड 9—लोड में कमी–संविदा मांग को 240 KVA से 200KVA तक घटाने के लिए उपभोक्ता द्वारा विद्युत बोर्ड के समक्ष आवेदन दाखिल किया गया–अभिनिर्धारित, करार को ऊर्जा की आपूर्त्ति के प्रारम्भ की तिथि से तीन वर्षों की समाप्ति से पूर्व निर्धारित या परिवर्तित किया जा सकता है। (पैरा 11 से 15)

निर्णयज विधि.–2002(3) JCR 638; (2000)10 SCC 290—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s Binod Poddar, Biren Poddar, Piyush Poddar, For the Petitioner; M/s V. K. Prasad, Gautam Rakesh, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों हेतु दाखिल की गयी है:–

(a) संविदा मांग के लिए आवेदन की तिथि अर्थात् 13.5.1995 (उपाबंध-2) के प्रभाव से इसे 240 KVA से 200 KVA तक तत्क्षण घटाने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को निर्गत करने के लिए जिसके अनुसरण में बोर्ड के अधिकारियों ने पहले ही 26.5.1995 को याची के परिसर में लोड सत्यापन किया है एवं तब से प्रत्यर्थीगण मामले पर निष्क्रिय बैठे हैं, यद्यपि याची उन्हें उक्त प्रयोजन से समय-समय पर स्मरण कराता रहा है,

(b) मई, 1995 से आज तक याची से प्रभारित एवं वसूल की गयी अतिरिक्त धनराशि अर्थात् 240 KVA का पुराना सन्निर्मित/संविदाकृत लोड एवं 200KVA के घटे हुए लोड के बीच के प्रभारों के अंतर की संगणना करने एवं वापस करने का एक निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने के लिए जिसके लिए आवेदन 19.5.1995 (उपाबंध-2) को दाखिल किया गया था,

(c) दिनांक 29.11.1995 के आवेदन (उपाबंध-2) पर विचार करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने के लिए, जो याची द्वारा 240 KVA के संविदाकृत लोड को 200 KVA तक घटाने के लिए एवं तद्नुसार संविदाकृत लोड को 200 KVA तक घटाने के लिए एवं दिनांक 29.11.1995 के उक्त आवेदन की तिथि से उर्जा विपत्रों में लोड में इस प्रकार की कटौती मंजूर करने के लिए प्रत्यर्थी सं० 7 के समक्ष दिनांक 20.11.1995 के रसीद सं० 671068 के माध्यम से 29.11.1995 को ही 70 रु० का शुल्क निक्षेपित करके दाखिल किया गया था।

2. संक्षेप में तथ्य निम्नवत् कथित है:-

याची का पलामू जिले के डाल्टेनगंज में एक खनन का कारोबार है। इसने टैरिफ संकेत H.T.S.-I. के अधीन विद्युत की आपूर्त्ति के लिए प्रत्यर्थी बोर्ड के साथ 1.4.1986 को एक करार किया था जिसमें यह उपभोक्ता सं॰ D-350 था। H.T. करार के पृष्ठ-7 की अनुसूची के क्रम सं॰ 4 में यथा वर्णित संविदा मांग 240 KVA था एवं विपत्रों को बोर्ड द्वारा पेश किया गया था एवं याची तद्नुसार विपत्रों का भुगतान कर रहा था।

3. याची का मामला यह है कि उसने आपूर्त्ति में निम्न विभव (भोल्टेज) प्राप्त करना प्रारम्भ किया जिसने उसे अपना कारखाना चलाना असंभव बना दिया एवं लोड को घटाने के क्रम में याची ने अक्टूबर, 1994 के महीने में अपना एक रोलर मिल बन्द कर दिया एवं विद्युत अभियंता (ग्रामीण को इसकी सूचना उचित रूप से दे दी गयी थी। याची ने दिनांक 12.5.1995 के अपने आवेदन के माध्यम से अपने उपरोक्त मिलों में से एक को अलग करने के लिए आवेदन भी किया।

4. याची के लोड एवं उसके ट्रांसफार्मर की क्षमता का अभिनिश्चिय करने एवं मामले में अग्रेतर कार्रवाई करने के लिए एक समिति ने 26.5.1995 को परिसर का निरीक्षण किया एवं एक सत्यापन रिपोर्ट तैयार किया जो याची के फैक्ट्री में संस्थापित मशीनों की क्षमता के आधार पर, याची के लोड को दर्शाते हुए सत्यापन दल के सभी सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित था एवं उक्त सत्यापन रिपोर्ट में अभिलिखित विभिन्न मशीनों के लोड की गणना करके याची का कुल लोड 220.75 H.P. अर्थात् 205.95 KVA के समतुल्य पाया गया।

5. घटी हुई माँग के यथा विरूद्ध याची ने लोड को मात्र 200 KVA की सीमा तक घटाये जाने के लिए आवेदन किया एवं उत्तर में प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने दिनांक 29.8.95 के अपने पत्र के माध्यम से अपेक्षित आवेदन शुल्क निक्षेपित करने एवं लोड घटाये जाने के लिए सहायक विद्युत अभियंता के कार्यालय में आवेदन करने का निर्देश दिया। अंततः अपेक्षित शुल्क निक्षेपित किए जाने पर, नये कनेक्शन के लिए विहित प्रारूप में लोड में कटौती के लिए एक नया आवेदन मनी रीसीट सहित किया

गया था। आवेदन पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी थी एवं विद्युत विपत्र 240 KVA की संविदा मांग के आधार पर पेश किए जाते रहे। मजबूर होकर याची ने पुनः 27.8.99 को मामले में व्यक्तिगत रूप से हस्तक्षेप करने के लिए पत्र लिखा चूँकि चार वर्ष पहले ही बीत गये थे परन्तु संविदा मांग को घटाने की कोई कार्रवाई नहीं की गयी थी एवं याची 240 KVA की पुरानी संविदा मांग पर भुगतान करने को बाध्य था।

6. याची ने मजबूर होकर दिनांक 13.5.95 के अपने आवेदन की तिथि से 240 KVA से 200 KVA तक संविदा मांग घटाने के लिए यह रिट आवेदन दायर किया एवं आगे, याची से प्रभारित अतिरेक धनराशि की वापसी के लिए भी प्रार्थना किया है।

7. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता अपने प्रति शपथ-पत्र के पैराग्राफ-6(d) एवं (c) में निम्नवत निवेदन किया है:-

> *"6(d) H.T. करार के खण्ड 9 के अनुसार, किसी उपभोक्ता आवेदक का लोड प्रथम सूचना की तिथि से एक वर्ष के उपरांत ही घटाया जा सकता है, जिसका अर्थ यह है कि कोई उपभोक्ता लोड के घटाये जाने के लिए आवेदन की तिथि से एक वर्ष की समाप्ति तक पूर्वतर लोड के आधार पर प्रभारित किया जायेगा।*
>
> *(e) दिसम्बर, 1995 से जुलाई, 1997 तक, याची का बिल प्रत्यर्थी सं० 4 द्वारा निर्गत दिनांक 4.3.98 के पत्र के अनुसार 216 KVA के आधार पर दिया गया था जिसे याची ने तुरन्त स्वीकार कर लिया एवं आज तक इस सम्बन्ध में आक्षेप नहीं किया।''*

8. इसने लोड सत्यापन रिपोर्ट के अनुसार चार्ट/विवरणी भी दिया है एवं उसने इस तथ्य की पुनरावृत्ति की है कि दिसम्बर, 1995 से जुलाई, 1997 तक की अवधि के बीच के विपत्रों को 216 KVA पेश किया गया था जिसे याची ने तुरंत स्वीकार कर लिया था एवं कोई आक्षेप पेश नहीं किया एवं इस प्रकार 200 KVA तक अग्रेतर कमी का दावा अनवधार्य था।

9. मैंने परस्पर विरोधी निवेदन एवं अभिवचनों पर विचार किया है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा पेश किया गया मुख्य तर्क यह है कि आवेदन की तिथि अर्थात् 13.5.1995 के प्रभाव से 240 KVA से 200 KVA तक लोड घटाना प्रत्यर्थी के लिए अनिवार्य था। यह भी निवेदन किया गया है कि आवेदन की तिथि से कम-से-कम एक वर्ष बीत जाने के उपरांत लोड में कटौती अनुज्ञात किया जाना चाहिए।

10. प्रति शपथ-पत्र में पैराग्राफ-6(d) एवं (e) पर, जैसा कि एतस्मिनपूर्व उत्कथित किया गया है, यह सुव्यक्त होगा कि बोर्ड ने भी शपथ पर कहा है कि वे लोग इस बात के लिए तैयार एवं इच्छुक हैं कि H.T. करार के खण्ड 9 के अनुसार संविदा लोड को आवेदन की तिथि से एक वर्ष के उपरांत ही संविदा लोड घटाया जायगा। यह भी स्वीकार किया गया है कि दिसम्बर, 1995 से जुलाई, 1997 तक याची का विपत्र 216 KVA के आधार पर पेश किया गया था एवं याची ने इसका भुगतान बिना किसी आक्षेप के तुरन्त स्वीकार किया। H.T. करार के खण्ड 9 के अनुसार, इसे ऊर्जा की आपूर्त्ति के प्रारम्भ की तिथि से तीन वर्षों की समाप्ति के पूर्व निर्धारित किया जा सकता है। यह इस बात का भी प्रावधान करता है कि उपभोक्ता बारह महीनों के लिखित पूर्वतर नोटिस देकर इस करार को निर्धारित भी कर सकता है।

11. चाहे जो भी हो, प्रति शपथ-पत्र में यथा कथित स्वीकृत स्थिति की दृष्टि में एवं साथ ही इस तथ्य की दृष्टि में विपत्रों को 1995 से 216 KVA के घटे हुए संविदा लोड के आधार पर पेश किया गया था एवं इसे बिना किसी आक्षेप के याची द्वारा पेश किया गया था एवं इस प्रकार, इसे उस सीमा तक दोनों ही पक्षकारों अर्थात् याची एवं बोर्ड की ओर से स्वीकृत स्थिति होना माना जा सकता है।

12. इस प्रश्नगत विवाद्यक पर 2002(3) JCR पृष्ठ 638 में प्रकाशित **एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लि॰ बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड** के मामले में भी विचार किया गया था, जिसमें इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ ने पैराग्राफ-10 पर निम्नवत् अभिनिर्धारित किया:-

"10. चाहे जो भी हो, यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी-बोर्ड ने बाद में दिनांक 5.11.1987 को याची का आवेदन अस्वीकार करके अपनी कार्रवाई को महसूस किया एवं तब अपीलार्थी द्वारा दाखिल पश्चातवर्ती आवेदन ग्रहण किया गया था एवं लोड की कमी के लिए कार्यपालक अभियंता, अधीक्षण अभियंता द्वारा सिफारिश किया गया था। इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश उचित रूप से ही इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अपीलार्थी 12000 KVA से 9000 KVA तक लोड में कमी का हकदार था। अपीलार्थी का यह तर्क है कि 12000 KVA से 8000 KVA तक लोड की कमी इस कारण से स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए कि स्वीकार्यतः दिनांक 5.11.1987 के आवेदन के उपरांत संविदा लोड को 8000 KVA से 9000 KVA के बीच पाया गया था। तथापि, हमारी दृष्टि में, विद्वान एकल न्यायाधीश यह अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित नहीं थे कि अधिकतम संविदा मांग में कटौती जून, 1991 से प्रभावी होंगे, क्योंकि लोड की कटौती का नोटिस मई, 1990 में दिया गया था। बोर्ड द्वारा यह विवादित नहीं है कि दिनांक 5.11.1987 के नोटिस की तामीला बोर्ड को 12000 KVA से 8000 KVA तक लोड की कटौती के लिए की गयी थी एवं उक्त आवेदन को प्राधिकारियों द्वारा प्रसंस्कृत एवं अनुशंसित किया गया था परंतु इसे अंततः इस आधार पर अस्वीकार किया गया था कि करार में रखी गयी शर्तों के अनुसार अपीलार्थी संविदा मांग की कटौती का हकदार नहीं था। एक बार जब यह अभिनिर्धारित कर लिया गया था कि उस आवेदन का उस शर्त पर अस्वीकार किया जाना अविधिमान्य एवं मनमाना था एवं जब करार में ऐसा शर्त रखा गया था एवं विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किया गया था तब ऐसा कोई कारण नहीं है कि अपीलार्थी दिनांक 5.11.1987 के नोटिस की तामीला की तिथि से एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात से लोड की कटौती का हकदार नहीं होगा। इसलिए, हमारी दृष्टि में, अपीलार्थी दिसम्बर, 1988 के प्रभाव से 12000 KVA से 9000 KVA तक अधिकतम संविदा मांग की कटौती का हकदार होगा।"

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2000)10 SCC पृष्ठ 290** में प्रकाशित **एम॰ पी॰ विद्युत बोर्ड एवं एक अन्य बनाम मंजू सिंह चौहान** के मामले में अधिकतम संविदा लोड 168 KVA से 100 KVA तक कटौती के एक सदृश विवाद्यक पर विचार करते समय पैराग्राफ-8 एवं 9 पर निम्नवत अभिनिर्धारित किया था:-

"8. यह प्रतिवाद किया गया है कि स्वयं बोर्ड ने ही, परिस्थितियों पर विचार करके 1.8.1987 के प्रभाव से लोड 168 KVA से 143 KVA तक घटाया था एवं पुनः 1.4.1988 के प्रभाव से 126 KVA तक घटाया गया था। यह प्रतिवाद किया गया है कि यदि बोर्ड के द्वारा उपर इंगित अवधि हेतु लोड को घटाया जा सकता था, तो इसका कोई कारण नहीं था कि प्रश्नगत अवधि हेतु प्रत्यर्थी के आग्रह पर इसे नहीं घटाया जा सकता था। आयोग को यह बताया गया था कि संविदा लोड में कटौती फेडरेशन ऑफ एम० पी० चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री के अभ्यावेदन पर बोर्ड द्वारा लिए गए निर्णय के आलोक में किया गया था। उन्हें पूर्वतर अवसर पर प्रत्यर्थी को प्रदत्त कटौती के लिए पर्याप्त कारण दिया गया था एवं यह कि इसे एक बाध्यकारी पूर्व निर्णय के तौर पर समझा नहीं जा सकता है।

9. हम दृढ़तापूर्वक इस दृष्टिकोण के हैं कि 168 KVA से 100 KVA तक लोड घटाने से इनकार करने में बोर्ड की कार्रवाई, जैसा कि प्रत्यर्थी द्वारा आग्रह किया गया था, पूर्णरूप से पक्षकारों के बीच करार के निबंधनों के अनुरूप था। वैसा होने के

कारण, इस मामले में अंतर्ग्रस्त सेवा की कोई त्रुटि नहीं हुई थी एवं दावा याचिका अधिनियम के अधीन राष्ट्रीय आयोग के समक्ष पोषणीय नहीं था।''

14. हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा बाध्य हैं। उपरोक्त निर्णयों पर विश्वास व्यक्त करते हुए पैराग्राफ-7 में यथा उत्कथित प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ (c) को एक बार फिर निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा जिसमें बोर्ड ने सत्यापन रिपोर्ट पर उपभोग एवं मामले के सभी तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार करने के उपरांत 216 KVA की संविदा लोड को घटाने का निर्णय लिया जिसके आधार पर ऊर्जा विपत्रों को पेश किया गया था एवं याची ने बिना किसी आक्षेप के इसका भुगतान किया था एवं इस प्रकार, उपरोक्त स्वीकृत स्थिति एवं इसमें इसके पूर्व विवेचित तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में, दिसम्बर, 1995 से जुलाई, 1997 के प्रभाव से प्रदत्त कटौती के अनुसार 216 KVA के आधार पर प्रश्नगत अवधि के लिए विपत्रों को पेश किए जाने पर विचार करने का निर्देश देना समुचित होगा।

15. मामले के विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके उपरोक्त निर्देश के आलोक में इस रिट याचिका को अंशत: अनुज्ञात किया जाता है एवं 1995 के पश्चात् 216 KVA से अधिक के ऊर्जा विपत्रों के लिए पहले से ही किया गया अतिरिक्त भुगतान होने की दशा में, याची पहले ही संदत्त अतिरिक्त राशि की वापसी का हकदार होगा।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

चन्देश्वर सिंह (5090 में)

रामदास राय (122 में)

बनाम

प्रोजेक्टस् एण्ड डेवलपमेंट इण्डिया लिमिटेड एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5090, 122 वर्ष 2005. 8 मई, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–चिकित्सीय प्रतिपूर्ति–चिकित्सीय प्रतिपूर्ति का दावा इस आधार पर अस्वीकृत किया गया कि याचीगण प्रत्यर्थी कम्पनी द्वारा चलाई गई वी॰ आर॰ एस॰ के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प दे चुके थे–अभिनिर्धारित, प्रत्यर्थी कम्पनी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प देने के आधार पर दावे से इन्कार नहीं कर सकती, और न हीं इस आधार पर कि समूची राशि को स्वीकार करके उन्होंने अपने दावे का अधित्यजन कर दिया है–चिकित्सीय व्ययों की प्रतिपूर्ति करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 14 एवं 16)

निर्णयज विधि.–2001(2) Jhr. C.R. 203; 2009 (1) JLJR 193; (2003)5 SCC 163; (2006)3 SCC 708—Discussed.

अधिवक्तागण.–Mr. K.B. Sinha, For the Petitioner(s); Mr. Amitabh, For the Respondents.

आदेश

चूँकि इन रिट याचिकाओं के अंतर्ग्रस्त मामले सम्मिलित हैं, अत: उन्हें विचारण के लिए एक साथ अंगीकार किया गया है और इस सम्मिलित आदेश द्वारा निस्तारण किया गया है।

याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री के॰ बी॰ सिन्हा, एवं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री अमिताभ को सुना और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की सहमति से इन रिट याचिकाओं का ग्रहण करने के चरण में ही निस्तारण किया जा रहा है।

3. चिकित्सीय उपचार के लिए याचीगण द्वारा उपगत चिकित्सीय व्ययों की प्रतिपूर्ति करने में प्रत्यर्थीगण के इन्कार से इन आवेदनों में याचीगण व्यथित हैं। जबकि याची चन्देश्वर सिंह का दावा [WP (C) No. 5090 वर्ष 2005] स्वयं अपने ऊपर उपगत चिकित्सीय व्यय की प्रतिपूर्ति के लिए है,

वहीं डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 122 वर्ष 2005 में याची रामदास राय का दावा अपने आश्रित पुत्र का उपचार के लिए उपगत चिकित्सीय व्यय की प्रतिपूर्ति के लिए है।

4. दोनों याचीगण प्रत्यर्थी प्रोजेक्टस् एण्ड डेवलपमेंट इण्डिया लिमिटेड सिन्दरी के कर्मचारीगण थे। उनकी सेवा शर्तों के अधीन याचीगण और साथ-साथ उनके आश्रित पारिवारिक सदस्य मुफ्त चिकित्सीय उपचार के अधिकारी थे, जो नियोक्ता द्वारा कर्मचारीगण को उपलब्ध कराया जाता था और उनके द्वारा उपगत चिकित्सीय व्ययों की प्रतिपूर्ति के लिए भी वे अधिकारी थे।

5. याची चन्देश्वर सिंह का मामला है कि मुख्यालय के विभागीय प्रधान की पूर्व अनुमति से छुट्टी लेकर वह अपनी बीमार बहन को देखने के लिए कलकत्ता गया था। उसके साथ याची रामदास राय का पुत्र राहुल कुमार था। जबकि कलकत्ता से लौटते समय, जिस वाहन में वे यात्रा कर रहे थे उसके साथ एक गंभीर सड़क दुर्घटना हुई। वाहन के दोनो यात्रियों के गंभीर उपहतियाँ आई थी और वे बेहोश हो गए थे। निकटस्थ गाँववालो ने उन्हें तत्परता से निकटतम सरकारी अस्पताल पहुँचा दिया जहाँ प्राथमिक उपचार के उपरांत, दोनों को कलकत्ता चिकित्सा महाविद्यालय अस्पताल निर्दिष्ट कर दिया गया था। चूँकि कलकत्ता चिकित्सीय महाविद्यालय अस्पताल में कोई रिक्त सीट उपलब्ध नहीं थी, अत: उपस्थित डॉक्टर की राय पर दोनो घायलों को कलकत्ता चिकित्सीय अनुसंधान संस्थान भेज दिया गया था जहाँ दोनो को आन्तरिक रोगी के तौर पर प्रवेश मिली।

17.11.2001 से 7.12.2001 तक चिकित्सीय उपचार करने के उपरांत, उन्हें सामान्य जांच के लिए ओ॰ पी॰ डी॰ में जाने की सलाह पर अस्पताल से मुक्त कर दिया गया।

6. याचीगण का तर्क यह है कि कलकत्ता चिकित्सीय अनुसंधान संस्थान प्रत्यर्थी-नियोक्ता द्वारा मान्यता दिए गए उन अस्पतालों में से एक है जहाँ प्रत्यर्थीगण के कर्मचारीगण आन्तरिक एवं बाहरी रोगीयों के तौर पर चिकित्सीय उपचार का लाभ उठा सकते है।

अस्पताल से मुक्त होने के उपरांत, दोनो याचीगण ने एस॰ एस॰ के एस॰ अस्पताल, कलकत्ता में अपनी सामान्य जाँच का लाभ उठाने के लिए प्रत्यर्थी-नियोक्ता से अनुमति प्राप्त कर ली थी, यह भी प्रत्यर्थी कम्पनी द्वारा मान्यता दिए गए उन अस्पतालों में से एक था, जहाँ कम्पनी के सिंदरी कार्यालय के कर्मचारीगण को चिकित्सीय उपचार प्राप्त करने की अनुमति थी। ड्यूटी प्रारम्भ करने के उपरांत, याची चन्देश्वर सिंह ने प्रतिपूर्ति के लिए 2,32,777/- रुपए का अपना चिकित्सीय बिल प्रस्तुत किया था। उसी प्रकार, याची रामदास राय ने भी अपने आश्रित पुत्र के चिकित्सीय उपचार के लिए उसके द्वारा उपगत व्ययों की प्रतिपूर्ति का दावा करते हुए 87,211/- रुपए का चिकित्सीय बिल प्रस्तुत किया।

चिकित्सीय प्रतिपूर्ति के लिए दोनो याचीगण के दावा था यद्यपि प्रत्यर्थी-कम्पनी के सम्बद्ध प्राधिकारीयों द्वारा आकलन किया गया, परन्तु आक्षेपित पत्रों (क्रमश: परिशिष्ट-5 एवं 6) द्वारा चिकित्सीय प्रतिपूर्ति के उनके दावे को अस्वीकृत कर दिया गया था।

बाद में, याचीगण को प्रत्यर्थी कम्पनी द्वारा चलाई गई स्वैच्छिक सेवानिवृत्त योजना (VRS) के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प देने पर, दोनो याचीगण को उनके कर्तव्यों से मुक्त कर दिया गया था। याची चन्देश्वर सिंह को 28.8.2003 को अवमुक्त किया गया था जबकि याची रामदास राय को 3.5.2003 को अवमुक्त किया गया था।

7. याचीगण द्वारा उपगत चिकित्सीय व्ययों की प्रतिपूर्ति करने से इन्कार पर प्रत्यर्थीगण के आक्षेपित आदेशों पर प्रहार करते हुए, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण की ओर से ऐसी कार्रवाई मनमाना, अवैधानिक और याचीगण की सेवा के दौरान सेवा शर्तों के अधीन उन्हें प्रोद्भूत आदि कारणों का उल्लंघन है।

विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया है कि याचीगण द्वारा मांग की गई चिकित्सीय प्रतिपूर्ति का दावा मूलत: इस आधार पर था कि जिस अवधि के लिए दावा रखा गया था वह 16.11.2001 से लेकर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के अधीन ड्यूटी से याचीगण के अवमुक्त होने की तिथि से पहले की तिथि से संबंधित थी यानि कि जब याची एवं कम्पनी के बीच विधिगत संबद्ध अस्तित्व में था।

8. प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में याचीगण के दावे को इस आधार पर विवादित और अस्वीकृत किया है कि दोनों याचीगण द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प चुनने और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अन्तर्गत सभी मौद्रिक लाभों को प्रकट कर लेने के उपरांत चिकित्सीय व्ययों की प्रतिभूति के दावे को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता और चूँकि रिट याचिका के दाखिल होने की तिथि से, स्वीकार्यत:, याचीगण एवं प्रत्यर्थीगण के बिच विधिगत संबंध समाप्त हो चुके थे, अत: ये आवेदन इप्सित अनुतोषों के लिए पोषणीय नहीं है।

आगे लिया गया पक्ष यह है कि अन्यथा भी, याचीगण का चिकित्सीय प्रतिपूर्ति के लिए दावा इस तथ्य की दृष्टि में भी स्वीकृत नहीं किया जा सकता कि उन्होंने उस अस्पताल में चिकित्सीय उपचार प्राप्त नहीं किया था और न ही चिकित्सीय व्यय उपगत किए थे जो PDIL, सिन्दरी, के कर्मचारियों के लिए नियोक्ता, द्वारा मान्य है।

9. प्रत्यर्थीगण द्वारा लिए गए पक्ष के समर्थन में, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता **ए॰ के॰ बिंदल बनाम भारत संघ एवं अन्य [(2003(5) एस॰ सी॰ सी॰ 163]** के मामले में और **एच॰ ई॰ सी॰ स्वैच्छिक सेवानिवृत्त कर्मचारी कल्याण समिति बनाम एच॰ ई॰ सी॰ लिमिटेड [(2006)3 एस॰ सी॰ सी॰ 708]** के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया है और उनपर भरोसा किया है।

10. दूसरी ओर, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त दोनों निर्णयों के अन्तर करते हुए **मो॰ मनीरूद्दीन बनाम बी॰ एस॰ आर॰ टी॰ सी॰ [2001(2) झारखण्ड सी॰ आर॰ 203]** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय एवं **स्माईल बनाम झारखण्ड राज्य [2009(1) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 193]** के मामले में अन्य निर्णय को निर्दिष्ट किया और उनपर भरोसा किया।

11. प्रतिद्वंदी निवेदनों से जो स्वीकृत तथ्य उद्भूत होते हैं वे ये हैं कि दोनों याचीगण प्रत्यर्थीगण पी॰ डी॰ आई॰ एल॰ के कर्मचारीगण थे और सिन्दरी स्थित प्रत्यर्थीगण के कार्यालय में पदस्थापित थे। स्वीकार्यत:, याची चन्देश्वर सिंह अपनी बीमार बहन से मिलने के प्रयोजन के लिए मुख्यालय से छुट्टी की अनुमति प्राप्त करने के उपरांत, याची संख्या 2 के पुत्र के साथ कलकत्ता गया था। दोनों को एक सड़क दुर्घटना में गंभीर चोटें आई और उन्हें बेहोशी की हालत में गाँववालों द्वारा निकटतम अस्पताल ले जाया गया जहाँ प्राथमिक उपचार के उपरांत डाक्टरों ने उन्हें कलकत्ता स्थित चिकित्सीय महाविद्यालय निर्दिष्ट कर दिया और वहाँ से वे कलकत्ता चिकित्सीय अनुसंधान संस्थान निर्दिष्ट किया गया।

12. याचीगण ने विनिर्दिष्ट रूप से स्पष्टीकरण दिया है कि दुर्घटना 17.11.2001 को घटित हुई थी जिसके उपरांत अस्पताल के out रोगी विभाग में नियमित चिकित्सीय परीक्षण होता था। दोनो याचीगण ने विनिर्दिष्ट रूप से आख्यापित किया है कि वह अस्पताल जहाँ घायल रोगियों के तौर पर उन्हें चिकित्सीय उपचार कराया गया था और वह अस्पताल जहाँ उन्हें बाह्य रोगी के तौर पर चिकित्सीय

उपचार उपलब्ध कराया गया था नियोक्ता द्वारा मान्यकृत ऐसे अस्पताल हैं जहाँ प्रत्यर्थी PDIL के कर्मचारीगण को चिकित्सीय उपचार प्राप्त करने की अनुमति है। इस दावे को विनिर्दिष्ट रूप से प्रत्यर्थीगण द्वारा विवादित और इन्कार नहीं किया गया है यद्यपि एक अस्पताल और सामान्य कथन द्वारा, प्रत्यर्थीगण ने याचीगण के चिकित्सीय बिलों की प्रतिपूर्त्ति करने से अपने इन्कार में इस आधार पर न्यायसंगत ठहराने का प्रयास किया है कि चिकित्सीय उपचार के व्ययों की प्रतिपूर्ति केवल तभी की जा सकती है जब ऐसा उपचार कर्मचारीगण द्वारा केन्द्र सरकार या राज्य सरकार के अस्पताल में से प्राप्त किया जाता है। उन परिस्थितियों जिनके अधीन याचीगण को उनकी बेहोशी हालत में उन्हें उनके द्वारा निर्दिष्ट अस्पताल में उनकी जान बचाने के प्रयोजन के लिए त्वरित रूप से ले जाना पड़ा था, की उपेक्षा नहीं की जा सकती और प्रत्यर्थीगण अपनी दायिता को मात्र यह कहकर इन्कार नहीं कर सकते कि याचीगण द्वारा प्राप्त किया गया उपचार प्रत्यर्थी नियोक्ता द्वारा मान्यता प्राप्त अस्पताल में नहीं कराया गया था। स्वीकार्यत:, याचीगण की सेवा शर्तों के अधीन, दोनों ही स्वयं और साथ-साथ अपने परिवार के आश्रित सदस्यों के लिए उपगत चिकित्सा व्ययों की चिकित्सीय प्रतिपूर्ति के अधिकारी थे। याचीगण द्वारा रखा गया दावा उस अवधि से संबंधित है जब वे सरकारी सेवा में थे और उनके एवं नियोक्ता के बीच विधिगत संबंध की विद्यमानता के दौरान सेवा शर्त्तों से मार्ग-निर्देशित थे।

प्रत्यर्थीगण द्वारा चलाई गई योजना के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए उनके द्वारा विकल्प देने से काफी पहले याचीगण द्वारा चिकित्सीय प्रतिपूर्ति के दावे को प्रस्तुत किया गया था।

13. एम॰ के॰ बिन्दल के मामले (ऊपर) और **एच॰ ई॰ सी॰ स्वैच्छिक सेवानिवृत्त कर्मचारीगण कल्याण समिति के मामले (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं है। यद्यपि VRS योजना के अधीन कर्मचारीगण को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प देने के उपरांत उनके द्वारा प्रस्तुत मौद्रिक लाभों के दावे से नियोक्ता के इन्कार को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, परन्तु यह वेतनमान में पुनरीक्षण पर मौद्रिक लाभों के भुगतान के दावे के संदाय में था। दोनों निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांत यह है कि संविदा के निबंधनों में एक बार किसी कर्मचारी द्वारा VRS योजना के अधीन सेवानिवृत्त होने का विकल्प देने पर वह पुनरीक्षण वेतनमानों के आधार पर उच्चतम वेतन या भुगतानों के बकायों का दावा नहीं कर सकता जबतक कि इस संबंध में नियोक्ता द्वारा किसी विरचित नीति अन्यथा प्रावधान न करें।

14. वर्तमान मामले में, चिकित्सा प्रतिपूर्ति के लिए दावा करने कर अधिकार देने याचीगण के उनकी सेवा शर्तों के अधीन प्रोद्भूत था, जो स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अधीन उनके द्वारा विकल्प के देने से पहले लागू होता था। दोनों याचीगण ने इस विश्वास और अपेक्षा पर चिकित्सीय व्ययों को उपगत किया था कि सेवा-संविदा के निबन्धनों के अनुसार नियोक्ता व्यय का प्रतिभूति करेगा, जो सुसंगत समय पर विद्यमान था। प्रत्यर्थी नियोक्ता इस अभिवाक् पर याची के पक्ष से इन्कार नहीं कर सकता कि याचीगण स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का विकल्प दे चुके थे और नहीं इस आधार पर कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अधीन समुचे मौद्रिक लाभ प्राप्त करके यह माना जाएगा कि याचीगण ने चिकित्सीय प्रतिपूर्ति के अपने दावे का अधित्यजन कर दिया है।

15. दोनो ही याचीगण निश्चित रूप से चिकित्सीय प्रतिपूर्ति का दावा करने का अधिकारी है। प्रतिपूर्ति को उनकी मांग के मानने से प्रत्यर्थी कम्पनी को इन्कार अवैधानिक, मनमाना और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के विरूद्ध है।

16. मैं इन रिट याचिकाओं में दम पाता हूँ। तद्नुसार, ये दोनो रिट याचिकाएं अनुज्ञात की जाती है। प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित दिनांक 12.11.2002 के आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-5 एवं 6) एतद् द्वारा निरस्त किए जाते हैं।

प्रत्यर्थीगण को क्रमशः दोनो याचीगण के चिकित्सीय प्रतिपूर्ति के माध्यम से चिकित्सीय बिलों की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है। इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुतीकरण की तिथि से दो महीनों के भीतर ऐसा भुगतान कर देना चाहिए अगर अनुबद्ध अवधि के भीतर भुगतान नहीं किया जाता है तो इसपर 10% वार्षिक ब्याज लगेगा। जिसका परिकलन राशि के भुगतान के देय होने की तिथि से अन्तिम भुगतान की तिथि तक किया जाएगा।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

कारू यादव

बनाम

झारखण्ड राज्य

दाण्डिक अपील सं॰ 157 वर्ष 2001. 4 मई, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 111 वर्ष 1999/19 वर्ष 2001 में द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 23.4.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 376—बलात्संग–बलात्संग के एक मामले में दोष का निष्कर्ष मात्र अभियोक्त्रि के असम्पूष्ट साक्ष्य पर आधृत हो सकता है, यदि अभियोक्त्रि का साक्ष्य विश्वास उत्पन्न करता है एवं विश्वास करने योग्य है–यद्यपि, घटना के समय अपीलार्थी की आयु मात्र 20 वर्ष होने का विचारण करके दोषसिद्धि कम की गई। (पैरा 12 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Shree Niwas Roy, For the Appellant; Mr. Binod Singh, For the Respondent.

निर्णय

यह दाण्डिक अपील सत्र विचारण सं॰ 111 वर्ष 1999/19 वर्ष 2001 में, श्री नरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह द्वारा दिनांक 23.4.2001 को पारित निर्णय के विरूद्ध है जिसमें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 376 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया है एवं दस वर्षों का कठोर कारावास भुगतने के लिए दंडित किया गया है एवं इसके अतिरिक्त प्रतिकर के रूप में पाँच हजार रुपए (5,000/-) के एक अर्थदण्ड का इस निर्णय की तारीख से तीन महीनों के भीतर भुगतान करने का निर्देश दिया गया है एवं अर्थदण्ड भुगतान न करने की स्थिति में, इसके अतिरिक्त दो वर्षों की अवधि के कठोर कारावास से दण्डित किया गया है जो कि साथ-साथ चलेगा।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि 11.2.99 को सुबह लगभग 6.30 बजे, खूँटाबाद गाँव, थाना बेन्गाबाद, जिला गिरिडीह के श्री विजय राणा की पत्नी सूचनादात्री ललीता देवी ने बेन्गाबाद पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी के समक्ष कथन किया कि 22.1.1999 को उसकी सास सरस्वती पूजा करने गई थी एवं उसके श्वसुर भी रिश्तेदार के घर गये थे एवं सूचिका अपने घर में अकेली थी। इसी बीच, कारू यादव (अपीलार्थी) अपने मवेशी को सूचिका के घर के समीप अपने खेत में चरा रहा था। लगभग 4 बजे शाम को कारू यादव सूचिका के पास आया एवं उससे पीने के पानी की मांग की। जब सूचिका अपने घर के भीतर पानी लाने गई तब कारू यादव उसके घर में घुँस गया एवं सूचिका पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया एवं कटार की नोंक पर उसके साथ उसकी इच्छा के विरूद्ध बलात्संग कारित किया। तत्पश्चात्, वह भाग गया। इसके अतिरिक्त यह भी अभिकथित है कि लगभग 5 बजे शाम को जब उसकी सास घर लौटी तब सूचिका ने उसे पूरी घटना का वृत्रांत दिया था। सूचिका की सास ने इसे गाँववालों को एवं कारू यादव के माता-पिता को भी बताया था। उक्त घटना के दो दिनों के पश्चात्, सूचिका का श्वसुर अपने रिश्तेदार के घर से वापस लौटा तब उसे भी इस के बारे में

सूचित किया गया था। सूचिका के श्वसुर ने भी गाँववालों एवं कारू यादव के माता-पिता को बताया था। सूचिका के श्वसुर को गाँव वालों ने कहा कि मामला एक पंचायत द्वारा निर्णित किया जाएगा एवं इसके अतिरिक्त सूचिका एवं उसके परिवारवालों को इस मामले की सूचना पुलिस को देने से मना किया था। परन्तु, गाँववालों एवं कारू यादव के माता पिता ने पंचायती को एक या अन्य अभिवाक द्वारा कई बार आस्थगित किया था। तब सूचिका के श्वसुर ने जंगलपुरा गाँव के आदिवासी समुदाय को सूचित किया एवं मामले का निर्णय करने के लिए लिखित रिपोर्ट दिया था। 10.2.99 को लगभग 7 बजे सुबह में, जब कारू यादव सूचिका के घर के समीप अपने खेत में काम कर रहा था तब जंगलपुरा गाँव के चार आदिवासी वहाँ आए एवं कारू यादव को आदिवासी समुदाय के पंचायती के समक्ष ले आए। सूचिका भी अपने अभिभावक के साथ आदिवासी पंचायती गई परन्तु कारू यादव के अभिभावक बार-बार बुलाने के बावजूद भी आदिवासी पंचायती में नहीं गए। परन्तु कारू यादव ने आदिवासी पंचायत के समक्ष अपने दोष को स्वीकार किया एवं तत्पश्चात् आदिवासी पंचायती से भाग गया। इस सूचना के आधार पर कारू यादव के विरूद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 448, 341 एवं 376 के अधीन एक मामले को पंजीकृत किया गया है। अन्वेषण के पश्चात्, अन्वेषण अधिकारी ने मात्र भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया है। तत्पश्चात्, यह मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था।

3. अभियुक्त व्यक्ति ने दोषी न होने का अभिवाक् किया है एवं इस मामले में उसके झूठी आलिप्तीकरण के बारे में पुरानी दुश्मनी को कारण बताया है एवं आगे बचाव यह है कि उसकी एक एकड़ की माप वाली भूमि को हथियाने के लिए ऐसा किया गया है जो कि सूचिका के घर के समीप है। अभियोजन ने उनके बीच अपने मामले को प्रमाणित करने के लिए सात साक्षियों को परीक्षित किया है। अ॰ सा॰ सं॰ 1, 2 एवं 3 पक्षद्रोही साक्षी घोषित किए गए हैं। अ॰ सा॰ 4 सास है, अ॰ सा॰ 5 सूचिका का श्वसुर है एवं अ॰ सा॰ 6 स्वयं सूचिका है एवं अ॰ सा॰ 7 इस मामले का अन्वेषण अधिकारी है।

4. अ॰ सा॰ 4 सूचिका की सास है। उसने साक्ष्य दिया है कि घटना के अभिकथित तिथि को वह सरस्वती पूजा देखने गई थी एवं जब वह लगभग 5 बजे शाम को वापस लौटी, तब उसने देखा कि उसकी बहु, ललीता देवी (पीड़िता) अपने घर में अकेली थी। ज्योंही वह वापस आई, उसकी बहू ने ऊपर कथित घटना का पूर्ण वृत्तांत दिया एवं उसे बताया कि शाम के लगभग 4 बजे कारू यादव उसके पास आया एवं उससे पानी लाने के लिए कहा एवं जैसे ही वह घर में पानी लाने के लिए गई, वैसे ही कारू यादव ने उसका पीछा किया एवं बलपूर्वक उसके मुँह में साड़ी डाला एवं कटार की नोंक पर उसकी इच्छा के विरूद्ध बलात्संग कारित किया। अ॰ सा॰ 4 ने आगे साक्ष्य दिया कि ज्योंही इसके बारे में जानकारी हुई वह कारू यादव की माँ के पास गई एवं उसे पूरी घटना बताई। इस प्रकार से अ॰ सा॰ 4 ने अभियोजन मामले को समर्थित एवं सम्पोषित किया है। यह साक्षी प्रतिपक्ष द्वारा विस्तारपूर्वक प्रति-परीक्षित की गई थी परन्तु वह प्रति-परीक्षण की परीक्षा में खरी उतरी है।

5. अ॰ सा॰ 5 पीड़ित महिला (अ॰ सा॰ 6) का श्वसुर है। उसने पूर्ण रूप से अभियोजन मामले का समर्थन किया है एवं प्रतिपक्ष द्वारा इसके प्रति-परीक्षण में, यह साक्षी प्रति-परीक्षण की परीक्षा में खरा उतरा है।

6. अ॰ सा॰ 7 अन्वेषण अधिकारी है जिसने साक्ष्य दिया है कि जब वह बेन्गाबाद पुलिस थाने में उप-निरीक्षक के रूप में पदस्थापित था, तो 10.2.99 को लगभग 5.30 बजे शाम को अभियुक्त कारू यादव का बड़ा भाई पुलिस स्टेशन आया एवं एक लिखित रिपोर्ट दिया था कि उसका छोटा भाई कारू यादव (अपीलार्थी) (अ॰ सा॰ 5) खुँटाबन्द के चौरामन राणा के साथ कुछ अज्ञात व्यक्ति द्वारा 10.2.99 को व्यपहृत किया गया था। उसने सनहा दर्ज किया एवं इस मामले को प्रमाणित करने के लिए खूँटाबन्द गाँव गया। अन्वेषण करने की प्रक्रिया के दौरान उसे पता चला कि 22.1.99 को अभियुक्त कारू यादव ने अ॰ सा॰ 6 अर्थात् ललीता देवी, चौरामन राणा की बहू पर बलात्संग कारित किया था एवं अपने भाई को बचाने हेतु चौरामन राणा के विरूद्ध यह झूठी सनहा दर्ज कराई थी। उसने

आगे साक्ष्य में कहा है कि चौरामन राणा ने आदिवासी समुदाय को एक लिखित रिपोर्ट दी थी एवं जब कारू यादव के परिवार के सदस्य पंचायती में नहीं आए, तब पीड़ित महिला के पास कोई विकल्प नहीं था सिवाय पुलिस को सूचित करने के। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 7 ने पूर्ण रूप से अभियोजन मामले का समर्थन किया है।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि कथित घटना के 20 दिनों के पश्चात् प्र॰ सू॰ रि॰ दर्ज की गई थी एवं इसके लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त, पीड़ित महिला डॉक्टर द्वारा परीक्षित नहीं की गई है।

8. मेरे विचार में, पीड़ित महिला ने अपने फर्दबयान में ऊपर कथित विलंब के लिए पर्याप्त तर्क दिया है क्योंकि उसने कहा कि उसने एवं उसके परिवार के सदस्यों ने सर्वप्रथम ग्राम पंचायत में मामला दर्ज किया था परन्तु चूँकि एक या अन्य अभिवाक् से गाँववालों या कारू यादव के परिवार के सदस्य ने पंचायती को आस्थगित किया तब उनलोगों ने जंगलपुरा गाँव के आदिवासी समुदाय को सूचित किया एवं मामले को निर्णित करने के लिए एक लिखित रिपोर्ट दाखिल किया था। तत्पश्चात् आदिवासी समुदाय का पंचायती कराया गया एवं कारू यादव ने आदिवासी समुदाय के समक्ष अपना दोष स्वीकार किया था एवं तत्पश्चात् वह भाग गया था। सूचिका के पास पुलिस को सूचना देने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं रहा एवं तद्नुसार उसने अपीलार्थी के विरूद्ध इस वर्तमान मामले को दाखिल किया। इसलिए, मैं पाती हूँ कि विलंब सूचिका (पीड़ित महिला) द्वारा पूर्ण रूप से स्पष्ट किया गया है एवं इसे अ॰ सा॰ 4, 5 एवं 7 द्वारा भी समर्थन किया गया था।

9. मैं, अ॰ सा॰ 7 (उसके प्रति-परीक्षण के पैराग्राफ 16 में) के साक्ष्य से, जब प्रतिपक्ष द्वारा ध्यान आकर्षित किया गया था, पाती हूँ कि क्यों उसने पीड़ित महिला के कपड़ों को जब्त नहीं किया है एवं पीड़ित महिला को चिकित्सीय परीक्षण के लिए नहीं भेजा तब इस साक्षी ने स्पष्ट रूप से साक्ष्य दिया कि क्योंकि घटना के दिन से 20 दिन बीत चुके थे इसलिए उसने सोचा कि चिकित्सीय जाँच की आवश्यकता नहीं है क्योंकि 20 दिनों में पीड़ित महिला के उपहति, यदि कोई है तो भर जाएगी एवं डॉक्टर द्वारा 20 दिनों के अन्तराल के पश्चात् बलात्संग का कोई भी निशान नहीं पाया जा सकेगा।

10. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि अभियोजन द्वारा अ॰ सा॰ 1, 2 एवं 3 पक्षद्रोही घोषित किए गए हैं एवं विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को मात्र अ॰ सा॰ 4, 5 एवं 6 के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया है जो कि पूर्ण रूप से हितबद्ध साक्षीगण हैं। परन्तु अ॰ सा॰ 7 अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य से मैं पाती हूँ जिसने साक्ष्य में कहा है कि अ॰ सा॰ 1, 2 एवं 3 ने पूर्ण रूप से दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन उसके समक्ष अभियोजन मामले का पूर्ण समर्थन किया है।

11. अन्ततः अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपीलार्थी प्रथम बार दोषसिद्ध हुआ है एवं कथित घटना के समय वह मात्र 20 वर्षों का था एवं वह 4 वर्षों से भी अधिक समय तक कारावास में था। इसलिए उसके युवा उम्र को ध्यान में रखते हुए, दण्डादेश देने में कृपालु दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है।

12. अब यह पूर्ण रूप से स्थापित है कि बलात्संग के एक मामले में दोष का एक निष्कर्ष मात्र अभियोक्त्री के असंपुष्ट साक्ष्य पर ही आधृत हो सकता है, यदि अभियोक्त्री का साक्ष्य आत्मविश्वास उत्पन्न करता है एवं विश्वास करने योग्य है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मामलों में अभिनिर्धारित किया है कि अभियोक्त्री के साक्ष्य को लघु अनियमितताओं के आधार पर खंडित नहीं करना चाहिए। पक्षकारों के साक्ष्य के सूक्ष्म परीक्षण के पश्चात् एवं दोनों पक्षकारों को विस्तार से सुनने के पश्चात् मैं पाती हूँ कि पीड़ित महिला, ने पूर्ण रूप से अपने मामले को स्थापित एवं सिद्ध किया है एवं अन्य साक्षीगण अर्थात् अ॰ सा॰ 4, 5 एवं 7 ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है।

13. ऊपर कथित सभी कारणों से, मैं अभिनिर्धारित करती हूँ कि अभियोजन ने अपीलार्थी, कारू यादव के दोष को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन दोषसिद्धि के लिए सभी युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित किया है। तद्नुसार, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन अपीलार्थी कारू यादव की दोषसिद्धि को मान्य ठहराया गया है।

14. अब दण्डादेश का प्रश्न रह जाता है क्योंकि घटना के समय अपीलार्थी मात्र 20 वर्षों का ही था एवं वह एक अनपढ़ गाँववाला है एवं प्रथम बार वह एक दाण्डिक मामले में संलिप्त हुआ एवं दोषसिद्ध किया गया है। मेरी राय के अनुसार, यदि वह कारावास में लम्बे समय के लिए रहता है, तो वह फिर से पेशेवर अपराधियों के साथ अच्छी तरह से मिल जाएगा एवं अपने कारावास से मुक्त होने के पश्चात् वह एक अनुभवी अपराधी में परिवर्तित हो जाएगा। इसलिए, कारावास में बुरी संगति के कारण एक युवा व्यक्ति को एक पेशेवर अपराधी में परिवर्तित होने से बचाने के लिए एवं इसके अतिरिक्त, उसके पूरे परिवार, उसकी पत्नी एवं उसके बच्चों को परेशान एवं नष्ट होने से बचाने के लिए जिनका उनकी ओर से कोई गलती नहीं होने से, क्योंकि वह एक पारिवारिक आदमी है एवं अपने परिवार का एकमात्र कमाने वाला सदस्य है, यह न्यायोचित एवं उचित नहीं होगा कि उसे फिर से कारावास में लम्बे समय के लिए भेज दिया जाए। अपीलार्थी के उम्र पर विचार करते हुए एवं प्रथम बार दोषसिद्ध किए जाने एवं कालावधि को विचारण में लेते हुए जब वह कारावास में था एवं मामले के पूरे दृष्टिकोण को लेते हुए विचारण करते हुए वह सात वर्षों का कठोर कारावास भुगतने एवं क्षतिपूर्ति के रूप में 5000/- रुपए के एक अर्थदण्ड का भुगतान करने के लिए दण्डित किया गया है एवं अर्थदण्ड की वसूली के पश्चात (यदि यह अभी जमा नहीं किया गया है) इसे पीड़ित महिला को इस निर्णय के तीन महीनों के भीतर भुगतान किया जाना है एवं अर्थदण्ड का भुगतान न करने की स्थिति में, अपीलार्थी, कारू यादव को इसके अतिरिक्त एक वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भुगतना है।

15. ऊपर कथित कारणों से, यह अपील दण्डादेश में ऊपरकथित संशोधन के साथ अंशत: अनुज्ञात की जाती है। चूँकि अपीलार्थी जमानत पर है, उसकी जमानत बंध-पत्र रद्द की जाती है एवं उसे तुरन्त न्यायालय के समक्ष उसके विरूद्ध पारित किए गए दण्डादेश को भुगतने के लिए आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अपीलार्थी द्वारा दण्डादेश का पहले ही भुगता हुआ समय घटाया जायगा।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

नेशनल इन्श्योरेंश कं॰ लि॰ एवं अन्य

बनाम

श्रीमती संजोरी देवी

W.P.(C) No. 1337 वर्ष 2007. 28 अप्रैल, 2009 को विनिश्चित।

(क) विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987—धारा 22C(8)—स्थायी लोक अदालत—अधिकारिता—बीमा की बीमित राशि के सम्बन्ध में विवाद—अभिनिर्धारित, जब सुलह असफल हो जाय एवं समझौता/करार नहीं किया जा सका तो स्थायी लोक अदालत विवाद को अधिनियम की धारा 22C(8) के अधीन प्रदत्त अवशेषी शक्ति के आलोक में विनिश्चित कर सकता है। (पैरा 8 से 11)

(ख) विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987—धारा 22C(8)—स्थायी लोक अदालत की शक्ति एवं अधिकारिता—स्थायी लोक अदालत को धारा 22C की उप-धाराएँ 4 से 7 के प्रावधानों के अध्यधीन विवाद को न्यायनिर्णित करने की शक्ति है। (पैरा 9)

निर्णयज विधि.—2008(3) JLJR 513; 2008(2) SCC 660; 2008(7) SCC 454—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. Alok Lal, For the Petitioners; Mr. Jitendra Kumar Pasari, For the Respondent.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका में याची स्थायी लोक अदालत द्वारा विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करके दिनांक 12.12.2006 को पारित किए गए

अधिनिर्णय को अभिखंडित/अपास्त करने के लिए उत्प्रेषण या कोई अन्य यथोचित रिट, आदेश या निर्देश की प्रकृति के रिट के निर्गतीकरण की प्रार्थना करता है जिसके माध्यम से उन्होंने प्रत्यर्थी सं॰ 1 को 5,00,000/- रू॰ 9% प्रतिवर्ष ब्याज सहित भुगतान किए जाने का निर्देश याची को दिया है।

2. तथ्य, संक्षेप में निम्नवत उपवर्णित हैं:-

वर्तमान प्रत्यर्थी ने धनंजय कुमार सिंह की, जो याची के साथ दुर्घटना बीमा पॉलिसी के अंतर्गत आच्छादित था मृत्यु के कारण 5,00,000/- रू॰ के विस्तार तक बीमित धनराशि के भुगतान के लिए एक दावा याचिका दाखिल किया। यद्यपि, याची प्राधिकारी ने दावे पर इस आधार पर विवाद किया है कि मृत्यु के विनिर्दिष्ट कारण के सम्बन्ध में कोई भी समर्थनकारी दस्तावेज संलग्न नहीं किया गया था एवं तदनुसार दिनांक 23.11.2004 के अपने पत्र के माध्यम से दावे का निराकरण किया। वर्तमान प्रत्यर्थी ने स्थायी लोक अदालत, धनबाद के समक्ष उपरोक्त आदेश के विरूद्ध दावा दाखिल किया जिसे P.L केस सं॰ 1253 वर्ष 2005 के तौर पर दर्ज किया गया था। नोटिस दिए जाने पर याची प्राधिकारी ने स्थायी लोक अदालत के समक्ष मामले के पोषनीयता को चुनौती दिया।

3. याची के अधिवक्ता द्वारा दिया गया मुख्य तर्क यह है कि स्थायी लोक अदालत को प्रत्यर्थी के दावे को न्यायनिर्णित करने की कोई अधिकारिता नहीं थी एवं उसे मामले को सिविल न्यायालयों को प्रतिप्रेषित करना चाहिए था। यह भी निवेदन किया गया था कि जबतक सुलह कार्यवाही नहीं करवायी गयी थी जैसा कि विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 की धारा 22 C (4) के अधीन अपेक्षित है, तबतक इसे किसी समझौता या परिनिर्धारण की अनुपस्थिति में विवाद को विनिश्चित करने की कोई अधिकारिता नहीं थी। अंतत:, स्थायी लोक अदालत द्वारा विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 के अधीन शक्ति को प्रयोग करके 12.12.2006 को अधिनिर्णय पारित किया गया था जिसके माध्यम से याची प्राधिकारी को 5,00,000/- रू॰ 9% प्रतिवर्ष ब्याज सहित भुगतान वर्तमान प्रत्यर्थी को करने का निर्देश दिया गया था।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस न्यायालय के समक्ष विवेचनार्थ प्रश्न यह है कि क्या स्थायी लोक अदालत को मामले को न्यायनिर्णित करने एवं विनिश्चित करने एवं अधिनिर्णय सुनाने की अधिकारिता थी। याची कंपनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया दूसरा तर्क यह है कि स्थाई लोक अदालत को विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 के अध्याय VI A के अधीन मात्र एक सुलहकर्ता या माध्यस्थ के तौर पर कार्य करने के लिए स्थापित किया गया था न कि न्यायनिर्णायक के तौर पर कार्य करने के लिए।

5. मैंने इस मुद्दे पर अभिवचनों, परस्पर विरोधी निवेदनों एवं साथ ही तय विधि पर विचार किया है। अध्याय VI A को अधिनियम (अधिनियम 37 वर्ष 2002) में 2002 में 11.6.2002 के प्रभाव से अंत:स्थापित किया गया था। उपरोक्त संशोधन द्वारा धारा 22-A, से धारा 22-E तक को अंत:स्थापित किया गया था। धारा 22-A का खण्ड (a) ''स्थायी लोक अदालत'' को परिभाषित करता है जिसका अभिप्राय है धारा 22-B की उप-धारा (1) के अधीन स्थापित एक स्थायी लोक अदालत। धारा 22-B केन्द्रीय प्राधिकार एवं राज्य प्राधिकार को एक या अधिक सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं के सम्बन्ध में ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए अधिसूचना द्वारा स्थायी लोक अदालत स्थापित करने की शक्ति प्रदान करता है। धारा 22-C सुसंगत प्रावधान है जो विवादों के निपटारे का प्रावधान करता है एवं स्थायी लोक अदालत की शक्ति एवं अधिकारिता को spell out करता है। धारा 22-C निम्नवत पठित है:-

> *''22-C. स्थायी लोक अदालत द्वारा मामलों का संज्ञान.—(1) विवाद का कोई भी पक्षकार विवाद को कोई न्यायालय में लाये जाने से पहले विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत में आवेदन कर सकता है।*

परन्तु यह कि स्थायी लोक अदालत को किसी विधि के अधीन अशमनीय किसी अपराध से सम्बन्धित किसी विषय के सम्बन्ध में अधिकारिता नहीं होगी:

परन्तु यह भी कि स्थायी लोक अदालत को उस विषय में अधिकारिता नहीं होगी जहाँ विवादित संपत्ति का मूल्य दस लाख रूपये से अधिक है:

परन्तु और यह भी कि केन्द्र सरकार केन्द्रीय प्राधिकार से मशविरा करके अधिसूचना द्वारा द्वितीय परन्तुक में विनिर्दिष्ट दस लाख रूपये की सीमा को बढ़ा सकता है।

(2) उप-धारा (1) के अधीन स्थायी लोक अदालत को आवेदन किये जाने के उपरांत, उस आवेदन का कोई भी पक्षकार उसी विवाद में किसी न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब नहीं लेगा।

(3) जहाँ उप-धारा (1) के अधीन स्थायी लोक अदालत को कोई आवेदन किया जाता है, वहाँ यह-

(a) आवेदन के प्रत्येक पक्षकार को इसके समक्ष एक लिखित कथन दाखिल किए जाने का निर्देश देगा, इसमें आवेदन के अधीन विवाद की प्रकृति एवं तथ्यों, ऐसे विवाद के मुद्दे एवं बिंदू तथा इसके समर्थन में या ऐसे मुद्दे या बिंदू के विरोध में भरोसा किए गए आधार, यथास्थिति, का कथन करते हुए एवं ऐसा पक्षकार ऐसे कथन, कोई दस्तावेज एवं अन्य साक्ष्य को संपूरित करेगा जिसे ऐसा पक्षकार ऐसे तथ्यों एवं आधारों के प्रमाण में यथोचित समझता है एवं ऐसे दस्तावेज एवं अन्य साक्ष्य, यदि कोई हो, की एक प्रति सहित ऐसे कथन की एक प्रति आवेदन के प्रत्येक पक्षकारों को भेजेगा;

(b) आवेदन के प्रत्येक पक्षकार को सुलह कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर इसके समक्ष अतिरिक्त कथन दाखिल करना आवश्यक बना सकता है;

(c) आवेदन के किसी पक्षकार से प्राप्त किसी दस्तावेज या कथन को दूसरे पक्षकार को इसका उत्तर दाखिल करने में समर्थ बनाने के लिए उसे संसूचित करेगा।

(4) जब कथन, अतिरिक्त कथन एवं उत्तर, यदि कोई हो, उप-धारा (3) के अधीन स्थायी लोक अदालत की संतुष्टि के लिए दाखिल किया गया हो, तो यह आवेदन के पक्षकारों के बीच सुलह कार्यवाही करेगा ऐसी रीति में जैसा कि यह विवाद के परिस्थितियों पर विचार करते हुए उचित समझे।

(5) स्थायी लोक अदालत उप-धारा (4) के अधीन सुलह कार्यवाही के संचालन के दौरान, पक्षकारों को किसी स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रीति में विवाद को सौहार्दपूर्ण समझौते तक पहुंचने के उनके प्रयास में सहायता करेगा।

(6) आवेदन से संबंधित विवाद के सुलह में सद्भाव में स्थायी लोक अदालत के साथ सहयोग करने एवं साक्ष्य तथा अन्य सम्बन्धित दस्तावेज स्थायी लोक अदालत के समक्ष पेश करने के लिए इसके निर्देश का अनुपालन करना आवेदन के प्रत्येक पक्षकार का कर्त्तव्य होगा।

(7) जब उपरोक्त सुलह कार्यवाहियों में स्थायी लोक अदालत इस राय का है कि ऐसी कार्यवाहियों में सुलह का तत्व मौजूद है जो पक्षकारों को ग्राह्य हो सकता है तो यह विवाद के संभावित समझौते के निबंधनों को विरचित कर सकता है एवं

इसे सम्बन्धित पक्षकारों को उनके सम्प्रेक्षण हेतु दे सकता है एवं पक्षकारों के विवाद के समझौते पर कोई करार होने की दशा में, वे समझौता करार पर हस्ताक्षर करेंगे एवं स्थायी लोक अदालत इसके निबंधनों में एक अधिनिर्णय पारित करेगा एवं इसकी एक प्रति सम्बन्धित पक्षकारों को उपलब्ध करायेगा।

(8) जहाँ उप-धारा (7) के अधीन किसी करार तक पहुंचने में असफल रहने पर, यदि विवाद किसी अपराध से सम्बन्धित नहीं है तो विवाद को विनिश्चित करेगा।''

6. उपरोक्त प्रावधान के परिशीलन से यह सुव्यक्त होगा कि खण्ड 22C(8) के अधीन यदि पक्षकार कोई करार करने में असफल रहते हैं जैसा कि धारा 22C की उप-धारा 7 के अधीन उपबंधित है, तो विवाद को विनिश्चित करने में स्थायी लोक अदालत द्वारा अधिनियम की धारा 22(8) का अवलम्ब लिया जा सकता है यदि यह किसी अपराध से सम्बन्धित न हो। स्थायी लोक अदालत को प्रदत्त उपरोक्त सांविधिक शक्ति को एक अवशेषी शक्ति के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है भले ही यह शब्द ''करेगा'' के कारण आज्ञापक प्रकृति का है परंतु इसका प्रयोग सीधे तौर पर या सांविधिक प्रावधानों के उल्लंघन में नहीं किया जा सकता है। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि अध्याय VI A को किसी वादपूर्व सुलह एवं समझौते पर विचार करने के लिए विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 में अंत:स्थापित किया गया था। लेकिन, संसद ने अपनी वुद्धिमत्ता से स्थायी लोक अदालत को धारा 22C के उप-धारा 8 के अधीन एक राइडर के साथ अर्थात् यदि पक्षकार कोई करार करने में असफल रहते हैं, विवाद को निनिश्चित करने की भी शक्ति प्रदान की है। उच्च न्यायालय को रिट अधिकारीता के अधीन किसी सांविधिक प्रावधान को जोड़ने, प्रतिस्थापित करने, उपान्तरित करने की कोई अधिकारिता नहीं है एवं इसे वैसा ही पढ़ा जाना है जैसा कि यह है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक हाल के विनिश्चय में यूनाईटेड इन्श्योरेंश कं॰ द्वारा दाखिल एक अपील से उद्भूत एक सदृश मुद्दे पर विचार किया है एवं इसे 2008(7) SCC पृष्ठ 454 के तौर पर प्रकाशित किया गया है एवं निर्णय के पैरा-28 को निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत अभिनिर्धारित किया है:-

''28. लेकिन, तथापि, यहाँ स्थायी लोक अदालत कोई माध्यस्थ की भूमिका नहीं निभाता है जिसका अधिनिर्णय चुनौती की विषय-वस्तु हो सके एवं एक न्यायनिर्णायक की भी भूमिका निभाता है। संसद ने मामले को विनिश्चित करने का प्राधिकार स्थायी लोक अदालत को दी है। यह एक न्यायनिर्णय करने की भूमिका अदा करता है।''

7. 2008(2) SCC पृष्ठ 660 (पंजाब राज्य एवं एक अन्य बनाम् जालौर सिंह एवं अन्य) में प्रकाशित एक अन्य निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालयय ने विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 के प्रावधानों पर गौर करके सम्प्रेक्षित किया कि जबकि स्थायी लोक अदालत को न्याय, साम्या, फेयर प्ले एवं अन्य विधिक सिद्धांतों द्वारा नियंत्रित अपनी सुलहकारी भूमिका द्वारा किसी न्यायोचित समझौता पर पहुँचना था, परंतु उस मामले में इसने एक न्यायिक भूमिका उपधारित किया, पक्षकारों को सुना, सर्वसम्मति के न होने की उपेक्षा की, एवं एक युक्तिसंगत आदेश द्वारा प्रतिकर को बर्द्धित उस सीमा तक अनुज्ञात किया जिसे इसने उचित समझा जो न्यायनिर्णायक की प्रकृति का है। इसने उच्च न्यायालय की शक्तियों का अनधिकार प्रयोग किया एवं अपील को ''अनुज्ञात'' किया एवं अपील के प्रत्यर्थीगण को इसके द्वारा नियत अवधि के भीतर वर्द्धित प्रतिकर का भुगतान करने का ''निर्देश'' दिया। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसा कोई आदेश अधिनिर्णय नहीं है। लेकिन, यह विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 की धारा 20(3) एवं (5) के अंतर्गत यथा उपबंधित लोक अदालत से सम्बन्धित एक मामला था।

8. इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ ने 2008(3) JLJR पृष्ठ 513 मे प्रकाशित एक हाल के मामले में सुसंगत सांविधिक प्रावधान एवं इसके सम्बन्ध में निर्णयज विधि पर विचार करते समय यह अभिनिर्धारित किया कि एक न्यायनिर्णायक भूमिका निभाते समय स्थायी लोक अदालत प्रतिकर एवं

लागत अधिनिर्णित करने के लिए टेलीग्राफ अधिनियम एवं नियमावली के प्रावधानों की उपेक्षा नहीं कर सकता है एवं यह अधिकारितारहित एवं आधारहीन अभिनिर्धारित किया गया था। स्थायी लोक अदालत का कर्त्तव्य पक्षकारों के बीच समझौता करवाना एवं विवाद का न्यायनिर्णयन करने के बजाय एक अधिनिर्णय पारित करना है एवं इसे अधिनियम की धारा 22(C) की उप-धारा 8 के प्रावधान का अवलम्ब लेने की कोई अधिकारिता नहीं थी।

9. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों एवं विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम के सुसंगत प्रावधान, स्थायी लोक अदालत की शक्ति एवं अधिकारिता एवं मुद्दे पर मौजूद निर्णयज विधि पर विचार करके, सर्वसम्मति यही रहता है कि धारा 22C(8) के अधीन शक्ति विवाद को विनिश्चित करने की है। यद्यपि, यह धारा 22C की उप-धारा 4 से 7 के प्रावधानों के अध्यधीन है। इस बात में कोई विवाद नहीं है कि यहाँ तक कि स्थायी लोक अदालत का मुख्य एवं बुनियादी कार्य वादपूर्व प्रक्रम पर विवाद को सुलझाना एवं कोई करार या समझौता करवाना है एवं धारा 22C(8) की शक्ति का प्रयोग मात्र अंतिम उपाय के तौर पर ही किया जाना चाहिए।

10. चुनौती के अधीन आक्षेपित आदेश में, जब सुलह/समझौता असफल हो गया तो स्थायी लोक अदालत ने वर्तमान प्रत्यर्थी के पति द्वारा लिए गए बीमा पालिसी के आधार पर 5,00,000/- की धनराशि अधिनिर्णित किया जो बीमित राशि था एवं तदनुसार स्थायी लोक अदालत ने याची बीमा कंपनी को वर्तमान प्रत्यर्थी के पक्ष में इसे निक्षेपित करने का निर्देश दिया जिसपर सहमति हुई थी। इस प्रकार यह एक ऐसा मामला नहीं है जहाँ स्थायी लोक अदालत ने प्रतिकर अधिनिर्णित किया था एवं या सांविधिक प्रावधानों एवं या नियमावली के प्रावधानों के उल्लंघन में लागत अधिरोपित किया था बल्कि इसने बीमा नीति के आधार पर बीमित राशि अधिनिर्णित किया था।

यह सुव्यक्त होगा कि स्थायी लोक अदालत ने प्रतिकर/क्षतियों के अन्य दावों को अस्वीकार किया जैसा कि प्रार्थना किया गया है। इस न्यायालय की माननीय खंड पीठ (ऊपर) ने उचित रूप से ही अभिनिर्धारित किया है कि स्थायी लोक अदालत ने टेलीग्राफ अधिनियम एवं नियमावली की उपेक्षा करके न्यायनिर्णायक भूमिका अदा की थी एवं 10,000/- रू॰ का प्रतिकर एवं 2,000/- रू॰ का लागत अधिनिर्णित किया था जो पूर्णतया अधिकारिताविहीन था।

11. मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके एवं इस स्वीकृत स्थिति की दृष्टि में कि वर्तमान मामले में जब सुलह असफल हो गया एवं समझौता/करार नहीं हो सका तव स्थायी लोक अदालत ने उचित रूप से ही विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम की धारा 22C(8) के अधीन प्रदत्त अवशेषी शक्ति के आलोक में विवाद को विनिश्चित किया एवं पॉलिसी में बीमित राशि के भुगतान का निर्देश दिया।

12. इस मामले के विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैं स्थायी लोक अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं हूँ एवं रिट याचिका को तदनुसार व्ययों के सम्बन्ध में किसी आदेश के बिना खारिज किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

अमित राज वर्धन

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

Cr.M.P. No. 92 वर्ष 2009. 8 मई, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 311—साक्षियों को सम्मन—विचारण न्यायालय को मामले के न्यायोचित विनिश्चय के लिए किसी भी साक्षी या नये साक्षियों को बुलाने, फिर से बुलाने या सम्मन करने की शक्ति है एवं इस शक्ति का प्रयोग अभियोजन या प्रतिरक्षा की समाप्ति के उपरांत भी किया जा सकता है—इस शक्ति का प्रयोग तबतक किया जा सकता है जबतक न्यायालय द्वारा निर्णय सुना नहीं दिया गया है। (पैरा 7 से 12)

निर्णयज विधि.—2002(2) JCR 272(SC); (2006)3 SCC 374—Relied upon.

अधिवक्तागण.—Mr. Sameer Saurabh, For the Petitioner; Mr. Shekhar Sinha, For the State; M/s Nilesh Kumar, Mahesh Kr. Sinha, For the Opp. Parties.

आदेश

पक्षकारों को सुना।

2. दिनांक 17.6.2008 के आक्षेपित आदेश के द्वारा, विचारण न्यायालय ने दो आरोपित प्रत्यक्षदर्शियों अर्थात श्वेता वर्मा एवं रोहित यशवर्धन के परीक्षण हेतु अभियोजन द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 के अधीन दाखिल याचिका मुख्यत: दो आधारों पर खारिज किया है:-

(i) उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसार विचारण एक विहित अवधि के अन्तर्गत समाप्त किया जाना है परन्तु अभियोजन की त्रुटियों के कारण विचारण का निस्तारण विलंबित हो रहा है।

(ii) पूर्व में भी अभियोजन को इस साक्षी अर्थात श्वेता वर्मा एवं शिल्पी वर्मा की परीक्षा करने की अनुमति दी गयी थी परंतु मात्र शिल्पी वर्मा का साक्ष्य ही अभिलिखित किया गया था एवं स्वेता वर्मा अभिसाक्ष्य देने के उपस्थित नहीं हुई।

(iii) एवं अब जब दोनों पक्षकारों की सम्मति से मामले पर अंतिम बहस के लिए 17.6.2008 नियत किया गया था तब उस दिन दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 के अधीन एक याचिका दोनों साक्षियों की परीक्षा के लिए दाखिल किया गया इसलिए, न्याय के हित के संतुलन का झुकाव यह निष्कर्ष निकालने के लिए है कि मामले को किसी अभियोजन साक्षी के साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए और अधिक समय अभियोजन को दिए बिना समाप्त किया जाना चाहिए।

3. वास्तविक मुद्दे का विनिश्चय करने के क्रम में, मामले की पृष्ठभूमि पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

सीवान (बिहार) में अभ्यास करने वाले एक अधिवक्ता अर्थात रघुवीर शरण वर्मा एवं उनकी पत्नी मधु वर्मा की निर्दयतापूर्वक हत्या अभिकथित रूप से अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा कर दी गयी थी इस तथ्य के कारण कि मृतक रघुवीर शरण वर्मा, अधिवक्ता ने उस मामले पर समझौता करने से इनकार कर दिया था जिसमें अभियुक्त व्यक्तियों को उनके पुत्र सुमित हर्शवर्धन की हत्या कारित करने के लिए अभियोजित किया जा रहा था। इस मामले में प्राथमिकी दर्ज की गयी थी, मामले पर अन्वेषण किया गया था एवं अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध आरोप-पत्र पेश किया गया था एवं अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध विचारण बिहार राज्य में सत्र न्यायालय सीवान में प्रारंभ हुआ।

याची द्वारा एक आवेदन किए जाने पर, सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 11.2.2002 के आदेश द्वारा विचारण बिहार से झारखण्ड राज्य में स्थानान्तरित करने का आदेश दिया था क्योंकि उक्त सत्र विचारण के पारिवारिक सदस्यों एवं अन्य साक्षियों को निरंतर बुरे परिणामों की धमकी दी जा रही थी यदि वे लोग मामले में अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध अभिसाक्ष्य देते हैं।

सत्र विचारण 6.4.2002 को श्री बी॰ एम॰ सिंह के न्यायालय में स्थानान्तरित किया गया था। आरोपों को 23.7.2004 को विरचित किया गया था एवं मामले में साक्ष्य 4.12.2006 को प्रारंभ हुआ

था। यद्यपि, पीठासीन अधिकारी के स्थानान्तरण के कारण एवं मो॰ गुड्डु के फरार होने के विचारण लंबित रहा। तत्पश्चात्, मो॰ गुड्डु का विचारण 14.9.2007 को पृथक किया गया था एवं मामले को अग्रेतर साक्ष्य हेतु 21.9.2007 नियत किया गया था। विचारण आगे नहीं चल सका था क्योंकि पीठासीन अधिकारी का पुनः स्थानान्तरण किया गया था एवं, अंततः, मामले को श्री बी॰ झा प्रवीर, AJC, राँची के न्यायालय में स्थानान्तरित किया था, जिन्होंने 12.12.2007 को अभिलेख प्राप्त किया एवं मामले पर साक्ष्य के लिए ठीक अगला दिन अर्थात् 13.12.2007 नियत किया एवं एक आदेश पारित किया कि यदि 7.1.2008 को कोई अभियोजन साक्षी उपस्थित नहीं होता है तो अभियोजन का मामला समाप्त कर दिया जाएगा। यद्यपि, अगली तिथियों अर्थात् 7.1.2008 एवं 8.1.2008 को, कोई भी साक्षी परीक्षित नहीं हुआ क्योंकि कोई भी साक्षी उपस्थित नहीं था परंतु 9.1.2008 को, मामले के अन्वेषण अधिकारी को परीक्षित किया गया एवं तब 10.1.2008 को साक्ष्य समाप्त हुआ एवं अंतिम बहस के लिए 21.1.2008 नियत करके अभियुक्त व्यक्तियों को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन परीक्षित किया गया था। उक्त तिथि अर्थात् 21.1.2008 को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 के अधीन दो आरोप में वर्णित प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् शिल्पी वर्मा एवं स्वेता वर्मा के परीक्षण के लिए अभियोजन द्वारा एक याचिका दाखिल की गयी थी, जिसे न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया गया था। शिल्पी वर्मा को परीक्षित एवं प्रति-परीक्षित किया गया था एवं, तदुपरांत उसे 15.3.2008 को निर्मुक्त किया गया था। यद्यपि एक अन्य साक्षी स्वेता वर्मा ने अपनी उपस्थिति दाखिल की थी परंतु उसकी साक्ष्य को अभिलिखित नहीं किया जा सका था क्योंकि अन्य साक्षी शिल्पी वर्मा की प्रति-परीक्षा पूरा नहीं किया जा सका था।

4. याची के अनुसार, चूँकि स्वेता वर्मा एवं उसका छोटा भाई रोहित यशवर्धन, दोनों आरोप में वर्णित प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण अभियुक्त व्यक्तियों के हाथों गंभीर धमकी प्राप्त कर रहे थे एवं, इसलिए पी॰ पी॰ प्रभारी ने डी॰ जी॰ पी॰, बिहार को उनलोगों के पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने के लिए लिखा ताकि वे लोग अपने साक्ष्य राँची में दे सकें। याची अभिकथित करता है कि चूँकि साक्षियों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान नहीं की गयी थी एवं, इसलिए, वे लोग राँची आने एवं अभिसाक्ष्य देने में सक्षम नहीं थे।

5. मामले के उपरोक्त पृष्ठभूमि में, यह देखा जाना है कि क्या विचारण न्यायालय अभियोजन द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 के अधीन दाखिल याचिका को आक्षेपित आदेश में वर्णित आधारों पर अस्वीकार करके न्यायोचित हैं, जिसपर पहले ही गौर किया गया है? विद्वान विचारण न्यायालय ने, अभियोजन की प्रार्थना को अस्वीकार करते समय, इसपर अधिक बल दिया है कि उच्च न्यायालय ने एक नियत अवधि के भीतर विचारण को समाप्त करने को निर्देश दिया है एवं अग्रेतर न्याय के हित की मांग थी कि अभियोजन की प्रार्थना अनुज्ञात नहीं की जाय चूँकि विचारण अभियोजन की त्रुटियों के कारण विलंबित हो गया था।

6. स्वीकार्यतः, दोनों साक्षीगण अर्थात् श्वेता वर्मा एवं रोहित यशवर्धन घटना के आरोप पत्र में वर्णित प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण हैं एवं, इसलिए, वे लोग तात्विक साक्षी हैं एवं वे लोग मामले में अभिसाक्ष्य नहीं देने के लिए धमकी प्राप्त कर रहे थे।

7. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 यह प्रावधान करता है कि कोई भी न्यायालय विचारण या जाँच के किसी भी प्रक्रम पर किसी व्यक्ति को साक्षी के तौर पर परीक्षित करने के लिए सम्मन कर सकता है या उपस्थित किसी व्यक्ति को परीक्षित कर सकता है, यद्यपि, उसे साक्षी के तौर पर सम्मन नहीं किया गया हो या पहले से ही परीक्षित किसी व्यक्ति को फिर से बुला सकता है या पुनर्परीक्षित कर सकता है <u>यदि उसका साक्ष्य उसे मामले के न्यायोचित विनिश्चय हेतु अनिवार्य प्रतीत होता है।</u>

(जोर मेरे द्वारा दिया गया है)।

8. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 दो भागों से मिलकर बना है। पहला भाग किसी साक्षी को किसी भी प्रक्रम पर सम्मन करने या न्यायालय में उपस्थित किसी साक्षी की परीक्षा करने या किसी साक्षी को फिर से बुलाने या पुनर्परीक्षा करने की शक्ति का प्रयोग करने में न्यायालय को समर्थ बनाने की वैवेकिक शक्ति के बारे में कहता है।

जबकि दूसरा भाग आज्ञापक प्रकृति का है जो कहता है कि यदि कोई नया साक्ष्य मामले के न्यायोचित विनिश्चय के लिए अनिवार्य प्रतीत होता है, तो न्यायालय उक्त में से कोई भी कदम उठाने को बाध्य है। इस धारा का उद्देश्य इस तथ्य से असंबद्ध, सत्य पर पहुँचना है कि अभियोजन या प्रतिपक्ष ऐसा कुछ साक्ष्य पेश करने में असफल हुआ है जो किसी मामले के न्यायोचित विनिश्चय के लिए अनिवार्य हो।

9. यदि न्यायालय यह पाता है कि नये साक्ष्य को मामले के न्यायोचित विनिश्चय के लिए स्वीकार किया जाना है, तो ऐसी शक्ति का प्रयोग अभियोजन एवं प्रतिरक्षा की समाप्ति के उपरांत भी किया जा सकता है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाये जाने तक किया जा सकता है।

10. विचारण न्यायालय द्वारा विचार किये जाने के लिए मुख्य या सर्वप्रथम प्रश्न यह है कि क्या साक्षियों की परीक्षा जिसके लिए उनकी परीक्षा किए जाने के लिए अभियोजन की प्रार्थना मामले के न्यायोचित विनिश्चय के लिए अनिवार्य है या नहीं?

11. न्यायालय का कार्य न्यायोचित विनिश्चय करना है। दाण्डिक न्यायालय को दाण्डिक न्याय प्रदान करना है न कि पक्षकारों द्वारा की गयी त्रुटियों की गणणा करना है। यदि किसी साक्षी का परीक्षण मामले के न्यायोचित विनिश्चय के लिए अनिवार्य है तो विचारण न्यायालय दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है एवं अभियोजन को साक्षियों की परीक्षा करने की अनुमति दे सकता है।

12. वर्तमान मामले में, मैं पाता हूँ कि इसके बारे में विद्वान विचारण न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग ही नहीं किया है कि क्या उन दो आरोपपत्रित साक्षियों श्वेता वर्मा एवं रोहित यशवर्धन की परीक्षा मामले के न्यायोचित विनिश्चय के लिए अनिवार्य था अथवा या नहीं? विचारण न्यायालय ने इस प्रार्थना को इस आधार पर अस्वीकार किया है कि न्याय के हित के संतुलन का झुकाव यह निष्कर्ष निकालने के लिए है कि अब उपस्थित किसी भी अभियोजन साक्षी का साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए और अधिक समय अभियोजन को दिए बिना मामले को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। मुझे यह प्रतीत होता है कि विचारण को शीघ्र समाप्त करने के लिए उच्च न्यायालय के निर्देश को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया है।

मेरी दृष्टि में, विद्वान विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण पूर्णतया भ्रामक था। स्वीकार्यत:, उपरोक्त दोनों साक्षीगण श्वेता वर्मा एवं रोहित यशवर्धन उनकी उपस्थिति के लिए अभियोजन द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 के अधीन आवेदन दाखिल किए जाने की तिथि को न्यायालय में शारीरिक रूप से उपस्थित थे। इसलिए, ऐसा नहीं था कि अभियोजन उन साक्षियों की परीक्षा के लिए किसी स्थगन की प्रार्थना कर रहा था। विचारण न्यायालय उन दोनों साक्षियों को उसी तिथि पर परीक्षा कर सकता था।

13. 2002(2) JCR 272 SC में रिपोर्ट किए गए **पी॰ राम चन्द्र राव बनाम् कर्नाटक राज्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की एक संवैधानिक पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि विचारण न्यायालय को दाण्डिक विचारण या दाण्डिक कार्यवाही या मामले की अनिवार्य रूप से समाप्ति के लिए कोई निर्देश नहीं दिया जाय। यह न तो सलाह योग्य है, न ही साध्य है और न ही दाण्डिक कार्यवाहियों की समाप्ति के लिए कोई बाह्य समय सीमा निकाला या विहित किया जाना न्यायिक रूप से अनुमान्य है।

14. (2006) 3 SCC 374 में प्रकाशित **जहीरा शेख (5) एवं एक अन्य बनाम् गुजरात राज्य एवं अन्य** के मामले में पैरा 27 पर सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत अभिनिर्धारित किया:-

> *''संहिता की □धारा 311 में निहित उद्देश्य यह है कि अभिलेख पर किसी मूल्यवान साक्ष्य को लाने में या किसी भी पक्षकार द्वारा परीक्षित साक्षियों के कथनों में संदिग्धता छोड़ते हुए किसी भी पक्षकार की त्रुटि के कारण न्याय की असफलता नहीं हो सकती है। अवधारक कारक यह है कि क्या यह मामले के न्यायोचित*

विनिश्चय के लिए अनिवार्य है। यह धारा मात्र अभियुक्त के लाभ तक ही सीमित नहीं है, एवं यह मात्र इसलिए कि साक्ष्य अभियोजन के मामले का समर्थन करता है न कि अभियुक्त के मामले का, इस धारा के अधीन किसी साक्षी को सम्मन करना न्यायालय की शक्तियों का अनुचित प्रयोग नहीं होगा। यह धारा एक सामान्य धारा है जो संहिता के अधीन सभी कार्यवाहियों, जाँचों एवं विचारणों में लागू होता है एवं मजिस्ट्रेट को ऐसी कार्यवाही, विचारण या जाँच के किसी भी प्रक्रम पर सम्मन निर्गत करने को सशक्त करता है। धारा 311 में महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति जो आती है वह है ''इस संहिता के अधीन किसी जॉच या विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम पर''। लेकिन, यह ध्यान में रखा जाना है कि जबकि यह धारा साक्षियों को सम्मन करने में न्यायालय को काफी व्यापक शक्ति प्रदान करता है। प्रदत्त शक्ति का प्रयोग न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए, क्योंकि शक्ति जितना अधिक व्यापक होता है न्यायिक विवेक के प्रयोज्यता की अनिवार्यता उतनी ही अधिक होती है।''

15. क्या नया साक्ष्य अनिवार्य है अथवा नहीं यह अवश्य ही प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है एवं इसे विचारण न्यायालय द्वारा स्वयं ही किसी विशिष्ट मामले में प्रतीत हो रहे तथ्यों पर अवधारित किया जाना है।

16. वर्तमान मामले में, जैसा कि उपर में पहले ही अभिनिर्धारित किया गया है, विचारण न्यायालय मामले के इस पहलू पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करने में पूर्णतया असफल रहा है।

17. स्वीकार्यत:, श्वेता वर्मा एवं रोहित यशवर्धन आरोप पत्र में दर्ज प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे एवं, इसलिए, विचारण न्यायालय को यह विचार करना है कि क्या उन लोगों के साक्ष्य सत्य पर पहुँचने के प्रयोजन से मामले के न्यायोचित विनिश्चय के लिए अनिवार्य है।

18. उक्त विवेचनों एवं निष्कर्षों की दृष्टि में, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। दिनांक 17.6.2008 के आक्षेपित आदेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है एवं मामले को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 के अधीन अभियोजन की याचिका पर आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर विधि के अनुरूप नवीन आदेश पारित करने के लिए विचारण न्यायालय के पास प्रतिप्रेषित किया जाता है एवं, तदुपरांत, यथासंभव शीघ्र विचारण समाप्त करने की कार्यवाही करेगा।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

हस्त बहादुर गुरूंग

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P.(S) No. 258 वर्ष 2009. 15 मई, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि—प्रोन्नति—आरक्षी निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति से यह कहकर इनकार किया गया कि याची ''अक्षम'' है—अभिनिर्धारित, याची को सेवा विधि की सम्यक प्रक्रिया का पालन किए बगैर ''अक्षम'' घोषित नहीं किया जा सकता है। (पैरा 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.—Dr. S.N. Pathak, For the Petitioner; J.C. to A.G., For the State.

आदेश

वर्तमान याचिका प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 7. नवम्बर, 2008 के एक आदेश के विरूद्ध दायर की गयी है जो वर्तमान याचिका के ज्ञापन के उपाबन्ध 3 पर संलग्न है, जिसके द्वारा याची को आरक्षी उप निरीक्षक के पद से आरक्षी निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति हेतु ''अक्षम'' घोषित किया गया है। उपाबन्ध 3 पर उक्त आदेश में कोई कारण नियत नहीं किया गया है। वर्तमान याची को प्रोन्नति पाने

के लिए ''अक्षम'' घोषित करने के लिए आक्षेपित आदेश में यहाँ तक कि एक शब्द, एक पंक्ति भी नहीं कहा गया है। इस प्रकार, पूर्ण रूप से एक गैर-आख्यानक आदेश प्रत्यर्थी, द्वारा दिनांक 7.11.2008 के उपाबन्ध 3 पर पारित किया गया है एवं, इसलिए, वर्तमान याचिका दायर की गयी है।

2.याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि, वास्तव में, याची प्रोन्नति पाने के लिए आत्यन्तिक रूप से सक्षम एवं पात्र है, परन्तु प्रत्यर्थीगण द्वारा ऐसी कोई योग्यता का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है एवं वर्तमान याची के कनीयों को आरक्षी निरीक्षक के पद पर प्रोन्नत किया गया है एवं याची को प्रोन्नति पाने के लिए ''अक्षम'' घोषित किया गया है। उपाबन्ध 3 से याची यह नहीं जान रहा है कि ''अक्षमता'' के लिए कौन-कौन से कारण हैं एवं आत्यंतिक रूप से, उपाबन्ध 3 पर आदेश पारित करने समय प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा कोई मनमाना एवं एकपक्षीय निर्णय नहीं लिया गया है एवं याची को उपरोक्त टिप्पणी समनुदेशित करने के लिए सुने जाने का कोई अवसर नहीं दिया गया था, एवं इसलिए, उपाबन्ध 3 पर का आदेश अभिखंडित एवं अपास्त किए जाने योग्य है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका के ज्ञापन से एवं प्रति शपथ पत्र से अपनी सक्षमता का कथन करने हुए कई अन्य बिन्दु की भी संयाचना की है।

4. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है प्रति शपथ पत्र में कई ऐसे कारण दिए गए हैं जो प्रकट करता है कि याची आरक्षी उप निरीक्षक के पद से आरक्षी निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति पाने में अक्षम है एवं, इस प्रकार, याची के प्रोन्नति के मामले पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा उचित रूप से विचार किया गया था एवं, इसलिए, रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

5. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने एवं मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, मैं वर्तमान रिट याचिका के ज्ञापन के उपाबन्ध 3 पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 7.11.2008 के आक्षेपित आदेश को मुख्यतः निम्नलिखित तथ्यों एवं कारणों से अपास्त एवं अभिखंडित करता हूँ:

(i) याची 9 सितम्बर, 1999 से आरक्षी उप निरीक्षक के पद पर कार्य कर रहा है। उपाबंध 3 पर आदेश को देखकर, यह प्रतीत होता है कि निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति पाने हेतु वर्तमान याची को ''अक्षम'' घोषित करने हेतु प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा कोई कारण नहीं बताया गया है।

(ii) प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया प्रतिवाद यह है कि प्रति शपथपत्र में कई कारण दिया गया है, परन्तु, यह प्रतिवाद इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है, मुख्य रूप से इस कारण से कि प्रति शपथपत्र में एक गैर-आख्यानक आदेश का कोई कारण नियत नहीं किया गया है। यदि यह आदेश संपूर्ण रूप से एक गैर-आख्यानक आदेश है, तो यह उतना ही अनुचित रहता है जितना यह था, यहाँ तक कि प्रति शपथपत्र दाखिल करने के उपरांत भी। प्रति शपथपत्र से कोई dressing प्रदान नहीं किया जा सकता है। कारणों को स्वयं आक्षेपित आदेश में भी प्रतिबिंबित होना चाहिए था। प्रति शपथपत्र के माध्यम से कारणों की पश्चातवर्ती आपूर्त्ति किसी अनुचित आदेश के लिए कोई मदद का नहीं है। यदि आक्षेपित आदेश कारणरहित है, तो यह विशेष रूप से वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए अभिखंडित किए जाने योग्य है। इन तथ्यों की दृष्टि में मात्र इसी आधार पर मैं आक्षेपित आदेश को अभिखंडित एवं अपास्त करता हूँ, क्योंकि यह एक गैर-आख्यानक आदेश है।

(iii) बिना यह स्वीकार किए यह उपधारित करके कि प्रति शपथपत्र में कथित ये सारे कारण सही हैं, तो भी वे सभी स्पष्ट एवं एकपक्षीय रूप से निर्णित किए गए हैं। इन कारणों पर पहुंचने के पूर्व कोई नोटिस नहीं दिया गया था।

(iv) यह भी प्रतीत होता है कि वर्तमान याची को ''अक्षम'' घोषित करने से पूर्व, याची को सुनवायी का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था, एवं इस प्रकार भी, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है। याचीगण को ''अक्षम'' घोषित करने से पूर्व उसे सुनवायी का एक अवसर प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए था, मैं एतद्द्वारा दिनांक 7 नवम्बर, 2008 के वर्तमान प्रत्यर्थी सं० 3 द्वारा पारित वर्तमान याचिका के उपाबन्ध 3 पर आक्षेपित आदेश को अपास्त एवं अभिखंडित करता हूँ।

6. उपरोक्त तथ्यों एवं कारणों के संचयी प्रभाव के तौर पर, मैं एतद्द्वारा प्रत्यर्थीगण को यह छूट देते हुए वर्तमान याचिका के ज्ञापन के उपाबन्ध 3 पर प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 7 नवम्बर, 2008 के आदेश को अपास्त एवं अभिखंडित करता हूँ कि यदि वे उचित समझते हों तो वे याची अथवा उसके प्रतिनिधि को सुने जाने का पर्याप्त अवसर प्रदान किए जाने के उपरांत आख्यानक आदेश अर्थात् उसे प्रयोज्य विधि, नियमावली, विनियमों, नीतियों एवं विधिसम्मत रूप से प्रवर्तनीय सरकारी आदेशों के अनुसार कारण सहित आदेश पारित कर सकते हैं।

7. इस प्रकार, यह रिट याचिका उपरोक्त विस्तार तक अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ ईकबाल, न्यायमूर्ति

ईफ्तेखार अहमद खान एवं एक अन्य

बनाम

मो॰ शहाबुद्दीन एवं अन्य

अपीलीय डिक्री सं॰ 214 वर्ष 2006 से अपील. 5 मई 2009 को विनिश्चित।

अभिधान अपील सं॰ 4 वर्ष 2002 में अपर जिला न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय IX, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 21.6.2006 एवं 3.7.2006 के निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 100—द्वितीय अपील—इस तथ्य का समवर्ती निष्कर्ष कि प्रतिवादी विक्रय के एक विवादित पत्र के आधार पर एवं प्रतिकूल कब्जा के माध्यम से मकान पर अभिधान का दावा कर रहा है—अभिनिर्धारित, वादी के अभिधान के प्रतिकूल एवं उसके ज्ञान में वादित संपत्ति को कब्जा में रखने के आशय के बिना 12 वर्षों तक की अवधि तक के लिए कब्जा बनाए रखना ही प्रतिवादी द्वारा अभिधान के अर्जन में परिणामित नहीं हो सकता है। (पैरा 16 से 19)

(ख) सिविल विचारण—प्रतिकूल कब्जा—किसी व्यक्ति के विरूद्ध परिसीमा प्रारम्भ नहीं हो सकता है जबतक कि वह व्यक्ति विधिसम्मत रूप से कार्रवाई द्वारा अपने अभिधान को उचित ठहराने की स्थिति में नहीं हो—प्रतिकूल कब्जे का प्रारम्भ विवक्षा करता है कि वास्तविक कब्जाधारी व्यक्ति अनन्य अभिधान का एक प्रतिकूल दावा रखता हो ताकि वास्तविक मालिक किसी कार्रवाई का पोषण करने के लिए एक कब्जाधारी होगा। (पैरा 17 एवं 18)

निर्णयज विधि.—AIR 1934 Privy Council 23; (2003)7 SCC 481; (2008)5 SCC 268.—Relied upon.

अधिवक्तागण.—M/s V. Shivnath, Rohit Roy, For the Appellants; M/s M.K. Habib, Z. Alam, M. S. Akhtar, P. Kumar, S.L. Agarwal, For the Respondents.

निर्णय

एम॰ वाई॰ ईकबाल, न्यायमूर्ति.–प्रतिवादीगण–अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल यह अपील अभिपुष्टि के निर्णय के विरूद्ध है।

2. वादीगण–प्रत्यर्थीगण ने वादित संपत्ति के सम्बन्ध में अभिधान की घोषणा के लिए एवं कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए एवं यह घोषणा करने के लिए भी वाद सं॰ 62/98 किया कि प्रतिवादी सं॰ 1 रोजनी बीबी द्वारा अपने पुत्रों की पक्ष में निष्पादित दिनांक 29.8.86 का विक्रय विलेख अकृत एवं शून्य, अविधिमान्य एवं अप्रवृत्त है। इस वाद को अधीनस्थ न्यायाधीश, IV जमशेदपुर द्वारा दिनांक 21.1.2002 के निर्णय के निबंधनों में डिक्रीत किया गया था। उक्त निर्णय से व्यथित होकर वादीगण–अपीलार्थीगण ने अभिधान अपील सं॰ 4/2002 दाखिल किया एवं इसे अपर जिला न्यायाध ीश, जमशेदपुर द्वारा दिनांक 21.6.2006 के निर्णय एवं डिक्री के निबंधनों में खारिज किया गया था एवं विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को अभिपुष्ट किया गया है।

3. वर्तमान द्वितीय अपील को विधि के निम्नलिखित सारवान प्रश्न पर 27.6.2008 को स्वीकार किया गया था:

(i) क्या अवर न्यायालयों ने इस स्वीकृत स्थिति पर वादित संपत्ति पर वादी का अभिधान उचित रूप से विनिश्चित किया था कि प्रतिवादी/अपीलार्थी 1968 से ही वादित संपत्ति के कब्जेदार बन गए थे एवं तद्द्वारा प्रतिकूल कब्जा द्वारा अभिधान का दावा किया।

(ii) क्या दोनों अवर न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री तथ्यों के प्रश्न को विनिश्चित करते समय विधि के स्थापित प्रतिपादना पर विचार न किए जाने के कारण विधि में अवधार्य नहीं हैं।

4. वादी का मामला, जैसा कि वादपत्र में अभिवाक् किया गया है यह है कि जमशेदपुर शहर में बिस्टुपुर थाना के अंतर्गत बी ब्लौक धाकीडीह में स्थित होल्डिंग 96 पर अवस्थित गृह संपत्ति TISCO लि॰ की है। मूल रूप से यह भूमि टिस्को लिमिटेड द्वारा मंगल खान, अब मृत, के पक्ष में मासिक अभिधृति के आधार पर हस्तांतरित की गयी थी एवं उक्त मंगल खान ने स्वयं अपनी कमाई से उक्त भूमि पर एक मकान बनवाया एवं वह टिस्को लि॰ को लगान एवं अन्य प्रभारों का भुगतान करके इसका शान्तिपूर्ण कब्जेदार था। उक्त मंगल खान के पास मनोहरपुर में अपने ससुरालवालों की जमीनी संपत्ति थी एवं उसके लिए दोनों ही संपत्तियों का प्रबन्ध करना असंभव था। तद्नुसार उसने अपनी गृह संपत्ति की देखभाल करने के लिए एवं संपत्ति के सभी मामलों का प्रबन्ध करने के लिए मूल प्रतिवादी सं॰ 1 मोस्मात रोजनी बीबी को प्राधिकृत करते हुए उसके पक्ष में एक रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामा निष्पादित किया था। वादी का मामला यह है कि मुख्तारनामे के आधार पर रोजनी बीबी वादित संपत्ति का कब्जेदार बन गयीं एवं वह वहाँ रहने लगी। उक्त मंगल खान की मृत्यु अपने पीछे अपनी विधवा, बेटे एवं बेटियों को छोड़कर 2.9.70 को हो गयी जो वादित संपत्ति के आत्यंतिक कब्जेदार बन गए। मंगल की मृत्यु के उपरांत, रोजनी मंगल खान के विधिक उत्तराधिकारियों के अधीन एक अनुज्ञप्तिधारी के तौर पर कब्जाधारी बनी रही। वादीगण का मामला यह भी है कि प्रतिवादी सं॰ 1 रोजनी बीबी ने वादित संपत्ति के सम्बन्ध में इस मिथ्या बहाने पर दिनांक 29.8.96 का रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख अपने बेटों ईफ्तेखार अहमद खान एव सरफराज अहमद खान के पक्ष में निष्पादित किया कि उसने मंगल खान से वादित संपत्ति खरीदी थी जिसने प्रतिवादीगण के पक्ष में 1968 में विक्रय पत्र निष्पादित किया था। वादीगण ने अभिकथित किया कि कूटरचित एवं जाली दस्तावेज के आधार पर प्रतिवादी ने अपने बेटों के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया। वादीगण–प्रत्यर्थीगण का अग्रेतर मामला यह भी है कि मंगल खान की मृत्यु के उपरांत उसके विधिक उत्तराधिकारियों एवं हिताधिकारियों ने वादित संपत्ति को 50,000/- रू॰ के प्रतिफल पर दिनांक 21.12.96 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से वादीगण के पक्ष में निष्पादित कर दिया एवं खरीदने के उपरांत वादीगण वादित संपत्ति

के आत्यंतिक मालिक बन गए। अब वादीगण को वादित संपत्ति की आवश्यकता अपने निजी प्रयोग एवं अधिभोग के लिए थी। यह अभिकथित किया गया है कि मोस्मात रोजनी बीबी से वादित संपत्ति खाली करने का आग्रह किया गया था। उसने वादीगण के अभिधान से इनकार किया एवं सूचित किया कि उसने स्व॰ मंगल खान द्वारा निष्पादित विक्रय पत्र के आधार पर यह संपत्ति अपने बेटों के पक्ष में बेच दी थी।

5. प्रतिवादी सं॰ 1 मोस्मात रोजनी बीबी एवं उसके दोनों बेटों प्रतिवादी सं॰ 2 एवं 3 ने लिखित अभिकथन दाखिल करके प्रतिवाद किया। प्रतिवादियों का मामला यह है कि मंगल खान ने सम्पूर्ण वादित भूमि 6200/- रू॰ का मूल्यवान प्रतिफल लेकर 28.10.68 को प्रतिवादी सं॰ 1 के पक्ष में हस्तांतरित कर दी थी एवं भौतिक कब्जा दिलाया था। अंतरण एक विक्रय विलेख द्वारा प्रभावित था एवं मंगल खान ने उक्त दस्तावेज पर अपने बायें अंगूठे का निशान लगाया था। यह अभिकथित किया गया है कि साहिद खान, मंगल खान के बेटों में से एक, ने भी उक्त पत्र पर अपने हस्ताक्षर किए थे एवं प्रतिफल राशि की अभिस्वीकृति दी थी। प्रतिवादी सं॰ 1 का मामला यह है कि उसने कभी भी मंगल खान के एक अनुज्ञप्तिधारी के तौर पर वादित संपत्ति में निवास नहीं किया बल्कि उक्त विक्रय विलेख के आधार पर 28.10.68 से ही मालिक के तौर पर निवास किया एवं तदुपरांत उसने प्रतिकूल रूप से एवं वास्तविक मालिक के ज्ञान में 12 वर्षों से अधिक की अवधि से वादित संपत्ति पर कब्जा रखकर अभिधान प्राप्त किया। यह अभिकथित किया गया है कि मंगल खान के बेटों में से एक, साहिद खान ने 29.8.95 को भूमि अधिकारी, टिस्को लि॰ को सम्बोधित कर एक पत्र लिखा एवं इस पत्र के माध्यम से उसने 28.10.68 को मंगल खान द्वारा निष्पादित उक्त पत्र के आधार पर वादित संपत्ति के अंतरण की बात स्वीकार की। प्रतिवादीगण का यह भी मामला है कि रोजनी बीबी विधिसम्मत मालिक होने के कारण वादित संपत्ति वादीगण के पक्ष में अंतरित करने का पूर्ण प्राधिकार रखती हैं।

6. टिस्को लि॰ के मूल मालिक प्रतिवादी सं॰ 9 ने अन्य के साथ-साथ यह कथन करने हुए लिखित कथन दाखिल किया कि यह वाद टिस्को कंपनी के विरूद्ध पोषणीय नहीं है। कंपनी वादपत्र के पैरा 5 से 12 में वर्णित तथ्यों में से किसी से परिचित नहीं है।

7. प्रतिवादी कंपनी के अभिलेख के अनुसार, वादित संपत्ति को आवासीय मकान के लिए इन निबंधनों एवं शर्तों पर मासिक किराये पर मंगल खान के नाम पर आबंटित किया गया था। पंजीकृत अभिधारी कंपनी के अधीन मात्र एक मासिक किरायेदार था एवं वादित संपत्ति अभी भी मंगल खान के नाम पर है। कंपनी द्वारा यह भी कहा गया है कि मंगल खान की मृत्यु के उपरांत वादित होल्डिंग में मात्र पट्टाधृत हित की निर्बंधित अभिधारी मंगल खान के विधिक उत्तराधिकारियों में निहित था एवं वे प्रतिवादीगण की लिखित सम्मति के बिना किसी अन्य व्यक्ति को इस होल्डिंग को स्थानान्तरित नहीं कर सकते हैं एवं वादित होल्डिंग के सम्बन्ध में निष्पादित कोई भी विक्रय पत्र प्रतिवादी कंपनी पर बाध्यकारी नहीं है।

8. विचारण न्यायालय ने विचारण हेतु निम्नलिखित मुद्दे विरचित किए:-

I. क्या यह वाद, यथा विरचित, वर्तमान स्वरूप में पोषणीय है?

II. क्या वादी के पास वाद हेतु कोई वाद हेतुक है?

III. क्या वादी वादित संपत्ति का स्वामी है?

IV. क्या रोजनी बीबी द्वारा अपने बेटों (प्रतिवादी सं॰ 2 एवं 3) के पक्ष में निष्पादित दिनांक 29.8.96 का विक्रय-विलेख सं॰ 3340 अकृत, शून्य, अप्रवृत्त एवं वादी पर बाध्यकारी नहीं है?

V. क्या रोजनी बीबी ने दिनांक 28.10.68 के विक्रय-विलेख के माध्यम से वादित भूमि को मंगल खान से खरीदी थी?

VI. क्या मंगल खान ने विवादित भूमि के उचित देखभाल के लिए 28.10.68 को रोजनी बीबी के पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित किया था?

VII. क्या प्रतिवादी सं॰ 1 रोजनी बीबी प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वादित संपत्ति का कब्जेदार बन गयी?

VIII. क्या वादी, प्रतिवादी के निष्काषण के उपरांत कब्जे के प्रत्युद्धरण का हकदार है?

IX. क्या वादी कोई अन्य अनुतोष या अनुतोषों का हकदार है?

9. विचारण न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर सभी मुद्दों को प्रतिवादीगण के विरूद्ध विनिश्चित किया एवं अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादीगण ने प्रतिकूल कब्जा के माध्यम से वादित संपत्ति पर अभिधान अर्जित नहीं किया है।

10. प्रतिवादीगण–अपीलार्थीगण ने विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री से व्यथित होकर जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील दाखिल किया, जिसे अंतत: अपर जिला न्यायाधीश, जमशेदपुर द्वारा सुना गया था। अपीलीय न्यायालय ने सम्पूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करके विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष को अभिपुष्ट किया है। अपीलीय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मंगल खान द्वारा निष्पादित सामान्य मुख्तारनामे के द्वारा प्रतिवादी रोजनी बीबी वादित संपत्ति की देखभाल करने के प्रयोजन से इसका कब्जेदार बन गयी थी एवं वह संपत्ति का कब्जेदार थी एवं उसका कब्जा अनुमति प्राप्त कब्जा था। अपीलीय न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि रोजनी बीबी का कब्जा अनुमति प्राप्त कब्जा होने के कारण, उसने प्रतिकूल कब्जा के माध्यम से कोई अधिकार अर्जित नहीं किया है।

11. मैंने अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री वी॰ शिवनाथ एवं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री एम॰ के॰ हबीब को सुना है।

12. स्वीकार्यत: प्रतिवादी मोस्मात रोजनी बीबी ने उक्त पत्र के आधार पर वादित संपत्ति पर अपना दावा किया था, जिस दस्तावेज पर विचारण न्यायालय एवं अपीलीय न्यायालय दोनों द्वारा एक यथार्थ दस्तावेज के तौर पर अविश्वास व्यक्त किया गया है। इसलिए, इस न्यायालय द्वारा विरचित विधि का एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादी रोजनी बीबी ने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम मे अभिधान अर्जित किया था।

13. विधि के प्रश्नों का उत्तर देने से पूर्व, मैं प्रतिकूल कब्जे के सम्बन्ध में विधि की विवेचना करना चाहूँगा।

14. सामान्यतया प्रतिकूल कब्जे की कालजयी अपेक्षा यह है कि यह nec vi nec clam ned percario होना चाहिए। अपेक्षित कब्जा यह दर्शाने की सीमा तक निरन्तरता एवं प्रचार में पर्याप्त होना चाहिए कि यह प्रतिद्वन्दी के कब्जे के प्रतिकूल है। यह समान रूप से सुस्थापित है कि प्रतिकूल कब्जा स्थापित करने के क्रम में यह दर्शाया जाना पर्याप्त नहीं है कि कोई व्यक्ति एकमात्र कब्जेदार है एवं संपत्ति का उपभोग कर रहा है। उस कब्जाधारी पक्षकार द्वारा जो अपना कब्जा प्रतिकूल होने का दावा करता है गैर कब्जाधारी पक्षकार के बेदखली को प्रमाणित किया जाना चाहिए।

15. मित्रा के टैगोर लॉ लेक्चर्स ऑन लिमिटेशन एण्ड प्रेस्कृप्सन (छठा संस्करण) भाग 1, पृष्ठ 159 पर परिसीमा पर ऐंजेल से उत्कथित करने समय, इस सिद्धांत को निम्नलिखित निबंधनों में कहा गया है: ''कोई प्रतिकूल कब्जा या तो खुले स्वीकृत दावे के अधीन या किसी सन्निर्माणात्मक दावे के अधीन (विनियोजन के तथ्यों एवं परिस्थितियों से उद्‌भूत) भूमि को उसके विरूद्ध धारित करने के लिए अधिकार के किसी दावे के अधीन प्रारम्भ एवं जारी एक वास्तविक एवं अनन्य दुर्विनियोजन है (ऐंजेल, धारा 390 एवं 398)। यह विपक्षी पक्षकार के अधिकारों के ऐसे किसी अतिक्रमण सहित प्रतिकूल दावे के आशय का है क्योंकि यह उसे एक वाद हेतुक देता है जो प्रतिकूल कब्जा गठित करता है।

16. यह भी सुस्थापित है कि किसी व्यक्ति के विरूद्ध परिसीमा प्रारम्भ नहीं हो सकता है जबतक कि वह व्यक्ति विधिसम्मत रूप से कार्रवाई द्वारा अपने अभिधान को प्रमाणित करने की स्थिति में नहीं हो।

17. प्रतिकूल कब्जे का प्रारम्भ विवक्षा करता है कि वास्तविक कब्जाधारी व्यक्ति अनन्य अभिधान का एक प्रतिकूल दावा रखता हो ताकि वास्तविक मालिक किसी कार्रवाई का पोषण करने के लिए एक कब्जाधारी होगा।

18. प्रतिकूल कब्जे का सिद्धांत ''**सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम् देबेन्द्र लाल खान**'' **(A.I.R. 1934 प्रिवि काऊंसिल 23)** के मामले में विस्तारपूर्वक विवेचित किया गया है। यह कालजयी निर्णय तीन न्यायाधीशों अर्थात् लार्ड मैकमिलन, सर जॉन वालिस एवं सर जॉर्ज लॉडेस द्वारा सुनाया गया है एवं इस सम्बन्ध में विधि के सिद्धॉत को अधिकथित किया गया है। न्यायालय ने सम्प्रेक्षित किया:

''कौन सी बात प्रतिकूल कब्जे का गठन करता है एक ऐसा विषय जो इस मामले में कुछ विवेचन की विषय वस्तु सृजित करता है, माननीय न्यायाधीशों ने बाधमोनी देवी बनाम् खुलना के समाहर्त्ता (1) (27 I.A. का पृष्ठ 140) में बोर्ड का निर्णय सुनाते समय लार्ड राबर्टसन के निर्णय की भाषा अपनायी जहाँ माननीय न्यायाधीशों ने कहा था कि:

''अपेक्षित कब्जा यह दर्शाने की सीमा तक निरन्तरता एवं प्रचार में पर्याप्त होना चाहिए कि यह प्रतिद्वन्दी के कब्जे के प्रतिकूल है।''

कालजयी अपेक्षा यह है कि कब्जा nec vi nec clam nec precario होना चाहिए। क्राउन की ओर से श्री ड्यूने ने इच्छा प्रकट किया कि प्रतिकूल कब्जा क्राउन के ज्ञान में लाया जा चुका दर्शाया जाना चहिए, परन्तु माननीय न्यायाधीशों की राय में इस अपेक्षा के लिए कोई प्राधिकार नहीं है। यह पर्याप्त है कि कब्जा प्रत्यक्ष हो एवं छुपाव के किसी प्रयास से रहित हो, ताकि वह व्यक्ति जिसके विरूद्ध समय जारी है, यदि सम्यक् सतर्कता का प्रयोग किया जाए, जो कुछ भी घटित हो रहा है उसके प्रति सतर्क हो सके। यदि क्राउन के अधिकारों को खुले तौर पर हड़प लिया गया है तो यह अभिवाक् करने के लिए सुना नहीं जा सकता है कि तथ्य को इसको ध्यान में नहीं लाया गया। परिसीमा अधिनियम मात्र एक सम्बन्ध में ही क्राउन के प्रति अनुगृहित है अर्थात् एक विषय के मामले की अपेक्षा प्रतिकूल कब्जा को अधिक लम्बी अवधि की अपेक्षा करने में; अन्यथा क्राउन के बीच परिनियम एवं प्रतिकूल कब्जे की अपेक्षा से सम्बन्धित विषय में कोई विभेद नहीं है। यह कहा जा सकता है कि प्रतिकूल कब्जा प्रमाणित करने के क्रम में यह आवश्यक नहीं है कि कब्जे के प्रमाणिक कृत्य को अपेक्षित अवधी के प्रत्येक क्षण को आच्छादित करना चाहिए।

''यदि यह प्रमाणित न हो कि प्रत्युक एक-चौथाई माह या वर्ष कब्जा जारी था फिर भी सामान्य कब्जा ही ad victeeiam causre, albeit पर्याप्त होगा, इसे निरन्तर कब्जा, quia probati extermis pracesumutur media, के निबन्धनों में प्रतिपादित किया जाय, यदि दूरियाँ अधिक नहीं हों। स्टेयर की इन्टीच्यूसन्स ऑफ द लॉ स्कॉटलैंड, 4,40.20."

कब्जे का तथ्य निरन्तर होना चाहिए यद्यपि कब्जे के कई कार्य काफी अंतराल पर होते हैं। कितने कार्य इस तथ्य का निष्कर्ष निकालेंगे, यह चिरभोग से स्वतंत्र प्रमाण एवं उपधरणा का एक प्रश्न है: मिलर ऑन प्रेस्क्रिप्सन, पृष्ठ; 36.''

अपेक्षित कब्जे की प्रकृति अनिवार्य रूप से कब्जे के विषय की प्रकृति के साथ परिवर्तित होना चाहिए। कब्जा उस कब्जे की प्रकृति का होना चाहिए जिसका कोई विशिष्ट विषय संभाव्य है। क्राउन से सम्बन्धित मीन उद्योग के मामले में क्राउन मत्स्य का पट्टा या अनुज्ञप्तियाँ प्रदान करके अपने अधिकार का प्रयोग करता है यह स्वयं में मत्स्य नहीं है। परिणामतः क्राउन को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मत्स्य क्षेत्र के किसी मामले में, जो प्रथम दृष्टया क्राउन का है मछली के पट्टे या अनुज्ञप्तियों का प्रदान किया जाना उस व्यक्ति द्वारा क्राउन के सुस्पष्ट अधिकारों के छीने जाने

का साक्ष्य है एवं यह प्रतिकूल कब्जे का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साक्ष्य है। जहाँ किसी नौगम्य नदी में मत्स्य क्षेत्र का दावा किया जाता है जो नौगमन के प्रयोजन से जनता के लिए खुला है। लार्ड एडवोकेट बनाम् यंग (2) के मामले में लार्ड वाटसन का सम्प्रेक्षण ध्यान में रखा जाना चाहिए। वहाँ दावेदार ने फोरशोर के चिरभोगाधिकार को स्थापित करने की ईप्सा की थी एवं लार्ड वाटसन ने (पृष्ठ 533 पर) बताया कि:

''उसके कब्जे की प्रकृति एवं विस्तार का आकलन करने में सदैव यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सामान्य दशा में फोरशोर का कब्जा पद अनन्य के कठोर अर्थ में कभी नहीं हो सकता है। स्वत्वधारी किसी भी समय सार्वजनिक प्रारूप को अपवर्जित नहीं कर सकता है एवं उसके अधिकार पर समय-समय पर होने वाले अतिक्रमणों को रोकना व्यवहारिक रूप से असंभव है।''

19. देवा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम् सज्जन कुमार(मृत) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा (2003)7 SCC-481 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सम्प्रेक्षित किया कि मात्र वादी के अभिधान के प्रतिकूल एवं उसके ज्ञान में वादित संपत्ति को कब्जा में रखने के आशय के बिना 12 वर्षों से अधिक की अवधि तक के लिए कब्जा ग्रहण रखना ही प्रश्नगत संपत्ति के प्रतिवादी द्वारा अभिधान के अर्जन में परिणामित नहीं हो सकता है।

20. वर्तमान मामले में, मूल मालिक मंगल खान के स्वामित्व पर प्रतिवादी/अपीलार्थीगण द्वारा विवाद नहीं किया गया है। इस पर भी विवाद नहीं किया गया है कि मंगल खान ने मकान वाली संपत्ति की देखभाल करने के लिए मूल प्रतिवादी-मोस्मात रोजनी को प्राधिकृत करते हुए मुख्तारनामा 28.10.1968 को निष्पादित किया। मूल प्रतिवादी-मोस्मात रोजनी ने एक मामला निर्मित किया है कि उसने मंगल खान से 6200/- रू॰ के भुगतान पर मकान वाली संपत्ति खरीदी एवं मंगल खान द्वारा उक्त विक्रय पत्र 28.10.1968 को निष्पादित किया गया था अर्थात उसी दिन जब रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामा उसके द्वारा कागज के एक टुकरे पर निष्पादित किया गया था।

21. प्रतिवादीगण/अपीलार्थीगण का ऐसा कोई अभिवाक् नहीं है कि विक्रय पत्र उसी दिन निष्पादित किया गया था बल्कि रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामे के निष्पादन के उपरांत निष्पादित किया गया था। यहाँ पर रोचक प्रश्न जो मन में आता है वह यह है कि यदि मंगल खान मोस्मात रोजनी के पक्ष में मकान वाली संपत्ति को बेचने पर सहमत हो गया था तो रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख निष्पादित करने के बजाय रजिस्ट्रीकृत मुख्तारनामे को निष्पादित करने का कोई अवसर नहीं था। चाहे जो भी हो, स्वीकार्यत:, मंगल खान की मृत्यु अभिकथित विक्रय विलेख की तिथि अर्थात् 2.9.1970 से दो वर्षों के उपरांत हो गयी थी। प्रतिवादीगण द्वारा यह दर्शाने के लिए या तो मौखिक या दस्तावेजी कोई भी साक्ष्य पेश नहीं किया गया है कि विक्रय के निष्पादन के उपरांत मोस्मात रोजनी द्वारा मंगल खान को, जबतक वह जीवित था एक विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए मनवाने का कोई प्रयास किया गया था। मंगल खान की मृत्यु के उपरांत भी उसके उत्तराधिकारियों एवं विधिक प्रतिनिधियों को मोस्मात रोजनी द्वारा एक विक्रय पत्र के माध्यम से अभिकथित अंतरण के आधार पर उसके कब्जाधारी बने रहने के बारे में कभी भी सूचना नहीं दी गयी थी। प्रतिवादीगण/अपीलार्थीगण द्वारा यह दर्शाने के लिए कागज का एक टुकरा भी दाखिल नहीं किया गया है कि वे लोग वादी संपत्ति में विपरीत अभिधान का दावा कर रहे थे।

22. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री वी॰ शिवनाथ ने **''मारिया कोलाको एवं एक अन्य बनाम् अल्वा फ्लोरा हरमिंडा डिसूजा एवं अन्य'' (2008)5 SCC-268** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक विनिश्चय पर भरोसा किया है एवं निवेदन किया है कि प्रतिकूल कब्जे के मुद्दे पर दोनों ही अवर न्यायालयों के निष्कर्ष विधि में अनुचित हैं। मेरी सुविचारित राय में अवर न्यायालयों ने अभिलेख पर मौजूद संपूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करके तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वतर पैराग्राफ में मेरे द्वारा विवेचित स्वीकृत तथ्यों के आलोक में दोनों न्यायालयों के निष्कर्ष विधि में अनुचित नहीं है एवं ऐसा अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और ऐसा नहीं किया जायगा। तदनुसार, मैने विधि के प्रश्न का यह अभिनिर्धारित करके उत्तर दिया

है कि अवर न्यायालयों ने वादित संपत्ति पर वादीगण/प्रत्यर्थीगण के अभिधान को विनिश्चित किया है कि वादीगण/प्रत्यर्थीगण ने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से अपना अभिधान प्राप्त नहीं किया है।

23. उपरोक्त कारणों से, मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ, जिसे तदनुसार खारिज किया जाता है।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लि॰ (दोनों में)

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

W.P. (L) No. 5872 एवं 5845 वर्ष 2004. 19 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

(क) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 2(p)—समझौता–इसका अभिप्राय है एक ऐसा समझौता जो सुलह कार्यवाही के दौरान नियोक्ता एवं कर्मकारों के बीच किया गया हो जिसके बाद लिखित कथन किया गया हो। (पैरा 11)

(ख) औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धाराएँ 18(3) एवं 2(p)—समझौता–बाध्यकारी प्रभाव–धारा 18(3) के अंतर्गत ऐसे समझौते का बाध्यकारी प्रभाव केवल तभी होगा जब सुलह कार्यवाही के दौरान लिखित कथन किया गया हो–जब सुलह कार्यवाही असफल हो जाता है एवं मामले को औद्योगिक अधिकरण के समक्ष न्यायनिर्णयन किए जाने हेतु औ॰ वि॰ अधिनियम की धारा 10(1)(d) के अधीन निर्देशित किया जाता है, तो पक्षकारों के बीच किए गए किसी समझौते का बाध्यकारी प्रभाव नहीं होगा। (पैरा 14)

निर्णयज विधि.–(2000)1 SCC 371; (2005)12 SCC 738; 2005 (Lab) I.C. 1604; 2004 (Lab) I.C. 18 (Bombay); 2005(3) (Lab) I.C. 2295 (Bombay); AIR 1978 SC 828; (2005)3 SCC 224; 1986(52) FLR 358(SC); (1978)3 SCC 42; (1996)3 SCC 206—Discussed.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajiv Ranjan, For the Petitioner; Mr. Anoop Kr. Mehta, For the Respondent No. 3; Mr. G.M. Mishra, For the Respondent No. 4; Mr. J.C. to Sr. S.C.-I, For the State.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों के लिए दायर की गयी है:–

(A) संदर्भ केस सं॰ 1/2002 में विद्वान औद्योगिक अधिकरण, राँची द्वारा पारित दिनांक 18.9.2004 के उस आदेश को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति के एक समुचित रिट, आदेश या निर्देश के निर्गतीकरण हेतु, जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन निर्देश निस्तारित करने के लिए एवं दिनांक 23.5.2004 के समझौते के निबंधनों में एक अधिनिर्णय पारित करने के लिए दाखिल याची का आवेदन पूर्ण रूप से अविधिमान्य एवं मनमाने ढंग से अस्वीकार कर दिया गया है।

(B) यह घोषित करने के लिए एक यथोचित रिट, आदेश या निर्देश के निर्गतीकरण के लिए कि याची प्रबन्धन एवं प्रतिनिधि एवं मेजोरिटी ट्रेड यूनियन टाटा वर्कस यूनियन के बीच किए गए दिनांक 23.5.2004 के परिनिर्धारण की दृष्टि में जो कि एकमात्र मान्यता प्राप्त ट्रेड यूनियन है एवं यह याची के स्थापन का एकमात्र सौदा करने वाला अभिकर्ता है, जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन अस्थायी कर्मचारियों को स्थायी कर्मचारियों के तौर पर आमेलन एवं मजदूरी परिनिर्धारण इत्यादि से संबंधित विवादों एवं शिकायतों को सुलह कार्यवाही के दौरान सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझाया गया

है एवं सुलह कार्यवाही के दौरान एक करार/समझौता किया गया था जो मेजोरिटी रिप्रेजेन्टेटिभ ट्रेड यूनियन अर्थात् टाटा वर्कर्स यूनियन, याची प्रबंधन एवं श्रम आयुक्त-सह-सुलह अधिकारी, झारखण्ड सरकार द्वारा हस्ताक्षरित था, इस प्रकार सुलह कार्यवाही के दौरान औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन एक समझौता होने के कारण यह सभी पक्षकारों पर एवं विसम्मत अल्पसंख्यक संगठनों या विसम्मत अल्पसंख्य कर्मकारों पर भी बाध्यकारी हो गया है।

(C) यह अभिनिर्धारित करने एवं यह घोषित करने के लिए ऐसे अन्य रिट, आदेश या निर्देश के निर्गतीकरण के लिए कि दिनांक 23.5.2004 के समझौते की दृष्टि में, अस्थायी कर्मचारियों को स्थायी कर्मचारी के तौर पर आमेलन के लिए उनकी मांग के सम्बन्ध में सभी विवाद समाप्त हो गये एवं इसलिए, औद्योगिक अधिकरण, राँची के समक्ष लम्बित वर्तमान संदर्भ सं० 1 वर्ष 2002 में न्यायनिर्णयन के लिए कोई भी विवाद मौजूद नहीं है, एवं उक्त समझौता संदर्भ केस सं० 1/2002 के सम्बन्धित कर्मकारों सहित सभी कर्मकारों पर बाध्यकारी हो गया है। तद्नुसार, विद्वान औद्योगिक अधिकरण को दिनांक 23.5.2004 के समझौते के निबंधनों में कोई अधिनिर्णय पारित करके प्रबंधन द्वारा दाखिल दिनांक 12.7.2004 की याचिका को अनुज्ञात कर देना चाहिए था।

(D) औद्योगिक अधिकरण, राँची के समक्ष लम्बित दिनांक 23.11.2001 के संदर्भ, अब संदर्भ 1/2004 के तौर पर संख्यांकित, को अपोषणीय एवं अधिकारिताविहीन के तौर पर अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति के एक यथोचित रिट, आदेश या निर्देश के निर्गतीकरण के लिए।

2. विवाद्यक दिनांक 23.5.2004 के उसी समझौते से उद्भूत होता है एवं विधि के प्रश्न सर्वनिष्ठ होने के कारण दोनों ही रिट याचिकाओं को एक सम्मिलित आदेश द्वारा निस्तारित किया जा रहा है।

3.संक्षेप में, W. P. (L) No. 5872 वर्ष 2004 के तथ्यों को निम्नलिखित रूप से उपवर्णित किया जा रहा है:-

याची भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन एक निबंधित कंपनी है एवं प्रारंभिक तौर पर स्टील के विनिर्माण एवं इसके आनुषंगिक प्रयोजनों के कारोबार में लगा हुआ है।

लगभग 109 की संख्या में संबंधित कर्मकारों ने दिनांक 30.5.1995 के अपने मांग-पत्र के माध्यम से मेसर्स TISCO में नियमितिकरण एवं स्थायी नियोजन के लिए याची कंपनी के समक्ष एक मांग पेश किया। उक्त मांग पत्र निम्नलिखित पाँच प्राधिकृत प्रतिनिधियों द्वारा गठित था:-

(i) अनिल कुमार सिंह,

(ii) अखिलेख कुमार पांडेय,

(iii) अजय कुमार झा,

(iv) सीलानाथ शर्मा

(v) डी० के० चक्रवर्ती।

मांग पत्र में सम्बन्धित कर्मकारों द्वारा अन्य के साथ-साथ यह कहा गया था कि उन्हें अस्थायी कर्मचारी के तौर पर नियोजित किया गया था जिन्होंने विभिन्न कालावधियों के दौरान पिछले कई वर्षों तक कंपनी में कार्य किया परन्तु बाद में उनलोगों को हटा दिया गया था। उनलोगों द्वारा यह भी कहा गया था कि उनमें से अधिकतर कंपनी के स्थायी आदेशों के प्रावधानों के अनुसार कंपनी में नियोजन के लिए निबंधित स्थायी कर्मचारियों के बेटे एवं प्रतिपाल्य थे एवं इसलिए उनलोगों ने औद्योगिक विवाद अधिनियम के अधीन सुलह कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए उपश्रम आयुक्त, जमशेदपुर को इसकी एक प्रति के साथ मांग किया।

सुलह कार्यवाही औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 12 के अधीन प्रारम्भ किया गया था।

याची भी सुलह अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ एवं इसमें यह स्पष्ट करते हुए अपना कथन दाखिल किया कि अस्थायी कर्मचारियों को याची कंपनी द्वारा पोषित, निबंधित अस्थायी कर्मचारियों के पूल से विनिर्दिष्ट अवधि के लिए नियोजित किया जाता है जो रिक्तियों एवं कार्य की अत्यावश्यकताओं पर निर्भर करता है एवं उन्हें शुद्ध रूप से अस्थायी आधार पर निबंधित अस्थायी कर्मचारियों के पूल से अस्थायी आधार पर कभी-कभी एवं हरेक बार विनिर्दिष्ट अवधि हेतु नियोजित किया जाता है एवं नियोजन की ऐसी अवधि समाप्त हो जाने के उपरांत इन अस्थायी कर्मचारियों को नियोजन से हटाया जाता है। तत्पश्चात ऐसे अस्थायी कर्मचारियों को अपने अग्रेतर नियोजन के लिए प्रतीक्षा करना होता है जो किसी भविष्यवर्ती आवश्यकता पर निर्भर करता है।

सुलह, पक्षकारों द्वारा अपनाये गए क्रमिक अभिमत की दृष्टि में, असफल है, एवं इसलिए, असफलता का रिपोर्ट भेजा गया था एवं मामले को निम्नलिखित निबंधनों में संदर्भित करके औद्योगिक अधिकरण, राँची के समक्ष न्यायनिर्णयन हेतु निर्दिष्ट किया गया था:-

''क्या मेसर्स TISCO लि०, जमशेदपुर के 109 (एक सौ नौ) अस्थायी कर्मकार, उपाबन्ध-1 के अनुसार पिछले कई वर्षों से कार्यरत, अपनी सेवाओं के नियमितीकरण के हकदार हैं? यदि नहीं तो कौन से अन्य अनुतोष के वे हकदार हैं?

यह प्रतीत होता है कि संदर्भ के लंबित रहने के दौरान दिनांक 23.5.2004 के समझौते के आलोक में एक अधिनिर्णय करके वर्तमान संदर्भ को निस्तारित करने की प्रार्थना सहित एक याचिका प्रबन्धन की ओर से 12.7.2004 को याचीगण द्वारा दाखिल किया गया था। याची प्रबंधन ने कहा कि टाटा इंडस्ट्रियल स्टील कंपनी लिमिटेड, इसमें इसके पश्चात् TISCO के तौर पर निर्दिष्ट, ने टाटा वर्कर्स यूनियन के नाम एवं शैली में अनन्य रूप से मान्यता प्राप्त एवं निबंधित यूनियन के साथ समझौते किया, जिसे मजदूरों के अधिकार, मजदूरी सहित सेवा शर्तों इत्यादि के सम्बन्ध में TISCO के साथ सौदा करने का एकमात्र अधिकार था।

उसी प्रबंधन (TISCO) द्वारा दाखिल दूसरे WP (L) 5845 वर्ष 2004 में 33 कर्मकार हैं एवं दिनांक 23.5.04 के समझौते के निबंधनों में कोई अधिनिर्णय पारित करने के लिए दिनांक 9.7.04 की याचिका को दिनांक 13.9.04 के आदेश के माध्यम से खारिज किया गया था।

4. विद्वान औद्योगिक अधिकरण, राँची ने दोनों संदर्भ मामलों में दिनांक 13.9.2004 एवं 18 सितम्बर, 2004 के अपने आक्षेपित आदेश एवं निर्णय के माध्यम से अभिनिर्धारित किया कि दिनांक 23.5.2004 का परिनिर्धारण संबंधित कर्मकारों पर बाध्यकारी नहीं था एवं इस प्रकार संदर्भ को दिनांक 23.5.2004 के निबंधनों में इस प्रक्रम पर निस्तारित नहीं किया जा सकता है एवं तद्नुसार याची प्रबन्धन द्वारा दाखिल याचिका को खारिज किया। उपरोक्त दोनों आक्षेपित आदेशों को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दिए जाने की ईप्सा की गयी है।

5. याची के अधिवक्ता द्वारा पेश किया गया मुख्य तर्क यह है कि क्या कोई विवाद 23.5.2004 को प्रबन्धन एवं मान्यता प्राप्त यूनियन के बीच समझौता हो जाने के उपरांत विद्यमान था एवं क्या निर्देश कार्यवाही आगे जारी रह सकता था। यह भी तर्क किया गया है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 18(3) की दृष्टि में सुलह कार्यवाही के दौरान किया गया समझौता उन सभी कर्मकारों सहित औद्योगिक विवाद के सभी पक्षकारों पर बाध्यकारी एवं प्रवर्तनीय हो जाता है जो स्थापन में कार्यरत थे या स्थापन के भाग थे। याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव रंजन ने यह भी तर्क दिया है कि यद्यपि निर्देश धारा 10(1)(d) के अधीन बनाया गया है परंतु यदि कोई सुलह होता है जिसके

परिणामस्वरूप प्रबन्धन एवं मान्यताप्राप्त यूनियन के बीच समझौता होता है तो यह स्थापन के सभी कर्मकारों पर बाध्यकारी हो जाता है एवं उपधारणा यह होगी कि यह न्यायोचित निष्पक्ष एवं यथार्थ होगा।

याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा पेश किया गया अगला तर्क यह है कि निर्देश की पोषणीयता से संबंधित विवाद्यक को औद्योगिक अधिकरण या श्रम न्यायालय द्वारा विनिश्चित नहीं किया जा सकता है एवं उक्त विवाद्यक को मात्र उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन विनिश्चित किया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया है कि किसी समझौते में परिणत होने वाले सामूहिक सौदेबाजी की अवधारणा सदिच्छा के समय कर्मचारियों की शिकायतों के सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए शान्ति एवं सामंजस्य बनाये रखने के लिए औद्योगिक विधिशास्त्र में शामिल किया गया है एवं इसपर न्यायनिर्णयन के माध्यम से कार्यवाही किया जाना है।

इस सम्बन्ध में, उन्होंने **(2000)1 SCC पृष्ठ 371** पर **नेशनल इन्जीनियरिंग इन्डस्ट्रिज लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य** के मामले पर एवं विशेष तौर पर पैराग्राफ 24 पर विश्वास व्यक्त किया है, जो कि निम्नलिखित रूप से उत्कथित है:-

> *"24. इस प्रकार यह देखा जाएगा कि उच्च न्यायालय को एक रिट याचिका ग्रहण करने की अधिकारिता है जब ऐसा एक अभिकथन किया गया हो कि यहाँ कोई औद्योगिक विवाद नहीं है एवं ऐसी कोई आशंका नहीं थी जो कि अधिनियम की धारा 10 के अधीन औद्योगिक अधिकरण के लिए निर्देश का विषय-वस्तु हो सकता था। यहाँ पर, यह औद्योगिक अधिकरण की अधिकारिता का एक प्रश्न है, जो उच्च न्यायालय द्वारा इसके रिट अधिकारिता में परीक्षित किया जा सकता था। यह औद्योगिक अधिकरण (सिक, विवाद) का अस्तित्व है जो यथोचित सरकार को इसे संदर्भ बनाने एवं औद्योगिक अधिकरण को इसे न्यायनिर्णित करने की शक्ति प्रदान करेगा। यदि कोई औद्योगिक विवाद मौजूद नहीं है या मौजूद न होने की संभावना है तो यथोचित सरकार कोई संदर्भ बनाने की शक्ति खो देता है। पक्षकारों के बीच विवाद पर समझौता औद्योगिक न्यायनिर्णयण के लिए वहाँ दायर किया जाना है, जहाँ यह किया जा सकता था, क्योंकि समझौते से अधिनिर्णय की अपेक्षा अधिक दीर्घकालीन शांति प्राप्त होने की संभावना है। समझौता पक्षकारों की मुक्त इच्छा से किया जाता है एवं यह उनके बीच सदिच्छा का संकेतक है। जब ऐसा कोई विवाद है कि समझौता यथार्थ प्रकृति का नहीं है या यह कि यह कपट, दुर्विनियोजन या तथ्यों के छुपाव या यहाँ तक कि भ्रष्टाचार या अन्य प्रलोभन के कारण किया गया था तो यह एक अन्य औद्योगिक विवाद की विषय वस्तु हो सकता था जिसे कोई यथोचित सरकार अभिकथनों की परीक्षा के उपरांत न्यायनिर्णयण हेतु निर्दिष्ट कर सकता है क्योंकि एक अन्तर्निहित उपधारणा है कि सुलह अधिकारी की मदद से हुआ समझौता निष्पक्ष एवं युक्तिसंगत होना चाहिए। समझौता जिसे आक्षेपित किए जाने की ईप्सा की गयी है, का निरीक्षण एवं संवीक्षा किया जाना है। धारा 18 की उप-धाराएँ (1) एवं (3) समझौतों को दो भागों में विभाजित करता है, अर्थात्, (1) वैसे समझौते जो सुलह कार्यवाहियों से पहले किए गए थे, एवं (2) वैसे समझौते जो समझौता कार्यवाहियों के दौरान किए गए थे। ऐसे समझौते जो प्रथम कोटि से सम्बन्धित है की सीमित प्रयोज्यता है जिसमें यह मात्र करार के पक्षकारों को बाध्य करता है परन्तु दूसरी कोटि के समझौते की एक विस्तृत प्रयोज्यता है क्योंकि यह औद्योगिक विवाद के सभी पक्षकारों पर, ऐसे सभी अन्य लोगों पर जिन्हें सुलह कार्यवाहियों के दौरान उपस्थित होने के लिए सम्मन किया गया था एवं स्थापन में या स्थापन की ओर से नियोजित ऐसे सभी व्यक्तियों पर, यथास्थिति, बाध्यकारी होता है जिनसे यह विवाद, विवाद की तिथि को सम्बन्धित था एवं उन सभी व्यक्तियों पर जो इसके उपरांत स्थापन में शामिल हुए। किसी मान्यता प्राप्त बहुसंख्यक संघ के साथ सुलह कार्यवाहियों के*

अनुक्रम में किया गया कोई समझौता स्थापन के सभी कर्मकारों पर बाध्यकारी होगा, यहाँ तक कि उन सभी कर्मकारों पर जो अल्पसंख्यक संघ से संबंधित हैं जिन्होंने इसपर आक्षेप किया था। बहुसंख्यक सदस्यों वाले मान्यता प्राप्त संघ से श्रमिकों के विधिसम्मत हित की संरक्षण करने एवं श्रमिकों के सर्वोत्तम हित में समझौता करने की उम्मीद की जाती है। यह सुलह अधिकारी की सक्रिय सहायता से किए गए समझौते की पवित्रता को बरकरार रखने एवं किसी कर्मचारी या अल्पसंख्यक संघ को समझौते से मुकरने से हतोत्साहित करना है। जब कोई समझौता सुलह कार्यवाहियों के दौरान किया जाता है तो यह जैसा कि अधिनियम की धारा 18(3)(d) में अधिकथित किया गया है, कर्मकारों के संघ के सदस्यों पर बाध्यकारी बन जाता है। यह स्वतः ही ऐसी सभी विद्यमान कर्मकारों पर बाध्यकारी बन जाता है, जो औद्योगिक विवाद के पक्षकार है एवं जो उन संघों के सदस्य नहीं हो सकते हैं जो अधिनियम की धारा 12(3) के अधीन ऐसे समझौते के अधोहस्ताक्षरी हैं। यह अधिनियम औद्योगिक विवाद का समाधान करने एवं औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिए सामूहिक समझौते के सिद्धांत पर आधारित है। ''औद्योगिक प्रजातंत्र का यह सिद्धांत अधिनियम का आधारभूत सिद्धांत है जैसा कि पी० विरूधाचलम बनाम लोटस मिल्स के मामले में इंगित किया गया है। सामूहिक समझौते पर आधारित इन सभी वार्त्ताओं में एकल कर्मकार अनिवार्य रूप से इस पृष्ठभूमि से हट जाता है। समझौतों से, समझौते के समय विद्यमान सभी विवादों का निपटारा होगा, सिवाय उन सबके जिसे विनिर्दिष्ट रूप से छोड़ा गया है।''

उन्होंने **2005 (12) SCC पृष्ठ 738 (ए॰ एन॰ जेड॰ ग्रिंडलेज बैंक लि॰ बनाम भारत संघ एवं अन्य)** के पैराग्राफ 9 एवं 13 तथा 2005 (Lab.) I.C. पृष्ठ 1604, पैराग्राफ 21 एवं 23 को निर्दिष्ट एवं इसपर भरोसा व्यक्त किया है। उन्होंने अपने तर्क का समर्थन करने के लिए 2004 (Lab.) I.C. पृष्ठ 18 (बॉम्बे) पैराग्राफ 9 एवं 10 को भी निर्दिष्ट एवं इसपर विश्वास व्यक्त किया है।

6. प्रत्यर्थी सं॰ 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री जी॰ एम॰ मिश्र ने अपने प्रति शपथ-पत्र के पैरा 7 को निर्दिष्ट किया है, जो निम्नवत उत्कथित है:–

"7. यह कि मात्र प्रत्यर्थी सं० 4 ही ऐसे किसी सामान्य प्रकृति की मांग उठाने या औद्योगिक न्यायनिर्णयन हेतु कर्मकारों के हेतुक को स्वीकार करने में सक्षम है। प्रत्यर्थी सं० 4 ट्रेड यूनियन अधिनियम के अधीन निबंधित है एवं याची कंपनी के कर्मचारियों का एकमात्र समझौता अभिकर्ता है क्योंकि यह एकमात्र विद्यमान संघ है, जो मान्यता प्राप्त है जो याची कंपनी के कर्मचारियों के हेतुक को स्वीकार करने के प्रयोजन से एवं सामूहिक समझौते के फलस्वरूप औद्योगिक विवाद एवं अन्य मुद्दों के निपटारे एवं वार्ताओं के लिए मान्यता प्राप्त एवं प्रतिनिधि संघ है। प्रत्यर्थी सं० 4 अस्थायी कर्मचारियों सहित संबंधित कर्मकारों की एक बड़ी संख्या का प्रतिनिधित्व कर रहा है एवं एकल कर्मकार एवं/या 4 एवं 5 एकल कर्मकारों का समूह या तो सामान्य प्रकृति की मांग उठाने एवं/या इसका निपटारा करने के लिए सशक्त या हकदार नहीं है। इस स्थिति को उच्चतम न्यायालय द्वारा दृढ़तापूर्वक निपटाया गया है।''

विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क किया है कि औद्योगिक विवादों का सम्पूर्ण उद्देश्य औद्योगिक शांति लाना है एवं विवादों के निपटाने का प्रयास किया जायगा एवं इसी पृष्ठभूमि में समझौता प्रबंधन एवं मान्यता प्राप्त संघ के बीच किया गया था एवं यह सभी कर्मकारों पर बाध्यकारी होना चाहिए।

उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि औद्योगिक अधिकरण का आदेश वास्तविक मुद्दे से नहीं निपटता है एवं यह मात्र महत्वहीन मुद्दे पर विनिश्चित किया गया है। यह भी प्रतिवाद किया गया है कि कर्मकारों के व्यथित होने की दशा में उनके पास समझौते को चुनौती देने का उपचार है। उन्होंने **2005(3) (Lab.) I.C. पृष्ठ 2295 (बॉम्बे)** को भी निर्दिष्ट एवं इसपर भरोसा व्यक्त किया है।

7. प्रबन्धन का समर्थन कर रहे, प्रत्यर्थी सं॰ 3 विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि बहुसंख्यक सदस्य विवाद के निपटारे पर सहमत हैं एवं समझौता विधिमान्य एवं वैध है एवं यह सभी कर्मकारों को शामिल करता है।

8. प्रतिवादी कर्मकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री अनूप कुमार मेहता ने रिट याचिका को खारिज करने के लिए निम्नलिखित प्रतिवाद उठाये हैं।

प्रतिवादी कर्मकारों की ओर से, जो संख्या में 33 हैं उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया पहला एवं सर्वप्रथम प्रतिवाद यह है कि वे दिनांक 23.5.2005 को किए गए समझौते के अधोहस्ताक्षरी नहीं हैं एवं यह उनलोगों के विरूद्ध बाध्यकारी या प्रवर्तनीय नहीं हो सकता है।

उन्होंने समझौते के निबंधनों एवं शर्तों एवं विशेषकर पृष्ठ 111 पर यथा संलग्न खण्ड 1.3 को भी निर्दिष्ट एवं इसपर भरोसा व्यक्त किया है, जो निम्नवत् उत्कथित है:-

> *"1.3. ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो अन्यथा पात्र है परन्तु ऐसे किसी औद्योगिक विवाद का पक्षकार है जो या तो श्रमिक न्यायालय/अधिकरण या सुलह अधिकारी या किसी अन्य सांविधिक प्राधिकारी के समक्ष लंबित है, उक्त विवाद से उसके/उसकी शर्तहीन रूप से अलग होने/वापस लेने की पुष्टि करने वाले उचित दस्तावेजों को पेश करने पर ही इस समझौते के अधीन एकमुश्त वित्तीय पैकेज की प्रसुविधा का विस्तार किया जायगा, जो कंपनी की संतुष्टि के अध्यधीन है।''*

इस कारण से कि यह समझौता ही समझौते पर बिना किसी शर्त के सहमत होने के व्यक्तिगत विकल्प पर आधारित था एवं एकबार जब कर्मकारों ने समझौते को स्वीकार नहीं किया है या बिना शर्त के सम्मति नहीं दी है तो उन्हें उस समझौते पर सहमत होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है जो उनलोगों के लिए हानिकारक है।

प्रतिवादी कर्मकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया दूसरा प्रतिवाद यह है कि एकबार संदर्भित कर दिये जाने पर यह पूर्वकल्पित करता है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 12 में यथा अभिप्रेत सुलह असफल हो गया है एवं तद्नुसार धारा 10(1)(d) के अधीन संदर्भ के माध्यम से एक औद्योगिक विवाद उठाया गया है जो अधिकरण द्वारा गुणागुणों पर न्यायनिर्णित किया जाना है।

उठाया गया तीसरा प्रतिवाद यह है कि प्रबन्धन एवं एक ऐसे संघ के बीच किए गए सुलह को जो यथा निर्दिष्ट वर्तमान औद्योगिक विवादों से संबंधित नहीं है जो न तो इसके अधोहस्ताक्षरी हैं एवं न ही इसने कोई शर्त्तहीन सम्मति दी है एवं इस प्रकार उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि टाटा वर्कर्स यूनियन वर्तमान संदर्भ एवं इस औद्योगिक विवाद का एक पक्षकार भी नहीं था। अपने तर्क का समर्थन करने के लिए उन्होंने **A.I.R. 1978 सुप्रीम कोर्ट पुष्ठ 828** एवं **(2005)3 SCC पृष्ठ 224** को निर्दिष्ट एवं इसपर भरोसा व्यक्त किया है।

विद्वान अधिवक्ता ने **(1996)3 SCC पृष्ठ 206** को भी इस प्रतिपादना हेतु निर्दिष्ट एवं इसपर भरोसा व्यक्त किया है कि उठाये गए प्रारंभिक विवाद्यक या आक्षेप को औद्योगिक अधिकरण द्वारा विनिश्चत किया जाना है एवं उच्च न्यायालय को इसे स्थगित या विलम्बित नहीं करना चाहिए एवं इस तथ्य को कि प्रतिवाद कर रहे कर्मकार संघ के सदस्य भी नहीं हैं, उनके विरूद्ध नियत नहीं किया जा सकता है।

9. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा उठाये गए परस्पर विरोधी तर्क एवं अभिवचनों पर विचार किया है एवं मामले को गुणागुणों पर विनिश्चित करने से पूर्व धारा 2(e) को उत्कथित करना सुसंगत होगा, जो सुलह को परिभाषित करता है।

> *2. (e) ''सुलह कार्यवाही'' से अभिप्रेत है ऐसी कार्यवाही जो इस अधिनियम के अधीन सुलह अधिकारी या बोर्ड द्वारा करायी गयी हो।''*

धारा 2(p) समझौते को परिभाषित करता है जो निम्नवत उत्कथित है:-

2(p) ''समझौता'' से अभिप्रेत है सुलह कार्यवाही के दौरान किया गया कोई समझौता एवं इसमें सुलह कार्यवाही से इतर किए गए लिखित करार भी शामिल हैं जहाँ ऐसे करार पर इसके पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं उस रीति से जो विहित किए जा सकेंगे एवं इसकी एक प्रति यथोचित सरकारी एवं सुलह अधिकारी की ओर से प्राधिकृत अधिकारी को भेजी गयी है।''

औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 12 एवं धारा 18 को निम्नवत् उत्कथित किया जा रहा है:-

*धारा 12. **सुलह अधिकारियों के कर्त्तव्यः**-(1) जहाँ औद्योगिक विवाद मौजूद है अथवा इसकी आशंका है, या जहाँ विवाद सार्वजनिक उपयोग की सेवा से संबंधित है, एवं धारा 22 के अधीन नोटिस दी गयी है, वहाँ सुलह अधिकारी विहित रीति में सुलह कार्यवाही कर सकेगा।*

(2) सुलह अधिकारी विवाद पर समझौता करने के प्रयोजन से, विवाद एवं इसके गुणागुणों एवं उचित निपटारे को प्रभावित करने वाले सभी विषयों पर अविलम्ब अन्वेषण करेगा एवं ऐसे सभी कार्य कर सकेगा जो वह विवाद के निष्पक्ष एवं सौहार्दपूर्ण समझौता करने के लिए पक्षकारों को उत्प्रेरित करने के प्रयोजन से उचित समझे।

(3) यदि सुलह कार्यवाहियों के दौरान विवाद या विवाद के विषयों में से किसी पर कोई समझौता होता है, तो सुलह अधिकारी विवाद के पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित समझौते के ज्ञापन के साथ इसकी एक रिपोर्ट यथोचित सरकार या यथोचित सरकार द्वारा इस संबंध में प्राधिकृत किसी अधिकारी को भेजेगा।

(4) यदि ऐसा कोई समझौता नहीं होता है, तो सुलह अधिकारी यथासंभव शीघ्र विवाद से संबंधित तथ्यों एवं परिस्थितियों का अभिनिश्चय करने के लिए एवं ऐसे तथ्यों एवं परिस्थितियों का पूर्ण कथन एवं उन कारणों सहित जिसके कारण, उसकी राय में, कोई समझौता नहीं किया जा सका, इसका निपटारा करने के लिए उसके द्वारा उठाये गए कदमों को उपवर्णित करते हुए पूर्ण रिपोर्ट यथोचित सरकार को भेजेगा।

(5) यदि उप-धारा (4) में निर्दिष्ट रिपोर्ट पर विचार करके यथोचित सरकार इस बात से संतुष्ट है कि यह किसी बोर्ड, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण को निर्दिष्ट किए जाने का मामला है तो यह ऐसा संदर्भ कर सकता है। जहाँ यथोचित सरकार ऐसा कोई संदर्भ नहीं करता है, तो यह इसका कारण अभिलिखित करेगा एवं संबंधित पक्षकारों को इसे संसूचित करेगा।

(6) इस अध्याय के अधीन कोई रिपोर्ट सुलह कार्यवाही प्रारम्भ होने के चौदह दिनों के भीतर या ऐसी संक्षिप्त अवधि के भीतर पेश की जायगी जो यथोचित सरकार द्वारा नियत की जा सकेगी।

परन्तु यह कि सुलह अधिकारी के अनुमोदन के अध्यधीन रिपोर्ट पेश करने का समय ऐसी अवधि तक विस्तारित किया जा सकेगा, जिसपर कि विवाद के सभी पक्षकारों द्वारा लिखित सहमति हो सकेगी।

*18. **व्यक्ति जिनपर समझौता एवं अधिनिर्णय बाध्यकारी है.**-1. सुलह कार्यवाही के दौरान हुए करार के सिवाय नियोक्ता एवं कर्मकारों के बीच करार के माध्यम से हुआ समझौता करार के सभी पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा।*

2. उप-धारा (3) के परन्तुक के अध्यधीन, कोई माध्यस्थम अधिनिर्णय, जो प्रवर्तनीय हो गया है करार के वैसे पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा जो विवाद को माध्यस्थम को निर्दिष्ट करते हैं।

3. सुलह कार्यवाही के दौरान इस अधिनियम के अधीन हुआ कोई समझौता या कोई एक ऐसे मामले में माध्यस्थम अधिनिर्णय जहाँ धारा 10A की उप-धारा (3A) के अधीन कोई अधिसूचना निर्गत की गयी है या किसी श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण का कोई अधिनिर्णय जो प्रवर्तनीय हो गया है, बाध्यकारी होगाः-

(a) औद्योगिक विवाद के सभी पक्षकारों पर;

(b) विवाद में पक्षकारों के तौर पर कार्यवाही में उपस्थित होने के लिए सम्मन किए गए सभी अन्य पक्षकारों पर, जबतक कि बोर्ड, माध्यस्थ, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण, यथास्थिति, यह राय अभिलिखित नहीं करे कि उनलोगों को उचित हेतु के बिना सम्मन किया गया था;

(c) खण्ड (a) या खण्ड (b) में निर्दिष्ट कोई पक्षकार एक कर्मचारी, उसका उत्तराधिकारी, वारिस या स्थापन के संबंध में कोई समनुदेशिती हो जिससे विवाद सम्बन्धित है;

(d) जहाँ खण्ड (a) या खण्ड (b) में निर्दिष्ट कोई पक्षकार ऐसे कर्मकारों, सभी व्यक्तियों से मिलकर बना है जो स्थापन या स्थापन के एक भाग में, यथास्थिति, नियुक्त थे, जिससे यह विवाद, विवाद की तिथि पर सम्बन्धित है एवं ऐसे सभी व्यक्तियों पर जो बाद में उस स्थापन या इसके एक भाग में नियुक्त हुए हैं।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नेशनल इंजिनियरिंग केस (2000)1 SCC पृष्ठ 371** में जिसे याची के अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट एवं इसपर भरोसा व्यक्त किया गया है, अभिनिर्धारित किया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 18(3) के अधीन सुलह कार्यवाही के दौरान हुआ कोई समझौता कर्मकारों के अल्पसंख्यकों के विरूद्ध भी प्रवर्तनीय एवं बाध्यकारी होगा जो प्रबन्धन के साथ मान्यता प्राप्त संघ की सामूहिक समझौता करने की शक्ति का विरोध कर रहे हैं। लेकिन, निर्णय (ऊपर) के निर्णयाधार का पठन/विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होगा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 18(1) के अधीन किया गया समझौता सुलह कार्यवाही से परे किए गए समझौते को निर्दिष्ट करता है एवं इसकी एक सीमित प्रयोज्यता है एवं यह केवल करार के पक्षकारों को ही बाध्य करता है।

दूसरे, सुलह कार्यवाही एवं समझौता, जिसे संदर्भ पर आधारित औद्योगिक विवाद को समाप्त करने के लिए निर्दिष्ट एवं इसपर भरोसा व्यक्त किया जा रहा है, एक भिन्न कार्यवाही में किया गया था, जो इससे सम्बन्धित नहीं था एवं स्वीकृत तथ्य यही रहता है कि वर्तमान कर्मकारगण अधोहस्ताक्षरी भी नहीं थे एवं न ही तथाकथित मान्यता प्राप्त संघ के सदस्य थे एवं इस प्रकार इसे उनके विरूद्ध बाध्यकारी नहीं बनाया जा सकता है यहाँ तक कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(p) के अधीन भी नहीं। यह वर्णन करना भी उचित होगा कि यथोचित सरकार ने मेसर्स TISCO लि॰, जमशेदपुर के प्रबन्धन एवं पाँच प्राधिकृत अस्थायी कर्मकारों के प्रतिनिधित्व में उनके कर्मकारों के बीच के औद्योगिक विवाद को औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1)(d) के अधीन न्यायनिर्णयन हेतु निर्दिष्ट किया एवं दिनांक 23.5.2004 का समझौता अधिनियम की धारा 12 के अधीन सुलह कार्यवाही के दौरान नहीं किया गया था, बल्कि स्वीकार्यतः उनलोगों के बीच सुलह असफल हुआ जिसके फलस्वरूप समझौते के काफी पूर्व धारा 10(i)(d) के अधीन संदर्भ बनाया गया एवं इस प्रकार यह

प्रतिवादी कर्मकारों पर बाध्यकारी नहीं था क्योंकि उनके प्रतिनिधियों ने समझौते में भाग नहीं लिया, न ही वे इसके अधोस्ताक्षरी थे। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(p) के अधीन भी ऐसा सुलह एवं/या समझौता कार्यवाही एवं/या करार पर पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किया जाना है एवं एक लिखित करार किया जाना है जो वर्तमान मामले में नहीं किया गया है।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 1986 (52) FLR 358 (S.C.) में निम्नवत अभिनिर्धारित किया:–

> *''.....अभिव्यक्ति 'समझौता' को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(p) में परिभाषित किया गया है। इसका अभिप्राय है एक ऐसा समझौता जो सुलह कार्यवाही के अनुक्रम में किया गया हो एवं इसमें नियोक्ता एवं कर्मकारों के बीच किया गया एक ऐसा लिखित करार भी शामिल जो सुलह कार्यवाही से परे किया गया है जहाँ ऐसा करार पर इसके पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किया गया हो ऐसी रीति में जो विहित किया जा सकेगा एवं इसकी एक प्रति सुलह अधिकारी एवं यथोचित सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में प्राधिकृत अधिकारी को भेज दी गयी है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में सुलह कार्यवाही के दौरान किए गए समझौते एवं नियोक्ता तथा कर्मकारों के बीच सुलह कार्यवाही से परे किए गए समझौते के बीच विभेद किया गया है.....''*

अग्रेतर उक्त निर्णय में निम्नवत् संप्रेक्षण किया गया है;

> *''.....परन्तु सुलह कार्यवाही से परे किए गए समझौते के मामले में इसे विहित रीति में पक्षकारों द्वारा लिखित एवं हस्ताक्षरित होना है एवं इसकी एक प्रति सुलह अधिकारी एवं यथोचित सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में प्राधिकृत अधिकारी को भेजा जाना चाहिए। नियोक्ता एवं कर्मकारों के बीच सुलह कार्यवाही से परे किया गया ऐसा कोई समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 18(1) में यथा उपबंधित करार के पक्षकारों पर बाध्यकारी होता है। ऐसा कोई समझौता ऐसे अन्य कर्मकारों पर बाध्यकारी नहीं है जो समझौते के पक्षकार नहीं हैं.....''*

12. धारा 18(3) के अंतर्गत मात्र ऐसा समझौता ही जो इस अधिनियम के अधीन सुलह कार्यवाही के दौरान किया गया है या कोई माध्यस्थम् अधिनिर्णय जो प्रवर्तनीय बन गया है, औद्योगिक विवाद के सभी पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा एवं धारा 18(1) के अधीन नियोक्ता एवं कर्मकारों के बीच सुलह कार्यवाही से परे किया गया समझौता करार के पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा।

धारा 12 का उप-धारा (4) एवं (5) अधिकथित करता है कि यदि कोई समझौता नहीं होता है, तो सुलह अधिकारी यथोचित सरकार को एक पूर्ण रिपोर्ट पेश करेगा, जो यदि इस बात से संतुष्ट है कि यह बोर्ड, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण को यथास्थिति, निर्दिष्ट किए जाने का एक मामला है, तो वह ऐसा निर्देश कर सकेगा एवं इसका कारण अभिलिखित एवं संबंधित पक्षकारों को संसूचित करेगा। जहाँ तक सुलह कार्यवाही से परे किए गए समझौते का सम्बन्ध है धारा 18(1) ऐसे समझौते का वर्णन करता है एवं अधिकथित करता है कि नियोक्ता एवं कर्मकारों के बीच सुलह कार्यवाही से परे किया गया कोई करार इसके पक्षकारों पर बाध्यकारी होगा। लेकिन, धारा 18 का उप-धारा (3) सुलह कार्यवाही के दौरान किए गए समझौते का वर्णन करता है एवं यह इस मामले के तथ्यों में लागू नहीं होगा क्योंकि सुलह असफल हुआ था एवं विवाद को यथोचित सरकार द्वारा न्यायनिर्णयन हेतु निर्दिष्ट किया गया था।

13. ANZ ग्रिंडलेज बैंक लि॰ बनाम भारत संघ के **(2005)12 SCC पृष्ठ 738** में प्रकाशित मामले में मामले के तथ्य पूर्णतया भिन्न थे क्योंकि समझौते पर पहले ही अमल किया गया था एवं कोई भी औद्योगिक विवाद विद्यमान नहीं था एवं न ही अपीलार्थी बैंक एवं फेडरेशन के बीच विवाद की कोई आशंका थी एवं इस पृष्ठभूमि में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि औद्योगिक अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णयन हेतु निर्देशित करने का कोई अवसर नहीं था।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **1978 (3) SCC पृष्ठ 42 (टाटा केमिकल लि॰ बनाम इसके कर्मकारगण)** पर भी विश्वास व्यक्त किया जिसमें पैराग्राफ 13 पर निम्नवत अभिनिर्धारित किया गया था:-

''जबकि नियोक्ता एवं कर्मकारों के बीच सुलह कार्यवाही से परे किया गया कोई समझौता केवल करार के पक्षकारों पर ही बाध्यकारी है, परन्तु सुलह कार्यवाही के दौरान अधिनियम के अधीन कोई समझौता न केवल औद्योगिक विवाद के पक्षकारों पर अपितु अधिनियम की धारा 18 की उप-धारा (3) के खण्ड (b) (c) एवं (d) में विनिर्दिष्ट अन्य व्यक्तियों पर भी बाध्यकारी है।''

वास्तव में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ANZ मामले (ऊपर)** में पैराग्राफ 9 पर निम्नवत् अभिनिर्धारित किया:-

''फेडरेशन (द्वितीय प्रत्यर्थी) करार का पक्षकार न होने के कारण, यह स्पष्ट है कि यह अधिनियम की धारा 18 के उप-धारा (1) की दृष्टि में इसपर बाध्यकारी नहीं है। इस प्रकार, दिनांक 18.8.1996 का समझौता किसी भी रीति से, जो कुछ भी, फेडरेशन (द्वितीय प्रत्यर्थी) के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता था एवं संभवतः इसे उक्त समझौते के विरूद्ध कोई व्यथा नहीं थी।''

14. उपरोक्त निर्णय पर विचार करके, विधि का यथा घोषित निष्कर्ष एवं निर्णयाधार यह है कि एकबार सुलह कार्यवाही के दौरान एक लिखित करार कर लिए जाने पर मात्र ऐसे समझौते ही धारा 18(3) के अधीन न केवल समझौते के अधोहस्ताक्षरियों पर अपितु, औद्योगिक विवाद के सभी पक्षकारों पर जो कर्मकारों के संपूर्ण निकाय को आच्छादित करेगा, बाध्यकारी होगा। लेकिन, वर्तमान मामले में तथ्य यह है कि सुलह कार्यवाहियाँ असफल हुई थी एवं इस विषय को औद्योगिक अधिकरण के समक्ष न्यायनिर्णयन हेतु औ॰ वि॰ अधिनियम की धारा 10(1)(d) के अधीन निर्देश हेतु यथोचित सरकार को निर्दिष्ट किया गया था एवं इस प्रकार याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट निर्णय (ऊपर) लागू नहीं होगा क्योंकि वे ऐसे मामले थे जिसमें पक्षकारों के बीच समझौता औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 12 के अधीन सुलह कार्यवाही के दौरान किए गए थे।

परन्तु वर्तमान मामले में, अधिनियम की धारा 2(p) के अधीन यथा उपबंधित ऐसा कोई समझौता नहीं है क्योंकि संबंधित कर्मकारों एवं प्रबंधन के बीच किसी भी करार पर हस्ताक्षर नहीं किया गया है।

15. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 2(p) सह-पठित धारा 18(3) के अधीन यथा अनुध्यात सांविधिक समझौता इसे प्रवर्तनीय एवं बाध्यकारी बनाने के लिए प्रतिवादी कर्मकारों/वर्तमान प्रत्यर्थी के बीच किया गया था।

16. मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके, ये सभी रिट याचिकायें खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

सुरेश सिंह

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 4076 वर्ष 2008. 26 जून, 2009 को विनिश्चित।

केन्द्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972—नियम 19(1)(b)(iii)—सिविल सेवा के पहले प्रदत्त सैन्य सेवा की गणना–असैन्य नियोजन लेने से पहले याची द्वारा प्रदत्त पूर्वतर सेवा की गणना–अभिनिर्धारित, वायु सेना सेवा में भुगतान की गई सेवानिवृत्ति के उपदान का प्रतिदाय करने के उपरांत याची असैन्य सेवा पेंशन का अधिकारी है। (पैरा 9 एवं 10)

अधिवक्तागण.–Mrs. Sarita Gupta, For the Petitioner; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्रीमती सरिता गुप्ता एवं प्रत्यर्थी-भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता, श्री मो॰ मोख्तार खान को सुना।

2. केन्द्रीय सिविल सेवा पेंशन नियमावली, 1972 के नियम 19(1) के लाभों को अनुज्ञात करने और याची द्वारा असैन्य नियोजन लेने से पहले 8.11.1965 से 13.11.1974 तक उसके द्वारा की गई सैन्य सेवा की अवधि की गणना करने और उसकी पूर्वतर सेवा की गणना करके उसे पेंशन के सभी पारिणामिक लाभों को प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थीगण को एक निर्देश देने के लिए, याची ने इस रिट आवेदन में प्रार्थना की है।

3. याची का मामला संक्षेप में यह है कि उसने 8.11.1965 से 13.11.1974 तक भारतीय वायु सेना में 9 वर्ष एवं 23 दिनों की सेवाएं प्रदान की थी और इसकी संपुष्टि में दिनांक 13.6.2006 का एक सेवोन्मुक्ति प्रमाण-पत्र उसे वायु सेना अभिलेख विभाग द्वारा निर्गत किया गया था। तत्पश्चात्, याची ने 23 जून, 1977 को दूरभाष एक्सचेंज, दुमका में दूर-संचार विभाग के अधीन सेवा में योगदान दिया।

अपने असैन्य नियोजन में योगदान देने के उपरांत, उसने नियंत्रक प्राधिकारी, अर्थात, डी॰ ई॰ टी॰, पटना के समक्ष 31.12.1977 को एक आवेदन प्रस्तुत किया सम्बद्ध प्राधिकारीगण को इस तथ्य की सूचना देते हुए कि उसने भारतीय वायु सेना में 9 वर्ष 23 दिनों की निरंतर सेवा पूरी की थी और उनसे आग्रह किया गया था, कि असैन्य नियोजन में उसकी वर्तमान सेवा के साथ भारतीय वायु सेना में उसके द्वारा की गई सेवा अवधि की गणना की जाए और उसने इसके साथ भारतीय वायु सेना द्वारा निर्गत सेवोन्मुक्ति प्रमाण-पत्र अनुलग्न किया गया था।

अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि से पूर्व, उसने पेंशन परिकलन के प्रयोजन के लिए दूर-संचार विभाग में उसकी वर्तमान सेवा के साथ भारतीय वायु सेना में उसकी सेवा की अवधि की गणना करने के एक आग्रह के साथ दिनांक 22.2.2006 को दोबारा अपना आवेदन प्रस्तुत किया था।

4. तथापि, उसके आवेदन को आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-6) द्वारा इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया कि CCS (पेंशन) नियमावली, 1972 के नियम 19(1) के प्रावधानों के अधीन याची भारतीय वायु सेना में अपनी पूर्वतर सेवा के योग की दावा करने का अधिकारी नहीं था।

5. प्रति शपथपत्र के माध्यम से याची को समूचे दावे से इन्कार करते हुए और उसे प्रश्नाधीन करते हुए प्रत्यर्थीगण ने याची की प्रार्थना को खारिज करने के लिए आधारों को स्पष्टीकृत करने का प्रयास किया है जो निम्नांकित रूप से है:–

(i) CCS (पेंशन) नियमावली, 1972 के नियम 19(1) के अधीन, एक सरकारी सेवक जो संयुक्त रूप से सैन्य एवं असैन्य सेवा की ऐसी अवधि जो दस वर्ष से कम न हो, पूरी करके संपुष्टि के बगैर अधिवर्षिता या अशक्त हो जाने पर सेवानिवृत्त होता है, सेवा की गणना किये जाने के लाभ का अधिकारी होगा। याची के असैन्य नियोजन में उसके योगदान देने से पहले सैन्य सेवा दस वर्ष पूरी न किए जाने के कारण, वह अपनी पूर्वतर असैन्य सेवा की गणना किए जाने के लाभ का अधिकारी नहीं है।

(ii) याची की सेवा-पुस्तिका में कोई प्रविष्टि नहीं है यह संपुष्ट करने के लिए कि उसने पुनर्नियोजन में अपने योगदान की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर अपना विकल्प प्रस्तुत किया था।

6. आक्षेपित आदेश पर आलोचना करते हुए, जिसके द्वारा याची की पूर्वतर सैन्य सेवा की गणना करने के लिए उसके दावे को अस्वीकृत कर दिया गया था, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि जिन आधारों पर याची की प्रार्थना अस्वीकार की गई थी, वे पूर्णत: भ्रामक और दिग्भ्रमित करने वाला हैं। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि याची 30.11.1974 को सैन्य सेवा से सेवानिवृत्त हुआ था और लगभग तीन वर्षों के एक अन्तर के उपरांत 23.6.1977 को उसे डी॰ ओ॰ टी॰ (अब बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में आमेलित) के अधीन टेलीफोन ऑपरेटर के तौर पर टेलीफोन एक्सचेंज, दुमका में नियुक्त किया गया था। विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि दूर-संचार विभाग के अधीन सेवा में उसके योगदान की तिथि से एक वर्ष के भीतर उसने विभाग को न केवल अपनी पूर्वतर सैन्य सेवा के बारे में अपने विभाग को सूचित कर दिया था अपितु यह भी आग्रह किया था कि पेंशन संबंधी लाभों के प्रयोजन के लिए उसकी पूर्वतर सैन्य सेवा की अवधि की गणना उसके असैन्य नियोजन की अवधि के साथ की जाए। विद्वान अधिवक्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि भारतीय वायु सेना में अपना पद त्याग करने के उपरांत उसने असैन्य नियोजन में योगदान देने से पहले किसी पेंशन संबंधी लाभ का उपयोग नहीं किया था।

सी॰सी॰एस॰ (पेंशन) नियमावली, 1972 के नियम 19(1) के प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अर्हिता सेवा की गणना के प्रयोजन के लिए यह नियम सैन्य सेवा की न्यूनतम दस वर्ष की किसी अवधि को अनुबद्ध नहीं करता है। विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि सी॰ सी॰ एस॰ (पेंशन) नियमावली के नियम 19(1), जैसा कि यह याची के सैन्य सेवा छोड़ने का समय नियत था, ऐसी कोई अनुबद्धता नहीं थी कि एक सरकारी सेवा को उसके असैन्य सेवा में योगदान देने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर पूर्वतर सैन्य सेवा की गणना कराने के लिए अपने विकल्प का इस्तेमाल करता है। फिर भी, याची ने उसके असैन्य सेवा में योगदान देने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर, सम्यक् रूप से उसकी विभागीय प्रधान को सूचित कर दिया था उसकी पूर्वतर सैन्य सेवा की अवधि की गणना करने के लिए अपने विकल्प की सूचना देते हुए। इससे भी बढ़कर, जिस प्राधिकारी ने असैन्य सेवा में याची की तात्विक नियुक्ति का आदेश निर्गत किया था, उसने याची से लिखित अपने विकल्प का इस्तेमाल करने या उसके द्वारा प्राप्त की गई सेवा उपदान की राशि का प्रतिदाय करने के लिए नहीं कहा था।

7. दूसरी ओर प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता उन्हीं आधारो को दुहराते हैं मुख्यत: इस आधार पर जोर देते हुए कि याची ने असैन्य सेवा में अपने योगदान देने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर अपने विकल्प को प्रस्तुत नहीं किया था और न ही याची के उपदान की राशि का प्रतिदाय किया था, जो उसे उसकी पूर्वतर सैन्य सेवा के बदले प्राप्त हुई थी। विद्वान अधिवक्ता ने इस संदर्भ में भारत सरकार के निर्णयों को निर्दिष्ट किया।

8. चूँकि प्रत्यर्थीगण द्वारा उठाया गया विवाद सी॰ सी॰ एस॰ (पेंशन) नियमावली, 1972 के नियम 19 के प्रावधानों के संबंध में है, अत: नियम 19 के सुसंगत भाग को निर्दिष्ट करना यथोचित होगा, जो निम्नांकित रूप से पठित है:-

*"19. **असैन्य नियोजन से पहले प्रदत्त सैन्य सेवा की गणना.**-(1) एक सरकारी सेवक जो एक असैन्य सेवा या पद पर अधिवर्षिता की अवस्था प्राप्त करने से पहले पुनर्नियोजित होता है और जो ऐसे पुनर्नियोजन के पहले, अट्ठारह वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के उपरांत सैन्य सेवा प्रदान कर चुका हो एक असैन्य सेवा में या पद पर यह अपनी सेवा सम्पुष्टि पर विकल्प रख सकता है-*

(a) सैन्य पेंशन को प्राप्त करना जारी रखना या सैन्य सेवा से अवमुक्ति पर प्राप्त उपदान अपने ही पास रखना इस स्थिति में उसकी पूर्वतर सैन्य सेवाओं की गणना अर्हिता सेवा के तौर पर नहीं की जाएगी; या

(b) अपनी पेंशन को प्राप्त करना बन्द कर देना और प्रतिदाय करना-

(i) वह पहले आहरित पेंशन का, एवं

(ii) सैन्य पेंशन के एक भाग के रूपान्तरण के लिए प्राप्त मूल्य का और

(iii) [सेवानिवृत्ति उपदान] की राशि जिसमें सेवा उपदान, अगर कोई हो, शामिल है, और पूर्वतर सैन्य सेवा की अर्हता सेवा के तौर पर गणना करना, इस स्थिति में गणना किए जाने के लिए इस प्रकार अनुज्ञात सेवा को भारत में कर्मचारी की ईकाई या विभाग के भीतर या बाहर या कहीं और तक सीमित कर दिया जाएगा जिसका भुगतान भारत की संचित विधि से किया जाता है निधि या जिसके लिए सरकार द्वारा पेंशन संबंधी अंशदान प्राप्त किया गया है:-

परन्तु यह कि□-

(i) पुनर्नियोजन की तिथि से पूर्व आहरित पेंशन का प्रतिदाय करने की आवश्यकता नहीं है,

(ii) पेंशन का वह तत्व जिसे उसके वेतन निर्धारण के लिए उपेक्षा कर दी गई थी जिससे पेंशन का वह तत्व सम्मिलित है जिसे पुनर्नियोजन पर वेतन के निर्धारण में ध्यान नहीं रखा गया था उसके द्वारा इसका प्रतिदाय किया जाएगा।

(iii) पेंशन के रूपान्तरित भाग के तत्व अगर कोई हो, को शामिल करते हुए उपदान के समतुल्य पेंशन के तत्व को, जिसे वेतन निर्धारण में ध्यान रखा गया था। [सेवानिवृत्ति उपदान] की राशि के विरूद्ध हटा लिया जाएगा और पेंशन का स्थानान्तरित मूल्य और शेष, अगर कोई हो, का उसके द्वारा प्रतिदाय किया जाएगा।

***स्पष्टीकरण.**-इस खण्ड में, अभिव्यक्ति जिसे ध्यान रखा गया था अर्थ है पेंशन की वह राशि है, जिसमें उपदान का समतुल्य पेंशन शामिल है, जिसके द्वारा सरकारी सेवक के वेतन को प्रारंभिक पुनर्नियोजन पर घटाया गया था, और अभिव्यक्ति जिसे ध्यान में नहीं रखा गया था का तद्नुसार अर्थान्वयन किया जाएगा।*

(2) (a) एक असैन्य सेवा या पद पर तात्विक नियुक्ति के आदेश को निर्गत करने वाले प्राधिकारी जैसा कि उप-नियम (1) में निर्दिष्ट किया गया है के लिए लिखित में सरकारी सेवक को उस उप-नियम के अधीन उस विकल्प का इस्तेमाल करने के लिए कहना आवश्यक होगा ऐसे आदेश के निर्गत होने की तिथि से तीन महीने के भीतर, अगर वह उस तिथि को छुट्टी पर है, तो छुट्टी से उसकी वापसी के तीन महीनों के भीतर, जो भी वाद वाला हो और खण्ड (b) के प्रावधानो को भी उसके ध्यान में लाना होगा।

(b) अगर खण्ड (a) में निर्दिष्ट अवधि के भीतर किसी विकल्प का इस्तेमाल नहीं किया जाता है तो सरकारी सेवक द्वारा उप-नियम (1) के खण्ड (a) के विकल्प का इस्तेमाल किया गया समझा जाएगा।

(3) (a) एक सरकारी सेवक को जो उप-नियम (1) के खण्ड (b) का विकल्प चुनता है, अपनी पुलिस सैन्य सेवा के संबंध में प्राप्त पेंशन, बोनस या उपदान को आवश्यक रूप से लौटाना होगा, मासिक किस्तो में जो संख्या में छत्तीस से अधिक न हो, पहली किस्त उस महीने से प्रारम्भ होगा जो उस महीने के बाद वाला महीना होगा जिसमें उसने विकल्प का इस्तेमाल किया।

(b) पूर्वतर सेवा की गणना अर्हता सेवा के तौर पर करने का अधिकार तब तक पुनरूज्जिवित नहीं होगा जबतक कि समूची राशि का प्रतिदाय नहीं किया जाता है।

(4) एक ऐसे सरकारी सेवक के मामले में, जो पेंशन, बोनस या उपदान के प्रतिदाय करने का चयन करके, समूची राशि की प्रतिदाय किए जाने से पहले मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तो उसके पेंशन या उपदान की वापस नहीं की गई राशि का [मृत्यु उपदान] के विरूद्ध समायोजन कर लिया जाएगा जो उसके परिवार को देय बनाएगी।

(5) जब असैन्य पेंशन के लिए पूर्वतर सैन्य सेवा की अर्हता सेवा के भाग के तौर पर अनुज्ञात करने वाला आदेश इस नियम के अधीन पारित किया जाता है तो उस आदेश को सैन्य सेवा में सेवा में अन्तराल, अगर कोई है, को और असैन्य एवं सैन्य सेवा के बीच अन्तराल की माफी को शामिल करने वाला समझा जायगा।''

9. इसे नोट किया जाना चाहिए कि ''सेवा उपदान समेत सेवानिवृत्ति उपदान'' की राशि जो नियम 1 के उप-नियम (b)(iii) में निर्दिष्ट हो, को 6 अगस्त, 1988 को प्रकाशित राजपत्र अधिसूचना द्वारा पुरस्थापित किया गया था उसके द्वारा इंगित करते हुए कि सेवानिवृत्ति उपदान का प्रतिदाय करने की आवश्यकता को मूल नियम 19 में अनुबद्ध नहीं किया गया था न तो सैन्य सेवा से याची को अलग होने के समय और न ही उसके असैन्य सेवा में योगदान की तिथि पर इसी प्रकार, भारत सरकार के निर्णय जिन्हें प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट किया गया है जिसके द्वारा पुनर्नियोजन की तिथि से एक वर्ष की अवधि को पुनर्नियोजित सैन्य कार्मिक द्वारा विकल्प का इस्तेमाल करने हेतु विहित किया गया था, पहली बार 26 फरवरी, 1988 की राजपत्र अधिसूचना द्वारा पुरस्थापित की गई थी। इस प्रकार, याची की सैन्य सेवा की गणना करने के लिए उसकी प्रार्थना को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि उसने असैन्य सेवा में अपने पुनर्नियोजन की तिथि से एक वर्ष के भीतर अपने विकल्प का इस्तेमाल नहीं किया था।

जहाँ तक उस आधार का संबंध है कि याची ने उपदान की राशि का प्रतिदाय नहीं किया था, जो उसने अपनी पूर्वतर सैन्य सेवा के संबंध में प्राप्त की थी। याची का तर्क यह है कि असैन्य सेवा में उसकी तात्विक नियुक्ति का आदेश निर्गत करने वाले प्राधिकारी द्वारा पूर्वतर सैन्य सेवा की गणना करने के लिए उसके विकल्प का इस्तेमाल करना उसके लिए आवश्यक नहीं बनाना गया था और न ही उसकी पूर्वतर सैन्य सेवा के संबंध में उसके द्वारा प्राप्त उपदान की राशि को लौटाने के लिये उसे कहा गया था।

नियम, जैसा कि ऊपर उत्कथित किया गया है, आवश्यक बनाता है कि सरकारी सेवक, जो असैन्य नियोजन में पुनर्नियोजित होता है, पेंशन के प्रयोजन के लिए अपनी पूर्वतर सैन्य सेवा की गणना अर्हता सेवा के तौर पर करने के लिए अपने नियोक्ता के समक्ष अपना विकल्प प्रस्तुत कर सकता है। स्वीकार्यत:, जैसा कि आक्षेपित आदेश में भी प्रतीत हो रहा है, याची ने असैन्य नियोजन में अपने योगदान के एक वर्ष के भीतर अपने विभागीय प्रधान को अपना आग्रह प्रस्तुत कर दिया था, न केवल अपनी पूर्वतर सैन्य सेवा के बारे में सूचित करते हुए बल्कि उसे देय पेंशन की राशि के दाखिला के प्रयोजनों के लिए उसकी असैन्य सेवा के साथ उसकी पूर्वतर सैन्य सेवा की गणना करने का भी आग्रह करते हुए। सम्बद्ध प्राधिकारों को दिनांक 31.4.1977 को याची के आग्रह पर विचार करना चाहिए था और इसे उसकी पूर्वतर सैन्य सेवा की गणना करने के लिए उसके विकल्प की अभिव्यक्ति मानना चाहिए था। केवल इस कारण कि याची ने अपनी पूर्वतर सैन्य सेवा के बदले उसके द्वारा प्राप्त उपदान की राशि का प्रतिदाय नहीं किया है अपने आप में उसे देय पेंशन की राशि का परिकलन करने के

प्रयोजनों के लिए उसकी पूर्वतर सैन्य सेवा सहित असैन्य नियोजन में उसकी सेवा की अवधि की गणना करने के उसके दावे को निष्फल नहीं कर सकता। याची के लिए उपदान राशि का प्रतिदाय करना सम्बद्ध प्राधिकारों द्वारा कभी भी आवश्यक नहीं बनाया गया था। अन्यथा भी, याची ने स्वयं ब्याज के साथ इसका प्रतिदाय करने का प्रस्ताव रखा था। प्रत्यर्थीगण को प्रतिदाय के लिए प्रस्ताव स्वीकार करना चाहिए था या अधिक से अधिक असैन्य नियोजन से उसकी सेवानिवृत्ति के समय उसे देय उपदान की राशि से इसे समायोजित कर लेना चाहिए था।

10. ऊपर चर्चा किए गए कारणो से, मैं इस रिट आवेदन में गुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह निम्नांकित निर्देशों के साथ अनुज्ञात किया जाता है।

(a) याची इस आदेश की तिथि से तीन महीनों के भीतर, असैन्य नियोजन में अपनी संपुष्टि की तिथि से 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ उपदान की राशि और डी० सी० आर० जी० की राशि, जो उसके द्वारा उसकी पूर्वतर सैन्य सेवा का संबंध में प्राप्त की गई थी का प्रतिदाय करेगा।

(b) याची द्वारा पूर्वोल्लिखित राशि के प्रतिदाय की तिथि से तीन महीनों के भीतर प्रत्यर्थीगण इसकी पूर्वतर सैन्य सेवा की अवधि की गणना करते हुए याची को नियमों के अनुसार पेंशन के सारे लाभ प्रदान कर देंगे।

माननीय अमरेश्वर सहाय एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

उमाकांत मण्डल

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

दां॰ (जेल) अपील (डी॰ बी॰) संख्या 41 वर्ष 1992 (पी॰). 18 मई, 2009 को विनिश्चित।

सत्र वाद संख्या 74 वर्ष 1991 में श्री अजय कुमार श्रीवास्तव, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 23.9.1991 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 30.9.1991 के दण्ड के आदेश के विरूद्ध।

(क) भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 302 एवं 201—हत्या–हत्या कारित करने और अपराध के साक्ष्य को गायब कराने का अभिकथन–अभियोजन मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधृत–कोई मंशा सिद्ध नहीं की गई–अभिनिर्धारित, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में मंशा को सिद्ध करने की आवश्यकता होती है केवल संदेह और अपीलार्थी के पति होने के कारण दोषसिद्धि नहीं की जा सकती–अपीलार्थी दोषमुक्त। (पैरा 10 से 14)

(ख) दाण्डिक विचारण–परिस्थितिजन्य साक्ष्य–अभियोजन मामले को सिद्ध करने में मंशा अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है–खासकर तब जब मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधृत होता है। (पैरा 11)

अधिवक्तागण.–M/s D.K. Prasad, Sunil Kr. Mahto, For the Appellant; Mr. M. Jagannath, For the State.

निर्णय

न्यायालय द्वारा.–सत्र वाद संख्या 74/1991 में द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 23.9.1991 के निर्णय के विरूद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी, जिसका अपनी पत्नी कान्ती देवी की हत्या कारित करने और अपराध के साक्ष्य को गायब करने के लिए

विचारण किया गया था, को दोषी पाया गया है और तद्द्वारा दं० प्र० सं० की धाराओं 302 एवं 201 के अधीन अपराध कारित करने के लिए, दोषसिद्ध किया गया है और दं० प्र० सं० की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन सश्रम कारावास भुगतने और दं० प्र० सं० की धारा 201 के अधीन अपराध के लिए पाँच वर्ष की एक अवधि के सश्रम कारावास को भी भुगतने का दण्डादेश किया गया है।

2. इस अपील को उद्भूत करने वाले तथ्य संक्षेप में ये हैं कि सूचनादाता महादेव मण्डल ने 6.10.1990 को भागलपुर जिले में कहलगाँव पुलिस थाना के समक्ष एक फर्दबयान उसमें यह अभिकथित करते हुए दर्ज कराया कि उसने ग्राम–धलकुडिया पुलिस थाना–बेलबड्डा, जिला–गोड्डा के निवासी अपीलार्थी उमाकान्त मण्डल का विवाह अपनी पुत्री कान्ती देवी से कराया और कान्ती देवी का लगभग 3-4 वर्षों का एक पुत्र था। जब वह गर्भवती थी तो उसने एक बकरे की बलि चढ़ाने का वादा किया था जिसकी व्यवस्था करने की स्थिति में उसका पति नहीं था और, इसलिए, उसने अपने पिता अर्थात, सूचनादाता को एक बकरे की व्यवस्था करने को कहा। सूचनादाता ने अपनी पुत्री की इच्छाओं के अनुसार उक्त प्रयोजन के लिए एक बकरे की व्यवस्था कर दी। 3.10.1990 को लगभग 10 बजे पूर्वाह्न में अपीलार्थी उमाकांत मण्डल बकरे को लेने के लिए ग्राम सिंघवी में सूचनादाता के घर आया और अपने गाँव लौटते समय उसने सूचनादाता से कहा कि किसी को भी उसके गाँव नहीं आना है। 5.10.1990 को सूचनादाता ने अपने पुत्र रघुनाथ मण्डल को अपनी पुत्री का हाल–चाल पूछने के लिए अपीलार्थी के घर भेजा। उसका पुत्र दोपहर में उसी दिन लौट आया और उसे बताया कि उसकी बहन कान्ती देवी अपनी ससुराल में नहीं थी और पूछे जाने पर उसके ससुराल वालो ने कोई संतोषजनक जवाब नहीं दिया। उसने यह भी प्रकट किया कि अपीलार्थी भी गाँव में नहीं मिला था। तत्पश्चात्, सूचनादाता के पुत्र ने अपीलार्थी के चचेरे भाइयों से अपनी बहन के बारे में सूचना प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु उन्होंने भी कोई जवाब देने से बचना चाहा तथापि, उसे यह जानकारी मिली कि 3.10.1990 को सायंकाल में अपीलार्थी अपनी पत्नी कान्ती देवी के बालों को पकड़ कर उसे घसीटता हुआ धुलिया नदी के ऊपर पुल पर ले गया था और वहाँ उसने उपस्थित अन्य व्यक्तियों की मदद से अपनी पत्नी कान्ती देवी को मार दिया और, तत्पश्चात्, उसके शव को धुलिया नदी में फेंक दिया। रघुनाथ ने पुल के निकट और नदी में अपनी बहन के शव को ढूढ़ना चाहा परन्तु उसकी तलाश नहीं कर सका।

ऐसी सूचना की प्राप्ति पर, सूचनादाता 4-5 अन्य गाँव वालों के साथ धलकुड़िया गाँव में अपनी पुत्री के ससुराल गया परन्तु वहाँ अपीलार्थी के परिवार का कोई भी व्यक्ति नहीं मिला और, तत्पश्चात्, उसने नदी में अपनी पुत्री के शव को खोजना प्रारम्भ किया और, अन्ततः वह उसके शव को कहलगाँव स्थित 'कौआ पूल' के निकट खोज सका। चूँकि शव कहलगाँव में पाया गया था, जो भागलपुर जिले के अधिकार क्षेत्र में था। इसलिए, कहलगाँव पुलिस ने सूचनादाता के बयान को अभिलिखित किया। मृत्यु–समीक्षा रिपोर्ट तैयार की और तत्पश्चात् पोस्टमार्टम परीक्षण के लिए कान्ती देवी के शव को भागलपुर भेज दिया। तथापि जब कहलगाँव पुलिस को लगा कि वस्तुतः अपराध गोड्डा जिले की क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर कारित किया गया था, इसलिए मामले में आगे की कार्रवाई और अन्वेषण के लिए सूचनादाता के फर्दबयान को मेहरामा पुलिस थाना भेज दिया गया। अन्वेषण की समाप्ति पर पुलिस ने दं० प्र० सं० की धाराएँ 302 एवं 201 के अधीन अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया। इसके आधार पर संज्ञान लिया गया, मामला को सत्र न्यायालय भेजा गया जहाँ अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप विरचित किए गए, जिसमें उसने इन्कार किया और तत्पश्चात उसे विचारण पर रखा गया।

3. पूरा मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधृत है क्योंकि घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है।

4. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर अवधारित किया कि निम्नांकित परिस्थितियां प्रतीत हुई जिनसे यह सिद्ध हुआ था यह अपीलार्थी था जिसने अपनी पत्नी कान्ती देवी की हत्या कारित की थी और, तत्पश्चात, उसके शव को नदी में फेंक दिया था।

(i) घटना की तिथि को प्रातःकाल में अपीलार्थी अपनी पत्नी से अति क्रोधित था और उसने उसे मारा था जिसके कारण वह उसके घर से भाग गई थी और अपनी मौसी (अ० सा० 2) के घर में शरण ली थी।

(ii) अपीलार्थी क्रोधित हो गया और अ० सा० 2 एवं अ० सा० 4 के साथ उसका झगड़ा भी हुआ था इसको लेकर कि उसकी पत्नी ने उनके घर में शरण क्यों ली थी और, तत्पश्चात्, वह अपनी पत्नी को वापस ले गया। अ० सा० 2 ने कहा था कि कान्ती देवी ने उसे बताया था कि उसे अपीलार्थी द्वारा मारा-पिटा गया था।

(iii) अ० सा० 12 ने कहा कि लगभग एक वर्ष पहले जब वह अपने पशुओं को चरा कर लौट रहा था, उसने अपीलार्थी को अपनी पत्नी के साथ पहले देखा था और उसके आठ दिनों के पश्चात्, अपीलार्थी की पत्नी का शव ''कौआ पूल'' के निकट पाया गया था।

5. यह प्रतीत होता है कि आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभियोजन की ओर से कुल मिलाकर 16 अभियोजन साक्षियों को परीक्षित किया गया था। पूर्वोक्त 16 गवाहों में से अ॰ सा॰ 1 जयकरण यादव, अ॰ सा॰ 5 दशरथ मण्डल, अ॰ सा॰ 13 रोहिन मण्डल को पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था जबकि अ॰ सा॰ 7 मणिकान्त मण्डल और अ॰ सा॰ 14 दिलीप रजक को टेन्डर किया गया था। अ॰ सा॰ 16 बालेश्वर यादव एक औपचारिक गवाह है जिसने पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट पर डॉक्टर के हस्ताक्षर को सिद्ध किया था क्योंकि पोस्ट-मार्टम करने वाले डॉक्टर को परीक्षित नहीं किया गया था।

6. अभियोजन की ओर से मुख्य गवाह है, अ॰ सा॰ 6 महादेव मण्डल, यानि सूचनादाता, अ॰ सा॰ 11 उसका पुत्र रघुनाथ मण्डल, अर्थात् मृतका का भाई, मृतका की मौसी अ॰ सा॰ 2 दुखनी देवी और मृतका का मौसा अ॰ सा॰ 4 जमुना मण्डल।

7. प्रथम सूचना रिपोर्ट में सूचनादाता ने अभिकथित किया कि उसकी पुत्री ने बलि के लिए एक बकरे की व्यवस्था करने को कहा था जिसकी उसने व्यवस्था कर दी और 3.10.1990 को अपीलार्थी उमाकांत मण्डल आया और बकरे को ले गया और तत्पश्चात् वहाँ से चला गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में सूचनादाता द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि उसने अपनी पुत्री (मृतका) का हाल-चाल जानने के लिए अपने पुत्र रघुनाथ (अ॰ सा॰ 11) को उसकी ससुराल भेजा परन्तु उसका पुत्र लौट आया और सूचित किया कि वह अपनी बहन एवं बहनोई से नहीं मिल सका क्योंकि वे अपने घर में नहीं मिले। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी अभिकथित किया गया है कि सूचनादाता के पुत्र ने उसे बताया कि उसे यह जानकारी मिली कि 3.10.1990 को संध्या में अपीलार्थी अपनी पत्नी के बालों को पकड़ करके उसे धुलिया नदी की ओर ले जा रहा था और वहाँ उसने अन्य व्यक्तियों की मदद से अपनी पत्नी को मार दिया और उसके शव को नदी में फेंक दिया परन्तु दिलचस्प बात यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में यथा वर्णित यह वृत्तांत इसी दो गवाहों के साक्ष्यों सूचनादाता अ॰ सा॰ 6 और अ॰ सा॰ 11 रघुनाथ मण्डल के साक्ष्य में पूर्णतया अनुपस्थित है। वे इन तथ्यों पर पूर्णतः मौन है। अ॰ सा॰ 6 ने अपनी प्रति परीक्षा के पैरा-2 में स्वीकार किया है कि उसने घटना के बारे में जो कुछ भी कहा था वह अनुश्रुत था।

8. मृतका के भाई अ॰ सा॰ 11 रघुनाथ मण्डल ने अपना प्रधान परीक्षा में कहा है कि जब उसने पंकज की पत्नी से अपनी बहन के बारे में पूछा तब उसे बताया गया कि अपीलार्थी अपनी पत्नी को उसके मायका पहुँचाने गया था परन्तु उक्त तथ्य को सिद्ध करने के लिए अभियोजन ने इस गवाह अर्थात् पंकज की पत्नी को परीक्षित नहीं किया है। उसका साक्ष्य मुख्यतः धुलिया नदी से मृतका के शव की बरामदगी के बिन्दु पर हैं।

9. अ॰ सा॰ 2 एवं 4 जो मृतका के मौसा एवं मौसी हैं को अभियोजन द्वारा परीक्षित किया गया है इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कि मृतका के शव की बरामदगी के कुछ दिनों पहले मृतका इन दो गवाहों के घर आई थी और शिकायत की थी कि अपीलार्थी ने एक झगड़े के उपरांत उसे पीटा था। ये दो गवाह, अर्थात अ॰ सा॰ 2 एवं अ॰ सा॰ 4 उक्त बिन्दु पर नहीं है कि कान्ती देवी ने उनके घर में शरण लिया जिसके कारण अपीलार्थी अत्यन्त क्रुद्ध था और उसने उनसे भी झगड़ा किया और तत्पश्चात् वह उनकी पत्नी को अपने घर ले गया। दो या तीन दिनों के उपरांत उन्होंने, गाँव में अफवाह सुना कि अपीलार्थी ने अपनी पत्नी को मार दिया है।

10. अ॰ सा॰–2 एवं अ॰ सा॰–4 के साक्ष्यों की सूक्ष्म संवीक्षा पर हम पाते हैं कि उनके साक्ष्य में ऐसा कुछ नहीं है इससे यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि यह अपीलार्थी ही जिसने अपनी पत्नी को मारा था अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि मृतका के शव की बरामदगी के कुछ दिनों पहले, वह अपने पति से झगड़ा करने के उपरांत अ॰ सा॰ 2 एवं 4 के घर गई थी।

11. इस प्रकृति के एक मामले में, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधृत है, मंशा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और अभियोजन को घटना के पीछे की मंशा स्थापित करनी चाहिए। परन्तु वर्तमान मामले में, अभियोजन ने मंशा को स्थापित नहीं किया है। प्रत्यक्ष साक्ष्य के मामले में मंशा को अभियोजन द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु यह एक मामले में, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधृत है मंशा स्थापित किए जाने की आवश्यकता है।

12. यह प्रतीत होता है कि चूँकि अपीलार्थी मृतका का पति है और, इसलिए, केवल संदेह पर उसे इस मामले में फँसा दिया गया है। यह सुस्थापित है कि संदेह कितना भी प्रबल क्यों न हो यह साक्ष्य की स्थान नहीं ले सकता।

13. हम पाते हैं कि अभियोजन द्वारा वृतांत को एक चरण से दूसरे चरण में परिवर्तित किया गया है जो अभियोजन मामले को संदिग्ध और अविश्वसनीय बनाती है। हम इसका कोई कारण नहीं पाते कि अपीलार्थी बिना किसी कारण क्यों अपनी पत्नी को मारेगा और इसलिए, हमारी राय में अभियोजन द्वारा रखा गया साक्ष्य ऐसा नहीं है जो अपीलार्थी के दोष की ओर स्पष्ट रूप से इंगित करता हो। परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है और, इसलिए, हमारा विचार है कि अपीलार्थी के विरूद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और दण्डादेश को संपुष्ट करने के लिए ऐसी एक परिस्थिति सुरक्षित नहीं है।

14. तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है। इस अपीलार्थी के विरूद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के निर्णय अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी जो जमानत पर है, को एतद् द्वारा उसके जमानत बन्धपत्र की राशि को उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

श्रीमती लालमती देवी

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W. P. (Cs) No. 3376 वर्ष 2008. 7 मई, 2009 को विनिश्चित।

बिहार व्यापारिक वस्तु (अनुज्ञप्तियों का एकीकरण एवं नियंत्रण) आदेश, 1984—खण्ड 11—अनुज्ञप्ति का रद्दकरण–आदेश इसके बारे में किसी निष्कर्ष को प्रकट नहीं करता है कि याची ने कौन-सी शर्त का उल्लंघन किया था–अभिनिर्धारित, अनुज्ञप्ति के रद्दकरण का ऐसा कठोर कदम कोई कारण नियत किए बिना अनपेक्षित है। (पैरा 11 एवं 13)

अधिवक्तागण.–Mr. P.D. Agarwal, For the Petitioners; Mr. Jay Shankar Tiwary, For the Respondents.

आदेश

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

याची अनुमंडलाधिकारी (प्रत्यर्थी सं॰ 2) द्वारा पारित दिनांक 23.2.2007 के आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा बिहार व्यापारिक वस्तु (अनुज्ञप्तियों का एकीकरण एवं नियंत्रण) आदेश, 1984 के अधीन याची को प्रदत्त खुदरा विक्रय अनुज्ञप्ति रद्द कर दी गयी है।

याची की व्यथा दिनांक 3.6.2008 को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के भी विरूद्ध है जिसके द्वारा अनुमंडलाधिकारी द्वारा पारित अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के आदेश के विरूद्ध याची द्वारा दायर की गयी अपील को भी खारिज किया गया है।

2. याची को एकीकरण आदेश, 1984 के अधीन एक सार्वजनिक वितरण प्रणाली की अनुज्ञप्ति प्रदान की गयी थी। 28.11.2006 को, याची के दुकान परिसरों का एक निरीक्षण अनुमंडलाधिकारी, चास, सहित अधिकारियों के एक दल द्वारा किया गया था। 4.12.2006 को याची के दुकान में निरीक्षण करते समय की तथ्यात्मक स्थिति की सूचना देते हुए उसे अनुमंडलाधिकारी के आदेशान्तर्गत एक नोटिस की तामीला की गयी एवं याची को अपना स्पष्टीकरण दाखिल करने का निर्देश भी दिया गया।

याची ने अपना उत्तर प्रस्तुत किया एवं तदुपरांत दिनांक 23.2.2007 के आक्षेपित आदेश (उपाबन्ध-3) के द्वारा याची को सूचित किया गया कि उसकी खुदरा विक्रय की अनुज्ञप्ति अनुमंडलाधिकारी के आदेश द्वारा रद्द कर दी गयी थी।

3. याची ने व्यथित होकर, आक्षेपित आदेश के विरूद्ध एक अपील उपायुक्त/जिला दण्डाधिकारी, बोकारो के समक्ष दाखिल की। परन्तु दिनांक 3.6.2008 के आक्षेपित आदेश द्वारा याची की अपील को खारिज कर दिया गया।

4. उपरोक्त दोनों आदेशों से व्यथित होकर याची ने निम्नलिखित आधार प्रस्तुत करते हुए यह रिट याचिका दाखिल की है:–

(i) यह कि याची की अनुज्ञप्ति का रद्दकरण मनमाना, अनुचित एवं नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में है एवं एकीकरण आदेश के खण्ड 11 के अधीन अधिकथित प्रक्रिया के विरूद्ध है क्योंकि याची को अपने मामले में बचाव का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था;

(ii) यह कि रद्दकरण का आक्षेपित आदेश एक गैर-आख्यापक आदेश है एवं अनुज्ञप्तियों के रद्दकरण हेतु कोई कारण नियत नहीं किया गया है;

5. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री पी॰ डी॰ अग्रवाल ने कारण बताओ नोटिस (उपाबन्ध 1) को निर्दिष्ट करते हुए स्पष्ट किया कि नोटिस के अनावृत परिशीलन से यह प्रकट है कि नोटिस मात्र याची के दुकान के निरीक्षण के समय अनुमंडलाधिकारी द्वारा पायी गयी स्थिति को ही इंगित करता है एवं यह इस बात को इंगित नहीं करता है कि कोई ऐसी नि:शक्तता पायी गयी थी जो अनुज्ञप्ति के निबन्धनों एवं शर्तों का उल्लंघन या नियंत्रण आदेश का उल्लंघन दर्शा सके।

6. आगे अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के आदेश (उपाबन्ध 3) को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आदेश के परिशीलन से, यह सुव्यक्त होगा कि अनुमंडलाधिकारी ने मात्र याची द्वारा किए गए निवेदनों को ही अभिलिखित किया है एवं इसे अभिलिखित करने के उपरांत इसके बारे में कारण अभिलिखित किए बिना अनुज्ञप्ति के रद्दकरण का अपना फैसला असंगत रूप से अभिलिखित किया है कि अनुज्ञप्ति क्यों रद्द किया गया था।

7. ऊपर कहे गए आधारों पर, याची ने दोनों ही आक्षेपित आदेशों के अभिखंडन की एवं साथ ही याची की अनुज्ञप्ति प्रत्यावर्तित करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने की भी प्रार्थना की है।

8. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रति शपथपत्र के सुसंगत पैराग्राफों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए स्पष्ट किया कि याची के दुकान का निरीक्षण करने पर स्टॉक एवं साथ ही अनाजों

के सम्बन्ध में कई अनियमितताऐं पाई गई थी। वास्तव में अनाजों को एक रिक्शा से उस समय अभिगृहित किया गया था जब यह दुकान से अवैध रूप से ले जाया जा रहा था। विद्वान अधिवक्ता यह भी कहते हैं कि अनाज अन्त्योदय योजना के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को वितरण के आशय से थे। इस अनियमितता को पाकर, याची को कारण बताओ नोटिस निर्गत किया गया था एवं कारण बताओ नोटिस के उसके उत्तर पर विचार करने के उपरांत अनुमंडलाधिकारी ने उचित रूप से ही याची के खुदरा विक्रय की अनुज्ञप्ति रद्द की है।

9. कारण बताओ नोटिस (उपाबन्ध 1) के परिशीलन से, एवं जैसा कि याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उचित रूप से ही इंगित किया गया है, यह प्रतीत होता है कि इसकी विषय-वस्तु और कुछ नहीं बल्कि निरीक्षण रिपोर्ट की एक प्रति है। अभिप्रायित कारण बताओ नोटिस यह इंगित नहीं करता है कि क्या अनुज्ञप्ति के किसी शर्त का उल्लंघन हुआ था एवं यदि ऐसा है तो शर्तें कौन सी थी। वास्तव में, यह इस बात को विनिर्दिष्ट नहीं करता है कि निरीक्षण के दौरान पायी गई अनियमितायें क्या थीं जिसने अनुमंडलाधिकारी को याची का अनुज्ञप्ति रद्द करने को तत्पर किया।

10. इस सम्बन्ध में, उपरोक्त एकीकरण आदेश के खण्ड 11 को उत्कथित करना सुसंगत है, जो निम्नवत पठित है:-

अनुज्ञप्ति का निलम्बन एवं रद्दकरणः

(1) यदि कोई अनुज्ञप्तिधारी उसका अभिकर्ता या सेवक या उसकी ओर से कार्यरत कोई अन्य व्यक्ति अनुज्ञप्ति के किसी भी निबन्धनों या शर्तों का उल्लंघन करता है, तब ऐसी किसी अन्य कार्रवाई के पूर्वाग्रह के बिना, जो आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (केन्द्रीय अधिनियम 10 वर्ष 1955) के अधीन की जा सकती है। अनुज्ञापन प्राधिकारी के लिखित आदेश के द्वारा एक या अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में उसकी अनुज्ञप्ति को रद्द या निलंबित किया जा सकेगा एवं ऐसे रद्दकरण या निलंबन के सम्बन्ध में उसकी अनुज्ञप्ति में एक प्रविष्टि की जायेगी;

(2) इस खण्ड के अधीन रद्दकरण का कोई आदेश नहीं दिया जायेगा जबतक कि अनुज्ञप्तिधारी को प्रस्तावित रद्दकरण के विरूद्ध उसके मामले का कथन करते हुए एक युक्तिसंगत अवसर नहीं दिया गया हो परन्तु अनुज्ञप्ति के रद्दकरण की कार्यवाहियों को अनुध्यात करते हुए या निलम्बन के दौरान अनुज्ञप्तिधारी को अपनी स्थिति बनाने का कोई अवसर दिए बिना 90 दिनों से अनधिक अवधि हेतु अनुज्ञप्ति निलम्बित की जा सकती है। ऐसा निलम्बन मात्र उन्हीं व्यापारिक वस्तुओं तक ही सीमित होगा जिसके सम्बन्ध में अनुज्ञप्तिधारी द्वारा उल्लंघन किया गया है।''

11. उक्त से यह प्रत्यक्ष है कि याची को इसे स्पष्ट करने का कोई युक्तिसंगत अवसर प्रदान किए बिना रद्दकरण का कोई भी आदेश पारित नहीं किया जा सकता था कि अनुज्ञप्ति रद्दकरण का प्रस्तावित आदेश क्यों नहीं पारित किया जाना चाहिए था।

याची को यथा निर्गत नोटिस (उपाबन्ध 1) एकीकरण आदेश के खण्ड 11 में अधिकथित प्रावधानों के अनुपालन में नहीं है। इसके अतिरिक्त, रद्दकरण का आक्षेपित आदेश भी अनुमंडलाधिकारी द्वारा नियत कोई कारण इंगित नहीं करता है, और न ही यह सुझाव देने के लिए कोई निष्कर्ष इंगित करता है कि याची ने अनुज्ञप्ति या नियंत्रण आदेश के शर्तों का उल्लंघन किया था।

12. जैसा कि श्री अग्रवाल द्वारा उचित रूप से ही यह इंगित किया गया था, कि अनुमंडलाधिकारी का आक्षेपित आदेश न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना एवं याची की अनुज्ञप्ति के रद्दकरण हेतु कारणों को नियत किए बिना पारित एक गैर-आख्यापक आदेश था। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश भी इसी दुर्गुण से ग्रस्त है क्योंकि याची के मामले की तथ्यात्मक स्थिति का कोई विवेचन नहीं किया गया है, और न ही इसके बारे में कोई कथन किया गया है कि याची ने किस शर्त का उल्लंघन किया था ताकि अनुज्ञप्ति के रद्दकरण जैसा कठोर कदम से हस्तक्षेप अनिवार्य बनाया जा सके।

13. उक्त विवेचनों के आलोक में, मैं इस आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। आक्षेपित आदेशों (उपाबन्ध 3 एवं 5) को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को विधि के अनुसार अपेक्षित औपचारिकताओं को पूरा करने के उपरांत याची की खुदरा विक्रय अनुज्ञप्ति को प्रत्यावर्तित करने का निर्देश दिया जाता है।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को दी जाय।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

सदानन्द महतो

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 798 वर्ष 2000.19 मई, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–विभागीय कार्यवाही–अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दण्ड को याची के भावी वेतनवृद्धियों को प्रभावित करने वाले दो वेतनवृद्धियों के रोके जाने सहित निलम्बन की अवधि तक उसके वेतन के रोके जाने की सीमा तक उपान्तरित किया गया–चूँकि आरोप प्रमाणित नहीं हुआ था एवं अन्वेषण अधिकारी की रिपोर्ट पेश नहीं की गयी थी इसलिए दण्ड पोषणीय नहीं हैं। (पैरा 11 एवं 12)

अधिवक्तागण.–Mr. R.P. Gupta, For the Petitioner; Mr. G.P.-II, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों हेतु दाखिल की गयी है:-

1. विभागीय कार्यवाही में पारित आदेश के अभिखंडन हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति के एक रिट या यथोचित रिट (ें), आदेश (ें), निर्देश (ें) के निर्गतीकरण के लिए जिसे दिनांक 8.9.1995 के ज्ञापन सं० 1415 (उपाबन्ध-1) के माध्यम से याची को संसूचित किया गया था जिसके द्वारा एवं जिसके अंतर्गत याची पर दण्ड अधिरोपित किया गया है;

2. अपीलीय आदेश (उपाबन्ध-6) के अभिखंडन हेतु जिसके माध्यम से याची द्वारा दायर की गयी अपील को दण्ड में आंशिक उपान्तरण के साथ निस्तारित किया गया था कि उसे न्यूनतम वेतन पर रखा गया था, इसे अपास्त किया गया था, पुनः अन्य दण्डों को बरकरार रखा गया था जिसमें यह कहा गया था कि उसके दो वार्षिक वेतनवृद्धियों को रोका जायगा, जो भविष्य में उसकी वार्षिक वेतनवृद्धियों को स्थायी तौर पर प्रभावित करेगा एवं निलम्बन की अवधि के दौरान वह निर्वाह भत्ता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं पायेगा।

2. तथ्य संक्षेप में निम्नवत उपवर्णित हैं:–

याची एक वन प्रहरी के तौर पर कार्यरत था एवं उसे नियत दायित्व के विरूद्ध लापरवाही के लिए, वरीय अधिकारी के आदेश के प्रति घोर अवज्ञा (आत्यंतिक कर्त्तव्य की उपेक्षा) दर्शाने के लिए, गलत सूचना उपलब्ध कराने के लिए, वन परिसंपत्तियों की सुरक्षा के प्रति उपेक्षित रहने के लिए एवं समाज विरोधी तत्वों द्वारा वनों के अवैध कटाई की सही एवं समयान्तर्गत सूचना उपलब्ध नहीं कराने के लिए निलम्बित रखा गया था। तद्नुसार एक विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ की गयी थी एवं पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने के उपरांत उसपर निम्नलिखित दण्ड अधिरोपित किया गया था;

(i) उसे वन प्रहरी के न्यूनतम वेतन पर प्रतिवर्तित किया गया था,

(ii) दो वार्षिक वेतन वृद्धियों को रोका गया था, जिससे उसका भावी वेतनवृद्धि स्थायी तौर पर प्रभावित हुआ था,

(iii) उसे आदेश के निर्गतीकरण की तिथि से सेवा में पुनर्बहाल किया गया था,

(iv) निलम्बन की अवधि के दौरान वह निर्वाह भत्ता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पायेगा।

3. याची ने 29.10.1995 को वन संरक्षक, दक्षिणी सर्किल, चाईबासा को यह कहते हुए एक अभ्यावेदन किया कि विभागीय कार्यवाही में उसपर अधिरोपित दण्ड अविधिमान्य था एवं दस्तावेजों के परिशीलन के उपरांत मामले पर पुनर्विलोकन करने का आग्रह किया। याची ने 11.2.1996 को वन संरक्षक, दक्षिणी सर्किल, चाईबासा के समक्ष एक अपील भी दायर किया। इस बीच याची ने दण्ड के विरूद्ध एवं साथ ही अपील के शीघ्र निस्तारण के लिए CWJC No. 2654/99 (R) दाखिल किया।

4. लेकिन, प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में यह सूचना दाखिल किया कि अपील को 5.11.1999 को निस्तारित किया गया था एवं तद्नुसार रिट याचिका को पश्चातवर्ती उद्घटना एवं दण्ड को चुनौती देने की छूट के साथ वापस ले लिया गया था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि कार्यालयी आदेश सं॰ 44 दिनांकित 5.11.1999 में याची द्वारा दायर की गयी अपील को एक उपान्तरण के साथ निस्तारित किया गया था कि अधिरोपित दण्ड में से उसे न्यूनतम वेतन पर रखे जाने से सम्बन्धित दण्ड को अपास्त किया गया था परन्तु अन्य दो दण्डों अर्थात् उसकी दो वार्षिक वेतनवृद्धियों को रोका जायगा जिससे उसका भावी वेतनवृद्धि प्रभावित होगा एवं इसके अतिरिक्त निलम्बन के दौरान वह निर्वाह भत्ता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पायेगा, इसे बरकरार रखा गया था।

6. याची ने अपील में कायम रखे गए उपरोक्त उपान्तरित दण्ड को चुनौती देते हुए रिट याचिका दाखिल की है।

7. याची के अधिवक्ता द्वारा दिया गया मुख्य तर्क यह है कि अपीलीय प्राधिकारी सभी पहलुओं पर विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पेड़ों की कटाई या गिराया जाना असामाजिक तत्वों द्वारा किया गया था जिसके लिए याची को दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। यह भी प्रतिवाद किया गया है कि दण्ड स्पष्ट रूप से आरोपों का अननुपातिक था जो किसी भी दशा में असटीक था एवं दण्ड का आदेश पारित करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं थी।

8. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि उसने 9.7.1994 को पेड़ों की कटाई के बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट दी थी एवं मनोहरपुर थाने के प्रभारी अधिकारी को सूचित किया था कि उड़ीसा से असामाजिक तत्व घातक हथियारों से लैस होकर आए एवं उसे धमकी दी एवं इस प्रकार वह अकेले उनका सामना नहीं कर सका। यह भी निवेदन किया गया है कि ऐसे आरोपों को कभी भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता है एवं इस प्रकार उसे अधिरोपित दण्ड न्यायोचित नहीं था।

9. प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में निवेदन किया है कि उसे पर्याप्त अवसर दिया गया था एवं अपीलार्थी प्राधिकारी ने सम्पूर्ण मामले पर विचार करके दण्ड को घटा दिया जो आरोपों के अनुरूप था। यह भी निवेदन किया गया है कि याची के अधीन कार्यरत अन्य दो वन प्रहरियों को क्लीन चिट दे दिया गया था, यह तथ्य याची को भी क्लीन चिट दिए जाने का हकदार नहीं बनाता है। उन दोनों को दोषी नहीं पाया गया था एवं

10. मैंने परस्पर विरोधी निवेदनों एवं अभिवचनों एवं साथ ही अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पर भी विचार किया है। आक्षेपित अपीलीय आदेश में दिनांक 4.11.1999 के मूल आदेश का पुनर्विलोकन करते समय अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् वन संरक्षक, दक्षिणी सर्किल, चाईबासा

ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि उक्त तथ्यों के परिशीलन से यह साफ जाहिर हो जाता है कि वन प्रहरी को ऐसे आरोप का दण्ड दिया गया है जिसके सम्बन्ध में अन्वेषण अधिकारी द्वारा कोई रिपोर्ट पेश नहीं किया गया है। यह स्पष्ट रूप से सम्प्रेक्षित किया गया है कि अन्वेषण अधिकारी की रिपोर्ट संशोधित विभागीय कार्यवाही सं॰ 26 दिनांकित 28.3.1995 के गठन से भी पहले प्राप्त किया गया था। यह भी सम्प्रेक्षित किया गया है कि उक्त विभागीय कार्यवाही में पेड़ों की कटाई से सम्बन्धित ऐसे आरोप पर मात्र वन प्रहरी को दण्डित करना उचित प्रतीत नहीं होता है यद्यपि एक वन प्रहरी भी दोषी हो सकता है। याची ने विनिर्दिष्ट रूप से पेड़ों की कटाई के बारे में रिपोर्ट देने वाले दस्तावेजी प्रमाण एवं साथ ही मनोहरपुर थाने के प्रभारी अधिकारी को सूचना भी दी है कि असामाजिक तत्व घातक हथियारों से लैस होकर उड़ीसा से आए थे एवं उनलोगों की हत्या करने की धमकी दी थी। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि वह लापरवाह था।

11. एक बार जब सम्पूर्ण निष्कर्ष याची के पक्ष में है तब इसका कोई कारण नहीं है कि प्रथम दण्ड को वापस लेते समय अपीलीय प्राधिकारी ने अन्य दो दण्डादेशों को क्यों कायम रखा है। दोनों ही स्थितियों में यह तर्क लागू होगा कि या तो वह दोषी है या नहीं अपीलीय प्राधिकारी द्वारा किया गया विश्लेषण स्पष्ट रूप से यह इंगित करता है कि न तो आरोप प्रमाणित हुए थे और न ही कुछ आरोपों के सम्बन्ध में अन्वेषण अधिकारी की रिपोर्ट पेश की गयी थी एवं रिपोर्ट संशोधित विभागीय कार्यवाही किए जाने से पूर्व दी गयी थी।

12. इस प्रकार, यह सुव्यक्त होगा कि अभिलेख पर किसी सामग्री की अनुपस्थिति में एवं कतिपय आरोपों एवं किसी रिपोर्ट की अनुपस्थिति में याची को दण्डित नहीं किया जा सकता था।

13. मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है एवं दिनांक 8.9.2005 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है एवं मामले को उपरोक्त सम्प्रेक्षण के आलोक में पुनर्विचारण हेतु अपीलीय प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

बिहार राज्य (अब झारखण्ड)

बनाम

फहिम खान एवं अन्य

सरकारी अपील सं॰ 3 वर्ष 1992(R). 25 जून, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण संख्या 122 वर्ष 1990 में श्री पायस एक्स, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 15.6.1991 के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 386—दोषमुक्ति–एकमात्र चश्मदीद गवाहों के परिसाक्ष्य का प्रतिवर्तन–विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त बरी–अभिनिर्धारित, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य सभी संदेह से परे सिद्ध करता है कि अभियुक्त ने सूचनादाता की उपस्थिति में हत्या कारित की–अभियुक्त भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी अवधारित किया गया–अटकलों एवं अनुमानों पर चश्मदीद गवाहों के परिसाक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता। (पैरा 19 से 22)

निर्णयज विधि.–(2007)4 SCC 415—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. S.N. Rajgarhia, For the State; M/s B.M. Tripathy, Navin Kumar Jaiswal, For the Respondents; Mr. V. Shivnath, For the Informant.

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.–दाण्डिक अपील संख्या 661/2001 में सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 12.5.2001 के निर्णय/आदेश की दृष्टि में, इस सरकारी अपील को इस न्यायालय द्वारा फिर से सुनवाई की गई है और इसका इस निर्णय द्वारा अन्तिम रूप से निस्तारण किया जा रहा है। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश निम्नांकित रूप से पठित हैं:–

''अनुमति प्रदान की गई।

हमने अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री आर० के० जैन और बिहार राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री कुमार राजेश सिंह को सुना है। हमारा ध्यान निर्णय के पैरा 14 में उच्च न्यायालय के निर्देश की ओर आकृष्ट कराया गया है जो निम्नांकित रूप से पठित है:–

''परिणामत:, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और पक्षों की सुनवाई करने के उपरांत उनके द्वारा पहले से ही प्रस्तुत साक्ष्य पर विधि के अनुसार एक नया निर्णय पारित करने के लिए मामले को विद्वान विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है।''

श्री आर० के० जैन निवेदन करते हैं कि उच्च न्यायालय के साक्ष्य पर परिचर्चा कर लेने पर पहले ही प्रस्तुत साक्ष्य पर मात्र एक नया निर्णय पारित करने के लिए मामले को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने की बजाय अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों का उच्च न्यायालय को अपना स्वतंत्र आकलन करना चाहिए था और गुणावगुणों पर अपील का निर्णय करना चाहिए था। श्री जैन यह भी निवेदन करते हैं कि तथ्यों एवं परिस्थितियों में चुनौती के अधीन निर्णय अपास्त कर देना चाहिए और गुणावगुणों पर निर्णय के लिए मामले को उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर देना चाहिए।

राज्य के विद्वान अधिवक्ता न्यायसंगत रूप से इस स्थिति को स्वीकार करते हैं कि विधि के अनुसार गुणावगुणों पर निस्तारण के लिए मामले को उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए।

सहमति-प्राप्त स्थिति के दृष्टि में, जो हमारी दृष्टि में, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, उचित एवं न्यायसंगत है, हम इस अपील को अनुज्ञात करते हैं, चुनौती के अधीन निर्णय को अपास्त करते है और पक्षों की सुनवाई का अवसर प्रदान करने के उपरांत विधि के अनुसार गुणावगुणों पर निस्तारण के लिए मामले को उच्च न्यायालय प्रतिप्रेषित करते हैं।

2. वर्तमान अपील की पृष्ठभूमि यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 फहीम खान को आशयित रूप से और जानकारी रहते हुए सागीर हसन सिद्दीकी की मृत्यु कारित करने हेतु हत्या कारित करने के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप के लिए विचारण पर रखा गया था, जबकि प्रत्यर्थी संख्या 2 छोटन @ छोटु @ करीम खान और प्रत्यर्थी संख्या 3 अरशद हुसैन @ अरशद कादरी (दोनो अब मृत) को अभियुक्त (प्रत्यर्थी संख्या 1) फहीम खान के साथ उनके साथ सामान्य आशय को अग्रसर करके सागीर हसन सिद्दकी की मृत्यु कारित करने के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोपों के लिए विचारण पर रखा गया था।

विचारण न्यायालय ने दिनांक 15.6.1991 के अपने निर्णय द्वारा, सत्र विचारण संख्या 122 वर्ष 1990 में, अभियुक्त/प्रत्यर्थीगण को सभी आरोपों से बरी कर दिया यह अवधारित करते हुए कि अभियोजन किसी भी अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध यथा लगाए गए आरोपो को सभी संदेहों से परे सिद्ध करने में विफल रहा था।

विचारण न्यायालय के उक्त निर्णय के विरूद्ध, राज्य ने वर्तमान सरकारी अपील दाखिल की, जिसे सरकारी अपील संख्या 3/1992 के तौर पर दर्ज किया गया था। सरकारी अपील की सुनवाई इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा की गई थी और दिनांक 13.4.2000 के निर्णय द्वारा, दोषमुक्ति के

निर्णय अपास्त करने के उपरांत इसे अनुज्ञात कर दिया गया था और पक्षों द्वारा पहले से ही प्रस्तुत साक्ष्य पर उनकी सुनवाई के उपरांत विधि के अनुसार एक नया निर्णय पारित करने के लिए मामले को विद्वान विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया गया।

3. इस न्यायालय के उक्त निर्णय के विरूद्ध, अभियुक्त/प्रत्यर्थीगण सर्वोच्च न्यायालय के पास गए और सर्वोच्च न्यायालय ने दाण्डिक अपील संख्या 661 वर्ष 2001 में दिनांक 12.05.2001 के अपने आदेश द्वारा, जिसे इसे पहले ही उत्कथित किया जा चुका है, इसे इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.5.2008 के निर्णय को अपास्त कर दिया और पक्षों की सुनवाई करने के उपरांत विधि के अनुसार गुणावगुणों पर निस्तारण के लिए मामले को इस न्यायालय में प्रतिप्रेषित कर दिया।

इस आदेश के अनुशरण में, दोनों पक्षों की फिर से सुनवाई की गई और इस निर्णय द्वारा, इस अपील का अन्तिम रूप से निस्तारण किया जा रहा है।

4. यह नोट करता सुसंगत है कि इस सरकारी अपील के लम्बित रहने के दौरान प्रत्यर्थी संख्या 2 एवं 3 छोटन @ छोटु @ करीम खान और अरशद हुसैन @ अरशद @ अरशद कादरी की मृत्यु हो चुकी है।

5. तथ्य संक्षेप में ये हैं कि 11.5.1989 को 12:10 पूर्वाह्न में, मोस्मात हबीबुल निसा (अ॰ सा॰ 4) ने पुलिस के समक्ष एक फर्दबयान दिया उसमें यह अभिकथित करते हुए कि 10.5.1989 की रात्रि में 11:30 बजे, उसके पुत्र सागीर हसन सिद्दकी (मृतक), अपना भोजन करने के उपरांत, आलमगीर (अ॰ सा॰ 1) के घर के सामने सोने गया जहाँ उसके लिए एक खाट तैयार की गई थी। उस समय, उसके पुत्र (मृतक) ने एक गिलास पानी मांगा। वह गई और पानी ले आई और जब वह पानी देने के लिए उसके विस्तर के निकट गई, तो उसने जो देखा वह यह था कि तीनो अभियुक्त फहीम खान, छोटन एवं अरशद कादरी (प्रत्यर्थीगण) उसके पुत्र को घेरे हुए थे। उसने अभियुक्त व्यक्तियों से पूछा कि वहाँ क्या हो रहा है, तब फहीम खान ने अचानक अपनी पिस्तौल से उसके पुत्र सागीर हसन सिद्दीकी पर गोली चला दी जो उसके सिर पर लगी और जिसके परिणामस्वरूप वह नीचे गिर पड़ा और उपहतियों के कारण वह मर गया। तत्पश्चात्, अभियुक्त व्यक्तिगण भाग गए। सूचनादाता ने विद्युत बल्ब की रोशनी में हमलावरों को पहचानने का दावा किया जो जल रहा था

पुलिस ने अन्वेषण का कार्य अपने हाथों में लिया और जिसके समापन पर, मामले में आरोप-पत्र प्रस्तुत किया, जिसके आधार पर संज्ञान लिया गया, अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध आरोप विरचित किए गए और उनके इन्कार करने पर, उन्हें विचारण पर रखा गया।

6. आरोपों को सिद्ध करने के लिए, कुछ दस्तावेजी साक्ष्य के अतिरिक्त अभियोजन की ओर से कुल मिलाकर आठ गवाहों को परीक्षित किया गया। विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 15.6.1991 के अपने निर्णय द्वारा, अभियुक्त व्यक्तियों को आरोपों से बरी कर दिया। दोषमुक्ति के उक्त निर्णय के विरूद्ध, राज्य द्वारा वर्तमान सरकारी अपील दाखिल की गई है।

7. राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अपर लोक अभियोजक, श्री एस॰ एन॰ राजगढ़िया ने निवेदन किया कि विचारण न्यायालय ने चक्षुदर्शी गवाह अ॰ सा॰ 4 यानि सूचनादाता के साक्ष्य को अति धुधले आधारों पर खारिज कर दिया है। यद्यपि उसने साफ तौर पर और विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि उसकी उपस्थिति में, अभियुक्त/प्रत्यर्थीगण ने सुसंगत समय एवं स्थान पर उसके पुत्र को घेर लिया और ततपश्चात्, प्रत्यर्थी संख्या 2 एवं 3 ने मृतक को पकड़ रखा था जबकि, प्रत्यर्थी संख्या 1 फहीम खान ने अपनी पिस्तौल से गोली चलाई थी जो मृतक के सिर में लगी थी जिससे उसकी मृत्यु कारित की थी।

श्री राजगढ़िया ने यह भी निवेदन किया कि विचारण न्यायालय ने गवाहों के साक्ष्य में कुछ छोटी-मोटी विरोधाभास पाते हुए अभियोजन के मामले को खारिज कर दिया है। उनके अनुसार, सुचनादाता अ॰ सा॰ 4 और अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य, अन्वेषण अधिकारी और साथ-साथ डाक्टर (अ॰ सा॰ 6) के साक्ष्य से, अभियोजन का मामला प्रत्यर्थीगण के विरूद्ध सभी संदेहों से परे सिद्ध किया गया है

और इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का निर्णय अपास्त किए जाने का दायी है और सागीर हसन सिद्दीकी की हत्या कारित करने के लिए अपीलार्थी फहीम खान को दोषसिद्ध किए जाने और दण्डादेश किए जाने का दायी है।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी ने निवेदन किया कि अभियोजन सभी युक्तिसंगत संदेहों से परे अपने मामले को सिद्ध करने में पूर्णत: विफल रहा है और इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने उचित ही अभियुक्त व्यक्तियों को बरी कर दिया है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि तथाकथित चश्मदीद गवाह अ॰ सा॰ 4 का साक्ष्य ही अविश्वसनीय है क्योंकि घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति ही अत्यधिक संदिग्ध थी। अभियोजन घटनास्थल तक को सिद्ध करने में विफल रहा और इसलिए, यह सरकारी अपील खारिज किए जाने की दायी है।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण हमें विचारण में प्रस्तुत समूचे मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य तक ले गए हैं। पूरा मामला घटना के एकमात्र चश्मदीद गवाह, अर्थात् सूचनादाता अ॰ सा॰ 4 के परिसाक्ष्य पर टिका है जो कोई और नहीं बल्कि मृतका की माता है। उसने घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है और उसने घटना के समय और न्यायालय में भी अभियुक्त व्यक्तियों की शिनाख्त की थी।

10. विद्वान विचारण न्यायालय ने अवधारित किया है कि अभियोजन का साक्ष्य असंगत है और सूचनादाता यानी एकमात्र चश्मदीद गवाह का परिसाक्ष्य संदेह से परे नहीं है जिसपर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। विचारण न्यायालय द्वारा यह भी अवधारित किया गया है कि सूचनादाता चश्मदीद गवाह की घटना-स्थल पर मौजूदगी ही संदिग्ध थी क्योंकि अभियोजन यह सिद्ध करने में विफल रहा कि अभिकथित घटना के समय सूचनादाता कहाँ निवास कर रही थी, अपने दामाद महफूज खान के घर में, या, महफूज खान के साला यानी हनीफ खान के घर में या स्वयं अपने घर में। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी अवधारित किया है कि चूँकि सूचनादाता के कपड़ों पर रक्त के कोई धब्बे नहीं पाए गए थे और इसलिए, कपड़ों पर रक्त के धब्बो की अनुपस्थिति इंगित करती है कि वह घटना स्थल पर मौजूद नहीं हो सकती थी।

विद्वान विचारण न्यायालय ने सूचनादाता के दामाद महफूज खान की अपरीक्षित रहने के कारण भी प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला है।

11. सर्वोच्च न्यायालय ने **(2007)4 एस॰ सी॰ सी॰ 415** में रिपोर्ट किए गए **चन्दरप्पा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले में, दोषमुक्ति के विरूद्ध अपील में उच्च न्यायालय की शक्तियों पर ध्यान देते हुए, निम्नांकित रूप से अवधारित किया है:-

''दोषमुक्ति के एक आदेश के विरूद्ध एक अपील से निपटते समय अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के संबंध में निम्नांकित सामान्य सिद्धांत उद्भूत होते हैं;

(1) एक अपीलीय न्यायालय के उस साक्ष्य की समीक्षा करने, पुनर्मूल्यांकन करने और पुर्नविचार करने की पूर्ण शक्ति होती है जिसपर दोषमुक्ति का आदेश आधृत है;

(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 ऐसी शक्ति के इस्तेमाल पर कोई परिसीमा निर्बधन या शर्त नहीं रखती है और एक अपीलार्थी अपने समक्ष साक्ष्य पर विधि एवं तत्व दोनो प्रश्नों पर अपने निष्कर्ष पर पहुँच सकता है;

(3) विभिन्न अभिव्यक्तियों, जैसे कि ''तात्विक एवं बाध्यकारी कारणों'', ''उपयुक्त एवं पर्याप्त आधार'', ''अति सशक्त परिस्थितियों'', ''विकृत निष्कर्ष'', ''स्पष्ट त्रुटियां'' इत्यादि का आशय दोषमुक्ति के विरूद्ध एक अपील में एक अपीलीय

न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करने की आशय का नहीं है। ऐसे वाक्यांश ''भाषा की समृद्धि'' की प्रकृति का अधिक है दोषमुक्ति के साथ हस्तक्षेप करने में एक अपीलीय न्यायालय की अनिच्छुकता पर जोर देने के लिए न कि साक्ष्य की समीक्षा करने और स्वयं अपने निष्कर्ष पर पहुँचने में न्यायालय की शक्ति को कम करने के लिए।

(4) तथापि, एक अपीलीय न्यायालय को यह आवश्यक रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि दोषमुक्ति के मामले में, अभियुक्त के पक्ष में दोहरी उपधारणा होती है। प्रथमतः, निर्दोषिता की उपधारणा उसे उपलब्ध है दाण्डिक न्यायशास्त्र के मौलिक सिद्धांत के अधीन कि प्रत्येक व्यक्ति को निर्दोष समझा जाएगा जबतक कि उसे विधि के सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी न सिद्ध कर दिया जाए। द्वितीयतः, अभियुक्त द्वारा अपनी दोषमुक्ति प्राप्त कर लेने से उसकी निदोर्षिता की उपधारणा विचारण द्वारा और अधिक प्रबलीकृत पुनःअभिपुष्ट और सुदृढ़ीकृत हो जाती है।

(5) अगर अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर दो युक्तिसंगत दृष्टिकोण संभव है और विचारण न्यायालय द्वारा पहला दृष्टिकोण अभियुक्त के पक्ष में अपनाया गया है तो अपीलीय न्यायालय द्वारा इसके साथ छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए।

12. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि और पक्षों के परस्पर विरोधी तर्कों एवं विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को भी ध्यान में रखते हुए, हमने इस मामले में विचारण के दौरान अभियोजन द्वारा प्रस्तुत समूचे साक्ष्य की संवीक्षा की है।

13. जैसा कि यहाँ ऊपर नोटिस किया जा चुका है घटना का केवल एक चश्मदीद गवाह अ॰ सा॰ 4 है, जो सूचनादाता है और मृतक सागीर हसन सिद्दीकी की माता है। जो अन्य साक्ष्य मामले में विचारित किए जाने के लिए तात्विक है वे अ॰ सा॰ 6 यानि डॉक्टर के साक्ष्य हैं जिसने मृतक के शव को पोस्टमार्टम परीक्षण किया था और अ॰ सा॰ 7 अन्वेषण पदाधिकारी के साक्ष्य है जिसने मामले में अन्वेषण किया था और आरोप-पत्र दाखिल किया था।

14. सूचनादाता ने अपने फर्दबयान में अभिकथित किया है कि रात्रि में लगभग 11.30 बजे उसका पुत्र सगीर हसन सिद्दीकी खाना खाने के उपरांत, आलमगीर के घर के सामने सोने के लिए गया जहाँ उसके लिए एक खाट तैयार थी। उस समय, उसने उससे एक गिलास पानी मांगा। जब वह पानी लाने के उपरांत वापस आई और अपने पुत्र सगीर हसन सिद्दीकी के निकट पहुँची, तो उसने अपने पुत्र को खड़ा हुआ पाया और तीनों अभियुक्त व्यक्तियों, अर्थात् फहीम खान (प्रत्यर्थी संख्या 1) छोटन @ छोटू @ करीम खान [प्रत्यर्थी संख्या 2 (अब मृत)] और अरशद हुसैन @ अरशद @ अरशद कादरी [प्रत्यर्थी संख्या 3 (अब मृत)] से घिरा पाया। यह देखने पर, उसने पूछा कि मामला क्या है। अचानक ही फहीम खान, जिसके हाथ में एक पिस्तौल थी, ने एक गोली चला दी जो उसके पुत्र सगीर हसन सिद्दीकी के सिर में लगी जिसके कारण वह गिर पड़ा और तत्पश्चात्, सभी अभियुक्त भाग गए। उसने अपने पुत्र को उठाना चाहा परन्तु उसकी तुरन्त मृत्यु हो गई। घाव से रक्त काफी बह रहा था। रक्त जमीन पर भी गिरा था। उसने विद्युत बल्ब की रोशनी में अभियुक्त व्यक्तियों को पहचानने का दावा किया जो वहाँ जल रहा था।

न्यायालय में अपने साक्ष्य में, अ॰ सा॰ 4 सूचनादाता ने कहा कि लगभग 11:30 रात्रि में, उसका पुत्र सगीर हसन सिद्दीकी खाना खाने के उपरांत, अपने घर से बाहर आया और उस समय, उसने एक गिलास पानी मांगा जो उसने उसे दिया। उस समय, तीनों अभियुक्त व्यक्ति वहां आया। दो अभियुक्तों अर्थात् छोटन @ छोटू @ करीम खान [प्रत्यर्थी संख्या 2 (अब मृतक)] और अरशद हुसैन @ अरशद @ अरशद कादरी [(प्रत्यर्थी संख्या 3) (अब मृतक)] ने उसके पुत्र को पकड़ लिया और तत्पश्चात्, अभियुक्त फहीम ने उसके पुत्र पर एक गोली चलाई और तत्पश्चात् भाग गया। गोली उसके पुत्र के सिर पर वायें कान के निकट लगा। उसने चीखना और ''हल्ला'' करना शुरू कर दिया और जब पड़ोसी वहाँ एकत्रित हुए तो उसने उन्हें घटना का वर्णन सुनाया।

15. सूचनादाता अ॰ सा॰ 4 द्वारा अपनी फर्दबयान में किए गए कथनों और न्यायालय के समक्ष शपथ पर दिए गए साक्ष्य की तुलना करने पर, हम पाते हैं कि यद्यपि न्यायालय में, उसने घटना को उन वर्णणों के साथ कथित नहीं किया जैसा कि उसने फर्दबयान में कथित किया था, परन्तु यह तथ्य शेष रहता है कि अपने साक्ष्य और साथ-साथ फर्दबयान में भी उसने विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि जब वह उसके द्वारा ऐसा कहने पर अपने पुत्र के लिए पानी लेकर आई तो उसने तीनों अभियुक्त/प्रत्यर्थीगण को घटना-स्थल पर मौजूद पाया और अभियुक्त/अपीलार्थी फहीम खान ने अपने आग्नेयास्त्र से गोली दागी जो अभियुक्त के सिर में लगी जिसके कारण वह मर गया। इसलिए, फर्दबयान में किया गया कथन न्यायालय में सूचनादाता द्वारा दिए गए साक्ष्य से तात्विक बिन्दु पर पूर्णतः संपोषित है।

16. अब हम मृतक के मृत का शरीर पोस्ट-मार्टम परीक्षण करने वाले डॉक्टर अ॰ सा॰ 6 और मामले के अन्वेषण पदाधिकारी अ॰ सा॰ 7 में साक्ष्य का मूल्यांकन करते हैं।

मृतक के शव का पोस्ट-मार्टम परीक्षण करने वाले डॉक्टर अ॰ सा॰-6 ने मत दिया है कि मृत्यु आग्नेयाशस्त्र से हुई उपहति के कारण हुई थी और मृत्यु के उपरांत 12 + 6 घंटे बीत गए थे। मृतक के सिर में एक बुलेट भी निकाला गया था और उक्त बुलेट को साक्ष्य में अभियोजन द्वारा पेश किया गया था। इसलिए, मृतक के सिर पर पायी गई उपहति चश्मदीद गवाह (अ॰ सा॰ 4) के कथन का पूर्ण संपोषण करती हैं।

17. अन्वेषण अधिकारी, अ॰ सा॰ 7 ने अति विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि जब वह घटना-स्थल पर यानि आलमगीर (अ॰ सा॰ 1) के घर के सामने पहुँचा तो उसे सगीर हसन सिद्दीकी के शव को खून से लथपथ पाया और शव के निकट मृतक की माता हबीबुल निसा को रोता हुआ पाया गया। उसने घटना-स्थल पर सड़क के ''कच्चे'' भाग पर काफी खून भी पाया। अन्वेषण पदाधिकारी ने अपने साक्ष्य में यह भी कहा था कि घटना-स्थल आलमगीर के घर के सामने एक पक्की सड़क थी और उन्होंने घटना स्थल पर विद्युत की पर्याप्त रोशनी पायी जिसमें कोई भी व्यक्ति कुछ दूरी से भी किसी को पहचान सकता था। अन्वेषण पदाधिकारी ने यह भी कहा है कि उसने मृतक के शरीर पर आग्नेयास्त्र की उपहतियां पाई थी।

18. ऊपर परिचर्चा किए गए अ॰ सा॰ 4, 6 एवं 7 के साक्ष्यों की सूक्ष्म संवीक्षा से निम्नांकित तथ्य अभियोजन द्वारा स्थापित पाए गए है:-

(a) अभिकथित घटना की तिथि एवं समय पर, मृतक सगीर हसन सिद्दीकी भोजन करने के उपरांत, सोने के लिए अ० सा०-1 आलमगीर के घर के सामने गया जहाँ एक खाट उसके लिए तैयार की गई थी;

(b) मृतक द्वारा मांगे जाने पर, उसकी माता यानि सूचनादाता-अ० सा०-4 ने उसके लिए पानी लाने और उस समय उसे अपने पुत्र को तीनों अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा घिरा पाया;

(c) अभियुक्त/प्रत्यर्थी फहीम खान ने सूचनादाता के पुत्र पर गोली चलाई जो उसके सिर पर लगी जिसके कारण वह नीचे जमीन पर गिर पड़ा जिससे सिर की उपहतियाँ से रक्त स्राव होने लगा और तब फिर अभियुक्त भाग गया।

(d) घटनास्थल पर, पर्याप्त बिजली का प्रकाश था।

(e) घटना स्थल पर, अन्वेषण पदाधिकारी ने आलमगीर के घर के सामने सड़क पर मृतक की लाश को खून से लथपथ पड़ा पाया और उसकी माता (अ० सा० 4)

भी शव के निकट खड़ी थी और उस समय रो रही थी। सड़क पर काफी मात्रा में रक्त बहता हुआ पाया गया था।

(f) प्रत्यर्थी संख्या 1 फहीम खान द्वारा सिर पर कारित आग्नेयास्त्र की उपहतियों से मृतक की मृत्यु हुई है एवं मृतक के सिर से डॉक्टर द्वारा एक बुलेट भी निकाली गई थी जिसे न्यायालय में पेश किया गया था।

ऊपर गिनाए गए सारे तथ्य चश्मदीद गवाह (अ॰ सा॰ 4) के बयान को विश्वसनीयता प्रदान करते हैं और उसके बयान का अभिलेख पर मौजूद अन्य तात्विक साक्ष्य द्वारा पूर्ण रूप से संपोषण और समर्थन किया गया है।

19. विद्वान विचारण न्यायालय ने एकमात्र चश्मदीद गवाह अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य को अस्वीकृत कर दिया है इस आधार पर घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति पर संदेह करते हुए कि अ॰ सा॰ 2 मो॰ हनीफ ने कहा था कि सूचनादाता कभी उसके साथ कभी उसके साला महफूज के साथ और कभी अपने घर में रहा करती थी, परन्तु घटना की तिथि एवं समय पर वह वास्तव में कहाँ रह रही थी, यह साक्ष्य में नहीं आया है।

विद्वान विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष अनुचित और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के महत्व के विरूद्ध है। पता लगाने की मुख्य प्रश्न यह था कि वह अभिकथित घटना की तिथि एवं समय पर मौजूद थी या नहीं और यह नहीं था कि वहाँ प्राय: कहाँ रहा करती थी।

घटना-स्थल पर उसकी उपस्थिति को अन्वेषण पदाधिकारी द्वारा संपोषित किया गया है जिसने कहा था कि जब वह घटनास्थल पर पहुँचा, तो उसने मृतक के शव के निकट अ॰ सा॰ 4 को पाया और वह उस समय रो रही थी। मो॰ हनीफ अ॰ सा॰ 2 ने भी अपने साक्ष्य में कहा है कि जब वह सिनेमा से 11:30 बजे रात में लौटा, तो उसने मृतक के शव को सड़क पर पड़ा पाया और सूचनादाता वहाँ पर रो रही थी और चिल्ला रही थी कि फहीम, अरशद एवं छोटन ने उसके पुत्र को जान से मार दिया है और भाग गए हैं।

मामले की किसी भी दृष्टि में, अन्वेषण पदाधिकारी (अ॰ सा॰ 7) के साक्ष्य में यह भी सामने आया है कि मो॰ हनीफ का घर घटनास्थल से केवल 25 गज की दूरी पर था और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि घटनास्थल पर अ॰ सा॰ 4 की उपस्थिति संभव नहीं थी।

मामले की इस दृष्टि में, हमारे दिमाग में इसको लेकर कोई संदेह नहीं है कि अ॰ सा॰ 4 सूचनादाता घटना की तिथि एवं समय पर घटनास्थल पर उपस्थित थी और उसने पूरी घटना को देखा था और उसने प्रत्यर्थी फहीम खान को उसके पुत्र पर गोली चलाते देखा था जो इसके सिर पर लगी जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई।

हम साक्ष्य को विश्वसनीय एवं भरोसा के योग्य पाते हैं और हम उसके विनिर्दिष्ट एवं प्रत्यक्ष साक्ष्य को अस्वीकृत करने की कोई कारण नहीं देखते है।

20. विद्वान विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि अ॰ सा॰ 4, यानि एकमात्र चश्मदीद गवाह के कपड़ों पर रक्त के कोई धब्बे नहीं पाए गए थे और इसलिए, घटना-स्थल पर अ॰ सा॰ 4 की उपस्थिति संदिग्ध था, अटकलों एवं अनुमानों पर आधृत है। अ॰ सा॰-2, 4 एवं 7 के साक्ष्य से यह पूर्णत: स्थापित है कि वह घटना-स्थल पर मौजूद थी।

21. सूचनादाता के दामाद, महफूज खान की गैर-परीक्षा भी अभियोजन मामले के बिल्कुल भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करती क्योंकि वह घटना का चश्मदीद गवाह नहीं था और यह किसी का भी मामला नहीं है कि वह घटनास्थल पर मौजूद था। विद्वान विचारण न्यायालय ने उसकी गैर-परीक्षा के कारण त्रुटिपूर्ण रूप से प्रतिकूल निष्कर्ष निकाल लिया है।

22. उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर, हमारा विचार है कि अ॰ सा॰ 4 के साक्ष्य पर भरोसा न करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा चिन्हित किए गए कारण पूर्णत: अवैधानिक और आवांछित है। विचारण न्यायालय ने बिल्कुल गलत दृष्टिकोण से समूचे मामले पर दृष्टिपात किया है और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप से अभियुक्त/प्रत्यर्थी फहीम खान को बरी करके गंभीर त्रुटि कारित की है। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य सभी युक्तियुक्त संदेह से परे यह स्थापित करता है कि प्रत्यर्थी/अभियुक्त फहीम खान ने आशयित रूप से मृतक सगीर हसन सिद्दीकी की हत्या कारित की थी और इसलिए वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी अवधारित किया जाने का दायी है।

23. तद्नुसार, यह सरकारी अपील अनुज्ञात की जाती है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप के लिए अभियुक्त फहीम खान को बरी करने वाले विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। अभियुक्त/प्रत्यर्थी फहीम खान को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के दोषी अवधारित किया जाता है और तद्द्वारा वह दोषसिद्ध किया जाता है और उसे आजीवन सश्रम कारावास भुगतने का दण्डादेश किया जाता है।

प्रत्यर्थी संख्या 1 फहीम खान को दण्डादेश भुगतने के लिए अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष तत्काल आत्म-समर्पण करने का निर्देश दिया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 1 फहीम खान को दण्डादेश भुगतने के लिए विचारण न्यायालय उसकी गिरफ्तारी के लिए सभी आवश्यक कदम उठाएगा।

आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

राम दुलारी देवी

बनाम

भारतीय जीवन बीमा निगम एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 4060 वर्ष 2004. 23 जून, 2009 को विनिश्चित।

बीमा अधिनियम, 1938—धारा 45—बीमित राशि का दावा–याची–नामनिर्देशिति को उसके पति द्वारा बीमा कराई गई दो पॉलिसियों की बीमित राशि से वंचित किया गया इस आधार पर कि उसने अपने चिकित्सीय उपचार के बारे में तात्विक तथ्य को छुपाया था–अभिनिर्धारित, चूँकि मृतक का एक स्वस्थता प्रमाण-पत्र पेश किया गया था, अत: यह नहीं कहा जा सकता कि उसने तात्विक तथ्यों को छुपाया था—द्वितीयत: दो वर्ष गुजर जाने के उपरांत पॉलिसी को प्रश्नाधीन नहीं किया जा सकता–प्रत्यर्थीगण को दो महीनो के भीतर पॉलिसियों को बीमा राशि के अनुसार याची को भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

(पैरा 14 एवं 15)

निर्णयज विधि.–AIR 1959 Patna 413; AIR 1962 SC 814; AIR 1991 SC 392; AIR 2001 SC 549; (2001) 2 SCC 160; (2008)1 SCC 321—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s Dhananjay Kumar Pathak, Ajit Kumar, For the Petitioner; Mr. Sachin Kumar, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका निम्नांकित अनुतोषों के लिए दाखिल किया गया है:-

(i) वरीय मंडलीय प्रबंधक के हस्ताक्षर के अधीन निर्गत दिनांक 4.2.2004 के पत्र को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति के एक यथोचित रिट, आदेश या निर्देश को निर्गत करने के लिए जिसके द्वारा और जिसके अधीन उक्त प्राधिकारी ने

एक अति मनमाने और अवैधानिक रूप से याची के पति की मृत्यु पर पॉलिसी से उदभुत होने वाले दावों को प्राप्त करने के लिए याची के विधिक अधिकार की पूर्ण अवहेलना करते हुए अमान्य आधार (आधारों) पर याची के दावे को खारिज कर दिया था।

(ii) याची के मृत पति द्वारा खरीदी गई पॉलिसी संख्या 551523082 एवं 551523083 धारण करने वाली पॉलिसियों से सम्बद्ध याची के पक्ष में मृत्यु दावों को तत्काल निर्गत करने के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण को एक यथोचित निर्देश निर्गत करने के लिए।

2. तथ्य संक्षेप में, निम्नलिखित रूप मे है:-

याची का मृत पति राम चन्द्र राम पूर्व मध्य रेलवे, बरवाडीह में एक crew नियंत्रक/OPB (TRS)/GHD था। प्रत्यर्थी संख्या 4 एवं 5 ने उसे भारतीय जीवन बीमा निगम की दो पॉलिसियाँ लेने के लिए तैयार किया। पॉलिसियों के विवरण निम्न रूप से है:-

<u>पॉलिसी सं० 1</u>

(i) पॉलिसी सं० 551523082

(ii) बीमित राशि—50,000/-

(iii) प्रारम्भ की तिथि—28.6.1999

(iv) परिपक्वता की तिथि—28.6.2014

(v) प्रीमियम किस्त—3086.00

(vi) मोड—अर्द्ध वार्षिक-45 वर्ष

(vii) शाखा—55K

(viii) डी० ओ० कोड—0999999

(ix) एजेन्ट कोड—0043855K

<u>पॉलिसी सं० 2</u>

(i) पॉलिसी सं०—551523083

(ii) बीमित राशि—50,000/-

(iii) प्रारम्भ की तिथि—15.6.99

(iv) परिपक्वता की तिथि—15.6.2014

(v) प्रीमियम की किस्त—3086.00

(vi) मोड—अर्द्ध वार्षिक-45 वर्ष

(vii) शाखा—55K

(viii) डी० ओ० कोड—0999999

(ix) एजेण्ट कोड—0043855K

3. भारतीय जीवन बीमा निगम की जमशेदपुर मंडल के शाखा प्रबंधक ने तदनुसार दोनों पॉलिसियों के स्वीकृति पत्र सह-प्रथम प्रीमियम की रसीदों को निर्गत किया। वैयक्तिक वित्तीय कठिनाईयों के कारण कुछ तिमाही के लिए प्रीमियम के भुगतान में व्यतिक्रम हुआ था और प्रीमियम के भुगतान और उसके नवीकरण के लिए याची के मृत पति को दिनांक 30.7.01 का ज्ञापांक निर्गत किया गया था। याची के मृत पति ने 1.10.2001 एवं 18.2.2002 को दोनों पॉलिसियों का नवीकरण कर दिया गया और विलम्ब शुल्क के साथ अद्यतन प्रीमियम का भुगतान कर दिया और प्रत्यर्थीगण द्वारा याची के मृत पति को नवीकरण प्रीमियम रसीदें भी निर्गत कर दी गई। हृदय गति एवं श्वासावरोध के कारण 27.11.2002 को याची के पति की मृत्यु हो गई और तद्नुसार एक मृत्यु प्रमाण-पत्र निर्गत

किया गया। याची नामित नामनिर्देशिति है और अपने पति की मृत्यु के उपरांत उसने पूर्वोक्त दोनों पॉलिसियों से जुड़े मृत्यु लाभों के भुगतान के लिए उसने आवेदन किया। रेलवे से याची के मृत पति की छुट्टी के विवरणों की मांग करते हुए प्रत्यर्थीगण ने 7.3.03 को एक पत्र लिखा। प्रत्यर्थीगण ने याची के पुत्र से 1.6.01 से 4.7.01 की अवधि के लिए याची के मृत पति के चिकित्सीय प्रमाण-पत्र की भी मांग की और दिनांक 28.8.2003 के पत्र के निबंधनों में उसने चिकित्सीय प्रमाण-पत्र को निर्गत करने के लिए वरीय मंडलीय चिकित्सा पदाधिकारी से आग्रह किया। वरीय मंडलीय चिकित्सा पदाधिकारी, पूर्व-मध्य रेलवे, बड़वाडीह ने दिनांक 28.8.03 के उसी पत्र को प्रमाणित किया कि याची का मृत पति पी० वी० ओ० के 1.6.01 से 4.7.01 तक उसके इलाज के अधीन था और अवमुक्त होने पर उसे आरोग्य प्रमाण-पत्र निर्गत किया था जिसकी संख्या F-0768014 थी जिसे याची को संप्रेषित कर दिया गया था। प्रत्यर्थी ने एक निर्णय लिया कि याची के पति, अब मृतक, पॉलिसी के नवीकरण के समय उसने अपने स्वास्थ्य के संबंध में तात्विक सूचना प्रकट नहीं की थी और, इसलिए, पॉलिसियों के नवीकरण को शुन्य घोषित कर दिया गया और दिनांक 4.2.2004 के प्रत्यर्थीगण के पत्र के अनुसार मृतक द्वारा भुगतान किए गए धन को उनके ही द्वारा रख लिया गया था। याची ने बाध्य होकर मामले पर पुनर्विचार करने के लिए और पॉलिसी के अधीन लाभों के भुगतान के लिए क्षेत्रीय प्रबंधक, कोलकाता को 2.3.2004 को एक पत्र लिखा और आंचलिक प्रबंधक ने दिनांक 19.3.2004 के अपने पत्र से याची को सूचित किया कि मामले को अब जमशेदपुर मंडलीय कार्यालय के स्तर पर देखा जा रहा है। परन्तु उसके उपरांत कुछ भी संसूचित नहीं किया गया याची ने बाध्य होकर दिनांक 4.2.2004 को आक्षेपित पत्र को निरस्त करने हेतु इस रिट याचिका को दाखिल किया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि वह स्वर्गीय राम चन्द राम का नाम निर्देशिति/विधवा होने के कारण दोनो बीमा पॉलिसियों के अधीन मृत्यु-दावों को प्राप्त करने की अधिकारी थी विशेषकर जब अद्यतन भुगतान करके विलम्ब शुल्क के साथ पॉलिसियों का नवीकरण कर लिया गया था। यह भी तर्क रखा गया है कि नवीकरण के समय स्वास्थ्य के संबंध में किसी भी तात्विक सूचना को छिपाया या रोके नहीं रखा गया था। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 स्पष्टत प्रावधान करती है कि दो वर्षों के उपरांत पॉलिसी को प्रश्नगत नही किया जा सकता और इस मामले में पॉलिसी 1999 की थी जिसे वर्ष 2004 में प्रश्नाधीन करना इप्सित किया जा रहा है।

5. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि पॉलिसी का खण्ड-3 प्रावधान करता है कि बीमित जीवन के जीवन काल में पहले गैर-भुगतान किए गए प्रीमियम की अवधि के भीतर और परिपक्वता की तिथि से पहले पॉलिसी को पुनरूज्जिवित किया जा सकता है। निगम को समाधान करने वाले निरंतर बीमा योग्यता के साक्ष्य को सुपूर्द करके और ब्याज के साथ प्रीमियम के सभी बकायों का भुगतान ऐसी दरों पर करके जिसे निगम निर्धारित करे और निगम के पास रूकी हुई पॉलिसी के नवीकरण को स्वीकारने या अस्वीकारने का अधिकार सुरक्षित है। फार्म संख्या 680 के अनुसार, स्वास्थ्य के संबंध में वैयक्तिक कथन को उस व्यक्ति द्वारा दिया जाना था जिसका जीवन बीमित था और स्वास्थ्य के संबंध में फॉर्म में यथा उत्कथित विनिर्दिष्ट प्रश्न के विनिर्दिष्ट उतर को भरा जाना था। यह भी निवेदन किया गया है कि फार्म संख्या 680 में प्रश्न सं० 2(a) से (d) का जवाब देते हुए याची के मृत पति यानि मृतक ने सभी जवाब नकारात्मक दिए थे और प्रश्न संख्या 2(a)(ii) में यह विनिर्दिष्ट रूप से पूछा गया था कि क्या बीमित जीवन उच्च रक्त चाप या हृदय की किसी बीमारी से ग्रस्त था और इसका जवाब न में था। वह यह भी निवेदन करते हैं कि प्रश्न संख्या 4 में उसने यह भी उत्तर दिया था कि उसका स्वास्थ्य उत्तम था और एक घोषणा हस्ताक्षरित की कि उसका कथन सही एवं विशुद्ध है और अगर यह असत्य हुआ तो संविदा पूर्ण रूप से शून्य एवं अकृत हो जाएगा और सभी धन, जो उसके संबंध में पॉलिसीधारक को दिया जाना था, निगम को समपहृत हो जाएगा। यहाँ गलत

कथन और तात्विक प्रकटन करना और इस प्रकार, बीमा अधिनियम की धारा 45 के अधीन वह पॉलिसी के फलों का अधिकारी नहीं था। यह भी निवेदन किया गया है कि वह उक्त उपचार के लिए चिकित्सीय छुट्टी पर था और इस प्रकार, यहाँ पर तात्विक रूप से गलत कथन दिया गया था। अपने तर्क का समर्थन करने के लिए, उन्होंने निम्नांकित नियमों को निर्दिष्ट किया है और इनपर भरोसा किया है:-

*(i) ए० आई० आर० **1959** पटना **413***

*(ii) ए० आई० आर० **1962** एस० सी० **814***

*(iii) ए० आई० आर० **1991** एस० सी० **392***

*(iv) ए० आई० आर० **2001** एस० सी० **549***

6. मैंने प्रतिद्वंद्वी निवेदनों, अभिवाकों एवं मुद्दों पर निर्णयज विधि पर विचार किया है। गुणावगुणों पर मामले से निपटने से पहले बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 45 को उत्कथित करना सुसंगत है, जो निम्नांकित रूप से उत्कथित है:-

*''**45 दो वर्षों के उपरांत गलत कथन के आधार पर पॉलिसी को प्रश्नगत नहीं किया जायगा.—**इस अधिनियम के प्रारम्भ से पहले से प्रभावी जीवन बीमा की कोई भी पॉलिसी इस अधिनियम के प्रारम्भ की तिथि से दो वर्षों की समाप्ति के उपरांत एवं इस अधिनियम के प्रवृत्त होने के उपरांत प्रभावी जीवन बीमा की कोई भी पॉलिसी उस तिथि से दो वर्षों की समाप्ति के उपरांत जिस तिथि को इसे प्रभावी बनाया गया था, बीमाकर्ता द्वारा इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जायगा कि बीमा के प्रस्ताव में या किसी चिकित्सा अधिकारी या रेफरी या बीमित के मित्र के किसी रिपोर्ट में किया गया कोई कथन या पॉलिसी के निर्गतीकरण की ओर अग्रसर करने वाला कोई अन्य दस्तावेज यथार्थ या मिथ्या था, जबतक कि बीमाकर्ता यह नहीं दर्शाये कि ऐसा कथन किसी तात्विक सामग्री या छिपाये गए तथ्यों पर था जिसमें यह प्रकट करना महत्वपूर्ण था एवं यह कि इसे पॉलिसीधारक द्वारा कपटपूर्वक तैयार किया गया था एवं यह कि पॉलिसीधारक इसे बनाते समय यह जानता था कि वह कथन मिथ्या था यह कि इसने तथ्यों को छिपाया था जिसमें यह प्रकट करना महत्वपूर्ण था:*

[परन्तु यह कि इस धारा की कोई भी बात बीमाकर्ता को किसी भी समय उम्र के प्रमाण की मांग करने से नहीं रोकेगा यदि वह ऐसा करने का हकदार है, एवं कोई भी पॉलिसी मात्र इस कारण से प्रश्नगत किया गया नहीं समझा जायगा कि पश्चातवर्ती प्रमाण पर पॉलिसी के निबन्धनों को समायोजित किया गया है कि जीवन बीमाधारक के उम्र को प्रस्ताव में असत्य रूप से कथन किया था।]"

7. अधिनियम की धारा 45 विहित करती है कि दो वर्ष गुजर जाने के उपरांत गलत कथनो के आधार पर जीवन बीमा पॉलिसी को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता और इस प्रकार दो वर्ष की एक अवधि के भीतर बीमा पॉलिसी के निराकरण को अभिकल्पित करती है बीमा अधिनियम की धारा 45 के दूसरे भाग का आलम्ब लेने के लिए तीन पूर्व शर्त है और इन्हें निम्नांकित रूप से वर्णित किया गया है:-

(a) कथन अनिवार्यतः तात्विक मामले पर होना चाहिए या अनिवार्यतः तथ्यों को छुपाने वाला हो जिसे प्रकट करना तात्विक था;

(b) प्रकटन करना पॉलिसी-धारक द्वारा कपटपूर्ण रूप से किया गया हो; एवं

(c) कथन करते समय पॉलिसीधारक को अनिवार्य रूप से जानकारी हो।

पूर्वोक्त प्रावधानों और साथ-साथ स्थापित विधि के पठन से यह स्पष्ट होगा कि गलत कथन अपनी आप से ही पॉलिसी के निराकरण के लिए प्रर्याप्त तात्विक नहीं था जबतक कि इसकी प्रकृति कपटपूर्ण और तात्विक न हो और बीमा की संविदा पर इसका गहरा प्रभाव न हो।

8. याची के विद्वान अधिवक्ता ने **ए॰ आई॰ आर॰ 1959 पटना 413 (रतन लाल बनाम मेट्रोपॉलिटन बीमा कम्पनी लिमिटेड)** में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय पर काफी भरोसा किया है, जो ऐसा मामला था जहाँ उसी मामले में ही तथ्यों के प्रकटीकरण के संबंध में इसमें फर्क किया गया था कि क्या तात्विक था और क्या तात्विक नहीं था और निम्नांकित रूप से अवधारित किया गया था:-

"5. बीमा के क्षेत्र में सुस्थापित विधि यह है कि जीवन-बीमा की संविदाओं को शामिल करते हुए बीमा का संविदाएं uberrima *संविदाए होती है और तात्विक्ता के प्रत्येक तत्व को अनिवार्यतः प्रकट करना अन्यथा खण्डित करने का पर्याप्त कारण होता है और प्रकटन का यह दायित्व संविदा के समापन तक बना रहता है और जोखिम के लक्षण में किसी तात्विक परिवर्तन को आच्छादित करता है, जो प्रस्ताव और स्वीकरण के बीच घटित हो सकता है।''*

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ए॰ आई॰ आर॰ 1962 एस॰ सी॰ 814** में अवधारित किया कि बीमाकर्त्ता/पॉलिसी-धारक द्वारा तात्विक तथ्यों के कपटपूर्ण छिपाने से पॉलिसी दूषित हो जाएगा। उसमें यह भी अवधारित किया गया था कि समनुदेशिति बीमित से बेहतर आधार पर खड़ा नहीं हो सकता है और संविदा अधिनियम लागू नहीं होगा और ऐसे मामलो में अधित्यजन भी लागू नहीं होगा क्योंकि पॉलिसीधारक धोखाधड़ी और तात्विक तथ्यों के छुपाने का दोषी था जब उसने ऐसा कथन किया जिसके बारे में वह आवश्यक रूप से जानता था कि यह जानबूझकर कहा गया एक झूठ है।

10. इसी प्रकार के एक मामलो में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय एवं उड़ीसा उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण निम्नांकित रूप से थे:-

(i) पॉलिसी के प्रश्नक्रम के दाखिल करने की तिथि से पहले बीमित फेफड़े के तपेदिक से ग्रस्त था। तथ्य को सिद्ध करने के लिए डॉक्टर ने परीक्षण नहीं किया था। इसके लिए समर्थनकारी कोई साक्ष्य नहीं है। साक्ष्य के भार को उन्मोचित करने से इसकी विफलता पर बीमा कम्पनी से पॉलिसी राशि की वसूली के लिए आवेदक के दावे को उचित रूप से डिक्री किया गया था। (भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम अम्बिका प्रसाद पाण्डेय, ए॰ आई॰ आर॰ 1999 एम॰ पी॰ 13)

(ii) तात्विक तथ्यों का अप्रकटन एक ऐसी पॉलिसी में था जो जीवन के जोखिम को आच्छादित करती थी। पॉलिसी का निराकरण कर दिया गया था। हृदय, श्वसन के बन्द हो जाने के कारण बीमितकर्त्ता की दो वर्ष के उपरांत मृत्यु हो गई। अस्पताल के दस्तावेजों से यह दर्शाया गया था कि मृतक पिछले 15 वर्षों से मधुमेह से पीड़ित था और यह तथ्य मृतक द्वारा प्रकट नहीं किया गया था। पॉलिसी लेने के समय डॉक्टर को दी गई गोपनीय रिपोर्ट में भी इसका उल्लेख नहीं था। यह अवधारित किया गया कि मृतक तात्विक तथ्यों को छिपाए रखने का दोषी नहीं था और पॉलिसी का निराकरण उचित नहीं था। (भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम नर्मदा अग्रवाल, ए॰ आई॰ आर॰ 1993 उड़ीसा 103)

11. वर्तमान मामले में याची के दावे को निराकृत करने के लिए प्रत्यर्थी का समूचा आधार 1.6.01 से 4.7.01 तक अवकाश की अवधि के लिए चिकित्सा पदाधिकारी द्वारा दिए गए प्रमाण-पत्र पर आधृत है जिसे दोनो पॉलिसी के दावे के लाभ से इन्कार करने के लिए तथ्य की एक तात्विक गलतबयानी के तौर पर माना गया है। तथापि, मृतक पॉलिसीधारक के पुत्र द्वारा लिखे गए पत्र पर ही 28.8.03 को स्वयं वरीय मंडलीय चिकित्सा पदाधिकारी द्वारा दिए गए प्रमाण-पत्रों को ही निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा और प्रमाण-पत्र में यह स्पष्टत दिखता है कि मृतक पॉलिसीधारक 1.6.01 से 4.7.01 तक उपचार के अधीन था और अस्पताल से छुट्टी किए जाने के समय एक आरोग्य प्रमाण-पत्र दिया गया था और इस प्रकार यह किए गए किसी गंभीर ऑपरेशन को छिपाने या तात्विक तथ्य के एक कपटपूर्ण अप्रकरण का मामला नहीं था, बल्कि स्वयं प्रमाण-पत्र कहता है और आरोग्य प्रमाण-पत्र प्रदान करता है इस तथ्य को सिद्ध करते हुए कि कोई गंभीर रोग नहीं था अन्यथा उसे छोड़ा नहीं जा सकता था और नहीं आरोग्य प्रमाण-पत्र प्रदान किया जा सकता था।

वर्तमान मामले में, तथ्य बिल्कुल भिन्न है और इसके ऊपर निर्दिष्ट सभी निर्णयों के निर्णयाधार स्पष्टत: याची के पक्ष में है।

12. विबन्ध अर्जन या अधित्यजन के संबंध में विधि की सुस्थापित प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं है कि जब एक व्यक्ति बीमा कम्पनी के सामने एक गलत कथन इसके परिणाम की जानकारी रहते हुए करता हैं। **(2001)2 एस॰ सी॰ सी॰ 160** में रिपोर्ट किए गए **भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम आशा गोयल** के मामले में जिसपर प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है पैरा 12 पर निम्नांकित रूप से अवधारित किया गया था:-

> *"12. .....जीवन बीमा की संविदा समेत बीमा की संविदाएं* uberrima *संविदाएं होती है और तात्विक महत्व के सभी तथ्य (या जिसे तात्विक समझा जाए) में अनिवार्यतः प्रकट करना है, अन्यथा संविदा को खण्डित करने का उपयुक्त आधार हो सकता है। तात्विक तथ्यों को प्रकट करने का दायित्व संविदा के समापन तक जारी रहता है और इसमें जोखिम की प्रकृति में कोई तात्विक परिवर्तन भी विवक्षित है जो प्रस्ताव और इसके स्वीकरण के बीच धारित हो सकता है। अगर कोई गलत कथन हो या तात्विक तथ्यों का अप्रकटन हो पॉलिसी को प्रश्नाधीन किया जा सकता है। इस प्रश्न के अभिनिर्धारण के लिए कि किसी तात्विक तथ्यों का छुपाव हुआ है यह जाँच करना भी आवश्यक हो सकता है कि क्या छुपाव एक ऐसे तथ्य से संबंधित है जो पॉलिसी लेने का आशय रखने वाले व्यक्ति की अनन्य जानकारी में है और एक बुद्विमान व्यक्ति द्वारा युक्तिसंगत जाँच-पड़ताल करके अभिनिश्चित किया जा सकता है या नहीं।''*

13. (2008)1 एस॰ सी॰ सी॰ 321 (पी॰ सी॰ चाको एवं एक अन्य बनाम अध्यक्ष, भारतीय जीवन बीमा निगम एवं अन्य) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने गलत कथन के आधार पर बीमा पॉलिसियों के दावे के संबंध में एक सदृश मामले पर विचार करते हुए अवधारित किया कि गलत कथन अपने-आप में पॉलिसी को भंग करने का एक कारण नहीं हो सकता जबतक कि इसकी प्रकृति तात्विक न हो तथापि, बीमा की संविदा पर एक अति प्रभाव रखने वाला जवाब जो बीमित द्वारा जानबूझकर दिया गया हो, जो पॉलिसी के निविदा पर प्रभावकारी हो सकता है एवं विधि में दूषित बना देने का हो सकता है। यह भी दुहराया गया है कि पॉलिसी का निराकरण किया जा सकता है अगर यह कपटपूर्ण कार्य से ली गई हो।

पूर्वोक्त मामले में बीमित का पॉलिसी के पहले एडीनोस थाईरॉयड का एक आपरेशन हुआ था और पॉलिसी को ग्रहण करने के लिए आवेदनपत्र में प्रश्न का जवाब देने के समय उसने इन्कार किया था कि उसका कोई ऑपरेशन हुआ था और इस प्रकार यह अवधारित किया गया था कि ऑपरेशन का अति गंभीर प्रकृति का होने से और जानबूझकर एक गलत उत्तर दिए जाने के लिए बीमा की संविदा पर एक अति गहरा प्रभाव था, निश्चित रूप से एक कपटपूर्ण कार्य से पॉलिसी को प्राप्त करने के कारण इसे निराकृत किया जा सकता है।

14. मामले में तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करके यह स्पष्ट होगा कि बीमा अधिनियम की धारा 45 के अवयव एवं अपेक्षाएं वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगी चूँकि कथन न तो कपटपूर्ण था और न ही तात्विक तथ्य के अप्रकटन के तुल्य था। द्वितीयत:, पॉलिसी-धारक के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि कथन करते समय उसे जानकारी थी कि वह गलत था या इसने तात्विक तत्वों को छुपाया मात्र इस कारण से कि प्रमाण-पत्र ने स्पष्टत: रूप से असंदिग्ध रूप से सिद्ध किया कि वह स्वस्थ था और तद्नुसार उसे स्वस्थ होने का प्रमाण-पत्र प्रदान किया गया था। इस प्रकार, चिकित्सीय छुट्टी पर होने को ही तात्विक तथ्य का अप्रकटन नहीं कहा जा सकता और न ही कल्पना की किसी उड़ान से इसे कपटपूर्ण या प्रकटन के लिए अति तात्विक कहा जा सकता है। मामले का एक अन्य पहलू है कि ऐसी पालिसीयों के निराकरण हेतु अधिनियम की धारा 45 के अधीन प्रावधान

के अधीन विहित अवधि दो वर्ष है और इसके दो वर्ष के गुजर जाने को उपरांत पॉलिसी को बीमाकर्त्ता द्वारा प्रश्नाधीन नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में पॉलिसी 1999 में हुई थी जबकि चुनौती के अधीन आक्षेपित पत्र को वर्ष 2004 में निर्गत किया गया था।

15. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और वरीय मंडलीय प्रबंधक के हस्ताक्षराधीन निर्गत दिनांक 4.2.2004 का आक्षेपित पत्र एतद् द्वारा निरस्त किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को तद्नुसार इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो महीनों की एक अवधि के भीतर याची जो मृतक पॉलिसी-धारक का नामनिर्देशीति है को पॉलिसियों में बीमित राशि के अनुसार भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति

मेसर्स सचिन्द्र इलेक्ट्रोनिक्स

बनाम

भारत कोकिंग कोल लिमिटेड एवं एक अन्य

AFOD No. 52 वर्ष 2006. 25 मई, 2009 को विनिश्चित।

धन वाद सं॰ 30/94 में अधीनस्थ न्यायाधीश VII, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 31.8.2005 के निर्णय एवं दिनांक 9.9.2005 की डिक्री के विरूद्ध।

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872—धाराएँ 65 एवं 70—संविदा की समाप्ति—वादी-अपीलार्थी संविदा के निबन्धनों में कार्य पूरा करने में विफल रहा—वादी के ही गवाह ने स्वीकार किया कि कार्य का केवल 30% पूरा किया गया था—वादी का यह दावा कि वह 80% कार्य पूरा कर चुका है या तो मौखिक गवाह या दस्तावेजी साक्ष्य से सिद्ध नहीं— अभिनिर्धारित, इसका भार वादी-अपीलार्थी पर है परन्तु वह अपने मामले को सिद्ध नहीं कर सका—अपील खारिज। (पैरा 12 एवं 13)

निर्णयज विधि.—(1991)3 SCC 311—Relied upon.

अधिवक्तागण.—M/s R.S. Mazumdar, Rohit Roy, Rishavdev, For the Appellant; M/s Ananda Sen, Ranjan Kumar, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.—धन वाद सं॰ 30/94 में अधीनस्थ न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 31 अगस्त, 2005 की निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध यह अपील निर्दिष्ट है, जिसके द्वारा उन्होंने 6,70,439.50 रुपए की राशि की वसूली हेतु एक डिक्री के लिए वादी/अपीलार्थी द्वारा दाखिल वाद को खारिज कर दिया है।

2. वादी का मामला यह है कि यह विद्युतीय संस्थापन/परिनिर्माण कमीशनिंग इत्यादि के व्यवसाय में 1987 से संलग्न एक पंजीकृत साझेदारी फर्म है। प्रतिवादीगण/प्रत्यर्थी सं॰ 1 मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड ने अमलाबाद खान में 2 x 5 MVA 33KV/33KV विद्युत सब-स्टेशन की संस्थापन के कार्य के लिए एक प्रतिष्ठित वैद्युत ठेकेदार से निविदा आमंत्रित किया। वादी ने BCCL के भौरा क्षेत्र में अपनी निविदा प्रस्तुत किया और प्रतिवादीगण/प्रत्यर्थीगण द्वारा निविदा को स्वीकार किया गया। तद्नुसार, अमलाबाद खान में 33KV/33KV सब-स्टेशन के कमीशनिंग के कार्य के निष्पादन के लिए प्रतिवादी संख्या 1 के महाप्रबंधक, भौरा क्षेत्र द्वारा दिनांक 5.8.87 का कार्य आदेश उक्त कार्य-आदेश में निहित निबंधनों एवं शर्तों के अनुसार वादी के पक्ष में निर्गत किया गया। यह भी अभिवाक् किया गया है कि पूर्वोक्त संविदा के निबंधनों एवं शर्तों के अनुसार, प्रतिवादी सं॰ 1 को कार्य को प्रारम्भ करने और निष्पादित करने के लिए एक युक्तिसंगत समय के भीतर वादी को कार्य-स्थल तक पहुँच एवं

कब्जा उपलब्ध कराना था और तद्नुसार, संविदात्मक कार्य वादी द्वारा निष्पादन कार्य-स्थल की उपलब्धता पर निर्भर था। यह अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी कार्यस्थल तक पहुँच और कब्जा दिलाने में बुरी तरह विफल रहा जिसने न केवल कार्य के प्रारम्भ में देरी कर दी अपितु इसके निष्पादन में भी कभी विलम्ब कर दिया। केवल इसी कारण से 5.8.87 को कार्य-आदेश के निर्गत होने के बावजूद, उक्त कार्य के निष्पादन के लिए वादी एवं प्रतिवादी सं० 1 के बीच वास्तविक ज्ञापन करार 8.5.88 को निष्पादित किया गया था। आगे वादी का मामला यह है कि संविदा के निबंधनों के अनुसार, मुख्य सिविल कार्यों, जैसे नियंत्रण कक्ष भवन का निर्माण, ट्रान्सफॉर्मर के संस्थापन के लिए आधार का निर्माण, केबुल बिछाने के लिए गड्ढों का खोदना इत्यादि कार्य वादी के कार्य की परिधि के भीतर नहीं थे और यह अनुबद्ध किया गया था कि प्रतिवादी-कम्पनी किसी अन्य अभिकरण/संवेदक द्वारा इन सिविल कार्यों के लिए निष्पादित कराएगी और उचित समय पर इसे वादी के हवाले कर देगा परन्तु प्रतिवादी बुरी तरह विफल रहा क्योंकि विभिन्न असैन्य कार्यों के निर्माण/निष्पादन में असम्यक् रूप से विलम्ब हुआ। वादी का मामला यह भी है कि सब-स्टेशन के कमीशनिंग के कार्य को प्रारम्भ करते समय, प्रतिवादी-कम्पनी उस कुल/निश्चित स्थान को उपलब्ध या कर्णांकित न कर सका जिसपर बाहरी संस्थापन जैसे ट्रान्सफॉर्मर, स्विचेज इत्यादि को संस्थापित किया जाना था, परन्तु अमलाबाद परियोजना की परियोजना समिति के अधिकारियों ने वादी से कार्य प्रारम्भ करने का आग्रह किया परन्तु कार्य के निष्पादन को कई अवसरों पर बीच में रोका गया था।

3. आगे वादी का मामला यह है कि संविदा के निबंधनों के अनुसार, प्रतिवादी-कम्पनी को संस्थापन और कमीशनिंग-पूर्व परीक्षण के उपरांत उपरांत चालू विपत्रों में मदवार यूनिट दर के 75% का भुगतान करना था, परन्तु सब-स्टेशन के कार्य के निष्पादन के समय, प्रतिवादी-कम्पनी इस पेमेन्ट-टर्म्स को प्राप्त करने से बुरी तरह विफल रहा। वस्तुतः, वादी द्वारा किए गए कार्य के 80% के विरूद्ध, चार वर्षों की एक अवधि में प्रतिवादी-कम्पनी द्वारा 3,32,070.00 रुपए के समतुल्य केवल तीन चालू विपत्रों को तैयार/अनुमोदित किया गया और इनमें से वादी को 1,65,947.72/- रुपए का भुगतान किया गया था। प्रतिवादी-कम्पनी ने विपत्रों का भुगतान करने के स्थान पर, कार्य के निष्पादन में विलम्ब की सारी जिम्मेदारी वादी पर डाल दी और वादी को धमकी दिया कि कार्य के निष्पादन में विलम्ब के लिए वादी के विपत्रों से परिनिर्धारित नुकसान की कटौती की जाएगी। सारी कठिनाईयों के बावजूद, प्रतिवादी-कम्पनी द्वारा वादी को उपलब्ध सामग्रीयाँ, नक्शे इत्यादि उपलब्ध कराए गए जिसपर वादी ने 1989-90 के भीतर कार्य के 80% कार्य को पूरा कर लिया और सब-स्टेशन के शेष 20% कार्य को एक महीने के भीतर पूरा किया जा सकता था अगर प्रतिवादीगण ने नियंत्रण कक्ष भवन वादीगण के हवाले कर दिया होता क्योंकि शेष 20% कार्य का अधिकांश भाग इसी भवन के भीतर था।

4. वादी का मामला यह है कि प्रतिवादी-कम्पनी अपने स्वयं की गलती की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता था और अपनी त्रुटि को छुपाने के लिए, इसने किसी बलि के बकरे को खोजने का प्रयास किया, यह अच्छी तरह जानते हुए कि वादी किसी भी तरह से व्यतिक्रम के लिए दायी नहीं था। पत्राचारों के जवाब में, वादी ने कार्य के निष्पादन में विलम्ब के लिए परिस्थितियों को स्पष्टीकृत किया और कार्य प्रारम्भ करने का प्रतिवादी-कम्पनी द्वारा दिए गए आश्वासनों के बावजूद, वादी की संविदा को एकपक्षीय रूप से, मनमाने तरीके से एवं अवैधानिक रूप से समाप्त कर दिया गया। 10.4.91 को इस संविदा समाप्ति की जानकारी होने पर वादी ने प्रतिवादी संख्या 1 के उच्चतर पदाधिकारियों के समक्ष इस समाप्ति के विरूद्ध कई अभ्यापतियों की और समाप्ति निर्णय पर पुनर्विचार करने का आग्रह किया और शेष 20% कार्य वादी को पूरा करने की अनुमति दिया और प्रतिवादीगण ने अपने ही कर्मकारों द्वारा कार्य को पूरा करा लिया और उन सामानों से जिनकी आपूर्त्ति वादी द्वारा पहले ही की जा चुकी थी। यह भी कहा गया है कि वादी संविदा के अपने हिस्से को पूरा करने का इच्छुक था, परन्तु प्रतिवादीगण अपने हिस्से को पूरा करने में और पूर्णतः विफल रहे और इस प्रकार यह प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से संविदा के भंग किए जाने के तुल्य है और इस प्रकार, वादी अग्रिम राशि के प्रतिदाय के साथ 12%

की दर से ब्याज समेत इसके द्वारा निष्पादित 80% कार्य का भुगतान पाने का अधिकारी है। यद्यपि वादी ने बकाया विपत्रों का भुगतान करने के लिए बार-बार प्रतिवादीगण से आग्रह किया, परन्तु प्रतिवादीगण ने कभी भी वादी की मांगों का जवाब नहीं दिया और अन्ततः वादी ने अपने वकील के माध्यम से प्रतिवादी सं० 2 पर एक वैधानिक नोटिस की तामीला कराया, परन्तु प्रतिवादी ने उस नोटिस का भी जवाब देने की परवाह नहीं की।

5. इसलिए, वादी ने 6,70,439.50 रुपए की वसूली के लिए वाद दाखिल किया।

6. प्रतिवादीगण ने लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद किया अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए कि वाद समर्थनीय नहीं है और परिसीमा और विबंध, अधित्यजन एवं उपमति के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है। प्रतिवादीगण का मामला यह है कि वादी ने दिनांक 7.8.87 के कार्य आदेश से 3 से 4 महीनों के भीतर कार्य के समापन समय के साथ 8,30,130/- रुपए की कुल लागत पर वादी को 2 x 5 MVA अमलाबाद सब-स्टेशन के संस्थापन एवं कमीशनिंग का कार्य प्रदान किया गया था। उक्त कार्य आदेश 16.5.1988 को निर्गत किया गया था। जबकि वादी द्वारा 3.3KV स्विच गियर को प्रथम तल के नियंत्रण कक्ष में स्थानांतरित करते समय उनमें से एक स्विच गियर पैनल सं० 34 नीचे गिर पड़ा और क्षतिग्रस्त हो गया एवं उप-मुख्य खनन अभियंता, अमलाबाद परियोजना (खनन) ने इसके बारे में वादी को सूचित किया और क्षतिग्रस्त उपकरणों को बदलने के लिए उसे कहा। उप-मुख्य खनन अभियंता, अमलाबाद परियोजना ने 33KV/3.3KV सब-स्टेशन की स्थापन के लिए डी० जी० कैम्पस में लाए गए संस्थापन को सौंपने के लिए वादी को सूचित किया। प्रतिवादी ने जोरदार रूप से इससे इन्कार किया है कि वादी को कार्य-स्थल तक पहुँच और उसपर कब्जा उपलब्ध नहीं कराया गया था जैसा कि असत्य रूप से अभिकथित किया गया है। प्रतिवादीगण के अनुसार, सीमा दीवार के साथ-साथ वादी को खुला क्षेत्र उपलब्ध कराया गया था यद्यपि भवन का निर्माण कार्य प्रगति पर था। प्रतिवादीगण का मामला यह भी है कि नियंत्रण कक्ष के शेष कार्य को पूरा करने में सक्षम होने के लिए वादी ने दिनांक 6.1.88, 13.1.88 और 18.1.88 के पत्रों से नियंत्रण कक्ष के असैन्य कार्य को पूरा करने के लिए दो महीनों की अवधि का विस्तार का आग्रह किया। यह भी कहा गया है कि वादी के लिए समय को बढ़ाकर 30.6.88 कर दिया गया और भुगतान निबंधनों एवं प्रतिभू निक्षेप को संशोधित किया गया था। वादी द्वारा कार्य करने के दौरान एक और 3.3KV स्विच शिफ्ट पैनल सिरियल सं० 17 को क्षतिग्रस्त कर दिया गया था और विभिन्न पत्रों के माध्यम से उसे तत्काल रूप से क्षतिग्रस्त भागो को बदलने और उनकी मरम्मत करने के लिए कहा गया, परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। प्रतिस्थापन के बदले में वादी ने भुगतानों की मांग की, परन्तु प्रतिवादीगण ने दिनांक 21.11.88 के पत्र से वादी को विस्तारित समय के भीतर कार्य पूरा करने का आग्रह किया। तथापि, विस्तारित समय 30.6.88 को गुजर गया और फिर और दो महीनों का समय बढ़ाया गया। वादी ने ट्रांसफार्मर के लिए प्रतिवादी की फिटर मशीन का इस्तेमाल किया और वादी के अकुशलकर्मी द्वारा गलत इस्तेमाल के कारण, इसके आठ अंक वाले हीटर क्षतिग्रस्त हो गए थे। दिनांक 5.9.88, 12.9.88 और 4.11.88 के पत्रों से याची को इसकी तत्काल मरमम्त करने और कुशल व्यक्तियों की तैनाती करने के लिए कहा गया। दिनांक 4.1.89 और 6.1.89 के पत्रों द्वारा वादी को कुछ अन्य त्रुटियों एवं कुप्रबंधन के बारे में सूचित किया गया। याची को सभी व्यवहार्य प्रयोजनों के लिए सब-स्टेशन इमारत को पूरा करने के लिए कहा गया। परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वादी का कार्य अति-धीमा था और वादी ने 8.1.89 से 2.4.89 तक कार्य को लगभग रोक दिया और कई स्मरण-पत्रों के बावजूद वादी ने कार्य प्रारम्भ नहीं किया। तथापि, मार्च, 1989 में वादी द्वारा वादी के 1,33,940/- रुपए का प्रथम आर०/ए० विपत्र प्राप्त किया गया। वादी ने अवैधानिक रूप से विवाद खड़ा किया कि नियंत्रण कक्ष के असैन्य कार्य में गलत केबुल प्रविष्टि के कारण 3.3KV स्विच को लगाया नहीं जा सका और किसी वैध औचित्य के बिना कार्य को निलम्बित कर दिया। सब-स्टेशन का डिजाईन CMPDIL, राँची द्वारा तैयार किया गया था जिसमें प्रत्येक विवरणों को उल्लिखित किया गया और इसे 19.8.87 को ही वादी द्वारा प्राप्त किया गया है जिसके तकनीकी विवरणों को प्रतिवादीगण द्वारा 22.6.89 को उपलब्ध कराया गया है। अमलावाद के स्थानीय एवं

मुख्यालय अधिकारियों के साथ समीक्षा के बैठक में वादी की प्रगति का मूल्यांकन किया गया। परन्तु कार्य करने के स्थान पर वादी ने मनगढंत समस्याएं उठा कर मुद्दे से ध्यान हटाने का प्रयास किया। तथापि, वादी के साथ बैठक में 7.11.89 को 1,18,324/- रुपए के भुगतान के लिए दूसरे आर/ए बिल को निर्गत करने का निर्णय लिया गया। तब 220V बैटरी सेट और चार्जर के कमीशनिंग के लिए वादी ने कार्य प्रारम्भ किया परन्तु यह इसे कमीशन करने से विफल रहा और एसिड डालने के उपरांत बैटरी सेट के 110 सेलों को छोड़ दिया और अन्ततः बैटरी को नुकसान से बचाने के लिए प्रतिवादीगण को डी॰ जी॰ स्टेशन के अभियंता और तकनीशियनों की सहायता से इसे तत्काल कमीशन करना पड़ा। यह कहा गया है कि वादी ने कार्य को पूरा करने में कभी कोई गंभीरता नहीं जताई है बल्कि बिना किसी वैध औचित्य से किसी-न-किसी बहाने से मामले में देरी करना उसकी आदत रही है। अन्ततः वादी कार्य को संतोषजनक रूप से पूरा नहीं कर सका और इसके संचालक और प्राधिकृत हस्ताक्षरी श्री पी॰ मुखर्जी ने दिनांक 4.1.90 के पत्र द्वारा अपने को अपनी वृद्धावस्था के कारण कार्य-स्थल पर कार्य करने में अक्षम घोषित कर दिया और अपने साझेदार पी॰ दत्ता को कार्य-स्थल पर कार्य करने के लिए सशक्त कर दिया। प्रतिवादीगण ने विभिन्न पत्रों के माध्यम से कार्य पूरा करने का आग्रह किया परन्तु प्रभाव रहित रहा। उप-मुख्य अभियंता (E & M) डी॰ जी॰ सब-स्टेशन, जलगोरा द्वारा दिनांक 5.2.90 के पत्र द्वारा वादी को 15 दिनों के भीतर कार्य करने का अन्तिम अवसर दिया गया, परन्तु वादी ने कार्य करने की बजाय होने वाली देरी के कारण वर्धित लागत पर छोटे-मोटे सामानों को खरीदने के लिए तदर्थ भुगतान की मांग की, जो वास्तव में वादी की ओर से की गई गलती थी। जब प्रतिवादीगण ने वादी को संयुक्त माप के लिए 20.3.90 को उपस्थित होने के लिए कहा, तो वादी ने दिनांक 17.3.90 एवं 20.3.90 के पत्रों के माध्यम से प्रतिवादीगण से आग्रह किया कि वे एक अन्य अभिकरण, अर्थात्, मेसर्स दामोदर पावर इलेक्ट्रिकल्स, मैथन की सहायता से परीक्षण और कमीशनिंग के कार्य की व्यवस्था कर रहे हैं जो प्रतिवादीगण को बिल्कुल अमान्य था और महाप्रबंधक, अमलाबाद परियोजना ने इस आग्रह को ठुकरा दिया। प्रतिवादीगण ने कार्य के असंतोषजनक प्रगति पर अपनी नाराजगी दर्शाई और तद्नुसार 19.4.90 को महाप्रबंधक द्वारा एक समिति गठित की गई और उक्त निर्णय के अनुसार, वादी ने दिनांक 23.5.90 के पत्र द्वारा मापन-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए महाप्रबंधक, अमलाबाद परियोजना क्षेत्र द्वारा सूचित करने के लिए कहा गया, परन्तु वादी ने इससे बचना चाहा। तत्पश्चात्, वादी से 9.7.90 एवं 10.7.90 के संयुक्त परिचर्चा में शामिल होने के लिए कहा गया, जिसमें वादी ने 8.8.90 से कार्य प्रारम्भ करने का मौखिक आश्वासन दिया जो तथ्य दिनांक 31.7.90 के पत्र में सम्यक् रूप से उल्लिखित है जिसमें वादी को 8.8.90 से दिए गए आश्वासन के अनुसार, कार्य प्रारम्भ करने को कहा गया था और जिसकी उनके द्वारा प्रतिबद्धता दी गई थी अन्यथा विभाग वादी के जोखिम एवं खर्च पर अन्य अभिकरणों द्वारा कार्य को पूरा करा लेगा। इसके पश्चात भी, वादी को कार्य प्रारम्भ करने के लिए कई स्मरण-पत्र दिया गया था, परन्तु वे सदा ही झूठे अभिकथनों पर इससे बचते रहे। वादी कार्य की संतोषजनक प्रगति नहीं दे सका और कई अवसरों पर जानबूझकर कार्य को रोक दिया/ विलम्बित किया और कार्य को प्रारम्भ करने और पूरा करने के लिए पर्याप्त से अधिक अवसर दिए जाने की बाद भी अपनी संविदात्मक बाध्यता को पूरा कर नहीं सका। अन्ततः, वादी को दिनांक 7.12.90 की अन्तिम नोटिस का तामीला कराया गया, सब-स्टेशन कार्य को पुनः शुरू करने एवं पूरा करने से उनके आशय के बारे में 15.12.90 तक उनके जवाब की मांग करते हुए, अन्यथा दण्ड के अधिरोपण समेत वादी के खर्च एवं जोखिम पर अन्य अभिकरणों द्वारा कार्य को पूरा कर लिया जाएगा परन्तु इसपर भी वादी ने कार्य को पुनः शुरू नहीं किया और न ही कोई जवाब भेजे जो स्पष्टतः दर्शाता है कि वादी को कार्य पूरा करने में कोई रूचि ही नहीं था। अन्ततः, महाप्रबंधक, अमलाबाद परियोजना ने संविदा को समाप्त करने के लिए दिनांक 1.4.91 को पत्र की तामीला कराया गया। यह भी कहा गया है कि वादी पहले ही अपने बकाए का भुगतान प्राप्त कर चुका है और अब कार्य-आदेश के संबंध में याची को भुगतान करने के लिए कुछ शेष नहीं है और इस प्रकार वाद में प्रतिवादीगण के विरूद्ध याची का समूचा दावा अवांछित, आधारहीन और बिना किसी विधिक आधार के है और वादी किसी भी राशि का अनुतोष प्राप्त करने का कोई अधिकारी नहीं है जैसा कि वाद में दावा किया गया है।

7. विचारण एवं निर्णय के लिए अधीनस्थ न्यायालय ने निम्नांकित मुद्दों को विरचित किया:-

(1) क्या वाद समर्थनीय है ?

(2) क्या वाद विबन्ध अधित्यजन और उपमति के प्रावधान द्वारा वर्जित है?

(3) क्या वाद परिसीमा के प्रावधानों द्वारा वर्जित है ?

(4) क्या प्रतिवादीगण और उसके अधिकारियों की विभिन्न□ त्रुटियों के कारण कार्य आदेश सं० XI 187/14907-13 दिनांक 5.8.87 द्वारा प्रदत्त संविदा के कार्य को पूरा करने में वादी असफल रहे?

(5) क्या वादी ने उपरोक्त कार्य के 80% भाग को पूरा किया और यही कार्य प्रतिवादीगण के कहने पर रोका गया था?

(6) क्या प्रतिवादीगण ने अवैधानिक या मनमाने रूप से संविदा को समाप्त कर दिया?

(7) वादी किस अनुतोष का अधिकारी है?

8. मुद्दा सं॰ (4) एवं (5) का एक साथ निर्णय करते समय, विचारण न्यायालय पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की परिचर्चा करने के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वादी उनको प्रदत्त कार्य को पूरा करने में विफल रहे और वस्तुत:, वादी ने कार्य के 80% भाग को पूरा नहीं किया था जैसा कि इसके द्वारा दावा किया गया था। न्यायालय इस निष्कर्ष पर भी पहुँचा कि प्रतिवादीगण-प्रत्यर्थीगण ने अवैधानिक या मनमाने रूप से संविदा को समाप्त नहीं किया है। परिणामत:, वाद को खारिज कर दिया।

9. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री रोहित राय ने आक्षेपित निर्णय को विधि, तथ्यों एवं अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के विरूद्ध बताते हुए इसकी आलोचना की। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अधीनस्थ न्यायालय मुद्दा सं॰ (4) एवं (5) पर त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचा है और गलत रूप से वाद को खारिज कर दिया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अधीनस्थ न्यायालय ने पुनर्विलोकन समिति की समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श-3) पर भरोसा नहीं करके स्वयं को विधि से अपदेशित किया है जिसमें विभाग ने स्वीकार किया है कि वादी ने 80% कार्य को पूरा किया था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अधीनस्थ न्यायालय ने प्रदर्श 3/A पर भी भरोसा करके स्वयं को अपदेशित किया है जिसे वादी की ओर से प्रदर्श चिन्हित किया गया था, परंतु बाद में वादी के आग्रह पर प्रदर्श चिन्हित करने वाले आदेश को न्यायालय द्वारा वापस ले लिया गया था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अधीनस्थ न्यायालय ने वादी के मामले के तथ्यों और उनके समर्थन में प्रस्तुत साक्ष्य को सही तरीके से मूल्यांकन नहीं किया है और मुद्दा सं॰ (4) एवं (5) पर एक त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचा है।

10. जैसा कि ऊपर नोटिस किया गया है। वादी ने समीक्षा रिपोर्ट पर अत्यधिक भरोसा किया है, जिसकी एक कॉपी वादी द्वारा दाखिल की गई थी और प्रदर्श-3 चिन्हित की गई थी, यह सिद्ध करने के लिए कि कार्य आदेश के 80% भाग को पूरा कर लिया गया था। अधीनस्थ न्यायालय, एकमात्र तात्विक गवाह अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य का विश्लेषण करके, जिसने प्रति-परीक्षा में कहा था कि सभी कार्यों के मापन को मापन पुस्तिका में संयुक्त रूप से अनुमोदित किया गया था और मापन पुस्तिका में दर्शाए गए कार्य को केवल 30% कार्य दर्शाया गया है, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस गवाह ने स्वीकार किया था कि कार्य का निष्पादन 30% हुआ था। विचारण द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष के पैरा 12 को नीचे उत्कथित किया गया है:-

''वादी ने एक अधिवक्ता की नोटिस की कार्बन कॉपी को प्रदर्श 1 और पंजीकरण रसीद को प्रदर्श 2 के तौर पर प्रदर्शित किया है। प्रदर्श-1 के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि वादी ने 1.4.91 से वास्तविक भुगतान के तिथि तक 12% ब्याज के साथ (लगभग) 5 लाख रू बकाया के लिए दावा किया जो दावा की गई राशि वाद-पत्र की अनुसूची A के बाहर है और वाद-पत्र की अनुसूची A से इस वाद में

संतोषजनक रूप से वर्णन नहीं है क्योंकि वाद-पत्र एवं अनुसूची A के समर्थन में अतिरिक्त या विचलन कार्य के किसी साक्ष्य को प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं हो सका है। दिनांक 30.1.99 के आदेश के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि प्रदर्श 3 एवं प्रदर्श 3/a दस्तावेजों को स्वीकरण पर चिन्हित किया गया था जिनमें से प्रदर्श-3 समीक्षा रिपोर्ट है और प्रदर्श 3/a, जिसे दिनांक 5.2.99 के आदेश के माध्यम से विलोपित कर दिया गया है और जिसका दिनांक 25.11.99 के आदेश से अनुपालन किया गया है, पत्र संख्या BCCL/90AMBD/GM (प्रोजेक्ट)/PS/ सब-स्टेशन/984 दिनांक 24.12.1990 है। यद्यपि प्रदर्श 3/a को विलापित कर दिया गया है और साक्ष्य में उसकी गणना नहीं की जा सकती परन्तु अ० सा० 1 की पैरा 32 में प्रतिवादी द्वारा पत्र (प्रदर्श 3/a) के संबंध में प्रति-परीक्षा की गई है और अ० सा० 1 ने कहा है कि मैं नहीं जानता कि श्री पी० के० रॉय, महाप्रबंधक, अमलाबाद परियोजना ने एक पत्र लिखकर 24.12.1990 को टी० पी० बासु को सूचित किया था और पूर्वोक्त मामलों को स्पष्ट किया गया। यहाँ पर नोट किया गया है कि पैरा 32 के अनुरूप पूर्वोक्त मामला वादी द्वारा किए गए 30% कार्य के संबंध में है वादी के मामले के अनुसार 80% नहीं और अ० सा० 1 के पूर्वोक्त प्रति-परीक्षण के आलोक में प्रदर्श 3/a से यह प्रतीत होता है कि भवनों के असैन्य निर्माण को शामिल करते हुए D.V.C. छोर से पिट-टोप तक कुल विद्युतीय कार्य के 80% भाग (समीक्षा) रिपोर्ट प्रदर्श 3 के अनुसार) को पूरा कर लिया गया है जबकि सब-स्टेशन वाले भाग (विद्युतीय संस्थापनों के कार्य) को केवल 30% तक पूरा किया गया है। चूँकि वादी ने दिनांक 5.2.99 के आदेश से प्रदर्श-3/a को विलोपित कर दिया है और इस मामले में इसका कोई महत्व नहीं है परन्तु ऐसा विलोपन इंगित करता है कि वादी इस मामले में अनुतोष के साथ दागरहित होकर नहीं आया था। पैरा 3, 4, 6 एवं 9 में अ० सा० 1 के साक्ष्य के अनुसार कथन के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि वादी ने कार्यस्थल और नियंत्रण कक्ष को सौंपने के संबंध में BCCL को कई पत्र भेजे थे परन्तु वादी ने इस वाद में किसी पत्र को प्रदर्शित नहीं किया है और प्रतिवादी के प्रदर्श A से यह भी प्रकट है कि वादी का संविदा 1.4.91 के प्रभाव से समाप्त कर दिया गया था यद्यपि प्रदर्श 3 के आलोक में वादी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि प्रतिवादी ने वादी के कार्य को रोक दिया है और वादी ने 80% कार्य को पूरा कर दिया है परन्तु प्रतिवादीगण के समूचे प्रदर्शों से यह प्रतीत होता है कि वादी कार्य आदेश (प्रदर्श 4) द्वारा उन्हें प्रदत्त संविदा के कार्य के पूरा करने में जानबूझकर विफल रहा प्रत्यर्थीगण और उनके अधिकारियों की विभिन्न त्रुटियों के कारण नहीं और वादी ने कार्य के 80% भाग को पूरा नहीं किया है और इसे प्रतिवादी के कहने पर नहीं रोका गया था। इस प्रकार, इन मुद्दों को एतद् द्वारा वादी के विरूद्ध निर्णित किया जाता है।''

11. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अभिलिखित पूर्वोक्त निष्कर्ष के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि न्यायालय ने गलत रूप से अवधारित किया कि प्रदर्श 3/a का अवलोकन नहीं किया जा सकता क्योंकि इस दस्तावेज को वादी के कहने पर विलोपित कर दिया गया था। यह सुस्थापित है कि एक पक्ष द्वारा दाखिल दस्तावेज का अन्य पक्ष द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है, यद्यपि जिस पक्ष ने दस्तावेजों को दाखिल किया है वह इसपर भरोसा नहीं करता। न्यायालय प्रदर्श 3/a पर विचार करने में सक्षम है जो दर्शाता है कि वादी द्वारा केवल 30% कार्य को पूरा किया गया था।

12. लखन साव बनाम धरमू चौधरी [(1991)3 एस॰ सी॰ 331] के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने सम्परीक्षित किया:-

"5. निष्कर्ष मूलतः तथ्यों के निष्कर्ष हैं। तथापि, अगर, अपीलार्थीगण यह दिखाने से सफल होते हैं कि तथ्य के निष्कर्षों को अभिलिखित करने में, न्यायालय विधि की एक गलत परिकल्पना पर आगे बढ़ा है, तो निष्कर्षों की विशुद्धता को आवश्यक रूप से परीक्षित करना होगा। हमारे समक्ष जिसे एकमात्र बिन्दु जिस पर बल दिया गया है वह यह है कि अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय ने गलत रूप से इस आधार पर कार्यवाही की है कि विचारित प्रतिफल को पारित करने को सिद्ध करने का भार प्रतिवादी पर स्थानान्तरित हो गया था और यह कि साक्ष्य ने इस तथ्य को

सिद्ध नहीं किया था। यह बरकरार रखा गया कि भार स्थानांतरित नहीं हुआ था क्योंकि इस तथ्य को सिद्ध करने का भार पूर्णतया वादी पर था कि दस्तावेज अप्रभावी था और उसके अधीन कोई प्रतिफल पारित नहीं हुई। हमने पहले इंगित किया है कि अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा कारित त्रुटि को इंगित करते हुए उच्च न्यायालय ने पूर्वतर डिक्री को अपास्त कर दिया था। तत्पश्चात्, अपील के निस्तारण में अपर जिला न्यायाधीश द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा किए गए सम्परीक्षण को ध्यान में रखा गया है। विद्वान न्यायाधीश ने वादी पर यह सिद्ध करने का भार के प्रश्न पर विचार किया है कि कोई विचारण नहीं हुआ था। इस प्रश्न का मूल्यांकन करने में कि वादी नकारात्मक तथ्य को सिद्ध करने में सफल हुआ था या नहीं, न्यायालय के पास अभिलेख पर मौजूद सभी साक्ष्य पर विचार करने का विकल्प खुला था जब दोनों पक्ष ने साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया हो और साक्ष्य का कोई भाग छोड़ा नहीं गया था। समूचे साक्ष्य के विचारण पर, न्यायालय ने निष्कर्ष दिया है कि प्रतिफल पारित किए गए थे। इसलिए, इस निष्कर्ष को दूषित नहीं कहा जा सकता।

6. प्रतिवादी के लिए किसी साक्ष्य को पेश न करने का विकल्प सदा ही खुला रहता है जहाँ भार वादी पर हो परन्तु साक्ष्य का मूल्यांकन करने के उपरांत, वह न्यायालय से इसका अवलोकन न करने और इसपर कार्रवाई न करने के लिए नहीं कह सकता। मामले के अन्त में जब दोनों पक्ष अपने साक्ष्य प्रस्तुत कर चुके हैं सिद्ध करने के भार पर प्रश्न किसी अत्यधिक महत्व का नहीं होता है और न्यायालय सभी सामग्रियों पर विचार करके एक निर्णय पर पहुँचा है।''

13. चाहे जो भी स्थिति हो, पूर्वोल्लिखित पैरा में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अभिलिखित अन्य निष्कर्ष किसी अवैधानिकता या अनुचितता से ग्रस्त नहीं है। वादी-अपीलार्थी विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करके यह सिद्ध करने से विफल रहा कि संविदा को याचीगण द्वारा गलत तरीके से समाप्त कर दिया गया था। अत:, अधीनस्थ न्यायालय ने उचित रूप से वाद को खारिज कर दिया है यह अवधारित करते हुए कि वादी अपीलार्थी अपने मामले को सिद्ध करने मे विफल रहे।

14. पूर्वोक्त कारणों से, मैं इस अपील में कोई बल नहीं पाता हूँ, जो तद्नुसार खारिज की जाती है।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

मेसर्स सेण्ट्रल कोलफिल्डस लिमिटेड

बनाम

बिहार राज्य एवं एक अन्य

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2000 वर्ष 2000(R). 19 मई, 2009 को विनिश्चित।

कारखाना अधिनियम, 1948—धारा 2(K)(i)(ii) सह-पठित धारा 9—जल उपचार संयंत्र–एक खनन क्षेत्र में शुद्ध पानी उपलब्ध कराने में शामिल कोई विनिर्माण प्रक्रिया एक कारखाना नहीं है, इस प्रकार, कारखाना अधिनियम के प्रावधान एक जल उपचार संयंत्र पर लागू नहीं होते हैं। (पैरा 9 से 12)

निर्णयज विधि.–2006(6) SCC 340; 1997(1) SCC 177—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Ananda Sen, Kaushal Agrawal, For the Petitioner; Mr. J.C. to G.A., For the Respondents.

निर्णय

प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा निर्गत दिनांक 23.5.1998, 7.4.1999 और 19.4.1999 के पत्रों को निरस्त करते हुए एक यथोचित रिट, आदेश या निर्देश हेतु वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गई है जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने याची के पतरातू वाटर वर्क्स स्थित जल उपचार संयंत्र

को कारखाना अधिनियम के अधीन याची को पंजीकृत करने का निर्देश दिया है क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 2 के अनुसार उक्त जल उपचार संयंत्र कारखाना अधिनियम की परिभाषा के भीतर आता है। एक यथोचित रिट, आदेश या निर्देश को निर्गत करने के लिए एक अतिरिक्त प्रार्थना इस घोषणा के लिए है कि जल उपचार संयंत्र कारखाना अधिनियम के अर्थ के भीतर एक कारखाना नहीं है।

2. तथ्य संक्षेप में निम्नांकित रूप से उपवर्णित है:-

याची के जल उपचार संयंत्र का निरीक्षण सम्बद्ध प्रत्यर्थी द्वारा किया गया था एवं कारखाना अधिनियम के प्रावधान के अधीन जल उपचार संयंत्र को पंजीकृत करने के लिए 23.5.1998 को नोटिस निर्गत किया गया था। याची ने दिनांक 27.2.1999 को अपने पत्र के माध्यम से जवाब दिया अन्य के साथ-साथ उसमें यह कहते हुए कि कारखाना अधिनियम याची के जल उपचार संयंत्र पर लागू नहीं होता क्योंकि याची के जल उपचार संयंत्र कारखाना अधिनियम की परिभाषा के भीतर नहीं आता। फिर, 7.4.1999 को एक नोटिस निर्गत की गई थी यह कहते हुए कि संयंत्र में विनिर्माण कार्य किया जा रहा था और इसलिए इसे अनिवार्यत: कारखाना अधिनियम के अधीन पंजीकृत किया जाना था, इसके उपरांत दिनांक 19.4.1999 को एक और पत्र आया। याची ने बाध्य होकर पूर्वोक्त नोटिसों को चुनौती देते हुए इस रिट याचिका को दाखिल किया।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा रखा गया मुख्य तर्क यह है कि वहाँ कोई विनिर्माण प्रक्रिया नहीं थी और स्थानीय क्षेत्र के नागरिको को ताजे एवं शुद्व जल की आपूर्त्ति करने के लिए एक कल्याणकारी उपाय के तौर पर संयंत्र को स्थापित किया गया था। यह भी निवेदन किया गया है कि इसे एक कारखाना नहीं कहा जा सकता विशेषकर इसलिए भी कि चूँकि यह खनन क्षेत्र के भीतर अवस्थित था।

4. प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में निवेदन किया है कि कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 9 के अधीन कारखाना निरीक्षक स्थान का निरीक्षण करने और इसकी जाँच करने में सशक्त है कि संयंत्र इस्तेमाल एक कारखाना के तौर पर किया जा रहा है या नहीं अगर उसके पास ऐसा विश्वास करने का कारण है। यह भी निवेदन किया गया है कि कारखाना अधिनियम की धारा 2(k)(i)(ii) विनिर्माण प्रक्रिया को परिभाषित करता है और इन्हीं पृष्ठभूमियों में बिहार कारखाना नियमावली के साथ पठित कारखाना अधिनियम के अधीन पंजीकरण के लिए नोटिसे निर्गत की गई थी। याची को नक्शा, संयत्र कार्य-स्थल, आवेदन इत्यादि भी पेश करने का आग्रह किया गया था।

5. मैंने प्रतिद्वंदी निवेदनों एवं अभिवाको पर विचार किया है धारा 2(k) एवं (m) ''विनिर्माण प्रक्रिया'' एवं ''कारखाना'' को परिभाषित करती है जो नीचे उत्कथित की गई है:-

*(k) ''**विनिर्माण प्रक्रिया का अर्थ किसी ऐसी प्रक्रिया से है**.-(i) किसी वस्तु या प्रदाय को इसके इस्तेमाल, विक्रय, परिवहन, परिदान या निस्तारण को दृष्टिगत रखते हुए इसे बनाना, परिवर्तित करना, मरम्मती करना, अलंकरण करना, अन्तिम रूप देना, पैकिंग करना, चिकनाई करना, धोबन करना, सफाई करना, तोड़ना, भंजन करना या अन्यथा रूप से उपचार करना या अनुकुल बनाना; या*

(ii) तेल, पानी, मल या किसी अन्य पदार्थ को बाहर खींचना; या

(iii) शक्ति का उत्पादन, स्थानान्तरण या प्रेषण करना; या

(iv) मुद्रण के लिए टाईप तैयार करना, अक्षर मुद्राणालय द्वारा मुद्रण करना, गिला मुद्रण, फोटोग्रेवयूर या इसी प्रकार की अन्य प्रक्रिया या जिल्दसाजी करना [Ira-6] [Ira-7 or Ira-7]

(v) पोतों या जहाजों का निर्माण, पुनर्निमाण मरम्मत, पुनः फिट करना, फिनिशिंग या भंजीकरण करना (कारखाना (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा 26.10.1976 के प्रभाव से अंत:स्थापित।)

(vii) शीतागार में किसी सामान को परिरक्षण या भंडारण करना;

*(m) ''**कारखाना'' का अर्थ किसी परिसर से है जिसमें उसका आस-पास का क्षेत्र शामिल है**-(i) जहाँ दस या इससे अधिक कर्मकार कार्य कर रहे हों, या*

पिछले बारह महीने से किसी दिन कार्य कर रहे थे, और जिसके किसी भाग में शक्ति के सहायता से विनिर्माण प्रक्रिया चलती है या सामान्यतः ऐसा होता है; या

(ii) जहाँ पर बीस या इससे अधिक कर्मकार कार्य कर रहे हों, या पिछले बारह महीनो से किसी दिन कार्य कर रहे थे एवं जिसके किसी भाग में शक्ति की सहायता के बिना विनिर्माण प्रक्रिया चलती है, या सामान्यतः ऐसा होता है, परन्तु खनन अधिनियम, 1952 (35 वर्ष 1952) के परिचालन के अध्यधीन एक संघ या सशस्त्र सेनाओं से सम्बन्धित एक चल ईकाई, रेलवे का एक चलायमान शेड या एक होटल, रेस्तरॉ या भोजन स्थान को सम्मिलित नहीं करती है;

स्पष्टीकरण I.—*इस खण्ड के प्रयोजनों के लिए कर्मकारों की संख्या की गणना करने के लिए एक दिन में विभिन्न□समूहों एवं relay के सभी कर्मकारों की गणना की जाएगी।*

स्पष्टीकरण II.—*इस खण्ड के प्रयोजनों के लिए, मात्र यह तथ्य कि किसी परिसर या इसके किसी भाग में एक इलेक्ट्रॉनिक डाटा प्रसंस्करण ईकाई या एक कम्प्यूटर ईकाई संस्थापित की जानी है, इसे एक कारखाना बनाने के लिए इसका अर्थान्वयण नहीं किया जाता अगर ऐसे परिसरों में इसके किसी भाग में कोई विनिर्माण प्रक्रिया नहीं चलाई जा रही हो।*

6. तथापि, खनन अधिनियम, 1952 की धारा (j) खानों को परिभाषित करती है और कोयला राष्ट्रीयकरण अधिनियम की धारा 2(h) भी खानों को परिभाषित करती है जो समावेशी परिभाषा है। एक व्यापक परिभाषा को इसी संदर्भ में पठित करना होगा कि एक खान के संबंध में प्रयुक्त किसी भी वक्त और प्रत्येक वस्तु धारा 2(h) के अधीन खान की परिभाषा के अधीन सम्मिलित की जाती है और यह सभी अवभारों से मुक्त एक निहित सम्पत्ति होती है। कोयला राष्ट्रीयकरण अधिनियम की धारा 3 के प्रभाव से अनुसूची में विनिर्दिष्ट कोयला खानों के संबंध में अधिकार, अभिधान एवं हित को तय तिथि, यानी 1.5.1973 से अंतरित करना है और पूर्णतः सभी अवभारों से मुक्त केन्द्र सरकार में निहित कर देता है। कोयला राष्ट्रीयकरण अधिनियम की धारा 2(i) में स्वामी को परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ और जिसमें शामिल एक ऐसा व्यक्ति से जो एक खान के संबंध में प्रयुक्त खानों का तात्कालिक मालिक भी पट्टादारों, अधिभोगी है।

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास **1997(1) एस० सी० सी० पृष्ठ 177 (बी०सी०सी०एल० बनाम मदन लाल अग्रवाल)** में रिपोर्ट किए गए मामले में इसी प्रकार के एक मुद्दे पर विचार करने का अवसर आया था जिसमें तीन माननीय न्यायाधीशों की एक पीठ ने मुद्दे पर परस्पर विरोध विधि एवं निर्णयों को अंतिम रूप प्रदान कर दिया। पैरा 26 पर इसे निम्नांकित रूप से अवधारित किया:–

"26. धारा 3 की व्याख्या करने के प्रयोजन के लिए दो मुख्य शब्द ''खान'' और ''स्वामी'' हैं। अगर हम धारा 2(h) के अधीन एक खान की परिभाषा पर दृष्टिपात करते हैं, तो परिभाषा निम्नांकित को आच्छादित करने के लिए यथा रचित है:

(1) ''खान से संबंधित'' सभी सम्पत्तियाँ चाहे इन सम्पत्तियों की जो भी प्रकृति हो और ''खान के स्वामी से संबंधित'' विनिर्दिष्ट सम्पत्तियाँ भी। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, धार 2(h)(xii) एक व्यापक खण्ड है जो एक खान के मालिक से संबंधित कहीं पर भी अवस्थित सभी अचल एवं चल सम्पत्तियाँ और एक खान के परिसर या इसके बाहर स्थित इसके स्वामित्व वाली सभी चालू परिसम्पत्तियाँ आच्छादित है। धारा 2(h)(viii) खान के मालिक के संबंधित मे सभी कोयले को आच्छादित करती है। धारा 2(h)(x) एक खान के मालिकों से संबंधित सभी जमीनों, भवनों एवं उपस्करों को आच्छादित करती है और खान से या इसके सटे या इसकी सतह पर अवस्थित ऐसी सभी वस्तुओं को आच्छादित करती है, जहाँ कोयले की धोबन या कोक का विनिर्माण किया जाता है।

(2) इसके अतिरिक्त, खान, की परिभाषा उन सभी परिसम्पतियों को आच्छादित करती है जो खान को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक होती है इसके निरपेक्ष रहते हुए कि ये परिसम्पतियाँ 'खान' की है अपना नहीं। इस प्रकार, धारा 2(h)(vi) एक खान के निकटस्थ और खान के प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त सभी जमीनें, भवनों, मशीनरी एवं उपस्करों, उपकरणों, स्टोर्स, वाहनों, रेलवे, ट्राम-मार्ग इत्यादि को आच्छादित करती है। इसलिए, ये सभी परिसम्पत्तियों अगर वे एक खान के निकटस्थ है और खान को सुचारू कार्यकलाप के लिए आवश्यक है, अर्जित कर ली जाएगी इसके निरपेक्ष की ये खान के मालिक की है या नहीं। इसी प्रकार धारा 2(h)(ix) के अधीन खान था कई खानों को चलाने के प्रयोजनों के लिए एक ही प्रबंध के अधीन मुख्यतः विद्युत आपूर्त्ति करने के लिए एक खान से स्थित सभी विद्युत-गृहों को अधिग्रहित किया जाएगा इसके निरपेक्ष की विद्युत गृह खान या खान के मालिक के स्वामित्व में था या नहीं। धारा 2(h) का उप-खण्ड (xi) प्रावधान करता है कि [अन्य सभी उप-खण्ड (x) में दर्ज को छोड़कर] भवनों एवं जमीन जहाँ कहीं भी अवस्थित हो, अगर अनन्य रूप से प्रबंध, विक्रय या सम्पर्क कार्यालयों की अवस्थिति के लिए खान के पदाधिकारियों एवं कर्मचारीगण के निवास के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं, अर्जित किए जाएंगी। उप-खण्ड (x) के विपरीत उप-खण्ड (xi) में ''खान के मालिकों से सम्बन्धित शब्द निहित नहीं है। इसलिए, खान की परिभाषा खण्ड कम-से-कम जो भिन्न प्रकार की सम्पत्ति जो आच्छादित करता है: (i) वैसी सम्पत्तियाँ जो खान की हैं, और (ii) वे सम्पत्तियाँ जो खान को सुचारू कार्य-कलाप के लिए खान द्वारा इस्तेमाल की जाती है। सम्पत्तियों की पहली कोटि वैसी सम्पत्तियां होगी जो खान कम्पनी के स्वामित्व वाली है। सम्पत्तियों की दूसरी कोटि के लिए आवश्यक रूप से खनन कम्पनी के स्वामित्व का होना नहीं है। ये ऐसी सम्पत्तियां भी हो सकती है जो खनन कम्पनी द्वारा पट्टे पर दी गई हो या खनन कम्पनी के कब्जे में हो और इसके द्वारा प्रयुक्त की जाती है।''

8. फिर इसी प्रकार का एक मुद्दा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक सहायक कोयला कम्पनी द्वारा दाखिल मामला **(साउथ ईस्टर्न कोलफील्डस लिमिटेड बनाम आयुक्त सीमा शुल्क एवं केन्द्रीय उत्पाद, मध्य प्रदेश) जो 2006 (6) एस॰ सी॰ सी॰ 340** में रिपोर्ट किया गया था। इस मामले में संकर्म की परिभाषा से संबंधित मुद्दा खान अधिनियम की धारा 2(i)(j)(8) के अधीन परिभाषित किया जाएगा और इसे नीचे उत्कथित किया गया है:-

खान अधिनियम की धारा 2(1)(j)(viii) कथित करती है कि खान सम्मिलित करती है:-

"2 (1)(j)(viii) एक खान के परिसर और एक ही प्रबंध के अधीन अवस्थित सभी कार्यशाला एवं भण्डार जो एक ही प्रबंध के अधीन उस खान की या कई खानों से संबंधित प्रयोजनों के लिए मुख्यतः इस्तेमाल किए जाते है:''

एक खान के संबंध में प्रक्रिया शब्द पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विस्तार से विचार किया गया था और निर्णय के पैरा 14 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नांकित रूप से अवधारित किया था:-

"14. हमारे विचार से कारखाना अधिनियम के अधीन एक खान के पंजीकरण को केन्द्रीय उत्पाद अधिनियम के अधीन छूट के लिए पट्टाधारी के दावे से कोई लेना देना नहीं है। वस्तुतः, कारखाना अधिनियम का निर्दिष्टीकरण पूर्णतया असंगत था और हम यह समझने में असमर्थ हैं कि वर्तमान मामले में कारखाना अधिनियम का क्या लेना-देना है। वर्तमान मामला केन्द्रीय उत्पाद अधिनियम द्वारा आच्छादित है और इसे कारखाना अधिनियम से कोई लेना-देना नहीं है। इस प्रकार, अधिकरण द्वारा, सम्मान देते हुए इसके लिए अपनाया गया मत स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण है।''

तथापि पैरा 23 एवं 24 में हमने निम्नांकित रूप से अवधारित किया:-

"23. तथापि, जहाँ एक शब्द या अभिव्यक्ति का अर्थ स्पष्ट नहीं है, स्पष्टतः व्याख्या के शाब्दिक नियम को लागू नहीं किया जा सकता और इसलिए हमें व्याख्या के अन्य नियमों का आश्रय लेना पड़ता है, जैसा कि हेडोन का रिष्टि नियम, प्रयोजनमूलक नियम, इत्यादि। हमारी राय में वर्तमान मामले में प्रयोजन मूलक नियम को लागू किया जाना चाहिए। इस नियम के अधीन हमें उस प्रयोजन को देखना है जिसके लिए प्रावधान बनाया गया था इसपर इस दृष्टिकोण से देखते हुए, हमारी राय है कि ''परिसर'' शब्द को व्यापक अर्थ देना होगा और संकीर्ण अर्थ नहीं।

24. अन्य शब्दों में, हमें छूट संबंधी अधिसूचना में ''परिसर'' शब्द की व्याख्या से अर्थ आस-पास के क्षेत्र या स्थान निकालना होगा जैसा कि कोलिन्स के अंग्रेजी शब्दकोष में परिभाषित है या एक स्थान के आस-पास या के परिवेश निकालना होगा जैसा कि नए लघुतर ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोष में परिभाषित है। ऐसा इसलिए है क्योंकि खनन उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए खान में उत्पादित वस्तुओं को उत्पाद-शुल्क से छूट प्रदान करना छूट संबंधी अधिसूचना का उद्देश्य है। एक कार्यशाला जो एक खान के परिवेश में एक क्षेत्र है और केवल खान से संबंधित प्रयोजन के लिए विद्यमान है और एक ही प्रबंधन के अधीन हो। स्पष्टतः प्रत्यक्ष रूप से खनन कार्य को सेवा प्रदान कर रही है। इसलिए, हमे अधिसूचना की व्याख्या ऐसे करना होगा जिससे कि छूट प्रदान करने के प्रयोजन के लिए एक खान की परिभाषा के भीतर ऐसी एक कार्यशाला को शामिल किया जा सकता क्योंकि यह खनन उद्योग को बढ़ावा देगी।''

9. कारखाना अधिनियम की धारा 2(k) के अधीन यथा परिभाषित विनिर्माण प्रक्रिया की परिभाषा के अधीन भी, जल उपचार संयंत्र को एक विनिर्माण प्रक्रिया नहीं बताया जा सकता और यह कारखाना की परिभाषा के भीतर नहीं आ सकता जैसा कि कारखाना अधिनियम की धारा 2(m) के अधीन परिभाषित किया गया है। इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है अपितु यह प्रत्यर्थी द्वारा स्वीकार किया गया है कि जल उपचार संयंत्र खनन क्षेत्र में है और इसका प्रयोग एक खान के संबंध में किया जा रहा है। इस तथ्य के बारे में भी काई विवाद नहीं है कि खनन क्षेत्र जो इसके निकटस्थ क्षेत्र की स्थानीय नागरिकों एवं खान के कर्मचारीगण किसी को शुद्ध पानी की आपूर्त्ति करने के लिए जब उपचार संयंत्र का इसतेमाल किया जाता है और यह केवल कल्याण के प्रयोजन के लिए है और वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए नहीं और इस प्रकार, यह न तो कोई वस्तु आच्छादित करता है या कोई वस्तु विनिर्माण करता है कि कारखाना अधिनियम की धारा 2(k) के अधीन आच्छादित किया जाए।

10. यहाँ तक कि पानी भी भूमि के नीचे से उत्पादित या निकाला नहीं जाता है बल्कि इसके स्थान पर PTPS द्वारा आपूर्त्ति किए गए पानी को शुद्ध किया जाता है और खनन क्षेत्र जनता और इसके कर्मचारीगण को इसकी आपूर्त्ति की जाती है और किसी भी प्रकार से इसे एक विनिर्दिष्ट प्रक्रिया नहीं बताया जा सकता या कारखाना की परिभाषा के भीतर शामिल नहीं किया जा सकता। कारखाना अधिनियम की धारा 2(k)(i) के अधीन एवं धारा 2(m)(i) एवं (ii) के अधीन प्रावधान बिल्कुल ही प्रयोज्य नहीं है बल्कि यह खान अधिनियम, 1952 की धारा 2(j) के अधीन साथ ही साथ कोयला राष्ट्रीयकरण अधिनियम की धारा 2(h) के अधीन भी समावेशी परिभाषा के अधीन आच्छादित है क्योंकि जल उपचार संयंत्र के स्याल-D खान में इसके अनुसंगी प्रयोजनों के लिए संस्थापित किया गया है और इस प्रकार यह खान अधिनियम की धारा 2(j) की परिभाषा के भीतर आता है। जल उपचार संयंत्र की कोई विनिर्माण प्रक्रिया शासित नहीं होता है क्योंकि इसका केवल शुद्धीकरण प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल किया जाता है और इस तथ्य को लेकर कोई विवाद नहीं है और संयंत्र एक खनन क्षेत्र में अवस्थित है और इस प्रकार कारखाना अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होने और नोटिस का निर्गत करना अधिकारिता एवं प्राधिकार की एक त्रुटि है।

11. एक प्रक्रिया तब विनिर्माण प्रक्रिया होती है जब यह समस्त संघटको से एक पूर्ण रूपान्तरण को सामने लाती है जिसमें कि एक पूर्णत: भिन्न वाणिज्यिक वस्तु या सामान का उत्पादन होता। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार अवधारित किया है कि एक क्रिया के तौर पर प्रयुक्त शब्द 'विनिर्माण' का अर्थ 'एक नए पदार्थ को सामने लाने से लगाया जाता है' और इसका अर्थ एक पदार्थ में केवल कोई परिवर्तन नहीं होता है, चाहे परिवर्तन या परिणाम कितना ही छोटा क्यों न हो। ''विनिर्माण में लाए गए परिवर्तन हो सकते है, परन्तु प्रत्येक परिवर्तन विनिर्माण नहीं है, और फिर भी एक वस्तु का प्रत्येक परिवर्तन उच्चतर श्रम एवं manipulation है। परन्तु कुछ और का होना आवश्यक है और अनिवार्यत: एक स्थानान्तरण होना है, एक सुस्पष्ट नाम, लक्षण या इस्तेमाल धारण करने वाले एक नए और भिन्न सामान को सामने लाना अनिवार्य है।''

इस प्रकार, वर्तमान मामले में एक क्षेत्र में शुद्ध जल उपलब्ध कराने में कोई विनिर्माण प्रक्रिया अन्तर्ग्रस्त नहीं है जिसमें कि यह कारखाना अधिनियम के प्रावधानों के भीतर आता है।

12. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और कारखाना अधिनियम के अधीन जल उपचार संयंत्र को पंजीकृत करने के लिए दिनांक 23.5.98, 7.4.1999 एवं 19.4.1999 की आक्षेपित नोटिसें एतद् द्वारा अपास्त की जाती है। क्योंकि ये अधिकारिता की त्रुटि एवं प्राधिकार की कमी से ग्रस्त है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी एवं प्रशांत कुमार, न्यायमूर्तिगण

आजाद अंसारी एवं अन्य (144 में)

इन्द्र प्रसाद साह एवं अन्य (80 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य (दोनों में)

दॉ॰ अपील॰ (डी॰ बी॰) सं॰ 144, 80 वर्ष 2002. 22 मई, 2009 को विनिश्चित।

श्री एन॰ मिश्र, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा सत्र विचारण सं॰ 56 वर्ष 1998/59 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 18.2.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 302/149—हत्या–अभियोजन घटना की उत्पत्ति प्रमाणित करने में असफल रहा है–साक्ष्य स्वतंत्र स्त्रोत द्वारा सम्पोषित नहीं है एवं अभियोजन अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध लगे आरोपों को सभी युक्तिसंगत संदेह से परे प्रमाणित करने में असफल हुआ है–अभिनिर्धारित, अपीलार्थीगण संदेह का लाभ देकर आरोपों से मुक्त किए जाने के हकदार हैं। (पैरा 15 एवं 17 से 19)

अधिवक्तागण.–M/s Ranjan Kumar Singh (in 144), Mr. J.P. Jha, Mr. S.P. Jha (in 80), For the Appellants; Mr. Swapan Majhi (in 144), Mr. A.B. Mahato (in 80), For the State.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–इन अपीलों में अर्थात् आजाद अंसारी, रज्जाक अंसारी एवं तमीजुद्दीन अंसारी द्वारा दाखिल Cr. A (DB) No. 144 वर्ष 2002 एवं इन्द्र प्रसाद साह, जालो मियां, मुसु मियाँ, बोथा मियाँ एवं समसुद्दीन मियाँ द्वारा दाखिल Cr. A. (DB) सं॰ 80 वर्ष 2002 में, अपीलार्थियों ने S.T. No. 56 वर्ष 1998/59 वर्ष 2001 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 18.2.2002 के दोषसिद्धि के आदेश एवं दण्डादेश को चुनौती दी है जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन उनलोगों को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/149 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है एवं आजीवन कारावास से दंडित किया गया है। उनलोगों में से प्रत्येक को 10,000/- रु॰ के जुर्माने का भुगतान करने का भी आदेश दिया गया था एवं जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में पाँच वर्षों के कठोर कारावास से दण्डित किया जाना है।

2. चूँकि उपरोक्त दोनों अपीलें विद्वान अवर न्यायालय के सम्मिलित निर्णय से उद्‌भूत होती है, इसलिए दोनों अपीलों को एक साथ सुना गया है एवं इस सम्मिलित निर्णय द्वारा निस्तारित किया जा रहा है।

3. गोल निशा बीबी के फर्दबयान के अनुसार अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि 24.7.1998 को उसके पति सोबराती मियां अपने बेटे मनीर अंसारी एवं एक हरवाहे के साथ हीरा बहियार खेत जोतने गए। उस समय सूचनादाता भी उस स्थान पर उपस्थित था। उसके पति का बड़ा भाई अर्थात् आशिफ मियाँ, उसकी पत्नी एवं बेटी, अर्थात क्रमशः मरियम बीबी एवं असीरन खातून वहीं पर सूचनादाता की भूमि से सटे स्थित अपनी भूमि पर मौजूद थे। यह कहा गया है कि जब उसका पति उक्त भूमि पर हरवाहे के माध्यम से हल चलवा रहा था, तब लगभग 7 बजे सुबह में तीन महिला अभियुक्तों अर्थात् आजाद अंसारी की पत्नी एवं सास तथा अपीलार्थी जालो मियाँ की पत्नी के साथ भिन्न-भिन्न हथियारों से लैस होकर घटनास्थल पर आये। अपीलार्थी समसुद्दीन मियाँ ने भूमि विवाद समाप्त करने के क्रम में सूचनादाता के पति की हत्या करने के लिए आजाद अंसारी पर प्रहार किया जिसपर सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने सूचनादाता के पति को घेरने की कार्यवाही की, लेकिन वह बच निकला एवं दक्षिणी डुमरी टोला की ओर भाग गया। यह कहा गया है कि इस बीच, अपीलार्थी आजाद अंसारी ने हरवाहे पर अपनी पिस्तौल के कुंदे से प्रहार किया, जिसके कारण हरवाहे का सिर घायल हो गया। तत्पश्चात् सम्सुद्दीन द्वारा दोबारा प्रेरित किए जाने पर, सभी अभियुक्त सोबराती मियाँ (मृतक) का पीछा करने के लिए दौड़े। मृतक, उसका बेटा, बेटी एवं उसका साला आशिफ अंसारी, उसकी पत्नी मरियम बीबी एवं पुत्री असीरन खातून ने अभियुक्त व्यक्तियों का पीछा किया। यह अभिकथित किया गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके पति को डुमरी टोला के निकट घेर लिया। आजाद अंसारी एवं रज्जाक अंसारी ने उसपर क्रमशः तलवार एवं मस्कट (बंदूक) के कुंदे से प्रहार किया। अन्य अभियुक्त व्यक्तियों ने भी उसपर लाठी एवं भाला से बारम्बार प्रहार किया। जब उसका पति भूमि पर गिर पड़ा, तो सूचनादाता एवं उसके रिश्तेदारों ने रज्जाक अंसारी एवं आजाद अंसारी से अपने पति को बख्श देने की प्रार्थना की परन्तु रज्जाक अंसारी एवं आजाद अंसारी ने सूचनादाता एवं उसके रिश्तेदारों को दूर जाने या अन्यथा परिणाम भुगतने को कहा। तब आजाद अंसारी की पत्नी एवं सास एवं जालो मियाँ की पत्नी ने उसके घायल पति को उसका हाथ एवं पैर पकड़कर टाँड़ तक घसीटा एवं तदुपरांत आजाद अंसारी एवं रज्जाक अंसारी ने उसके पति को सामर पोखर के पश्चिमी किनारे तक घसीटा एवं सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने वहाँ पर भी उसपर निर्दयता से प्रहार किया। जब सूचनादाता एवं उसके रिश्तेदारों ने शोर मचाया एवं कुछ गाँववाले दौड़े, तो अभियुक्त व्यक्ति भाग गए। तदुपरांत, सूचनादाता एवं उसके रिश्तेदार सोबराती (मृतक) के निकट गए। उनलोगों ने उसके शरीर के विभिन्न भागों पर उपहतियाँ पायी। जब उसका पति जेल में था, तो आजादी अंसारी एवं रज्जाक अंसारी ने कपट कारित करके उसके पति की 4 कट्ठा भूमि के सम्बन्ध में एक अंतरण विलेख निष्पादित करवा लिया था सूचनादाता का पति आजाद अंसारी एवं रज्जाक अंसारी के पक्ष में निष्पादित उक्त विलेख को स्वीकार नहीं कर रहा था एवं उक्त भूमि की जुताई करा रहा था। घटना का एवं सोबराती की हत्या करने का यही कारण था।

4. उपरोक्त फर्दबयान के आधार पर, पुलिस ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 147, 148, 149, 323, 302 के अधीन गोड्डा (T) थाना केस सं॰ 218 वर्ष 1998 दिनांक 24.7.1998 को संस्थित किया। अन्वेषण पूरा होने पर पुलिस ने अपीलार्थी अजाद अंसारी, रज्जाक अंसारी, तमीजुद्दीन अंसारी, जालो मियाँ, नूर निशा बीबी एवं कोइली बीबी के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 147, 148, 149, 323, 302 के अधीन आरोप-पत्र पेश किया। संज्ञान के उपरांत, मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था, क्योंकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है। आरम्भ में, दिनांक 3.12.1999 के आदेश के माध्यम से आरोपों को उपरोक्त सात आरोप पत्रित

अभियुक्तों के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/149 एवं 323 के अधीन विरचित किया गया था। उक्त आरोपों को अभियुक्त व्यक्तियों को पढ़कर सुनाया एवं स्पष्टीकृत किया गया था जिसका दोषी न होने का अभिवाक् उनलोगों ने किया एवं विचारित किए जाने का दावा किया। अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में साक्षियों की परीक्षा की। न्यायालय में, साक्षियों ने समसुद्दीन मियाँ, इन्द्र प्रसाद साह, बोठा मियाँ एवं मुसु मियाँ का नाम लिया, इसलिए विद्वान अवर न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अंतर्विष्ट प्रावधानों के अनुसार विचारण का सामना करने के लिए सम्मन किया। तब, यह प्रतीत होता है कि उपरोक्त चारों अपीलार्थियों की उपस्थिति के उपरांत, विद्वान अवर न्यायालय ने दिनांक 1.2.2001 के आदेश के माध्यम से उनलोगों के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302/149 एवं 323 के अधीन आरोप विरचित किए एवं इसे उपरोक्त अभियुक्त व्यक्तियों को स्पष्ट किया जिसका दोषी नहीं होने का अभिवाक् उनलोगों ने किया एवं विचारित किए जाने का दावा किया। अग्रेतर, यह प्रतीत होता है कि तदुपरांत उपरोक्त अभियुक्त व्यक्तियों के आग्रह पर अ॰ सा॰ 9, अ॰ सा॰ 11, अ॰ सा॰ 12, अ॰ सा॰ 13 एवं अ॰ सा॰ 14 को प्रति-परीक्षा के लिए रिकॉल किया गया था। यह प्रतीत होता है कि तदुपरांत डॉक्टर, अ॰ सा॰ 15 एवं अन्वेषण अधिकारी, अ॰ सा॰ 16 की परीक्षा की गयी है। तदुपरांत, अपीलार्थीगण सहित अभियुक्त व्यक्तियों के कथनों को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभिलिखित किया गया था जिसमें उनका बचाव पूर्णरूप से इनकार एवं मिथ्या आलिप्तिकरण का था। विद्वान अवर न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य पर विचार करके अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/149 के अधीन दोषसिद्ध किया एवं आजीवन कारावास भुगतने एवं प्रत्येक को 10,000/- रु॰ के जुर्माने का भुगतान करने से दण्डित किया एवं जुर्माने के भुगतान के व्यतिक्रम में उनलोगों को 5 वर्षों का कठोर कारावास भुगतने के लिए दण्डित किया गया है। उक्त निर्णय द्वारा, विद्वान अवर न्यायालय ने महिला अभियुक्तों को अर्थात् खातून बीबी, नूर बीबी एवं कोइली बीबी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/149 के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्ति दी, परन्तु उनलोगों को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था एवं शांति तथा सदाचरण बनाए रखने के लिए एक वर्ष की अवधि हेतु 2000/- रु॰ का जमानत बंधपत्र निष्पादित करने का निर्देश दिया गया था।

5. विद्वान अवर न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में अभियोजन ने अ॰ सा॰ 9, 11, 12, 13 एवं 14 के अभिसाक्ष्यों के आधार पर अपना मामला प्रमाणित करने की कोशिश की थी जो एक दूसरे के निकट सम्बन्धित हैं। अ॰ सा॰ 13 के साक्ष्य में यह भी आया है कि सूचनादाता के पक्षकारों एवं अपीलार्थियों के बीच एक भूमि विवाद है। यह निवेदन किया गया है कि उपरोक्त साक्षियों का साक्ष्य एक दूसरे से स्व-विरोधाभाषी या विरोधाभाषी है एवं उनलोगों ने विभिन्न प्रक्रमों में भिन्न-भिन्न कथन किया है। यह निवेदन किया गया है कि अ॰ सा॰ 9, 11, 12, 13 एवं 14 के साक्ष्य में जो अभियोजन के मामले में हितबद्ध है, उपरोक्त विसंगति की दृष्टि में इन अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता है जबतक कि उनलोगों के साक्ष्य स्वतंत्र स्रोतों से समर्थित न हों। अ॰ सा॰ 9, 13 एवं 14 के साक्ष्य में यह आया है कि अ॰ सा॰ 13 का कथन थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा अभिलिखित किया गया था जिसपर उसने अपने बायें अंगूठे का निशान लगाया था परन्तु कथन को प्राथमिकी संस्थित करने का आधार नहीं बनाया गया है एवं अन्वेषण अधिकारी द्वारा घटनास्थल के निकट अभिलिखित सूचनादाता के पश्चातवर्ती कथन को केस संस्थित करने का आधार बनाया गया है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि इस मामले का फर्दबयान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के प्रतिकूल है। यह भी निवेदन किया गया है कि प्रथम कथन जो थाने में अभिलिखित किया गया था अभिलेख पर न लाने के कारण अभियोजन के विरूद्ध एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना है। इस मामले में घटना की उत्पत्ति भी प्रमाणित नहीं की गयी है जो भी अभियोजन के मामले पर गम्भीर सन्देह आरोपित करता है। उपरोक्त तर्क की दृष्टि में यह निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण संदेह का लाभ दिए जाने के हकदार हैं एवं इसलिए, अवर न्यायालय का निर्णय कायम नहीं रखा जा सकता है।

6. दूसरी ओर, विद्वान अपर लोक अभियोजक निवेदन करते हैं कि अ॰ सा॰ 9, 11, 12, 13 एवं 14 के कथन जो घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं पूर्णतया विश्वसनीय हैं एवं चिकित्सीय साक्ष्य एवं साथ ही अन्वेषण अधिकारी के भौतिक निष्कर्ष से भी पूर्ण सम्पुष्टि पातें हैं। विद्वान अवर न्यायालय ने उचित रूप से ही उपरोक्त साक्षियों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य को स्वीकार किया है एवं अपीलार्थीगण को दण्डित किया है। इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं करता है।

7. तर्कों को सुनने के उपरांत, मैंने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का सावधानीपूर्वक अवलोकन किया है। अ॰ सा॰ 15 डॉ॰ प्रदीप कुमार सिन्हा ने, जिन्होंने मृतक सोबराती मियाँ के शव की परीक्षा की है, उसके शव पर कई उपहतियाँ पायीं एवं यह राय दी कि उक्त उपहतियाँ तीक्ष्ण धारदार हथियार एवं कठोर तथा कुंद पदार्थ द्वारा कारित की गयी थी। उन्होंने यह भी राय दी है कि उक्त उपहतियाँ मृत्यु पूर्व प्रकृति की थी एवं मृतक की मृत्यु उसे आयी चोटों के फलस्वरूप सदमे एवं रक्तस्त्राव के कारण हुई थी। डॉक्टर के प्रति-परीक्षण के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि मृतक की मृत्यु के कारण के सम्बन्ध में दिए गए निष्कर्ष को बचाव पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गयी है। इस प्रकार, मेरी दृष्टि में, मृतक (सोबराती मियाँ) की मानव वध से मृत्यु को चुनौती नहीं दी गयी है एवं इसलिए, इसे अभियोजन द्वारा स्थापित किया गया है।

8. अब इस मामले में विनिश्चित किए जाने के लिए जो प्रश्न शेष रह जाता है यह है कि क्या अपीलार्थीगण वर्तमान अपराध के रचयिता हैं? मैनें अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की संवीक्षा की है। अ॰ सा॰ 1 जोगेश्वर यादव, अ॰ सा॰ 2 जियालाल साहु, अ॰ सा॰ 3 हीरालाल यादव, अ॰ सा॰ 4 हालुमुद्दीन अंसारी, अ॰ सा॰ 5 केदार यादव एवं अ॰ सा॰ 7 हफीमुद्दीन अंसारी को पक्षद्रोही घोषित किया गया है क्योंकि उनलोगों ने अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं किया है। उनलोगों का ध्यान अन्वेषण अधिकारी द्वारा उक्त विरोधाभाष को प्रमाणित कराकर उनकी विश्वसनीयता को अधिक्षेप करने की दृष्टि से पुलिस के समक्ष किए गए पूर्वतर कथन की ओर आकृष्ट किया गया था, परन्तु अ॰ सा॰ 16 के साक्ष्य के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि अभियोजन विरोधाभाषों को प्रमाणित करने का कष्ट नहीं किया है। अ॰ सा॰ 6 एवं 8, अर्थात् लखनलाल यादव एवं टुना यादव अभिग्रहण सूची के साक्षीगण हैं। उनलोगों ने कहा है कि उनलोगों की उपस्थिति में, पुलिस ने कोई सामग्री अभिगृहित नहीं किया था। इन दोनों साक्षीगण को अभियोजन द्वारा पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है।

9. अ॰ सा॰ 10 बेंगा मियाँ है। अभियोजन मामले के अनुसार वह हरवाहा था जो मृतक के साथ घटनास्थल पर भूमि की जुताई के लिए गया था, परन्तु इस साक्षी ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि वह घटना के बारे में कुछ भी नहीं जानता था एवं उसने कभी भी सोबराती मियाँ की भूमि की जुताई नहीं की थी। अभियोजन ने विरोधाभाष प्रमाणित करके उसकी विश्वसनीयता पर अधिक्षेप करने की दृष्टि से पुलिस के समक्ष किए गए पूर्वतर कथन की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया परन्तु आश्चर्यजनक रूप से, अभियोजन ने अ॰ सा॰ 10 के पूर्वतर कथन के सम्बन्ध में अन्वेषण अधिकारी अ॰ सा॰ 16 से कोई प्रश्न नहीं किया। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि अभिकथित विरोधाभाष प्रमाणित नहीं हुआ है और अ॰ सा॰ 10 का कथन अक्षुण्ण एवं अनधिक्षेपणीय है।

10. अ॰ सा॰ 9 मनीर अंसारी सूचनादाता के पुत्र है जिसने स्वयं को घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया। उसने कथन किया कि घटना की तिथि को लगभग 7 बजे सुबह में, वह अपनी माता, बहन एवं पिता एवं एक हरवाहा बेंगा मियाँ के साथ खेत की जुताई हेतु हीरा बहियार गया था। वह यह भी कहता है कि जब वे भूमि की जुताई कर रहे थे, तो अभियुक्त आजाद, रज्जाक, तमीजुद्दीन, जालो, समसुद्दीन, इन्द्र प्रसाद साह, बोथा, मुसु, आजाद की पत्नी एवं सास और जालो की पत्नी आए और यह पूछा कि वे लोग भूमि की जुताई क्यों कर रहे थे। आगे उसने अभिसाक्ष्य दिया कि जब उसके पिता ने यह उत्तर दिया कि वह भूमि का मालिक है एवं स्वयं अपनी भूमि की जुताई करता रहा था

तो अभियुक्त व्यक्तियों ने उसे खेत की जुताई करने से रोका। तत्पश्चात्, अभियुक्त समसुद्दीन ने उसके पिता की हत्या करने के लिए हमला किया ताकि भूमि से सम्बन्धित विवाद समाप्त हो जाय। जिसपर उसके पिता ने भागना प्रारम्भ किया। लेकिन, आजाद ने मस्कट (बंदूक) के कुंदे से बेंगा पर प्रहार किया जिसके कारण वह धरती पर गिर पड़ा यह भी कहा गया है कि तदुपरांत सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके पिता का पीछा करना प्रारम्भ किया, उसने भी उनलोगों के पीछे भागा। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके पिता को पीछा करते हुए डुमरी टोला में आगे बढ़कर चारों ओर से घेर लिया एवं उसपर बंदूक के कुंदे, तलवार, लाठी, पत्थर एवं ईंटों से प्रहार किया जिससे उसके पिता को उपहतियाँ कारित हुई जो चोट खाकर धरती पर गिर पड़ा। तब यह कहा गया है कि महिला अभियुक्तों ने उसे टाँड़ तक घसीटा एवं आजाद, रज्जाक एवं तमीजुद्दीन ने उसे घसीटकर समर पोखर ले आए। वहाँ भी उनलोगों ने उसके पिता पर प्रहार किया। तब उसने अभिसाक्ष्य दिया कि शोर मचाने पर गाँववाले पहुँचे एवं अभियुक्त व्यक्ति भाग गये। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि जब वह अपने पिता के निकट पहुँचा, तो उसने पाया कि उसकी मृत्यु पहले ही हो चुकी थी एवं उसके सम्पूर्ण शरीर से रक्त निकल रहा था। उसके चाचा आशिफ, उसकी चाची एवं चचेरी बहन भी घटना के गवाह हैं। उसने आगे कहा कि तत्पश्चात् वह एवं उसकी माता थाने गए। प्रभारी अधिकारी समर पोखर आए एवं उसकी माता का कथन अभिलिखित किया जिसपर उसने अपने बायें अंगूठे का निशान लगाया। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्त व्यक्तियों ने उसकी माता से जबरदस्ती एक पट्टा-विलेख निष्पादित करा लिया था एवं इसके आधार पर, वे लोग भूमि की जुताई करवाने से मना कर रहे थे जो वर्तमान घटना का कारण था। प्रति-परीक्षा के दौरान, उसने पैराग्राह 11 में अभिसाक्ष्य दिया कि मृतक एवं अपीलार्थियों के बीच कोई भी केस नहीं चल रहा है। पैराग्राफ 19 पर उसने कथन किया है कि पुलिस ने घटना के सम्बन्ध में उसके माता का कथन थाने में अभिलिखित किया था। बचाव पक्ष ने प्रति-परीक्षण के दौरान उसका ध्यान पूर्वतर कथन की ओर आकृष्ट किया है जिसमें उसने कहा था कि पुलिस के समक्ष उसने सभी 11 अभियुक्त व्यक्तियों का नाम लिया था, परन्तु अन्वेषण अधिकारी अ॰ सा॰ 16 ने पैराग्राफ 4 में कहा है कि उसके समक्ष अ॰ सा॰ 9 ने बोथा मियाँ, मुसु मियाँ, समसुद्दीन मियाँ एवं इन्द्र प्रसाद साह का नाम नहीं लिया था। इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 9 अपने पिता के हमलावरों के नाम के सम्बन्ध में विभिन्न प्रक्रमों पर भिन्न-भिन्न कथन कर रहा है।

11. अ॰ सा॰ 11 असीरन खातून मृतक की भतीजी है, उसने कहा है कि घटना की तिथि को सुबह में जब उसके चाचा अपने बेटे, पत्नी, बेटी एवं एक हरवाहे के साथ हीरा बहियार गये थे एवं वे अपने खेतों की जुताई कर रहे थे, तो इसी अवधि के दौरान, अभियुक्त व्यक्तियों, अर्थात्, आजाद, रज्जाक, तमीजूद्दीन, जालो, बोथा, मुसु, इन्द्र प्रसाद साह, आजाद की पत्नी एवं सास एवं जालो की पत्नी वहाँ आये। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि अपीलार्थी आजाद ने बेंगा मीयाँ पर राईफल के कुंदे से प्रहार किया था तत्पश्चात् सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके चाचा सोबराती मियाँ का पीछा डुमरी टोला तक किया था एवं डुमरी टोला में, अपीलार्थी आजाद अंसारी ने सोबराती पर अपने बंदूक के कुंदे से प्रहार किया था, रज्जाक ने तलवार से उसकी गर्दन के पीछे वार किया था, तमीजुद्दीन ने सोबराती पर पिस्तौल के कुंदे से प्रहार किया था। तब वह कहती है कि तत्पश्चात् महिला अभियुक्त ने सोबराती पर लाठी एवं डंडा से वार किया था। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि जब उनलोगों ने वार करने से मना किया, तो उनलोगों को धमकी दी गयी। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि तदुपरांत सभी महिला अभियुक्त ने सोबराती को दंगल की ओर घसीटा। तब वह कहती है कि समर पोखर पर, अपीलार्थी आजाद अंसारी ने मृतक के शरीर पर एक पत्थर फेंका था। वह यह भी अभिसाक्ष्य देती है कि जब, शोर सुनकर, गाँववाले घटनास्थल पर पहुँचे तो, अभियुक्त व्यक्ति भाग गए थे। अभियुक्त के भाग जाने के उपरांत, जब वे लोग सोबराती के निकट पहुँचे, तो उनलोगों ने पाया कि वह मृत था। प्रति-परीक्षण के दौरान, उसने कहा कि सोबराती के विरूद्ध कोई केस लंबित नहीं था एवं वह कभी भी जेल नहीं गया था। पैराग्राफ 6 में वह कहती है कि अभियुक्त व्यक्तियों की सोबराती से कोई शत्रुता नहीं है।

पैराग्राफ 10 में, वह कहती है कि समर पोखर पर, मृतक का शव, पश्चिमी किनारे पर पड़ा था। पैराग्राफ 10 में उसने स्वीकार किया है कि भोटा मियाँ, मुसु एवं समसुद्दीन भी पीछे से आ रहे थे परन्तु उनलोगों ने घटना नहीं देखी थी। इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि इस साक्षी ने अपीलार्थीगण बोथा मियाँ, मुसु का नाम मृतक के हमलावरों के तौर पर नहीं लिया है, इसलिए, मैं पाता हूँ कि वह अपीलार्थी बोथा एवं मुसु की वर्तमान अपराध में संलिप्तता के सम्बन्ध में स्व-विरोधी कथन कर रही है।

12. अ॰ सा॰ 12 मैहरून निशा ने कहा है कि घटना की तिथि को सुबह में, वह अपनी माता गुल निशा, भाई मनीर के साथ हीरा बहियार स्थित खेत में मौजूद थी एवं उस समय उसके पिता सोबराती मियाँ हरवाहे बेंगा मियाँ के माध्यम से भूमि पर हल चलवा रहा था। उसी समय आजाद अंसारी, रज्जाक अंसारी, तमीजुद्दीन, जालो, इन्द्र प्रसाद साह, समसुद्दीन, बोथा, मुसु, आजाद की पत्नी एवं सास एवं जालो की पत्नी वहाँ आए एवं हरवाहे को भूमि पर हल चलाने से मना किया। उनलोगों ने हरवाहे पर लाठी से वार किया, तदुपरांत सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके पिता को घेरने की कोशिश की थी यद्यपि, लेकिन उसके पिता भाग गए। तदुपरांत सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने डुमरी टोला तक उसका पीछा किया एवं वहाँ आजाद अंसारी ने उसके पिता पर बन्दूक के कुंदे से वार किया था। रज्जाक अंसारी ने उसपर तलवार से वार किया। अभियुक्त तमीजुद्दीन ने पिस्तौल के कुंदे से उसपर वार किया, जालो एवं तीन महिला अभियुक्तों ने उसपर लाठी से वार किया। तदुपरांत, तीन महिला अभियुक्तों ने उसके पिता को टाँड़ तक घसीटा एवं वहाँ से आजाद एवं तमीजुद्दीन ने उसे समर पोखर तक घसीटा। समर पोखर पर, उसके पिता पर अभियुक्तों द्वारा पुनः प्रहार किया गया था। जब उसने शोर मचाया, तो गाँववाले दौड़ते हुए आए एवं तब अभियुक्त व्यक्तियों ने भाग गए। जब वे लोग अपने पिता के पास पहुँचे तो उनलोगों ने उसे पहले से ही मृत पाया। प्रति-परीक्षण में, पैराग्राफ 4 पर उसने कहा है कि उसके पिता कभी भी जेल नहीं गए थे। उसने बचाव पक्ष के इस सुझाव का प्रत्याख्यान किया है कि उसने पुलिस के समक्ष कहा था कि घटना के पूर्व उसके पिताजी जेल से लौट थे। पैराग्राफ-5 पर, उसने कहा है कि उसने पुलिस के समक्ष यह कथन नहीं किया था कि अपीलार्थी आजाद अंसारी ने झूठ बोलकर उसकी माता से भूमि का विलेख निष्पादित करा लिया था परन्तु उसके उपरोक्त दावे का खंडन अन्वेषण अधिकारी द्वारा दिए गए अपने अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ 5 पर किया गया था। इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि यह साक्षी विभिन्न प्रक्रमों पर भिन्न-भिन्न कथन कर रहा है। पैराग्राफ-11 पर वह कहती है कि अभियुक्त व्यक्ति उसके पिता को समर पोखर के उत्तरी किनारे पर ले आए थे।

13. अ॰ सा॰ 13 सूचनादाता है। उसने कहा है कि घटना की तिथि को वह अपने पति, बेटे, बेटी एवं हरवाहे बेंगा मियाँ के साथ अपनी भूमि की जुताई के लिए गए थे। उसी अवधि के दौरान, अभियुक्त आजाद, रज्जाक, तमीजुद्दीन, जालो, समसुद्दीन, इन्द्र प्रसाद साह, बोथा, मुसु, आजाद की पत्नी एवं सास तथा जालो की पत्नी वहाँ आए। अभियुक्त व्यक्तियों ने हरवाहे को भूमि जुताई करने से मना किया एवं अपीलार्थी आजाद ने उसपर बन्दूक के कुंदे से वार किया था। तदुपरांत अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके पति का पीछा किया। तब उसने अभिसाक्ष्य दिया कि समसुद्दीन ने अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को उसे गोली मार देने को कहा था ताकि भूमि से सम्बन्धित विवाद समाप्त हो जाए। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि तत्पश्चात् उसका पति डुमरी टोला की ओर भाग गया एवं अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उसका पीछा किया गया था एवं डुमरी टोला में उनलोगों ने उसे घेर लिया। तदुपरांत अपीलार्थी आजाद ने उसपर बन्दूक के कुदे से, रज्जाक ने तलवार से, तमीजुद्दीन ने पिस्तौल के कुदं से, इन्द्र ने बन्दूक के कुंदे से, जालो ने लाठी से, बोथा, आजाद की पत्नी और सास एवं जालो की पत्नी ने भी उसपर लाठियों से वार किया था। तब यह कहा गया है कि जब उसका पति धरती पर गिर गया, तो आजाद की पत्नी

एवं सास तथा जालों की पत्नी ने उसके पति को टाँड़ तक घसीटा एवं तदुपरांत आजाद, रज्जाक, तमीजुद्दीन ने उसे समर पोखर तक खसीटा एवं वहाँ भी उसके पति पर पत्थरों, लाठियों एवं बन्दूक के कुन्दे से बारम्बार प्रहार किया गया। जब उसने शोर मचाया एवं गाँववाले पहुँचे, तो अभियुक्त व्यक्तिगण भाग गए। जब वे लोग मृतक के निकट गए, तो उनलोगों ने पाया कि वह मृत था। वह आगे कहती है कि तत्पश्चात् वह घटना से सम्बन्धित सूचना देने के लिए थाना गयी थी। पुलिस घटनास्थल पर आयी और उसका कथन अभिलिखित किया एवं इसे सत्य पाकर, उसने अपने बायें अंगूठे का निशान लगाया। तत्पश्चात उसके पति के शव को मृत्योपरांत परीक्षण के लिए अस्पताल भेजा गया। प्रति-परीक्षण के दौरान, उसने कहा कि उसका पति जेल गया था, परन्तु वह यह नहीं जानती थी कि उसके पति के विरूद्ध कितने मामले लम्बित थे। पैराग्राफ 7 पर उसने इस बात से इनकार किया कि उसने आजाद एवं रज्जाक के पक्ष में पट्टा विलेख निष्पादित किया था। उसने इस बात से भी इनकार किया कि उसने पुलिस के समक्ष यह कथन किया था कि उसने आजाद एवं रज्जाक के पक्ष में चार कट्ठा भूमि का पट्टा विलेख निष्पादित किया था। उसने इस बात से भी इनकार किया कि उसने पुलिस के समक्ष कथन किया था कि जब उसका पति जेल से छूटा, तो उसने पट्टा विलेख स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। उसने इस बात से भी इनकार किया कि उसने उन अभियुक्तों में से तमीजुद्दीन का नाम लिया था जिन्होंने सोबराती मियाँ को घसीटा था। उसने इस बात से भी इनकार किया है कि उसने पुलिस के समक्ष कथन किया था कि बोथा मियाँ भाला से लैस था। उसने इस बात से भी इनकार किया कि उसने पुलिस के समक्ष कथन किया था कि अभियुक्त व्यक्तियों ने सोबराती मियाँ को खेतों की ओर घसीटा था। उसने कहा कि उसने पुलिस के समक्ष कथन किया था की अभियुक्त व्यक्तों ने उसे टाँड़ की ओर ले गए। फर्दबयान एवं अ॰ सा॰ 16 के कथन के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि उसने फर्दबयान में किए गए अपने कथन को अंगीकार नहीं किया है। पैराग्राफ 9 पर, अ॰ सा॰ 13 ने विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि थाने में उसने प्रभारी-अधिकारी के समक्ष कथन किया था कि अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके पति की हत्या की थी। तब उसने अभिसाक्ष्य दिया कि उसने थाने में सभी अभियुक्त व्यक्तियों का नाम लिया था। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि थाने में प्रभारी अधिकारी ने हत्या का एक केस संस्थित किया था एवं उसने थाने में उक्त केस पर अपने बांये अंगूठे का निशान लगाया था। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि बाद में उसका पश्चातवर्ती कथन समर पोखर पर अभिलिखित किया गया था।

14. अ॰ सा॰ 14 मृतक का भाई है; उसने कहा कि घटना की तिथि को वह अपने खेत में मौजूद था। उस समय, मृतक उसकी पत्नी, बेटा एवं बेटी भी अपने खेत में मौजूद थे। उसी समय अभियुक्त व्यक्तिगतण, अर्थात्, आजाद, आजाद की पत्नी, रज्जाक, तमीजुद्दीन, जालो, जालो की पत्नी, सास आजाद की सास, इन्द्र प्रसाद साहु, समसुद्दीन, बोथा एवं मुसु वहाँ आए एवं हरवाहे को भूमि पर हल चलाने से मना किया। अभियुक्त व्यक्तियों ने भी हरवाहे पर प्रहार किया। जब अभियुक्त व्यक्तियों ने सोबराती को घेर लिया तो वह डुमरी टोला की ओर भाग गया। डुमरी टोला में सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने सोबराती मियाँ को घेर लिया एवं उसपर वार किया। तब उसने अभिसाक्ष्य दिया कि आजाद ने उसपर बंदूक के कुंदे से, रज्जाक ने तलवार से, तमीजुद्दीन ने बन्दूक के कुंदे से एवं महिला अभियुक्तों ने पत्थर से वार किया है। उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि बोथा, मुसु ने भी उस पर वार किया था। तदुपरांत तीन महिला अभियुक्तों ने सोबराती को दंगल की ओर घसीटा जहाँ से पुरूष अभियुक्तों ने उसे समर पोखर तक घसीटा एवं वहाँ भी उसपर अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा प्रहार किया गया था। वह यह भी अभिसाक्ष्य देता है कि उसने सोबराती को पीटने से अभियुक्तों को मना किया था, परन्तु उनलोगों ने उसके आग्रह पर कोई ध्यान दिया था। यह कहा गया है कि हल्ला सुनकर कई व्यक्ति वहाँ पहुँचे एवं तब अभियुक्त भाग गए। पैराग्राफ 15 में वह कहता है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने सोबराती को घसीटा था एवं घसीटकर समर पोखर के उत्तरी किनारे पर ले आए थे। पैराग्राफ 16 में वह कहता है कि पुलिस स्टेशन में मृतक की पत्नी का कथन पुलिस द्वारा अभिलिखित किया गया था जिसपर उसने अंगूठे का

निशान लगाया था। वह आगे कहता है कि वे लोग थाने में आधा घंटा रूके। वह आगे कहता है कि थाने में मृतक की पत्नी ने घटना के बारे में विस्तृत कथन किया था जो पुलिस द्वारा अभिलिखित किया गया था। प्रति-परीक्षण के दौरान, उसका ध्यान उसके पूर्वतर कथन की ओर आकृष्ट किया गया था, जिसमें उसने कहा कि पुलिस के समक्ष उसने इन्द्र प्रसाद साह, समसुद्दीन, मुसु एवं बोथा का नाम लिया था। लेकिन, अन्वेषण अधिकारी अ० सा० 16 ने अपने अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ 4 पर उसके उपरोक्त कथन का खंडन किया है।

15. इस प्रकार, अ० सा० 9, 11, 12 एवं 13 के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर, मैं पाता हूँ कि उनलोगों ने या तो स्व-विरोधाभाषी कथन किया है या घटना की रीति एवं घटनास्थल के सम्बन्ध में अन्य साक्षियों के कथन का खंडन कर रहे हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अ० सा० 9 एवं 14 ने पुलिस के समक्ष अभियुक्त समसुद्दीन, इन्द्र साह, बोथा एवं मुसु का नाम नहीं लिया है परन्तु उनलोगों ने, न्यायालय में अपने-अपने अभिसाक्ष्य के दौरान अभियोजन के मामले को विकसित करने की कोशिश की है। इसी प्रकार, अ० सा० 11 ने अभियुक्त व्यक्तियों में से समसुद्दीन का नाम नहीं लिया है जो घटना-स्थल पर पहुँचा था। पैरा 10 में वह स्वीकार करती है कि उसने पुलिस के समक्ष कहा था कि बोथा मियाँ, मुसु एवं समसुद्दीन पीछे से आ रहे थे एवं उनलोगों ने घटना नहीं देखी थी। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि पूर्व में उसने बोथा, मुसु एवं समसुद्दीन का नाम मृतक के हमलावरों के रूप में नहीं लिया है। अ० सा० 11 ने अपने मुख्य परीक्षा में कहा कि मात्र आजाद अंसारी, रज्जाक अंसारी एवं तमीजुद्दीन ने मृतक पर डुमरी टोला में हमला किया था। उसने कहा कि रज्जाक ने मृतक पर उसकी गर्दन पर पीछे से तलवार से हमला किया था परन्तु डॉक्टर ने मृतक की गर्दन के पीछे कोई उपहति नहीं पायी थी। अ० सा० 11 एवं सूचनादाता ने कहा कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतक को घसीटा था एवं समर पोखर के पश्चिमी किनारे पर ले आए थे एवं वहाँ उनलोगों ने उसपर वार किया था परन्तु अ० सा० 12 ने अपने अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ-11 में एवं अ० सा० 14 ने अपने अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ 15 में कहा है कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतक को समर पोखर के उत्तरी किनारे पर ले आए थे। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि साक्षियों ने तथ्यों पर घटना की रीति एवं घटनास्थल के सम्बन्ध में कथन का खंडन किया है। अ० सा० 13 सूचनादाता ने घटना के हेतु के सम्बन्ध में फर्दबयान में किए गए अपने पूर्वतर कथनों से अन-अंगीकृत किया था। अ० सा० 11 एवं 12 ने भी स्वयं एवं अन्य साक्षियों का यह कहते हुए खंडन किया है कि मृतक कभी भी जेल नहीं गया था यह वर्णन करना असंगत नहीं है कि उपरोक्त साक्षीगण एक दूसरे से निकट सम्बन्धित हैं एवं अ० सा० 13 (मृतक की पत्नी) द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उनलोगों का भूमि विवाद के कारण अपीलार्थीगण से शत्रुता थी। इस पृष्ठभूमि में, एतस्मिनपूर्व उल्लिखित उपरोक्त विरोधाभाष महत्वपूर्ण हैं। उनके साक्ष्य दोषमुक्त एवं संदेहरहित नहीं हैं। मैं इस दृष्टिकोण का हूँ कि उनलोगों के साक्ष्य जो स्वतंत्र स्त्रोत द्वारा सम्पोषित नहीं है, अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध करने का आधार नहीं हो सकता है।

16. वर्तमान मामले में, अ० सा० 9, 13 एवं 14 ने विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि थाने में सूचनादाता (अ० सा० 13) ने घटना के सम्बन्ध में विस्तृत कथन किया था एवं इसे पुलिस द्वारा अभिलिखित किया गया था। अ० सा० 13 एवं 14 ने विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि उक्त कथन में, उसने सभी अभियुक्त व्यक्तियों का नाम प्रकट किया था एवं उसके आधार पर केस संस्थित किया गया था। अ० सा० 13 ने यह भी कहा कि समर पोखर पर उसका दूसरा कथन अन्वेषण अधिकारी द्वारा अभिलिखित किया गया था। परन्तु अभिलेख के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि प्राथमिकी समर पोखर पर अभिलिखित सूचनादाता के कथन के आधार पर संस्थित किया गया था, जो कि, मेरी दृष्टि में, द० प्र० सं० की धारा 162 के प्रतिकूल है, क्योंकि थाने में दिये गए सूचनादाता के पहले कथन को अभिलेख पर नहीं लाया गया था एवं अभियोजन के विरूद्ध एक प्रतिकूल निष्कर्ष इस सीमा तक निकाला जाना है कि अभियोजन ने पूर्वतर शत्रुता के कारण जैसा कि अभियोजन साक्षियों द्वारा सुझाव दिया गया है, अभियुक्तों/अपीलार्थियों को फंसाया है।

17. वर्तमान मामले में, अभियोजन ने घटना की उत्पत्ति प्रमाणित नहीं की है। फर्दबयान एवं साथ ही अ॰ सा॰ 9, 11, 12, 13 एवं 14 के कथनों में यह अभिकथित किया गया है कि जबकि मृतक एवं उसके पारिवारिक सदस्य हरवाहे (अ॰ सा॰ 10) द्वारा अपनी भूमि पर हल चलवा रहे थे, तभी अभियुक्त व्यक्तियों ने घटनास्थल अर्थात् हीरा बहियार पहुँचे एवं उन्हें भूमि पर हल चलाने से मना किया एवं उनके मना करने पर, वर्तमान घटना घटित हुई। परन्तु अन्वेषण अधिकारी ने अपने अभिसाक्ष्य में कहीं पर भी यह नहीं कहा है कि उन्होंने सूचनादाता की भूमि हाल ही में जुतवाई गयी पाई थी। इस सम्बन्ध में बेंगा मियाँ का कथन भी महत्वपूर्ण है। इस साक्षी ने विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि उसने सोबराती मियाँ की भूमि कभी नहीं जोती थी। यद्यपि इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया एवं उसकी विश्वसनीयता पर अभियोग लाने की दृष्टि से उसके पूर्वतर कथन की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया गया था, फिर भी अन्वेषण अधिकारी (अ॰ सा॰ 16) ने उक्त विरोधाभाषों को प्रमाणित नहीं किया है। उक्त परिस्थिति में, अ॰ सा॰ 10 का कथन अक्षुण्ण एवं अनधिक्षेपणीय रहा। उसका यह कथन की घटना की तिथि को उसने सोबराती मियाँ के भूमि पर हल नहीं चलाया था, अभियोजन मामले पर एक घातक प्रहार करता है। उक्त परिस्थितियों के अधीन, मैं इस दृष्टिकोण का हूँ कि अभियोजन घटना की उत्पत्ति प्रमाणित करने में असफल रहा है, जो इसके मामले पर गंभीर सन्देह उत्पन्न करता है।

18. ऊपर किए गए विवेचनों की दृष्टि में, मैं इस निष्कर्ष पर आता हूँ कि अभियोजन ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध लगाये गए आरोपों को सभी युक्तिसंगत संदेह से परे प्रमाणित करने में असफल हुआ है। इसलिए अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ देकर उनके विरूद्ध लगे आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।

19. परिणामस्वरूप, मैं इन अपील को अनुज्ञात करता हूँ, दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय एवं दण्डादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को उसके विरूद्ध लगे आरोपों से मुक्त किया जाता है। यह प्रतीत होता है कि दां॰ अपी॰ (डी॰ बी॰) सं॰ 144 वर्ष 2002 के अपीलार्थी सं॰ 1 एवं 2 अर्थात् आजाद अंसारी एवं रज्जाक अंसारी अभिरक्षा में हैं, उन्हें तत्क्षण निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में अपेक्षित न हों। दां॰ अपी॰ (डी॰ बी॰) सं॰ 144 वर्ष 2002 के अपीलार्थी सं॰ 3 एवं दां॰ अपी॰ (डी॰ बी॰) सं॰ 80 वर्ष 2002 जमानत पर हैं। उन्हें उनके जमानत बंधपत्रों के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

मुनेश्वर तिवारी

बनाम

बिहार राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

W.P. (S) No. 3651 वर्ष 2002, 3360 वर्ष 2007. 21 मई, 2009 को विनिश्चित।

पुनर्गठन अधिनियम, 2000—धाराएँ 72 एवं 74—अनुशासनिक कार्यवाही–याची बिहार राज्य विद्युत बोर्ड के प्राधिकारी द्वारा सेवा से बर्खास्त किया गया–अभिनिर्धारित, विभाजन के उपरांत वर्तमान बिहार राज्य को झारखण्ड राज्य में पद धारण करने वाले व्यक्तियों के विरूद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने की कोई अधिकारिता नहीं है। (पैरा 13 एवं 14)

निर्णयज विधि.–2002(2) JCR 602; 2002 (1) JCR 401—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Petitioner; M/s Manoj Tandon, A.K. Pandey, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों हेतु प्रस्तुत की गयी है:–

W.P. (S) No. 3651 वर्ष 2002

वर्तमान रिट याचिका में याची दिनांक 10.5.2002 के कार्यालय आदेश सं॰ 1686 के अभिखंडन हेतु उत्प्रेषण की प्रकृत्ति में एक रिट/आदेश/निर्देश के निर्गतीकरण हेतु प्रार्थना करता है जिसके द्वारा संयुक्त सचिव, पटना, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड (प्रत्यर्थी सं॰ 1) ने याची की सेवा तत्काल प्रभाव से बर्खास्त किया है एवं याची के बर्खास्तगी आदेश को प्रतिसंहृत करने का निर्देश सम्बन्धित–प्रत्यर्थीगण को देने वाले एक यथोचित रिट के निर्गतीकरण के लिए भी प्रार्थना करता है।

W.P. (S) 3360 वर्ष 2007

वर्तमान रिट याचिका में, याची स्वयं को विधित: भुगतेय देयों को तत्क्षण एवं तुरन्त निर्गत करने का निर्देश देने वाले परमादेश के प्रकृति के एक रिट/आदेश/निर्देश के निर्गतीकरण की प्रार्थना करता है जिसका भुगतान आजतक याची को नहीं किया गया है।

दूसरी रिट याचिका पारिणामिक प्रसुविधा/अनुतोष के लिए दाखिल की गयी है जो प्रथम रिट याचिका पर आश्रित है एवं इस प्रकार, दोनों ही रिट याचिकाओं को इस सम्मिलित आदेश द्वारा निस्तारित किया जा रहा है।

2. संक्षेप में, तथ्यों को निम्नवत् उपवर्णित किया गया है:–

W.P. (S) No. 3651 वर्ष 2002

याची को बिहार राज्य विद्युत बोर्ड, पटना के कार्यालय में 28.6.1967 को कनीय लेखा लिपिक के तौर पर नियुक्त किया गया था। राज्य के विभाजन के उपरांत, उसके विकल्प के अनुसार उसे झारखंड राज्य भेजा गया था एवं वह वहीं रहा। याची के अनुसार, उसने प्रत्यर्थी बोर्ड के साथ पूर्ण संतुष्टि से कार्य किया एवं 1996 तक उसका सेवा अभिलेख दोषरहित था। उसके विरूद्ध 2.11.1998 को एक विभागीय जाँच संस्थित की गयी थी एवं कार्यवाही संचालित करने के लिए एक जाँच अधिकारी की नियुक्ति की गयी थी एवं याची को अवसर देने के उपरांत 27.8.2001 को उसने जाँच रिपोर्ट पेश की एवं उसके रिपोर्ट के अनुसार याची के विरूद्ध लगे आरोपों को प्रमाणित पाया गया था। याची के विरूद्ध लगाये गये आरोप मीटर से छेड़छाड़ करने के अभिकथित आरोप पर उपभोक्ताओं से अवैध धन वसूलने से सम्बन्धित था। याची के विरूद्ध विरचित आरोप निम्नवत हैं:–

1. जनवरी, 1986 में, अपनी सेवा अवधि के दौरान, उपभोक्ता अर्थात् जयबली दूबे को ब्लैकमेल करने की दृष्टि से, उसने 4977/- रु० का गलत विद्युत विपत्र तैयार किया, जबकि वास्तविक देय विपत्र मात्र 14/- रु० का था एवं उस कारण से उपभोक्ता का मीटर का पठन 'शून्य' पाया गया था।

2. जून 1986 के महीने में, एक उपभोक्ता अर्थात् कामेश्वर सहाय को ब्लैकमेल करने के दृष्टिकोण से उसने 5772/- रु० का गलत विद्युत विपत्र तैयार किया जबकि वास्तविक देय विपत्र मात्रा 385/- रु० का था एवं इस सम्बन्ध में संपरीक्षा दल ने भी यह रिपोर्ट दी कि उक्त उपभोक्ता के विरूद्ध 5335.85 रु० का एक अतिरेक विपत्र उक्त उपभोक्ता के विरूद्ध पाया गया था।

3. उसने एक उपभोक्ता अर्थात्, राम रतन सिंह के विरूद्ध प्रभारित विपत्र के प्रति 1506.86 रु० की धनराशि वरीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश या अनुशंसा के बिना समायोजित की।

4. उसने उपभोक्ताओं अर्थात् श्याम लाल एवं जेरूद्दीन अंसारी के मीटर सही होने के बावजूद एक औसत विपत्र तैयार किया एवं अपने व्यक्तिगत हित की पूर्ति के उपरांत इसे समायोजित कर दिया।

अंततः संयुक्त सचिव, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड ने दिनांक 10.5.2002 के अपने आक्षेपित आदेश के माध्यम से 12.2.2002 को द्वितीय कारण बताओ नोटिस देने के उपरांत याची को सेवा से बर्खास्त कर दिया जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती देने की इप्सा की गयी है।

W.P. (S) No. 3360 वर्ष 2007

बर्खास्तगी के उपरांत, सम्बन्धित प्रत्यर्थी प्राधिकारी के आचरण से व्यथित होकर याची ने अपने ग्राह्य देयों के भुगतान के लिए 23.4.2004 को एक अभ्यावेदन दाखिल किया जो अभी भी लम्बित है। उसने 1.4.1992 से 22.4.1992 तक की अवधि के लिए ब्याज सहित वेतन के देयों के भुगतान के लिए, 23.4.1994 से 22.1.1996 तक की अवधि के लिए निर्वाह भत्ता के भुगतान के लिए, 1994 से 2002 के प्रभाव से ब्याज सहित वेतन वृद्धि के देयों एवं 1.4.97 से 31.10.2000 तक वेतन पुनरीक्षण के धनीय प्रसुविधाओं, गोमिया उप-खंड से गणेशपुर उप-खंड में स्थानान्तरण के कारण स्थानान्तरण भत्ता के लिए एवं जी॰ एस॰ एस॰ की राशि के लिए, जो मई 1987 से कटौती की गयी है, वर्तमान रिट याचिका (S) सं॰ 3360 वर्ष 2007 दाखिल की है।

3. प्रत्यर्थी बोर्ड ने अपने उत्तर में निवेदन किया कि द्वितीय कारण बताओ नोटिस सहित पूरा अवसर दिया गया था एवं चूँकि यह दुराचरण के कारण बर्खास्तगी का एक मामला है एवं इस प्रकार यथा दावाकृत वेतन एवं अन्य देयों के भुगतान का प्रश्न पोषणीय नहीं था।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य प्रतिवाद यह है कि संयुक्त सचिव, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड को राज्य के विभाजन एवं संवर्ग के विभाजन के उपरांत याची को सेवा से बर्खास्त करने की कोई अधिकारिता नहीं थी चूँकि सुसंगत समय पर वह निरसा धनबाद में कार्य कर रहा था जब आरोपों को विरचित किया गया था एवं 2002 में बर्खास्तगी के समय भी वह झारखण्ड राज्य की क्षेत्रीय अधिकारिता के अन्तर्गत था। इस सम्बन्ध में, उन्होंने अपने प्रतिवाद का समर्थन करने के लिए **2002(2) JCR पृष्ठ 602** एवं **2002(1) JCR पृष्ठ 401** को निर्दिष्ट एवं इसपर विश्वास व्यक्त किया है।

5. 2002(2) JCR पृष्ठ 602 में, इस न्यायालय ने मुद्दे को गुणागुण पर विनिश्चित किए बिना मामले को प्रतिप्रेषित किया था एवं इस प्रकार, इसे बाध्यकारी पूर्व निर्णय नहीं समझा जा सकता है चूँकि मुद्दे को गुणागुण पर विनिश्चित नहीं किया गया था। दूसरे मामले में, यह एक सरकारी सेवक से सम्बन्धित है।

6. यह न्यायालय **2002 (1) JCR पृष्ठ 401 (Jhr.)** में प्रकाशित **बिहार राज्य बनाम अरविन्द विजय बिलुंग एवं एक अन्य** के मामले में पैराग्राफ-12 पर निम्नवत् अभिनिर्धारित किया है:-

"2. ऐसी एक स्थिति में एवं ऐसी एक पृष्ठभूमि में, जहाँ वह राज्य किसी विद्यमान राज्य से सृजित हुआ हो तो दोनों राज्यों के बीच सहयोग अर्थपूर्ण हो जाता है। इसलिए, यदि बिहार राज्य के कब्जे में किसी सरकारी सेवक के विरूद्ध कोई सामग्री है जो अधिनियम की धारा 74 के फलस्वरूप अब झारखण्ड राज्य की सेवा में है एवं यदि बिहार राज्य यह समझता है कि ऐसी सामग्री ऐसे एक व्यक्ति के विरूद्ध कार्रवाई प्रारम्भ करना आवश्यक बना सकता है तो बिहार राज्य को यह स्वतंत्रता होगी कि यह ऐसी सामग्री को झारखण्ड राज्य को ऐसी कार्रवाई हेतु अग्रसारित करे जैसा कि झारखण्ड राज्य द्वारा यथोचित समझा जाय। इसे काफी स्पष्ट रूप से समझा जाय कि ऐसी एक स्थिति में तत्कालीन राज्य की भूमिका मात्र झारखण्ड राज्य को सूचना देना या संगत सामग्री उपलब्ध कराना एवं शेष कार्य झारखण्ड राज्य पर छोड़ देना है। झारखण्ड राज्य के लिए सदृश स्थिति होगी यदि कोई कर्मचारी बिहार में किसी स्थान पर है एवं यदि झारखण्ड राज्य के कब्जे में कोई ऐसी सामग्री है जो ऐसे एक कर्मचारी के विरूद्ध यथोचित कार्रवाई हेतु बिहार राज्य को अग्रसारित किए जाने के लिए आवश्यक हो सकता है।''

7. इस उद्धरण को पश्चातवर्ती निर्णय में **अरबिन्द कुमार सिन्हा बनाम बिहार राज्य (अब झारखण्ड एवं अन्य** के **2006(4) JCR पृष्ठ 285 (Jhr.)** में प्रकाशित मामले में समर्थन पाया एवं पैराग्राफ-3 पर एक निर्देश निम्नवत् निर्गत किया गया था:-

"3. बिहार राज्य स्वयं या झारखण्ड राज्य के आग्रह पर ऐसी सामग्रियाँ जो इसके कब्जे में है, जो याची के विरूद्ध कार्रवाई करने के लिए उसके विरूद्ध है, अग्रसारित कर सकता है एवं झारखण्ड राज्य, बिहार राज्य से ऐसी सामग्रियों की प्राप्ति पर इस आदेश के एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति से छह माह की अवधि के भीतर विधि के अनुरूप एक यथोचित आदेश पारित कर सकता है।

8. केन्द्र सरकार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 72(2) के अधीन उस प्रभावी तिथि सहित जिस तिथि को ऐसा आबंटन प्रभावी होना था या प्रभावी समझा जाना था, उस उत्तराधिकारी राज्य को जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सेवा में अंतिम रूप से आबंटित किया जाना था, अवधारित करने के लिए एक प्राधिकार है।

झारखण्ड राज्य में किसी व्यक्ति को अनंतिम रूप से सेवा की बँटवारा करने वाला सामान्य या विशेष आदेश निर्गत करने के लिए केन्द्र सरकार को धारा 72 की उप-धारा (1) के परन्तुक के अधीन एक वर्ष की अवधि विहित की गयी है।

9. पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 74 एक सम्भावित प्रावधान है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति जो 15 नवम्बर, 2000 के पूर्व तत्कालीन बिहार राज्य के सम्बन्ध में कोई पद का धारक था या इसके कर्त्तव्यों का निर्वहन कर रहा था। 15 नवम्बर, 2000 को या से ऐसा व्यक्ति उस उत्तराधिकारी राज्य में वही पद धारण किए रहेगा जिसके अधीन वह क्षेत्र आता है एवं वह उस उत्तराधिकारी राज्य में सरकार या यथोचित प्राधिकार द्वारा उस पद पर सम्यक् रूप से नियुक्त किया गया समझा जाएगा जिसके अंतर्गत वह पद या कार्यालय आता है।

10. स्वीकार्यत: प्रत्येक व्यक्ति जो 15 नवम्बर, 2000 के तुरन्त पूर्व 'तत्कालीन बिहार राज्य' में सेवारत था, उसका नियोक्ता प्राधिकारी तत्कालीन बिहार राज्य या उक्त 'तत्कालीन बिहार राज्य' के यथोचित प्राधिकारी थे।

11. 15 नवम्बर, 2000 को एवं इसके बाद से सभी प्रयोजनों के लिए विभाजन के उपरांत तत्कालीन बिहार राज्य अस्तित्व में नहीं है एवं दो उत्तराधिकारी राज्य, दोनों 15 नवम्बर, 2000 से अस्तित्व में आए, कोई भी व्यक्ति 'तत्कालीन बिहार राज्य' को उस राज्य के साथ तुलना नहीं कर सकता है, जो 15 नवम्बर, 2000 के पूर्व अस्तित्व में था और न ही उत्तराधिकारी बिहार राज्य को पर्यायवाची बना सकता है जो 15 नवम्बर, 2000 को अस्तित्व में आया।

12. चूँकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक नियोक्ता प्राधिकारी होना चाहिए, 'तत्कालीन बिहार राज्य' सभी प्रयोजनों के लिए अस्तित्वरहित होने के कारण, एक या दूसरे उत्तराधिकारी राज्य या उस उत्तराधिकारी राज्य के यथोचित प्राधिकारो को नियोक्ता प्राधिकारी बनाना उचित हो गया है, इसलिए पुनर्गठन अधिनियम की धारा 71 के प्रावधान संसद द्वारा समाविष्ट किए गए प्रतीत होते हैं।

13. निर्दिष्ट प्रावधानों एवं विवेचनों जैसा कि ऊपर किया गया है, कि दृष्टि में, वर्तमान बिहार राज्य को झारखण्ड राज्य में पद धारण करने वाले याचीगण के समान व्यक्तियों के विरूद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने की कोई अधिकारिता नहीं है।

14. उपरोक्त निर्णयों पर भरोसा करते हुए, मामले को अवसर प्रदान करने के उपरांत मामले में उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर विधि के अनुरूप नये सिरे से निर्णय लेने एवं विधि के अनुसार इसे निस्तारित करने, अधिमानत: इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तिथि से छ: माह की अवधि के भीतर के लिए, संयुक्त सचिव, झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड को प्रतिप्रेषित किया जाता है।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

राज कुमार सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 4082 वर्ष 2007. 19 मई, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–प्रोन्नति–जबतक कि प्रारम्भिक नियुक्ति की तिथि के प्रभाव से एक नियमित आधार पर प्रोन्नति नहीं की जाती है, तबतक वरीयता की गणना के प्रयोजन हेतु स्थानापन्नता एवं तदर्थ प्रोन्नति की अवधि को ध्यान में नहीं रखा जा सकता क्योंकि एक पद पर स्थानापन्नता प्रोन्नति का एक तात्विक या विधिक अधिकार प्रदान नहीं करता है परन्तु अगर नियुक्ति/प्रोन्नति की प्रारंम्भिक तिथि के प्रभाव से नियमितीकरण कर दिया जाता है, तो वरीयता की गणना के प्रयोजन के लिए इसको ध्यान में रखा जाएगा। (पैरा 10 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Dhananjay Kumar Dubey, For the Petitioner; Mr. J.C. to S.C., For the Respondents.

आदेश

माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संपुष्ट किया गया है, के अनुपालन में ज्ञापांक संख्या 6698 दिनांक 13.9.1997 से प्रत्यर्थीगण द्वारा निर्धारित वरीयता की दृष्टि में 30.10.1981 के प्रभाव से आरक्षी उप-निरीक्षक के तौर पर याची की प्रोन्नति की तिथि को मानते हुए, उस तिथि के प्रभाव से आरक्षी निरीक्षक के दर्जे तक प्रोन्नति के लिए याची के मामले पर विचार करने के लिए प्रत्यर्थीगण को एक यथोचित रिट, आदेश या निर्देश को निर्गत करने के लिए वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गई है, जिस तिथि को दिनांक 12.8.2006 की बैठक में याची से कनिष्ठ व्यक्तियों पर विचार किया गया था और ज्ञापांक संख्या 1662 दिनांक 27.9.2006 के माध्यम से निर्गत आदेश से उन्हें प्रोन्नत किया गया था।

2. याची के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि उसे 30.10.1981 के प्रभाव से आरक्षी उप-निरीक्षक के तौर पर उसे प्रोन्नत किया गया था और इस प्रकार वह आरक्षी निरीक्षक के दर्जे तक प्रोन्नति के लिए विचारित किए जाने का अधिकारी था इस तथ्य की दृष्टि में कि 1984 बैच तक के सामान्य कोटि के सभी आरक्षी उप-निरीक्षक को डी॰ जी॰ बोर्ड द्वारा याची के दावों को छोड़कर आरक्षी निरीक्षक के पद पर प्रोन्नति के लिए विचार किया गया था।

3. याची ने डी॰ आई॰ जी॰ द्वारा निर्गत आदेश संख्या 2790/97 को भी निर्दिष्ट किया है जिसमें यह विनिर्दिष्ट रूप से अवधारित/अभिलिखित किया गया है कि माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुपालन में उनकी वरीयता की गणना उस तिथि के आधार पर की जायेगी जब वे उप-निरीक्षक के पद पर नियुक्त किए गए थे। याची के नाम क्रमांक संख्या 129 है और कॉलम 2 में यह उल्लिखित किया गया है कि उप-निरीक्षक के पद पर उसकी प्रोन्नति की तिथि 30.10.1981 थी।

4. याची के अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि मामलो के बैच में जिससे याची भी एक पक्षकार था माननीय खण्ड पीठ द्वारा 8.5.06 के पारित आदेश में सब-इंस्पेक्टर के तौर पर याचीगण को प्रारम्भिक स्थानापन्नता की तिथि से सब-इंस्पेक्टर के दर्जे में उनकी वरीयता की गणना करने का एक निर्देश प्रत्यर्थी को निर्गत किया गया था और इस मामले के साथ-साथ अन्य संबंध मामले के विरूद्ध दाखिल एस॰ एल॰ पी॰ (सिविल) संख्या 7286-7292/97 को भी खारिज कर दिया गया था और इस प्रकार दिनांक 8.5.06 के आदेश ने अनिवार्यता प्राप्त कर लिया था और पक्षों पर बाध्यकारी हो चुके थे और इस प्रकार की स्थिति वाले का अन्य सब-इंस्पेक्टर उक्त निर्णय से पहले ही लाभ उठा चुके हैं।

5. उसने डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 6893/04 दिनांक 6.9.2006 में इस न्यायालय द्वारा और इसके बाद डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 5496/07 और अन्य संबंधित मामलो में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशो को भी निर्दिष्ट किया है जिसमें याचीगण के उस तिथि से सब-इंस्पेक्टर बनने के निर्देश के लिए निर्गत किए गए थे जिस तिथि को उन्होंने पद पर योगदान किया था।

6. प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति-शपथपत्र में निवेदन किया है कि पुलिस निर्देशिका नियमावली के निर्णय 659(e) के अधीन पुलिस मुख्यालय स्तर पर गठित केन्द्रिय चयन बोर्ड द्वारा ही आरक्षी उप-निरीक्षक के दर्जे तक एक नियमित प्रोन्नति प्रदान की जा सकती है। और इस प्रकार 30.10.81 के प्रभाव से याची को दी गई प्रोन्नति को वैध नहीं जाना जा सकता।

7. प्रत्यर्थी यह भी निवेदन करते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निरंतर रूप से निर्णीत किया है कि वरीयता का दावा प्रोन्नति पद पर नहीं किया जा सकता, अगर यह स्थानापन्न और तदर्थ आधार पर धारण किया गया था। इसकी गणना केवल नियमित और तात्विक प्रोन्नति की तिथि से ही की जा सकती है।

8. मैंने अभिवाकों एवं निवेदनों पर विचार किया है। यह स्वीकृत तथ्य शेष रह जाता है कि याची को सब-इंन्सपेक्टर के तौर पर 30.10.1981 को प्रोन्नत किया गया था और उस समय प्रोन्नति केन्द्रीय चयन बोर्ड द्वारा किए जाने की आवश्यकता नहीं था जिसे 1989 से प्रभावी बनाया गया था।

9. यह तथ्य रह जाता है कि माननीय खण्ड पीठ द्वारा रिट याचिकाओं को याची के पक्ष में अनुज्ञात किया गया था और इसके विरूद्ध दाखिल एस॰ एल॰ पी॰ (सिविल अपील) को भी खारिज कर दिया गया था और इस प्रकार इन कार्रवाईयों में आदेश सभी प्रयोजनो के लिए अन्तिम और बाध्यकारी बन चुका है।

10. इस स्थापित विधि के संबंध में मेरे दिमाग में कोई संदेह नहीं है कि जबतक कि प्रारंम्भिक नियुक्ति की तिथि के प्रभाव से एक नियमित आधार पर प्रोन्नति नहीं की जाती है वरीयता की गणना करने के प्रयोजनो के लिए स्थानापन्न एवं तदर्थ प्रोन्नति की अवधि को ध्यान में नहीं रखा जा सकता है। तथापि उनका प्रारम्भिक नियुक्ति/प्रोन्नति की तिथि के प्रभाव से नियमितीकरण किया जाता है तो वरीयता की गणना करने के प्रयोजन के लिए इसे ध्यान में रखा जा सकता है।

11. चाहे जो भी स्थिति हो, यह तथ्य रह जाता है कि 30.10.1981 की तिथि के प्रभाव से प्रोन्नति से वंचित करने वाला आधार प्रकथन त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि केन्द्रीय चयन बोर्ड को पुलिस मुख्यालय स्तर पर झारखण्ड पुलिस निर्देशिका नियमावली 659(e) को केवल 1989 के प्रभाव से ही गठित किया गया था और इसे भूतलक्षी रूप से लागू नहीं किया जा सकता।

12. तथापि, माननीय खण्ड पीठ द्वारा दिनांक 8.5.1996 के अपने आदेश के माध्यम से निर्गत निर्देशों की दृष्टि में, जिसके द्वारा याची एवं इसी प्रकार की स्थिति वाले अन्य व्यक्तियों को सब-इंन्स्पेक्टर के तौर पर उनकी प्रारम्भिक नियुक्ति की तिथि के प्रभाव से प्रोन्नति का लाभ प्रदान किया गया था और परिस्थितिजन्य आदेश भी पारित कर दिए गए थे और इस प्रकार प्रत्यर्थी ने स्वयं ही माननीय उच्च न्यायालय के निर्णय को क्रियान्वित किया है और वे याची को विभेदित नहीं कर सकते और इस लाभ से इसे वंचित नहीं कर सकता। अन्यथा भी इस न्यायालय ने निर्णयों की एक श्रृंखला से इसी प्रकार की अवस्थिति वाले व्यक्तियों के रिटों को अनुज्ञात किया है।

13. मामले के तथ्यों एवं परिस्थतियों में यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और प्रत्यर्थीगण को 30.4.1981 के प्रभाव से वरीयता की गणना करने और पारिणारिक लाभ प्रदान करने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

मेसर्स अवेन्तिस फार्मा लिमिटेड

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

W.P.(C) No. 5771 वर्ष 2008. 15 मई, 2009 को विनिश्चित।

औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940—धारा 23—औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियमावली, 1945—नियम 66—अनुज्ञप्ति का रद्दकरण एवं निलम्बन—नियम 66 आदेश देता है कि अनुज्ञप्ति रद्द करने से पूर्व, अनुज्ञापन प्राधिकारी को अनुज्ञप्ति को रद्द करने के प्रस्ताव की घोषणा करते हुए कारण बताओ नोटिस देना है। (पैरा 15 से 17 एवं 20 से 22)

अधिवक्तागण.—Mr. Anil Kumar Sinha, For the Petitioner; Mr. A. Allam, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ सिन्हा एवं प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ आलम को सुना। विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से, इस मामले को स्वीकृति के प्रक्रम पर ही विचारण के लिए लिया गया है।

2. इस रिट आवेदन में राज्य औषधि नियंत्रक एवं अनुज्ञप्ति प्राधिकारी (प्रत्यर्थी सं॰ 3) द्वारा पारित दिनांक 6.8.2008 (परिशिष्ट-11) के आदेश को चुनौती दी गयी है जिसके द्वारा औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 एवं इसके अधीन बनी नियमावली के प्रावधानों के अधीन याची को प्रदत्त अनुज्ञप्ति रद्द कर दी गयी है। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 20.9.2008 (उपाबन्ध-15) के आदेश को भी चुनौती दी गयी है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 3 के आक्षेपित आदेश के विरूद्ध दाखिल याची की अपील अस्वीकार कर दी गयी थी।

दोनों आक्षेपित आदेशों के अभिखंडन की प्रार्थना करने के अतिरिक्त, याची ने आक्षेपित आदेशों के प्रवर्तन को स्थगित करने वाले एक आदेश की भी प्रार्थना की है एवं विकल्प में, प्रत्यर्थीगण को यह निर्देश देने, कंपनी द्वारा विनिर्मित अन्य औषधियों, इस रिट आवेदन के अंतिम निस्तारण होने तक झारखण्ड राज्य में विक्रय एवं वितरण करने की अनुमति याची को दें सिवाय उस औषधि के जो अभिकथित रूप से उस मानक तक नहीं पाया गया है।

3. याची औषधि एवं फार्मास्यूटिकल निर्मितियों एवं सक्रिय फार्मास्यूटिकल अवयवों के विनिर्माण, विक्रय एवं वितरण के कारोबार चला रही कंपनी अधिनियम के अधीन निबंधित एक कंपनी है एवं झारखण्ड राज्य में इसकी औषधियों के थोक कारोबार के लिए औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 एवं इसके अधीन बनी नियमावली के अधीन अपेक्षित सभी संगत अनुज्ञप्ति धारण करता है।

याची की कंपनी अपनी विभिन्न अनुज्ञप्तियों के अधीन कुल 130 औषधियों का विनिर्माण करती है जिसमें से एक है टारीविड, I.V. 100 ml.

4. औषधि निरीक्षक, राँची, पत्र सं॰ 316 दिनांकित 8.3.2008 के अन्तर्गत, याची-कंपनी द्वारा विनिर्मित बैच सं॰ 237007, 236015 एवं 236019 के ऑफ्लोक्सासिन इन्फ्युजन के नमुनों के प्रयोगशाला परीक्षणों के सम्बन्ध में सरकारी विश्लेषक, सेन्ट्रल ड्रग लेबोरेटरी, कोलकाता के टेस्ट रिपोर्ट संख्या NW/6430, 6433 एवं 6436 की प्रतियाँ अग्रसारित की, इसमें यह कहते हुए कि औषधि मानक गुणवत्ता का नहीं पाया गया था।

5. रिपोर्ट के अनुसरण में, औषधि निरीक्षक, दिनांक 12.3.2008 के अपने पत्र के माध्यम से, याची से उपरोक्त औषधि को बाजार से वापस लेने का निर्देश दिया था एवं याची को राज्य में उक्त उत्पाद के क्रय एवं विक्रय के विवरणों को भेजने को कहा था।

6. याची ने दिनांक 14.3.2008 के अपने पत्र के माध्यम से, सरकारी विश्लेषक के निष्कर्षों पर विवाद करते हुए एवं इस बात से आश्वशत करते हुए उत्तर दिया कि सभी तीनों बैचों के औषधियों का संदर्भ नमूना, याची की कंपनी द्वारा इसकी स्वयं की प्रयोगशाला में परीक्षित किया गया था एवं इसमें विहित सीमाओं के भीतर ऑफ्लोक्सासीन के अवयवों को मानक गुणवत्ता का होना पाया गया था। याची ने यह भी सूचित किया था कि बाजार से उपरोक्त तीनों बैचों को वापस लेने के लिए उसके द्वारा कदम उठाये गए थे। याची ने औषधि निरीक्षक द्वारा यथापेक्षित, सभी सुसंगत दस्तावेजों एवं विनिर्माण अनुज्ञप्ति की एक प्रति भी पेश की थी। याची ने औषधि निरीक्षक से भौतिक एवं रासायनिक सत्यापन के लिए उक्त तीनों नमूनों की counter parts को भी भेजने का आग्रह किया था। लेकिन नमूनों के कॉउन्टर पाटर्स याची को उपलब्ध नहीं कराए गए थे।

7. तदुपरांत याची ने औषधि निरीक्षक से एक अन्य पत्र दिनांकित 19.7.2008 को प्राप्त किया जिसके अंतर्गत याची से कतिपय अतिरिक्त सूचना एवं दस्तावेजों को उपलब्ध कराने की अपेक्षा की गयी थी। याची ने तत्परता से दिनांक 24.7.2008 एवं 29.7.2008 के अपने covering पत्र द्वारा सभी दस्तावेजों को संलग्न करते हुए सभी अपेक्षित सूचनायें उपलब्ध करायी।

8. उपरोक्त पत्र के अतिरिक्त, दिनांक 25.7.2008 के एक अन्य पत्र द्वारा, औषधि निरीक्षक ने अपने पत्र मे यथाकथित, उनके द्वारा पूछे गए पाँच प्रश्नों के सम्बन्ध में कुछ कतिपय स्पष्टीकरण उपलब्ध कराने की अपेक्षा की। याची ने पाँचों प्रश्नों के बिन्दुओं पर सूचनाओं के सभी विवरणों को उपलब्ध कराके तत्परता से उत्तर दिया।

9. तदुपरांत याची ने दिनांक 6.8.2008 के आक्षेपित पत्र प्राप्त करने तक औषधि निरीक्षक से और अधिक पत्राचार प्राप्त नहीं हुआ जिसके द्वारा उसे सूचित किया गया था कि फॉर्म 20B एवं 21B में याची की अनुज्ञप्ति सं॰ RAN/291/01 एवं RAN/291A/2001को तत्काल प्रभाव से रद्द कर दिया गया था एवं पत्र में, याची को सूचित किया गया था कि औषधि निरीक्षक, राँची ने इसी मुद्दे पर याची एवं अन्य लोगों के विरूद्ध मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, राँची के न्यायालय में एक आपराधिक परिवाद दर्ज किया था।

10. रद्दकरण के आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर, याची ने अपील सं॰ 1 वर्ष 2008 के माध्यम से औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियमावली, 1945 (एतस्मिनपश्चात् नियमावली के तौर पर निर्दिष्ट) के नियम 66(2) के प्रावधानों के अधीन एक अपील दायर किया।

लेकिन, याची की अपील अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा दिनांक 28.9.2008 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से खारिज किया गया था।

11. आक्षेपित आदेशों की आलोचना करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ सिन्हा ने अन्य के साथ-साथ निम्नलिखित आधार पेश किए:-

(i) रद्दकरण का आदेश अनुज्ञप्ति के प्रस्तावित रद्दकरण के विरूद्ध अपना स्पष्टीकरण पेश करने के लिए याची को कोई कारण बताओ नोटिस निर्गत किए बिना एवं इसके बारे में सूचित किए बिना पारित किया गया है कि अनुज्ञप्ति की किन शर्तों का उल्लंघन याची ने किया था एवं इस प्रकार, आक्षेपित आदेश औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियमावली, 1945 के नियम 66 के प्रावधानों के पूर्ण उल्लंघन में पारित किया गया है।

(ii) रद्दकरण का आक्षेपित आदेश संपूर्णतः भी अविधिमान्य एवं मनमाना है एवं नियमावली के नियम 66 के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है क्योंकि, यद्यपि सरकारी विश्लेषक की रिपोर्ट में यथा इंगित अभिप्रायित त्रुटि मात्र एक औषधि के सम्बन्ध में ही है अर्थात् टेरिविड I.V., फिर भी सम्पूर्ण अनुज्ञप्ति रद्द कर दी गयी है, लेकिन अनुज्ञप्ति के अन्तर्गत याची को कुल 129 अन्य औषधियों के थोक विक्रय के लिए प्राधिकार प्रदान किया गया था जिसके सम्बन्ध में कोई भी त्रुटि पायी या अभिकथित नहीं की गयी थी।

(iii) औषधि निरीक्षक द्वारा औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम की धारा 23 के प्रावधानों के अंतर्गत यथा अधिकथित आज्ञापक प्रक्रिया का पालन किए बिना निरीक्षण नहीं कराया गया है।

12. प्रथम एवं द्वितीय आधारों का विस्तार करते हुए, श्री ए॰ के॰ सिन्हा ने तर्क दिया कि औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1945 के नियम 66 के प्रावधान अनुज्ञप्ति को पूर्णरूप से या इसके कुछ पदार्थों के सम्बन्ध में जिससे यह सम्बन्धित है, रद्द या निलम्बित करने की शक्ति अनुज्ञापन प्राधिकारी में निहित करता है। नियम के प्रावधानों के अनुसार, अनुज्ञप्ति केवल तभी रद्द या निलम्बित की जा सकती है जब अनुज्ञप्तिधारी अनुज्ञप्ति की शर्तों या अधिनियम या इसके अन्तर्गत विरचित नियमावली के प्रावधानों में से किसी का भी अनुपालन करने में असफल रहा हो। नियमावली यह भी अनुबद्ध करता है कि अनुज्ञप्ति को रद्द या निलम्बित करने से पूर्व, अनुज्ञप्तिधारी को इसके बारे में कारण बताओ नोटिस दिए जाने का एक अवसर दिया जाना चाहिए कि इस प्रकार का कोई आदेश क्यों नहीं पारित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, रद्दकरण के आदेश में रद्दकरण का कारण बताया जाना चाहिए एवं साथ ही इसका कारण भी कि क्यों संपूर्ण अनुज्ञप्ति रद्द किया गया है एवं इसके कुछ अवयवों के सम्बन्ध में नहीं, जिससे यह सम्बन्धित है।

विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि याची को उपरोक्त नियमावली के अधीन यथापेक्षित कोई कारण बताओ नोटिस कभी भी निर्गत नहीं किया गया था और न ही अनुज्ञप्ति के प्रस्तावित रद्दकरण के बारे में सूचित किया गया था और न ही यह स्पष्ट करने का कोई अवसर प्रदान किया गया था कि क्यों अनुज्ञप्ति रद्द नहीं किया जाना चाहिए।

विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि अन्यथा भी, याची किसी मिलावटी औषधि के या तो विनिर्माण या विक्रय का अभियुक्त नहीं रहा है। एकमात्र अभियोजन जैसा कि दाण्डिक परिवाद से प्रतीत होगा, यह है कि सरकारी विश्लेषक की रिपोर्ट ने यह इंगित किया था कि ऑफ्लोक्सासिन का गुणवत्ता मानक स्तर का नहीं पाया गया था। ऐसी एक त्रुटि को, यदि कोई हो, विनिर्माता द्वारा ही दूर किया जा सकता था परन्तु त्रुटि को, यदि कोई हो, दूर करने का कोई अवसर याची को प्रदान नहीं किया गया था। विद्वान अधिवक्ता कहते हैं कि संपूर्ण अनुज्ञप्ति का रद्दकरण एक अति कठोर दण्ड है जो अभिकथित त्रुटि की गंभीरता के लिए अत्यधिक अननुपातिक है।

13. इस मुद्दे के उत्तर में, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ आलम प्रति शपथपत्र के कई पैराग्राफों को निर्दिष्ट करके स्पष्ट करते हैं कि याची से इप्सित सूचनाओं में औषधि निरीक्षक ने न केवल सरकारी विश्लेषक की रिपोर्ट संप्रेषित की थी अपितु याची से उनके द्वारा इप्सित कई सूचनाओं के विवरण उपलब्ध कराये जाने की अपेक्षा की थी एवं कई पत्रों में कहा था कि सरकारी विश्लेषक की रिपोर्ट के आधार पर याची के विरूद्ध विधिपूर्ण कार्रवाई अभिप्रेत किया गया है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यह नियमावली के नियम 66 की अपेक्षाओं का पर्याप्त अनुपालन के माध्यम से था।

14. औषधि एवं प्रसाधन सामग्री नियमावली, 1945 का नियम 66, जो अनुज्ञप्ति के रद्दकरण एवं निलम्बन का वर्णण करता है, निम्नवत पठित है:-

"(1) अनुज्ञापन प्राधिकारी अनुज्ञप्तिधारी को इसका कारण बताओ नोटिस का उत्तर देने का अवसर देने के उपरांत कि ऐसा आदेश क्यों नहीं पारित किया जाना चाहिए, इसके कारणों का कथन करने वाले एक लिखित आदेश द्वारा इस भाग के अधीन निर्गत अनुज्ञप्ति को या तो पूर्णतः या कुछ पदार्थों के सम्बन्ध में जिससे या सम्बन्धित है रद्द या ऐसी अवधि के लिए निलम्बित कर सकता है जैसा वह उचित समझे यदि उसकी राय में, अनुज्ञप्तिधारी अनुज्ञप्ति की शर्तों या अधिनियम या इसके अन्तर्गत बनी नियमावली के प्रावधानों का अनुपालन करने में असमर्थ हुआ है:-

परन्तु यह कि जहाँ ऐसी असफलता या उल्लंघन किसी अभिकर्ता या कर्मचारी की ओर से हुआ हो तो अनुज्ञप्ति को रद्द या निलम्बित नहीं किया जायगा, यदि अनुज्ञप्तिधारी अनुज्ञापन प्राधिकारी के संतुष्टिकरण में लिए यह प्रमाणित कर देता है–

(a) कि उसके द्वारा या यदि अनुज्ञप्तिधारी कोई फर्म या कंपनी है तो फर्म के किसी भागीदार द्वारा या कंपनी के किसी निदेशक द्वारा कोई कार्य या लोप संस्थित या मौनानुमति नहीं दिया गया था; या

(b) कि वह या उसका अभिकर्ता या कर्मचारी उस तिथि से बारह महीनों के भीतर इसी प्रकार के कृत्य या लोप का दोषी नहीं रहा था जिस तिथि को प्रश्नगत कृत्य या लोप घटित हुआ, या जहाँ उसका अभिकर्ता या कर्मचारी ऐसे किसी कृत्य या लोप का दोषी रहा था, वहाँ अनुज्ञप्तिधारी को उस पूर्वतर कृत्य की जानकारी नहीं थी या युक्तिसंगत रूप से नहीं हो सकती थी, या

(c) कि यदि यह कृत्य या लोप निरन्तर होने वाला कृत्य या लोप था, तो उसे उस पूर्वतर कृत्य या लोप की जानकारी नहीं थी या युक्तिसंगत रूप से नहीं हो सकती थी; या

(d) कि उसने यह सुनिश्चित करने के लिए सम्यक् तत्परता दिखाई थी कि अनुज्ञप्ति की शर्तों या अधिनियम या इसके अन्तर्गत बनी नियमावली के प्रावधानों का पालन किया गया था।

(2) कोई अनुज्ञप्तिधारी जिसकी अनुज्ञप्ति निलम्बित या रद्द की गयी है, उप-नियम (1) के अधीन, आदेश की तिथि से तीन माह के भीतर राज्य सरकार के उस आदेश के विरूद्ध अपील करेगा, जो इसे विनिश्चित करेगा।''

15. इस नियम के पठन मात्र से, यह प्रकट होगा कि यह नियम एक आज्ञापक प्रक्रिया अधिकथित करता है जिसके अधीन अनुज्ञप्ति के रद्दकरण से पूर्व अनुज्ञापन प्राधिकारी को अनुज्ञप्ति को रद्द करने के प्रस्ताव करने की घोषणा करते हुए, इसके लिए कारण बताते हुए एवं उत्तरों के माध्यम से इसे स्पष्ट करने की अनुज्ञप्तिधारी से अपेक्षा करते हुए एक लिखित कारण बताओ नोटिस देनी है कि अनुज्ञप्ति क्यों रद्द नहीं की जानी चाहिए।

यह प्रावधान यह भी अधिकथित करता है कि अनुज्ञापन प्राधिकारी सम्पूर्ण अनुज्ञप्ति को या इसके कुछ पदार्थों के सम्बन्ध में जिससे यह सम्बन्धित है, रद्द या निलम्बित कर सकते हैं, यदि उनकी राय में अनुज्ञप्तिधारी अनुज्ञप्ति की किसी शर्तों का या अधिनियम या इसके अन्तर्गत बनी नियमावली के प्रावधानों का अनुपालन करने में असफल हुआ हो। इसका अभिप्राय यह है कि अनुज्ञापन प्राधिकारी को सर्वप्रथम अनुज्ञप्ति के उस विनिर्दिष्ट शर्त या अधिनियम या इसके अन्तर्गत बनी नियमावली के किन्ही प्रावधानों की पहचान करनी है जिसका अनुज्ञप्तिधारी ने अभिकथित रूप से उल्लंघन किया है एवं तद्नुसार इसकी सूचना देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, अनुज्ञापन प्राधिकारी को यह भी विनिश्चित करनी है कि क्या अनुज्ञप्ति को संपूर्णत: या कुछ पदार्थों के सम्बन्ध में जिससे यह सम्बन्धित है, रद्द किया जाना चाहिए एवं ऐसे विनिश्चय पर अपने कारणों को बताना है।

16. स्वीकार्यत:, याची को ऐसा कोई कारण बताओ नोटिस निर्गत नहीं किया गया था एवं आक्षेपित आदेश न तो अनुज्ञप्ति के रद्दकरण का ही कोई कारण विनिर्दिष्ट करता है और न ही कोई विवेचन कि संपूर्ण अनुज्ञप्ति को जो कई औषधियों से सम्बन्धित है, क्यों रद्द किया गया है या यह भी इंगित नही करता है कि ऐसी कठोर कार्रवाई करने के लिए याची ने किन शर्तों का उल्लंघन किया है।

श्री ए॰ आलम द्वारा निर्दिष्ट पत्र के पठन मात्र से भी यह स्पष्ट होगा कि इनमें औषधि निरीक्षक द्वारा किए गए कतिपय प्रश्नों के स्पष्टीकरण की मात्र मांग की गयी है। ऐसे प्रश्न प्रत्यक्षत: औषधि निरीक्षक द्वारा नियमावली के नियम 51 के प्रावधानों के अधीन यथापेक्षित प्रारम्भिक जाँच के संचालन के अनुक्रम में किए गए हैं एवं किए गए प्रश्नों पर अनुज्ञप्तिधारी से प्राप्त उत्तर प्राप्त होने पर

ही कोई अंतिम विनिश्चय लिया जा सकता है। मेरी राय में, अधिनियम के किसी भी विस्तार द्वारा, ऐसे पत्र को नियमावली के नियम 66 में यथा परिकल्पित कारण बताओ के तौर पर अर्थान्वित नहीं किया गया है।

17. उक्त परिचर्चाओं के आलोक में, अनुज्ञप्ति के रद्दकरण का आक्षेपित आदेश विधिसम्मतता के परीक्षण में खरा नहीं उतरता है एवं इस प्रकार इसे कायम नहीं रखा जा सकता है।

श्री ए॰ के॰ सिन्हा अधिनियम की धारा 23 के प्रावधानों को निर्दिष्ट करके तृतीय आधार का विस्तार करना चाहेंगे जो किसी औषधि का नमूना लेने के लिए औषधि निरीक्षक द्वारा अनुपालन की जाने वाली आज्ञापक प्रक्रिया को अधिकथित करता है। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि जहाँ यह प्रक्रिया आदेश देता है कि नमूना एकत्रित करते समय निरीक्षक नमूने का उचित मूल्य निर्धारित करेंगे एवं इसकी एक लिखित अभिस्वीकृति अभिप्राप्त करेंगे। नमूने को उस व्यक्ति की उपस्थिति में एकत्रित किया जाना है जिसके कब्जे से नमूना लिया गया है एवं वे ऐसे व्यक्ति को सूचित करेंगे कि वे नमूने को रसायनिक विश्लेषण के प्रयोजन से एकत्रित कर रहे हैं। यह प्रक्रिया यह भी आदेश देता है कि निरीक्षक नमूना लेकर इसे चार भागों में विभाजित कर देंगे एवं इसे उपयुक्त रूप से सील एवं चिन्हित करेंगे एवं उस व्यक्ति को भी इस प्रकार सील एवं चिन्हित किए गए सभी या इसके किसी भागों पर सील लगाने एवं चिन्हित करने की अनुमति देंगे। निरीक्षक इस प्रकार से विभाजित ऐसे नमूने के एक भाग को उस व्यक्ति को प्रत्यावर्तित करने की भी अपेक्षा की जाती है जिससे वह इसे लेते हैं एवं शेष में से वह एक नमूने को सरकारी विश्लेषक को परीक्षण या विश्लेषण हेतु अग्रसारित कर सकेंगे। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि वर्तमान मामले में अपेक्षित आज्ञापक प्रावधानों में से कोई भी औषधि निरीक्षक द्वारा संदर्भित औषधि का नमूना एकत्रित करते समय अपनाया नहीं गया था और न ही नमूने को याची के किसी प्राधिकृत प्रतिनिधि की उपस्थिति में इतने भाग में विभाजित एवं सील किया गया था और न ही एक नमूने की आपूर्त्ति याची को की गयी थी। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, सम्पूर्ण निरीक्षण एवं नमूने का एकत्रीकरण एवं यहाँ तक कि परीक्षण रिपोर्ट भी अधिनियम की धारा 25 के अधीन यथा अधिकथित आज्ञापक प्रक्रिया को अपनाने में औषधि निरीक्षक की ओर से असफलता के कारण विधि में दूषित होगा, क्योंकि इसने याची के बचाव में उसके प्रति गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव कारित किया है।

18. इस आधार के उत्तर में, श्री ए॰ आलम निवेदन करेंगे कि अधिनियम की धारा 23 के अधीन यथा अधिकथित प्रक्रिया वर्तमान मामले में प्रयोज्य नहीं है क्योंकि प्रश्नगत औषधि फॉर्म फिल सील (FSS) तकनीक के अधीन विनिर्मित एक कीटाणुरहित एवं सील किया हुआ उत्पाद है। एकबार जब सील टूट जाता है, तो उत्पाद अपनी कीटाणुरहित एवं अंततः गुणवत्ता प्रतिधारित रखने में असफल होगा। विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि धारा 23 के अधीन लिखित प्रावधानों द्वारा यथापेक्षित, उसी औषधि के बैच सं॰ 237007 से सम्बद्ध नमूने के एकत्रीकरण के लिए इस प्रक्रिया का का सम्प्रेक्षण किया गया था।

19. याची के विद्वान अधिवक्ता प्रत्यर्थीगण के इस अभिमत को भ्रामक एवं गलत मार्ग दिखाने वाला बताकर एवं यह प्रकथित करके इसपर प्रतिवाद करेंगे कि यदि नमूने को बैचवार एकत्रित किए जाने का आशय था, तो उसी बैच से कई नमूनों को एकत्रित किया जाना चाहिए, एवं तदुपरांत, इसे सील एवं चिन्हित किया जाना चाहिए था एवं नमूनों में से एक को उस व्यक्ति को प्रत्यावर्तित किया जाना चाहिए था जिससे नमूना एकत्रित किया गया था।

20. परस्पर विरोधी निवेदन से यह प्रतीत होगा कि यह मुद्दा उस रीति के सम्बन्ध में विनिर्दिष्ट साक्ष्य का पेश किया जाना अंतग्रस्त करता है जिसमें नमूना एकत्रित किया गया था एवं उस प्रक्रिया को जिसका पालन औषधि निरीक्षक द्वारा नमूना एकत्रित करते समय अपनाया नहीं अपनाया गया था एवं इस प्रकार उन तथ्यों पर विवाद अंतर्ग्रस्त करता है जिसपर विचार करना यह न्यायालय उचित नहीं समझेगा। जैसा कि मैंने उपर में पहले ही सम्प्रेक्षित किया है कि आक्षेपित आदेश को जिसके द्वारा

अनुज्ञप्ति रद्द किया गया था, नियमावली के नियम 66 के अधीन अधिकथित प्रक्रिया के विपरीत होने के कारण कायम नहीं रखा जा सकता है एवं इसे एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

21. अपीलीय प्राधिकारी का आक्षेपित आदेश, जैसा कि इसके परिशीलन मात्र से प्रकट होगा, मामले के तथ्यपरक पहलु एवं उचित परिप्रेक्ष्य पर विचार नहीं करता है एवं एक गलत निष्कर्ष अभिलिखित करता है कि याची ने जल्दबाजी में कुटिल हेतुक से बाजार से औषधि को वापस ले लिया था, याची के इस दावे की उपेक्षा करते हुए कि याची को सम्बोधित पत्र के माध्यम से, यह औषधि निरीक्षक ही थे जिन्होंने अपने पत्र के माध्यम से याची को तत्काल बाजार से औषधि वापस ले लेने का निर्देश दिया था। अपीलीय प्राधिकारी का आक्षेपित आदेश प्रत्यक्षत: विवेक की अप्रयोज्यता से ग्रस्त है एवं इसलिए, अभिलिखित निष्कर्ष को कायम नहीं रखा जा सकता है।

22. उक्त परिचर्चाओं के आलोक में, मैं इस आवेदन में गुणागुण पाता हूँ तद्नुसार, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। दोनों ही आक्षेपित आदेशों (परिशिष्ट 11 एवं 15) को अपास्त किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

लाला मिश्रा एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

दां॰ पुनरीक्षण सं॰ 733 वर्ष 2008. 14 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—उन्मोचन के लिए याचिका—अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक—अभिनिर्धारित, अन्यत्र होने के अभिवाक् अभियुक्त के बचाव के समर्थन में प्रस्तुत किया जाना साक्ष्य पर आधृत एक तथ्य होता है—दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन प्रारम्भिक चरण में उन्मोचन के लिए ऐसे अभिवाक् पर विचार नहीं किया जा सकता—किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.—Mr. Binod Kumar, For the Petitioners; Mr. Md. Hatim, For the State.

आदेश

जी॰ आर॰ संख्या 417 वर्ष 2007 में अनुमंडल न्यायिक दण्डाधिकारी, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 31.7.2008 के आदशे के विरूद्ध वर्तमान दाण्डिक पुनरीक्षण निर्दिष्ट है, जिसके द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन याचीगण के उन्मोचन के लिए उनकी याचिका को अस्वीकृत कर दिया गया था।

2. अभियोजन वृतांत, संक्षेप में यह था कि 31.3.2003 को लगभग 6:30 बजे अपराह्न में जब सूचनादाता तेलगड़िया मोड़ पर अन्य गवाहों के साथ बैठा था तो उसे याचीगण और किसी जितेन्द्र नाथ मिश्र द्वारा घेर लिया गया और पकड़ लिया गया था। प्रधान अभियुक्त जितेन्द्र नाथ मिश्र के विरूद्ध यह विनिर्दिष्ट रूप से अभिकथित किया गया था कि उसने हत्या कारित करने के आशय से, सूचनादाता पर छुरे से वार करने का प्रयत्न किया, परन्तु सूचनादाता ने दांये-हाथ से इसे बचा लिया और इस कार्य में उसे उसके दाएं हाथ में कटने की चोटे आई। तब जितेन्द्र नाथ मिश्र ने अपना हमला दुहराया जिसपर सूचनादाता ने हमले से बचने के लिए अपने बांए हाथ का इस्तेमाल किया परन्तु उसकी बांयी अंगुली पर चोटें आई। याचीगण के विरूद्ध अभिकथित किया गया कि वे सूचनादाता को पकड़े हुए थे जबकि प्रधान अभियुक्त सूचनादाता की जान लेने का प्रयास कर रहा था। संत्रास करने पर गवाह घटनास्थल पर पहुँच गए। फिर भी, यह विनिदिष्ट रूप से अभिकथित किया गया कि सूचनादाता के पास से कलाई

घड़ी छिन लेने के उपरांत सपन मिश्रा (याची संख्या 3) भाग निकला और यह कि उसकी हत्या करने के सामान्य आशय से यह घटना अभियुक्तों द्वारा अंजाम दी गई थी।

3. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि घटना उस प्रकार घटित नहीं हुई थी जैसा कि पंकज कुमार राय द्वारा बताया गया था। अभिकथन के उलटे अभिकथित घटना की तिथि एवं समय पर, सूचनादाता किसी अन्य विक्रम राय के साथ अभियुक्त जितेन्द्र नाथ मिश्रा की पान दुकान पर आया था और झड़प के अनुक्रम में, सूचनादाता ने दर्पण तोड़ दिया, जो अभियुक्त जितेन्द्र नाथ मिश्र की पान दुकान में लटका था और आपत्ति करने पर उन्होंने जितेन्द्र नाथ मिश्र को मारा। सत्य तो यह है कि याचीगण घटना के अभिकथित स्थान पर नहीं थे, इसलिए, अभिकथित घटना में उनकी भागीदारी का प्रश्न नहीं उठता था। अन्वेषण के अनुक्रम में इस तत्व पर अन्वेषण पदाधिकारी द्वारा विचार किया गया था और अनुमंडल पुलिस पदाधिकारी, बोकारो द्वारा इसका समर्थन किया गया था जिसके पर्यवेक्षण नोट पर केवल जितेन्द्र नाथ मिश्र के विरूद्ध अभियोग-पत्र दाखिल किया गया और इसमें याचीगण को विचारण के लिए आगे नहीं भेजा गया था।

4. विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि चूंकि अन्वेषण के अनुक्रम में याचीगण की संलिप्तता नहीं पाई जा सकी अत: भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 341/323/324/504 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए अन्वेषण पदाधिकारी ने केवल जितेन्द्र नाथ मिश्र के विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया। परन्तु विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, बोकारो ने भारतीय दण्ड संहिता के पूर्वोक्त धाराओं के अधीन सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध संज्ञान लिया इसका मूल्यांकन किए बगैर कि केस डायरी में याचीगण की संलिप्तता अभिकथित करने वाली कोई सामग्री उनके विरुद्ध नहीं थी।

5. विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने ऐसे तर्क का विरोध किया और निवेदन किया कि याचीगण ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन अपनी याचिका रखते हुए अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् किया था, और विद्वान अनुमंडल न्यायिक दण्डाधिकारी, बोकारो यह सम्परीक्षित करने में न्यायसंगत थे कि अन्यत्र उपस्थित होने के अभिवाक् पर विचारण के अनुक्रम में विचार किया जा सकता है, जब याचीगण को साक्ष्य प्रस्तुत करने को कहा जाएगा।

6. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक् जो उन्मोचन के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन याचीगण द्वारा अपनी याचिका रखते हुए लिया गया था, आरोप को विरचित करने के सुसंगत समय पर विद्वान अनुमंडल न्यायिक दण्डाधिकारी, बोकारो द्वारा उचित रूप से विचार नहीं किया गया था। अन्यत्र उपस्थित होने का अभिवाक एक अभियुक्त के बचाव के समर्थन में पेश किया जाने वाला एक तथ्य आधृत साक्ष्य है और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 239 के अधीन प्रारंम्भिक चरण में उन्मोचन के लिए ऐसे अभिवाक् पर विचार नहीं किया जा सकता है।

7. एक ऐसे अभियुक्त जिसे प्रथम श्रेणी के न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा विचारणयोग्य अभिकथित अपराध के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन आरोप-पत्र में विचारण के लिए आगे नहीं भेजा गया था, को सम्मन निर्गत करने में विद्वान अनुमंडल न्यायिक दण्डाधिकारी, बोकारो अपनी सक्षमता के भीतर थे। मामला यह नहीं था कि उन्होंने अभियुक्त के उस अभिकथित अपराध के लिए सम्मन किया था जिसका विचारण अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा किया जाना था। उस स्थिति में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के अधीन अधिकारिता केवल सत्र न्यायाधीश के पास थी।

8. उन परिस्थितियों में, मैं वर्तमान दाण्डिक पुनरीक्षण में कोई गुण नहीं पाता, जो जी॰ आर॰ संख्या 417 वर्ष 2007 में अनुमंडल न्यायिक दण्डाधिकारी, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 31.7.2008 के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप को आवश्यक बनाता हो।

9. तद्नुसार, यह दाण्डिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी एवं प्रशांत कुमार, न्यायमूर्तिगण

सुजीत कुमार तिवारी उर्फ मुन्ना

बनाम्

झारखंड राज्य

दाण्डिक अपील (डी॰बी॰) सं॰ 534 वर्ष 2002. 27 जून 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 562 वर्ष 1998 में श्री असीम कुमार दत्ता, सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 30.7.2002 एवं 5.8.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 218—अपर सत्र न्यायाधीश ने विभिन्न समय पर घटित घटना, साक्षियों के पृथक समूह एवं एक ही सम्व्यवहार से उद्भूत न होने वाले वाले दो भिन्न मामलों को समामेलित किया–इसका औचित्य–अभिनिर्धारित, सुभिन्न अपराधों के लिए संयुक्त विचारण जो एक ही सम्व्यवहार के अनुक्रम में कारित नहीं किए गए थे, एक गम्भीर, दूर न किए जाने वाली अनियमितता एवं अविधिमान्यता है जिसे अपीलीय प्रक्रम पर दूर नहीं किया जा सकता है–दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त एवं मामलों को पृथक विचारण के लिए प्रतिप्रेषित किया गया। (पैरा 10 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Dilip Kumar Prasad, For the Appellant; Mr. Shekhar Sinha, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील एस॰ टी॰ सं॰ 562 वर्ष 1998 में सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 30.7.2002 एवं 5.8.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन एवं आयुध अधिनियम की धाराएँ 25(A) एवं 27 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास भुगतने, आयुध अधिनियम की धारा 25(A) के अधीन अपराध के लिए 3 वर्षों का कठोर कारावास एवं आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए 3 वर्षों के कठोर कारवास से दण्डित किया गया है।

2. यह प्रतीत होता है कि किसी नन्द किशोर प्रसाद का फर्दबयाान 15.4.1998 को सदर थाना, हजारीबाग के उपनिरीक्षक राजीव कुमार द्वारा अभिलिखित किया गया था जिसमें उक्त नन्द किशोर प्रसाद ने कहा था कि 14.5.1998 को लगभग 11.30 बजे पूर्वाह्न में जब वह अपने कार्यालय में कार्य कर रहा था तो उसकी बड़ी बेटी भारती भूषण ने उसे टेलीफोन पर सूचित किया कि किसी व्यक्ति ने खीर गाँव तालाब के निकट स्थित खीर गाँव पक्की सड़क पर उसकी छोटी बेटी को आग्नेयायुध की उपहति कारित की है। उपरोक्त सूचना प्राप्त करके, वह घटनास्थल की ओर दौड़ा एवं वहाँ से वह अपनी घायल पुत्री को ईलाज के लिए अस्पताल ले गया। उसे जानकारी प्राप्त हुई कि उस व्यक्ति को जिसने आग्नेयायुध उपहतियाँ कारित की थी, पुलिस एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा पीछा किया जा रहा था जब वह मिशन अस्पताल की ओर भाग रहा था। उसने आगे कहा कि अस्पलाल में डॉक्टर ने उसकी पुत्री को मृत घोषित कर दिया। उसने आगे कहा कि उसकी पुत्री आरती भूषण को आग्नेयायुध उपहतियाँ छाती एवं पीठ पर आयी थी। तब उसने कहा कि जब वह अस्पताल में था तो पुलिस ने दोषी को घायल अवस्था में अस्पताल में लाया। उक्त दोषी को देखकर उसने उसकी पहचान सुजीत कुमार तिवारी उर्फ मुन्ना के तौर पर की जो उसके दामाद शम्भु कुमार का छोटा भाई था। जब उसने आरती की जान लेने का कारण पूछा तो सुजीत ने उत्तर दिया कि आरती भूषण ने उसके विरूद्ध उसके बड़े भाई से शिकायत की थी एवं उसके कारण उसे घर से निकाला गया था एवं उसने आरती से इसका बदला लिया है। आगे यह भी कहा गया है कि सूचनादाता को जानकारी प्राप्त हुई कि सुजीत कुमार ने पुलिस एवं अन्य

व्यक्तियों पर भी गोली चलायी थी जब वें उसका पीछा कह रहे थे एवं पुलिस ने भी जबाबी गोली चलायी थी एवं सुजीत कुमार तिवारी भी घायल हुआ था। जब पुलिस ने सुजीत कुमार को गिरफ्तार किया, तो उसके कब्जे से एक पिस्तौल एवं कटार बरामद हुआ था। उक्त फर्दबयान पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन सदर थाना केस सं॰ 200 वर्ष 1998 दर्ज किया गया था एवं पुलिस ने अन्वेषण प्रारम्भ किया।

3. यह प्रतीत होता है कि उसी दिन किसी सत्यदेव सिंह, सहायक आरक्षी उप-निरीक्षक ने सदर थाना, हजारीबाग में एक अन्य रिपोर्ट दर्ज किया था जिसमें उसने कहा था कि 14.5.1998 को लगभग 11.20 बजे पूर्वाह्न में उसने टेलीफोन पर सूचना प्राप्त की कि किसी अपराधी ने खीर गाँव, पाँडेय टोला के निकट आग्नेयायुध उपहति कारित करके एक लड़की को घायल कर दिया है। उपरोक्त सूचना प्राप्त करके, वह अन्य पुलिसकार्मिकों के साथ तत्काल घटनास्थल की ओर दौड़ा। जब वह बड़का गाँव रोड में स्थित सलीम ताल पर पहुँचा तो उसे जानकारी प्राप्त हुई कि उस दोषी को जिसने भागने की कोशिश करते समय लड़की पर गोली चलायी थी, बड़ी बाजार, ग्वाला टोली में ग्रामीणों द्वारा घेर लिया गया है। जब वह उस सूचना पर वहाँ पहुँचा तो उसे बताया गया कि दोषी सुधीर बोस के मकान की चहारदीवारी के झाड़ियों में छिपा था एवं उसने उसका पीछा करने वाले लोगों पर चार बार गोलीयां चलायी थी। जब सूचनादाता ने उसकी तलाश प्रारम्भ की, तो दोषी ने उसकी हत्या कारित करने के आशय से उसपर गोलीयां चलायी थी परन्तु उसने एक दीवार का शरण लेकर स्वयं को बचा लिया था। बाद में, सूचनादाता एवं अन्य पुलिस कार्मिकों ने अभियुक्त को घेर लिया एवं गिरफ्तार करने की कोशिश की परन्तु दोषी ने पुनः उनलोगों पर गोली चलायी। बदले में, सूचनादाता ने अपनी सर्विस रिवॉल्वर से तीन बार गोलीयां चलायी एवं तदुपरांत दोषी को गिरफ्तार एवं काबू में किया गया था। परिप्रश्न किए जाने पर, दोषी ने अपना नाम सुजीत कुमार तिवारी के तौर पर प्रकट किया। तलाशी लिए जाने पर, उपरोक्त सुजीत कुमार तिवारी के कब्जे से, एक देशी पिस्तौल एवं एक कटार बरामद किए गए थे एवं उन्हें साक्षियों की उपस्थिति में अभिग्रहित किया गया था। दोषी को बुलेट उपहति आई थी। उसे ईलाज के लिए हजारीबाग सदर अस्पताल लाया गया था। सत्यदेव सिंह के उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर, सदर थाना केस सं॰ 201 वर्ष 1998 दिनांकित 14.5.1998 को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 307, 324, 323 एवं आयुध अधिनियम की धाराएँ 25(1-a) एवं 27 के अधीन संस्थित की गयी थी।

4. यह प्रतीत होता है कि दोनों मामलों का अन्वेषण पृथक-पृथक हुआ था एवं दो पृथक जी॰ आर॰ केस संस्थित किया गया था जो जी॰ आर॰ केस सं॰ 872 वर्ष 1998 एवं 873 वर्ष 1998 था। अन्वेषण के समाप्त होने पर, पुलिस ने दो पृथक आरोपपत्र पेश किया। आक्षेपित निर्णय के पैराग्राफ 5 पर, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने नोटिस किया था कि सदर थाना केस सं॰ 200 वर्ष 1998 में पुलिस ने आरोपपत्र में 12 साक्षियों को उद्धृत किया था, जबकि सदर थाना केस सं॰ 201 वर्ष 1998 में 10 साक्षियों को साक्षी के तौर पर उद्धृत किया गया था। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा यह भी नोटिस किया गया था कि दोनों मामलों में कोई भी साक्षी उभयनिष्ठ नहीं है। संज्ञान लेने के उपरांत, मु॰ न्या॰ दं॰, हजारीबाग ने उपरोक्त दोनों जी॰ आर॰ मामलों में पारित दो भिन्न आदेशों के द्वारा दोनों मामलों को सत्र न्यायालय में सुपुर्द किया। सुपुर्दगी के उपरांत एस॰ टी॰ सं॰ 562 वर्ष 1998, सदर थाना केस सं॰ 200 वर्ष 1998 के आधार पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन एवं एस॰ टी॰ सं॰ 564 वर्ष 1998, सदर थाना केस सं॰ 201 वर्ष 1998 के आधार पर भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 307, 324, 323 एवं आयुध अधिनियम की धारा 25(1)(b) के अधीन संस्थित किया गया था।

5. एस॰ टी॰ सं 562 वर्ष 1998 में दिनांक 14.6.1999 के आदेश का परिशीलन करने पर, हम पाते हैं कि विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग ने एस॰ टी॰ सं॰ 564 वर्ष 1998 को समामेलित किया था क्योंकि उक्त केस उनके न्यायालय में लम्बित था एवं उस घटना से सम्बन्धित था जिससे एस॰ टी॰ सं॰ 562 वर्ष 1998 उत्पन्न हुआ था। अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि समामेलन के उपरांत, विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302, 307 एवं आयुध अधिनियम की धाराएँ 27 एवं 25(a) के अधीन एक संयुक्त आरोप विरचित किया गया था।

उपरोक्त सत्र विचारण सं॰ 562 वर्ष 1998 में विरचित आरोप से यह प्रतीत होता है कि धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आरोप एक ऐसे अपराध के लिए विरचित किया गया था जो आरती भूषण की हत्या के लिए खीर गाँव तालाब के निकट सिरका पक्की सड़क पर खीर गाँव में घटित हुई थी, जबकि धारा 307 के अधीन आरोप उसी स्थान पर सत्यदेव सिंह की हत्या कारित करने का प्रयास करने के लिए विरचित किया गया था। उपरोक्त दोनों प्राथमिकियों के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि आरती भूषण की हत्या खीर गाँव के निकट सिरका पक्की सड़क पर खीर गाँव में घटित हुई थी, परन्तु सत्यदेव सिंह एवं अन्य की हत्या कारित करने का प्रयास एक भिन्न स्थान अर्थात् बारी बाजार, ग्वाला टोली में स्थित किसी सुधीर बोस के मकान की चहारदीवारी के भीतर झाड़ियों में होना अभिकथित किया गया था। इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि समामेलन के उपरांत भी, आरोप उचित रूप से विरचित नहीं हुआ था।

6. दण्ड प्रक्रिया संहिता का धारा 218 निम्नवत पठित है:-

*218. **सुभिन्न अपराधों के लिए पृथक आरोप.**-(1) प्रत्येक सुभिन्न अपराध के लिए, जिसका किसी व्यक्ति पर अभियोग है, पृथक आरोप होगा और ऐसे प्रत्येक आरोप का विचारण पृथकतः किया जायेगाः*

परन्तु जहाँ, अभिव्यक्त व्यक्ति, लिखित आवेदन द्वारा, ऐसा चाहता है और मजिस्ट्रेट की राय है कि उससे ऐसे व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, वहाँ मजिस्ट्रेट उस व्यक्ति के विरूद्ध विरचित सभी या किन्हीं आरोपों का विचारण एक साथ कर सकता है।

(2) उप-धारा (1) की कोई बात धाराएँ 219, 220, 221 एवं 223 के उपबन्धों के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी।

उपरोक्त प्रावधानों के पठन से, यह स्पष्ट है कि प्रत्येक सुभिन्न अपराध के लिए जिसका कोई व्यक्ति अभियुक्त है, एक पृथक आरोप होना चाहिए एवं ऐसे प्रत्येक आरोप को पृथक-पृथक रूप से विचारित किया जाना चाहिए।

7. इस सम्बन्ध में दण्ड प्रक्रिया के सातवें संस्करण के पृष्ठ 703 पर सरकार की सुज्ञात टिप्पणी को निर्दिष्ट किया जा सकता है। यह स्पष्ट किया गया है कि सिविल वाद के समान दाण्डिक मामलों को एक साथ समामेलित एवं विचारित नहीं किया जा सकता है सिवाय संहिता द्वारा अनुज्ञात आरोपों के संयोजन के सम्बन्ध में सीमाओं के अन्तर्गत।

8. वर्तमान मामले में, सत्र विचारण सं॰ 562 वर्ष 1998 के अभिलेख के परिशीलन से, हम पाते हैं कि अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उक्त दोनों मामलों के सदृश/समामेलित विचारण की माँग करते हुए कोई आवेदन दाखिल नहीं किया गया है।

9. जैसा कि उपर में उल्लेख किया गया है, एस॰ टी॰ सं॰ 562 वर्ष 1998 एवं 564 वर्ष 1998 भिन्न-भिन्न अपराधों से समबन्धित हैं। एस॰ टी॰ सं॰ 562 वर्ष 1998 आरती भूषण की हत्या के लिए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन है जो खीर गाँव के निकट खीर गाँव पक्की सड़क पर घटित हुई थी, जबकि एस॰ टी॰ सं॰ 564 वर्ष 1998 सत्यदेव सिंह, उप-निरीक्षक की जान लेने के प्रयास से सम्बन्धित है जो बारी बाजार, ग्वाला टोली में स्थित सुधीर बोस के मकान की चहारदीवारी के भीतर झड़ियों में घटित हुई थी। दोनों अपराधों के हेतुक भी पृथक हैं। प्रथम अपराध आरती भूषण की हत्या से सम्बन्धित है क्योंकि उसने अपीलार्थी के विरूद्ध उसके बड़े भाई से शिकायत की थी, जबकि द्वितीय अपराध अर्थात् सत्यदेव सिंह की हत्या करने का प्रयास इस कारण से हुआ क्योंकि अपीलार्थी का पुलिस द्वारा पीछा किया जा रहा था। घटना का समय दोनों मामले के भिन्न हैं। एस॰ टी॰ सं॰ 562 वर्ष 1998 में अपराध 11 से 11.15 बजे पूर्वाह्न में कारित किया गया था जबकि एस॰ टी॰ सं॰ 564 वर्ष 1998 में अपराध 12 बजे दोपहर में कारित किया गया था। इस प्रकार, हम पाते हैं कि दोनों ही केस सुभिन्न हैं एवं एक ही सम्व्यवहार में कारित नहीं किए गए हैं। उपरोक्त परिस्थितियों के अधीन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 218 के अनुसार, विचारण न्यायालय के लिए दोनों ही मामलों में पृथक आरोप विरचित करना अनिवार्य होगा एवं ऐसे प्रत्येक आरोप का विचारण पृथक-पृथक रूप से किया जाएगा।

10. यह सुस्थापित है कि वैसे सुभिन्न अपराधों के लिए आरोपों का संयुक्त विचारण एक अवैधता है जो एक ही सम्व्यवहार के अनुक्रम में कारित नहीं किया गया है। आक्षेपित निर्णय में, हम पाते हैं कि विद्वान प्रतिपक्ष अधिवक्ता ने इस बिन्दु को विनिर्दिष्ट रूप से उठाया था कि एस॰ टी॰ सं॰ 564 वर्ष 1998 में कोई आरोप विरचित नहीं किया गया है। यह दर्शाता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी प्रतिकूल प्रभावित हुआ है। आक्षेपित निर्णय से हम यह भी पाते हैं कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध के लिए अवर न्यायालय द्वारा कोई भी निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है।

11. इस प्रकार, हम पाते हैं कि अवर न्यायालय ने दोनों सत्र विचारणों को एक साथ समामेलित करते एवं विचारित करते समय गम्भीर अनियमितता एवं अवैधता कारित की जिसे इस अपीलीय प्रक्रम पर दूर नहीं किया जा सकता है। चूँकि अवर न्यायालय ने उपरोक्त दोनों सत्र विचारणों को विधि के विरूद्ध समामेलित करने के उपरांत, उन्हें संयुक्त रूप से विचारित करके दूर नहीं की जा सकने वाली अवैधता कारित की है, इसलिए हम पाते हैं कि यह धारा 465 के प्रावधानों द्वारा व्यावृत्त नहीं है एवं इसने प्रतिपक्ष को प्रतिकूल प्रभावित करने एवं न्याय की विफलता का अवसर उत्पन्न किया है।

12. परिणामस्वरूप, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है। दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय एवं दण्डादेश को अपास्त किया जाता है। केस को एस॰ टी॰ सं॰ 562 वर्ष 1998 एवं 564 वर्ष 1998 में आरोप को पृथक-पृथक विरचित करने एवं उपरोक्त दोनों सत्र विचारणों में पृथक विचारण कराने के निर्देश के साथ अवर न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाता है। विचारण न्यायालय को दिन-प्रतिदिन के आधार पर विचारण करने एवं इसे सकारात्मक रूप से छह माह के भीतर समाप्त करने का निर्देश दिया जाता है क्योंकि अभियुक्त लम्बे समय से अभिरक्षा में है।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

हिफजुर रहमान एवं अन्य

बनाम

जेबुन निशा एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 4280 वर्ष 2007. 23 जून, 2009 को विनिश्चित।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VI, नियम 17—वाद-पत्र का संशोधन—दो प्लॉटो को शामिल करने को छोड़कर प्रस्तावित संशोधन वाद की प्रकृति परिवर्तित नहीं करते हैं—प्रतिवादी को कोई क्षति कारित नहीं हो सकती है क्योंकि विचारण को अभी प्रारम्भ होना शेष है—संशोधन याचिका को अनुज्ञात करना न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा और कार्यवाही के बहुगणन को कम करेगा—संशोधन उचित माना जाता है जब पक्षों के बीच समूचे विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए यह आवश्यक हो। (पैरा 11)

निर्णयज विधि.—(2007) 5 SCC 602; (2008)8 SCC 511—Relied upon.

अधिवक्तागण.—Mr. S.K. Sharma, For the Petitioners; Mr. Kailash Prasad Deo, For the Respondents.

आदेश

अभिधान वाद संख्या 2/2002 में अधीनस्थ न्यायाधीश-1, चतरा द्वारा पारित दिनांक 22.3.2007 के आदेश के विरूद्ध वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गई है, जिसके द्वारा और जिसके अधीन विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश ने सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 6, नियम 17 के अधीन वादीगण/याचीगण द्वारा दाखिल संशोधन याचिका को अस्वीकृत कर दिया है।

2. तथ्य संक्षेप में निम्नांकित रूप से वर्णित है:-

इसमें के याचीगण द्वारा दाखिल एक लम्बित अभिधान वाद में एक प्रस्तावित संशोधन के लिए सि॰ प्र॰ सं॰ धारा 151 के साथ पठित आदेश 6, नियम 17 के अधीन वादी/याची की ओर से 1.8.2006 को एक संशोधन याचिका दाखिल की गई थी जो निम्नांकित रूप से वर्णित है:-

अनुसूची–I

मद संख्या 1

A. कि यह कि अनुसूची 'B' में (वाद भूमि के संबंध में), खाता सं० 13, प्लॉट संख्या 19 क्षेत्रफल 2.18 एकड़ के अन्त में और खाता संख्या 19, प्लॉट सं० 45 क्षेत्रफल 0.41 के पहले ''प्लॉट'' सं० 97 क्षेत्रफल 0.31 एकड़ और प्लॉट सं० 100 क्षेत्रफल 0.31 एकड़ अंतःस्थापित किया जाय।

B. यह कि अनुसूची (B) में, खाता संख्या 19, प्लॉट संख्या 180 क्षेत्रफल 0.40 एकड़ को सही करके "0.47 एकड़'' के तौर पर किया जाए।''

C. यह कि अनुसूची "B" में, खाता संख्या 37, प्लॉट सं० 789, 799, 809 को सही करके क्रमशः प्लॉट संख्या "78, 79, 80 कर दिया जाए।''

D. अनुसूची "B" में खाता संख्या 41, प्लॉट सं० 175 क्षेत्रफल "0.10 एकड़'' को सही करके क्षेत्रफल "0.06 एकड़'' के तौर पर किया जाए।

इसी प्रकार अनुसूची "B" में, खाता सं० 43, प्लॉट संख्या 132 क्षेत्रफल "0.16¼" को सही करके "0.06½ एकड़ किया जाए।

E. यह कि खाता सं० 46, प्लॉट सं० 142 क्षेत्रफल 0.13½ एकड़ के अन्त में और ''प्लॉट संख्या 238 क्षेत्रफल 0.12 एकड़'' के पहले ''खाता संख्या 47" अंतःस्थापित किया जाए।

F. यह कि अनुसूची 'B' में, खाता सं० 50, प्लॉट सं० 107 ''क्षेत्रफल 0.21" को सही करके "0.06 एकड़'' किया जाए।

G. यह कि खाता संख्या 54, प्लॉट संख्या 319 क्षेत्रफल "0.18 एकड़'' को ''क्षेत्रफल 0.20½ एकड़ के तौर पर किया जाए और प्लॉट संख्या 122 क्षेत्रफल "0.20½ एकड़ को सही करना "0.28 एकड़ कर दिया जाए।

H. यह कि खाता संख्या 59 में, प्लॉट संख्या 3 क्षेत्रफल 2.19 एकड़ को सही करके 3.19 एकड़ किया जाय।

I. यह कि ''खाता संख्या 59" प्लॉट संख्या 54 क्षेत्रफल 1.27 एकड़ के स्थान पर खाता संख्या 59 अंतःस्थापित किया जाय एवं उक्त खाता संख्या 79 को अनुसूची B का प्लॉट संख्या 240 क्षेत्रफल 11.27 एकड़ के पहले रखा जाए।

J. यह कि अनुसूची 'B' में खाता संख्या 85 'प्लॉट संख्या 17' क्षेत्रफल 7.66 एकड़ के अधीन सही करके क्षेत्रफल "0.15 एकड़'' किया जाय।

इसी खाता संख्या 85 में, प्लॉट संख्या 247 क्षेत्रफल 0.25 एकड़ को सही करके 0.22 एकड़ किया जाता और प्लॉट संख्या में 0.36 एकड़ को विलोपित किया जाए और इसके स्थान पर क्षेत्रफल 0.26 एकड़ अंतःस्थापित किया जाय।

K. यह कि अनुसूची 'B' के अन्त में एक नया खाता संख्या 82 प्लॉट संख्या 332 क्षेत्रफल 0.16 एकड़ को अनुसूची 'B" में अंतःस्थापित (सम्मिलित) किया जाय।

L. यह कि खाता संख्या 82 के उपरांत

खाता संख्या	*प्लॉट संख्या*	*क्षेत्रफल*
57	*61*	*0.03*
	125	*0.15*
	126	*0.02*
	135	*0.50*
	262	*0.09*

318	*0.40*
199	*0.04*

के माध्यम से एक नया खाता अंत:स्थापित किया जाए और इसे अनुसूची "B" में शामिल किया जाय।

3. उसमें के निजी प्रत्यर्थी/प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि आदेश 6, नियम 17 के अधीन संशोधन याचिका न तो विधि पर और न ही तथ्यों पर ग्रहणीय है क्योंकि वादी ने वाद-पत्र में नए प्लॉटों को शामिल करने के लिए संशोधन इप्सित किया है। जो अनुमान्य नहीं है क्योंकि यह वाद की प्रकृति को परिवर्तित कर देगा और इसके प्रतिवादी/प्रत्यर्थी को अत्यधिक प्रतिकूलता होगी।

4. यह भी तर्क रखा गया है कि पहले संशोधन याचिका दाखिल की गई थी जिसे इस न्यायालय द्वारा अनुज्ञात कर दिया गया था और फिर दोबारा याची/वादी द्वारा वर्तमान संशोधन याचिका दाखिल की गई है जो अनुमान्य नहीं है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि संशोधन याचिका औपचारिक प्रकृति की थी और केवल लिपिकीय त्रुटियों को संशोधित करना इप्सित किया गया था जो किसी भी प्रकार से प्रतिवादी को हानि नहीं करेगा। यह भी तर्क रखा गया है कि टंकण-संबंधी त्रुटियों के कारण कतिपय गलतियां की गई है जो वाद-पत्र में आ गया है और मामले के उचित न्यायनिर्णयण के लिए इनका सुधार करने की आवश्यकता है। याची की ओर से यह भी निवेदन किया गया है कि विचारण अभी तक प्रारम्भ नहीं हुआ है और इस प्रकार याची/वादी द्वारा इप्सित संशोधन आवश्यक थे और प्रतिवादी/प्रत्यर्थी को कोई हानि कारित नहीं करेगा।

6. मैंने अभिवाकों, प्रतिद्वंदी निवेदन 11.4.2007 को हस्ताक्षरित दिनांक 22.3.2007 के आक्षेपित आदेश पर विचार किया है। मैंने संशोधन के लिए प्रार्थना का भी परिशीलन किया है। संशोधन के उपरांत आदेश 6, नियम 17 की व्याख्या के संबंध में विधि स्पष्ट और स्थापित है।

7. विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा संशोधन याचिका के अस्वीकरण के लिए दिए गए तर्क और आधार भी युक्तिसंगत नहीं ठहरते जब यह अवधारित करता है कि संशोधन याचिका को अनुज्ञात करके वाद-पत्र में अस्त-व्यस्तता हो जाएगा और नए खाता और प्लॉट को जोड़ने में प्रतिवादी के मामले को हानि कारित होगी। संशोधन याचिका में प्रार्थना अधिकांश लिपिकीय त्रुटियों से संबंधित है और कतिपय नाम, संख्या एवं/या प्लॉट संख्या में निहित करता है जो वाद या वाद-पत्र की प्रकृति को परिवर्तित नहीं करती और केवल नए प्लॉट और खाता संख्या के साथ जोड़ा जाता है परन्तु इसकी भी प्रार्थना स्वयं प्रतिवादी संख्या 5 के विरूद्ध ही कार्रवाई के इसी कारण और इसी अनुतोष के लिए अंत:स्थापित किए जाने वाले संशोधन के माध्यम से की गई है और इस प्रकार इसकी व्याख्या तात्विक परिवर्तन लाने का प्रभाव रखने वाले या यह कहने के लिए नहीं की जा सकती कि पूर्ण रूप से कार्रवाई का एक नया कारण एक संशोधन याचिका के माध्यम से इप्सित किया गया है एवं/या प्रार्थित किया गया है। अभिधान की घोषणा के संबंध में वाद की प्रकृति बनी रहती है।

8. विधि इस संबंध में सुस्थापित है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार अवधारित किया है कि अभिनिर्धारित करने का पैमाना यह है कि प्रतिवादी को हानि होगी या नहीं और संशोधन की अनुमति देकर कार्रवाई का एक नया कारण प्रदान करते हुए स्वयं वाद की ही प्रकृति परिवर्तित करेगा या नहीं। इस प्रकार एक संशोधन याचिका में परीक्षण एक तात्विक परिवर्तन का हैं जो वाद की प्रकृति को परिवर्तित करे।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2008)8 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 511** में रिपोर्ट किए गए **उत्तर पूर्व रेलवे प्रशासक, गोरखपुर बनाम भगवान दास** में पैरा 16 पर निम्नांकित रूप से अवधारित किया:-

> *"16. जहाँ तक सि० प्र० सं० के आदेश 6 नियम 17 (जैसा कि यह सुसंगत समय पर था) के अधीन संशोधन को अनुज्ञात करने या अननुज्ञात करने पर*

संचालित करने वाले सिद्धान्तों का संबंध है, ये भी सुस्थापित है। सि० प्र० सं० का आदेश 6, नियम 17 कार्यवाहियों के किसी भी चरण में अभिवाकों का संशोधन अभिकल्पित करता है। पीरगोंदा होनगोंदा पाटिल बनाम कलगोंदा शिडगोन्डा पाटिल में जो अभी तक प्रभाव रखे हुए है, यह अवधारित किया गया था कि वैसे सारे संशोधनों को अनुज्ञात करना चाहिए जो दो शर्तों को पूरा करते हो, (a) अन्य पक्ष के साथ अन्याय न करते हो, एवं (b) पक्षों के बीच विवाद वास्तविक प्रश्न का अभिनिर्धारण करने के उद्देश्य के लिए आवश्यक है। संशोधनों को केवल तभी अस्वीकृत करना चाहिए जबकि अन्य पक्ष को उसी स्थिति में नहीं रखा जा सके अगर अभिवाक् मूलतः सही होता, परन्तु संशोधन उसे क्षति कारित करेगा जिसकी व्ययों से क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती।''

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2007)5 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 602** में रिपोर्ट किए गए **बालासाहेब स्वामी एवं अन्य बनाम किरण अप्पासो स्वामी एवं एक अन्य** में पैरा 18 पर निम्नांकित रूप से अवधारित किया:–

"18. इस न्यायालय और साथ-साथ उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों द्वारा यह अब सुस्थापित है कि न्यायालयों को अभिवाकों के संशोधन की प्रार्थना मानने में उदार होनी चाहिए जबतक कि अन्य पक्ष को गंभीर अन्याय या अपूरणीय क्षति कारित न होता हो या इस आधार पर कि संशोधन की प्रार्थना एक विशुद्ध प्रार्थना नहीं है। इस संबंध में, मा स्वं म्या बनाम माउंग मो हनौंग में प्रिवी कौंसिल के सम्परीक्षण को नोट किया जा सकता है। प्रिवी कौंसिल ने सम्परीक्षित किया। (आई० ए० पृष्ठ 216-17)

''न्यायालय के सभी नियम और कुछ नहीं बल्कि न्याय के उपयुक्त प्रशासन को प्राप्त करने के लिए आशयित हैं, और इसलिए यह अनिवार्य है कि उन्हें उस प्रयोजन को पूरा करवाया और उसे अधीनस्थ बनाया जा सकता है, ताकि संशोधन के पूर्ण शक्तियों का उपभोग किया जाए और इनका सदा ही उदारतापूर्वक इस्तेमाल किया जाए, परन्तु फिर भी कार्रवाई के एक स्पष्ट कारण से किसी अन्य द्वारा प्रतिस्थापित किए जाने की शक्ति संशोधन के माध्यम से वाद की विषय-वस्तु को परिवर्तित करने की अब तक कोई शक्ति नहीं दी गई है।

11. वर्तमान मामले में संशोधन की प्रार्थना और न ही वाद में की गयी प्रार्थना वाद की प्रकृति को परिवर्तित करती है, सिवाय दो प्लॉटो को शामिल करने की वह भी उसी प्रतिवादी के विरूद्ध और प्रतिवादी को कोई हानि नहीं होगी क्योंकि विचारण अभी प्रारम्भ होना शेष है और इस प्रकार संशोधन याचिका को अनुज्ञात करके इससे अन्य उद्देश्य पूरी होगी और कार्यवाही की बहुगुणनता में कमी आएगी और संशोधन तब भी उचित होता है जब पक्षों के बीच समूचे विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक हो।

12. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और दिनांक 22.3.2007 का आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है और विद्वान विचारण न्यायालय को यथा प्रार्थित संशोधन अनुज्ञात न करने का निर्देश दिया जाता है और वाद-पत्र की संशोधित प्रति को इसमें प्रतिवाद को रहे प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 5 को उपलब्ध कराने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

चंदन हंसदा

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड)

दाण्डिक अपील (डी॰ बी॰) सं॰ 93 वर्ष 1991 (p). 23 जून 2009 को विनिश्चित।

सत्र केस संख्या 53 वर्ष 1987/34 वर्ष 1989 में श्री आर॰ वी॰ राम, चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका कैम्प पाकुड द्वारा पारित दिनांक 19.1.1991 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्ड के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–सूचनादाता, जो एक चश्मदीद गवाह है के साक्ष्य में मूलभूत विरोधात्मक एवं गंभीर दुर्बलताएँ हैं–सूचनादाता ने अपीलार्थी का नाम नहीं लिया यद्यपि वह उसका दामाद था–यह अभिकथन कि मृतक पर अनियंत्रित रूप से प्रहार किया गया था परन्तु मृतक के सिर पर डॉक्टर द्वारा केवल एक उपहति पाई गई थी–अभिनिर्धारित, ऐसी परिस्थिति में जहाँ मौखिक एवं चिकित्सीय साक्ष्य में मूलभूत विरोधात्मकता पाई जाती है–दोषसिद्धि टिक नहीं सकती। (पैरा 9 से 11)

अधिवक्तागण.–Mr. K.K. Ojha, For the Appellant; Mr. Ravi Prakash, For the State.

न्यायालय द्वारा.–एकमात्र अपीलार्थी चन्दन हंसदा ने सत्र केस संख्या 53 वर्ष 1987/34 वर्ष 1989 में चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका कैम्प पाकुड़ द्वारा पारित दिनांक 19.1.1991 के आक्षेपित निर्णय को चुनौती दी है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन आरोप के लिए अपीलार्थी को दोषसिद्धि की है और उसे सश्रम आजीवन कारावास भुगतने का दण्डादेश सुनाया है।

2. तथ्य, संक्षेप में, ये हैं कि सूचनादाता मिल्को बास्की (अ॰ सा॰ 2) ने 24.2.1985 को 3.30 बजे अपराह्न में एक फर्दबयान दिया उसमें अभिकथित करते हुए कि वह एवं उसके तीन बच्चे अपने घर में सो रहे थे और उसका पति, अर्थात् सोम मुर्मू (मृतक) भी एक पृथक खाट पर सो रहा था। उसकी दो पुत्रियाँ सीता मुर्मू और कपरा मुर्मू दक्षिणी कमरे में सो रहे थे जबकि उसके श्वसुर घर के पश्चिमी बरामदे में सो रहे थे। लगभग 1 बजे पूर्वाह्न में गहरी रात में कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने उसके कमरे के दरवाजे पर टक्कर मारी, जिसके कारण उसकी और उसके पति की नींद टूट गई और तब उन्होंने देखा कि तीन व्यक्ति उसके घर में प्रवेश करने का प्रयास कर रहे थे। उसके पति ने दरवाजा बन्द करने का प्रयास किया परन्तु वह असफल रहा। अभियुक्त व्यक्ति उसके घर में प्रवेश कर गया और 'लाठी' से उसके पति पर ताबड़-तोड़ प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया जिसके कारण उसके पति को सिर में चोटें आई और उसके घाव से रक्त बाहर आना प्रारम्भ हो गया। सूचनादाता उसे बचाने गई परन्तु अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उसके सिर पर भी लाठी के दो प्रहार किए गए जिसके कारण उसे भी रक्त-स्राव वाली उपहतियां हुई। उसका पति जमीन पर गिर पड़ा और वह मर गया। उसकी चीत्कार सुनकर पड़ोसी वहाँ जमा हो गए परन्तु इस दौरान, अभियुक्त व्यक्ति भाग गए थे।

घटना का कारण यह बताया गया था कि एक महीने पहले उसका दामाद चंदन हंसदा, अपनी पुत्री को पीट रहा था, जिसपर सूचनादाता के पति द्वारा आपत्ति की गई थी और जब उसने नहीं सुना तब सूचनादाता के पति सोम मुर्मू ने एक 'लाठी' के माध्यम से चन्दन हंसदा पर प्रहार किया जिसके कारण चंदन हंसदा दुर्भावना रखे हुए था। सूचनादाता ने यह भी अभिकथित किया कि उसे संदेह था कि चन्दन हंसदा का संभवत: उसके पति की मृत्यु में हाथ रहा हो। उक्त फर्दबयान के आधार पर, अज्ञात के विरूद्ध पुलिस द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किया गया था।

3. पुलिस ने अन्वेषण का कार्य हाथों में लिया और इसके समापन पर आरोप-पत्र दाखिल किया, जिसके आधार पर संज्ञान लिया गया, मामले को सत्र न्यायालय भेजा गया जहाँ अपीलार्थी के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किया गया, जिससे उसने इन्कार किया और, तत्पश्चात्, अपीलार्थी को विचारण पर रखा गया।

4. आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभियोजन की ओर से कुल मिलाकर 9 गवाहों को परीक्षित किया गया। विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि किया और दण्डादेश सुनाया जैसा कि पहले ही ऊपर कथित किया जा चुका है।

5. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि अभियोजन अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप सिद्ध करने में पूरी तरह विफल रहा, फिर भी विद्वान विचारण न्यायालय ने उसे गलत तरीके से और अवैधानिक रूप से भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन उसकी दोषसिद्धि कर दी और दण्डादेश सुनाया। अपने तर्क का विस्तार करते हुए, उन्होंने निवेदन किया है कि विचारण न्यायालय ने केवल अ॰ सा॰ 2 के असम्पुष्ट परिसाक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि की है। दोषसिद्धि के निर्णय और दण्डादेश की आलोचना करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि अपीलार्थी कोई और नहीं अपितु सूचनादात्री अ॰ सा॰ 2 का दामाद है। सूचनादात्री ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में अपीलार्थी का नाम नहीं लिया था अपितु उसने उक्त घटना में उसका हाथ होने का केवल संदेह व्यक्त किया था परन्तु चौंकाने वाला तथ्य है कि अपने साक्ष्य में उसने अपने पक्ष को परिवर्तित करते हुए अभिकथित किया है कि यह वही अपीलार्थी था जिसने 'लाठी' से उसके पति पर हमला किया था। यह भी इंगित किया गया है कि यद्यपि प्रथम सूचना रिपोर्ट और सूचनादात्री के साक्ष्य के अनुसार, मृतक सोम मुर्म पर अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा 'लाठी' से कई बार हमला किया गया था, परन्तु विचित्र रूप से, डॉक्टर ने मृतक के सिर पर केवल एक उपहति पाई है और, इसलिए, यह स्पष्ट है कि मौखिक एवं चिकित्सीय साक्ष्य में मौलिक विरोधात्मकता है, जो अभियोजन के मामले को संदिग्ध और अविश्वसनीय बना देती है।

6. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने निवेदन किया है कि सूचनादाता घटना का एक चश्मदीद गवाह है और उसने जो देखा वैसा ही सत्य का वर्णन किया है और इसका कोई कारण नहीं है कि वह क्यों अपने ही दामाद को एक झूठे मामले में फँसाएगी।

7. पक्षों के प्रतिद्वंदी निवेदनों का परीक्षण करने के लिए हमने अभियोजन द्वारा रखे मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य की संवीक्षा की है। घटना को 24.2.1985 को लगभग 1 बजे पूर्वाह्न में गहरी रात्रि में घटित होना बताया गया है, और, इसलिए, स्वाभाविक रूप से घटना के गवाह केवल घर के अन्त:वासी ही हो सकते थे और अन्य कोई नहीं।

8. सूचनादात्री अ॰ सा॰ 2 ने न्यायालय में पैरा 3 से अपने साक्ष्य में कहा है कि अपीलार्थी, उसके पिता एवं चाचा सभी ने अभिकथित तिथि और घटना के समय पर उसके घर में प्रवेश किया था और उन सभी ने उसके पति पर हमला किया और जब वह उसे बचाने गई तो उसके सिर पर भी हमला किया गया जिसके कारण उसे चोटें आई। उसका पति नीचे गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई।

अपनी प्रति-परीक्षा के पहले पैरा में, उसने कहा है कि जो कुछ भी उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभिकथित किया था वह सही था और इसे उसके सामने पढ़े जाने पर अपने हस्ताक्षर किए। अपनी प्रति-परीक्षा में उसने यह भी कहा है कि उसने घटना के समय हमलावरों के तौर पर अपीलार्थीगण, उसके पिता और चाचा को पहचान लिया था।

9. यह विवादित नहीं है कि अज्ञात के विरूद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और फर्दबयान के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि सूचनादात्री ने एक शब्द भी नहीं कहा था कि उसने अपने पति के हत्यारे के तौर पर इस अपीलार्थी या किसी अन्य अभियुक्त की पहचान की थी।

अगर सूचनादाता ने अपने पति के हत्यारे के तौर पर इस अपीलार्थी को पहचान लिया था तो उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में अवश्य ही उसका नाम लिया होता। अपीलार्थी उसका दामाद है और, इसलिए, उसे अपना दामाद को पहचाने और प्रथम सूचना रिपोर्ट में उसका नाम लेने में कोई कठिनाई नहीं था। वस्तुत:, अभियुक्तों में से किसी को भी फर्दबयान में नामजद नहीं किया गया है। इसलिए,

यह प्रकट है कि सूचनादात्री ने बाद में अपने वृत्तांत को परिवर्तित कर लिया है और अभियोजन के अनुकूल बनाने के लिए मामले को नए सिरे से गढ़ा है।

10. प्रथम सूचना रिपोर्ट और विचारण के अनुक्रम में सूचनादात्री का बयानों में किए गए अभिकथन न केवल एक दूसरे के विरोधी है अपितु चिकित्सीय साक्ष्य से भी असंगत है। प्रथम सूचना रिपोर्ट और अपने साक्ष्य में भी सूचनादात्री ने कहा है कि उसके पति (मृतक) पर अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा लाठी से लगातार हमला किया गया था परन्तु डॉक्टर के साक्ष्य के परिशीलन पर जिसने पोस्ट-मार्टम परीक्षण किया था यह प्रतीत होगा कि मृतक के सिर पर केवल एक चोट आई थी। अगर वास्तव में मृतक पर लाठी से लगातार प्रहार किए गए थे तो मृतक के शरीर पर एक से अधिक उपहति पाई गई होती। मृतक के शरीर पर केवल एक ही उपहति की उपस्थिति इंगित करती है कि अभियोजन घटना के उस तरीके को सिद्ध करने में विफल रहा है जैसा कि इसके द्वारा अभिकथित किया गया था।

सूचनादाता अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य और अभियोजन मामले में मूलभूत विरोधात्मकताओं और गंभीर दुर्बलताओं की दृष्टि में, अपीलार्थी के विरूद्ध दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के लिए ऐसे साक्ष्य पर भरोसा करना अत्यधिक असुरक्षित होगा। अपीलार्थीगण को उनके विरूद्ध विरचित आरोपों से सम्बद्ध करने के लिए अभिलेख पर अन्य कोई साक्ष्य और सामग्रियाँ नहीं है।

11. उपरोक्त परिचर्चाओं और निष्कर्षों की दृष्टि में, हम अवधारित करते हैं कि सोम मुर्मू की हत्या कारित करने में अपीलार्थी को दोषी अवधारित करके विद्वान विचारण न्यायालय ने गंभीर त्रुटि की है और इसके द्वारा उसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन गलत रूप से दोषसिद्ध किया है और दण्डादेश सुनाया है। विचारण न्यायालय का आक्षेपित निर्णय विधि में टिक नहीं सकता।

तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है, विचारण न्यायालय का आक्षेपित निर्णय एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन आरोप से बरी किया जाता है। अपीलार्थी जो जमानत पर है, को उसके जमानत बन्ध पत्रों की दायिताओं से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

राजेश्वर प्रसाद वर्मा (1288 में)

मण्टु बनर्जी (1348 में)

प्रतिमा घोष (1380 में)

अश्विनी कुमार (1541 में)

रमनी भुषण प्रसाद (1448 में)

रास बिहारी घोष (1442 में)

आनन्द कन्द प्रसाद वर्मा (1462 में)

पुरूषोत्तम दुबे (1477 में)

बनाम्

विनोबा भावे विश्वविद्यालय एवं अन्य

WP(S) No. 1288, 1348, 1380, 1422, 1541, 1498, 1462, एवं 1477 वर्ष 2007.
22 मई, 2009 को विनिश्चित।

(क) झारखण्ड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000—धारा 22—याचीगण विश्वविद्यालय शिक्षक थे जिन्हें सेवा की नियत अवधि पूरा होने पर लेक्चरर से प्रोफेसर के पद पर कालबद्ध प्रोन्नति दी गयी थी–1.1.1996 से कल्पित वेतनमान प्रदान करते समय 450/- रु॰ की वार्षिक वेतनवृद्धि याचीगण को प्रदान करने से इस आधार पर इनकार किया गया था कि याचीगण Ph.D. डिग्री धारण नहीं करने के कारण दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना की दृष्टि में वार्षिक वेतन के कारण दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना की दृष्टि में वार्षिक वेतन वृद्धि के हकदार नहीं थे जो रीडर एवं इससे ऊपर के पद पर प्रोन्नति के लिए Ph.D. का अवरोध सृजित करता है–अभिनिर्धारित, उन शिक्षकों के सम्बन्ध में दक्षतावरोध की अनुपस्थिति में जिन्हें दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना के पूर्व विश्वविद्यालय प्रोफेसर के पद तक प्रोन्नति दी गयी थी, परिनियम की धाराएँ 22 (1), 22 (3) के अंतर्गत वे वार्षिक वेतनवृद्धि पाने के हकदार नहीं थे। (पैरा 2 से 9)

(ख) झारखण्ड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000—धाराएँ 22(1) एवं 22(3)—1.1.1996 से यू॰ जी॰ सी॰ वेतनमान प्रदान करते समय वार्षिक वेतनवृद्धि से इस आधार पर इनकार किया गया कि याचीगण Ph.D धारक नहीं थे–अभिनिर्धारित, एक ऐसे अधिकार में, जो याचीगण को विश्वविद्यालय परिनियम के अंतर्गत प्रोद्भूत हुआ था, राज्य सरकार के सम्बन्धित विभाग द्वारा निर्गत अधिसूचना/परिपत्रों द्वारा कटौती नहीं की जा सकती है। (पैरा 20)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajendra Prasad, For the Petitioner(s); Sri S. Choudhary, For the Respondents.

आदेश

चूँकि इन सभी रिट याचिकाओं में अंतर्ग्रस्त मुद्दे समान हैं, इसलिए उन्हें साथ में सुना गया है एवं पक्षों के अधिवक्ता की सम्मति से स्वीकृति के प्रक्रम पर ही इस आदेश द्वारा निस्तारित किया जा रहा है।

2. इन रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थी-विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 29.11.2007 के आदेश को चुनौती दी गयी है जिसके द्वारा याचीगण के 1.1.1996 से उनलोगों के अपने-अपने सेवानिवृत्ति की तिथि तक वार्षिक वेतन भुगतान के दावे को अस्वीकार कर दिया गया है।

3. याचीगण राँची विश्वविद्यालय के विभिन्न घटक महाविद्यालयों में विभिन्न संकायों में व्याख्याता के तौर पर नियुक्त किये गये थे। उनलोगों को व्याख्याताओं के पद पर नियुक्त किया गया था एवं बाद में उनलोगों को पृथक-पृथक रूप से अधिसूचित तिथियों के प्रभाव से रीडर के पद पर नियुक्त किया गया था। ऐसी प्रोन्नति को राँची विश्वविद्यालय के कुलपति के आदेश द्वारा संपुष्ट किया गया था। बाद में, उनलोगों को अधिसूचित तिथियों के प्रभाव से विश्वविद्यालय प्राध्यापक के तौर पर प्रोन्नत किया गया था।

4. वह महाविद्यालय जिसमें याचीगण को नियुक्त किया गया था, बाद में विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग की अधिकारिता के अन्तर्गत आ गया। याचीगण ने सम्बन्धित महाविद्यालयों के अपने अपने विभागों में शिक्षण जारी रखा। श्री पुरूषोत्तम दूबे (WPS No. 1477 वर्ष 2008 में याचीगण) 31.1.2003 को सेवा से निवृत्त हुए, शेष सभी याचीगण जनवरी, 1998 से अक्टूबर, 2000 के बीच सेवा से निवृत्त हुए।

5. याचीगण का मामला यह है कि उन्हें राज्य सरकार द्वारा प्रायोजित एवं कुलाधिपति द्वारा अनुमोदित 16/25 वर्षीय प्रोन्नति योजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय प्राध्यापक के पद पर प्रोन्नत किया गया था। विश्वविद्यालय शिक्षकों के वेतनमान UGC वेतनमान के अनुसार नियत किया गया था। UGC द्वारा वेतनमान में पुनरीक्षण एक पैकेज योजना के माध्यम से किया गया था। योजना को तद्नुसार झारखण्ड सरकार द्वारा क्रियान्वित एवं अधिसूचित किया गया था जिसके अन्तर्गत शिक्षकों का संशोधित

वेतनमान नियत किया गया था। याचीगण के वेतनमान विश्वविद्यालय प्राध्यापकों को यथा प्रयोज्य 16,400/-22,000/- रू० पर नियत किए गए थे। पुनरीक्षित वेतनमानों को 1.1.1996 से कल्पित रूप से प्रभावी बनाया गया था।

6. याचीगण की शिकायत यह है कि यद्यपि उनके वेतनमानों को UGC वेतनमानों के अनुरूप पुनरीक्षित किया गया था, परन्तु उन्हें विश्वविद्यालय के परिनियमों में यथा अधिकथित 450/- रू० की वेतनवृद्धि नहीं दी गयी थी। इस प्रकार, अंतिम वेतनमान जो याचीगण को उनकी सेवानिवृत्ति के समय भुगतान किया गया था, उस राशि की अपेक्षा कम पर नियत किया गया था जो देय था एवं इसका उनलोगों के पेंशन अपेक्षाकृत कम राशि पर नियत किए जाने का प्रतिकूल प्रभाव था।

7. याचीगण ने व्यथित होकर, प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के निबन्धक के समक्ष सामूहिक रूप से अपने अपने अभ्यावेदन दाखिल किए, परन्तु जब कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो याची मंटू बनर्जी (WPS No. 2856 वर्ष 2007) ने उसे वार्षिक वेतनवृद्धि का भुगतान करने का निर्देश विश्वविद्यालय को निर्गत करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दाखिल किया। रिट याचिका को याची के अभ्यावेदन पर विचार करने एवं विधि के अनुरूप एक यथोचित युक्तिसंगत आदेश पारित करने का निर्देश विश्वविद्यालय के निबन्धक को देकर इस न्यायालय द्वारा निस्तारित किया गया था। तद्नुसार, याचीगण ने निबन्धक (प्रत्यर्थी सं० 2) के समक्ष अपने अपने अभ्यावेदन दाखिल किए जिन्होंने इसपर विचार करने के उपरांत, उनलोगों की प्रार्थना को आक्षेपित आदेश के माध्यम से इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि याचीगण दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना में यथा इंगित Ph. D डिग्री धारण नहीं करते थे जो रीडर एवं इससे उपर के पद पर प्रोन्नत होने के लिए अनिवार्य था, इसलिए वे लोग 1.1.1996 के उपरांत वार्षिक वेतनवृद्धि के हकदार नहीं थे।

8. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेन्द्र प्रसाद ने आक्षेपित आदेश की आलोचना इस आधार पर की है कि यह मनमाना है एवं विधि के अनुरूप नहीं है। यह तर्क किया गया है कि याचीगण की सेवा शर्तें झारखण्ड विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 द्वारा नियंत्रित था। विश्वविद्यालय अधिनियम की संविधि का भाग II विश्वविद्यालय के शिक्षकों एवं कर्मचारियों की सामान्य सेवा शर्तें अधिकथित करता है जैसा कि विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा 20.11.1980 को अनुमोदित किया गया है।

विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि संविधि की धारा 22 के अनुसार, विश्वविद्यालय सेवक द्वारा वेतन वृद्धि सामान्य तौर पर आहरित किया जायगा, जबतक कि इसे उसे नियुक्त करने में सशक्त प्राधिकारी द्वारा दण्डित करने वाले एक कदम के तौर पर रोका नहीं गया हो। परिनियम उन शर्तों एवं परिस्थितियों को भी विहित करता है जिस सेवा पर वेतनमान में वृद्धि की गणणा होती है।

9. विद्वान अधिवक्ता यह भी कहते हैं कि याचीगण ने जिन्हें अपनी सेवावधि के दौरान विश्वविद्यालय प्राध्यापक के पद पर प्रोन्नत किया गया था, विहित शर्तों के अनुसार अर्हता प्राप्त नहीं किया जिसपर वेतनमान में वृद्धि के लिए उनलोगों की सेवाओं की गणणा की गयी थी। यह भी इंगित किया गया है कि UGC वेतनमानों के अनुसार विश्वविद्यालय शिक्षकों के वेतन नियत करते समय उन शिक्षकों जो Ph. D डिग्री धारण करते थे एवं उन शिक्षकों जो इसे धारण नहीं करते थे, इन दोनों के बीच कोई विभेद नहीं किया गया था। वार्षिक वेतनवृद्धि का अधिकार परिनियम द्वारा ही सृजित किया गया है, जिसमें याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार कार्यपालक अनुदेशों के garb में कटौती नहीं की जा सकती है। अन्यथा भी, ऐसे कार्यपालक अनुदेशों को सरकारी अधिसूचना के द्वारा 13.11.2001 को अंत:स्थापित किये जाने के कारण, यह भविष्यलक्षी रूप से लागू होगा न कि भूतलक्षी रूप से एवं इसे उनलोगों को प्रयोज्य नहीं बनाया जा सकता है जो 13.11.2001 से पूर्व सेवानिवृत्त हुए। यह भी निवेदन किया गया है कि 1.1.1996 के उपरांत वार्षिक वेतनवृद्धि का भुगतान झारखण्ड राज्य में राँची विश्वविद्यालय एवं साथ ही सिद्धू कानू विश्वविद्यालय, दुमका सहित अन्य

विश्वविद्यालय के शिक्षकों को उनलोगों के Ph. D. डिग्री धारण किए होने या न किए होने पर विचार किए बिना किया गया है एवं इसका कोई कारण नहीं हो सकता था कि विनोबा भावे विश्वविद्यालय के जो कि झारखण्ड राज्य के विश्वविद्यालयों में से ही एक है, अन्तर्गत आने वाले याचीगण को ऐसी प्रसुविधा का विस्तार क्यों नहीं किया जाना चाहिए।

10. प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में याचीगण के सम्पूर्ण दावे से इनकार एवं इसपर विवाद किया है। प्रत्यर्थीगण द्वारा अपनाये गए दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी सं० 2 के आक्षेपित आदेश को यह निवेदन करके न्यायोचित ठहराया कि स्वीकार्यत: राज्य सरकार ने विश्वविद्यालय शिक्षकों के सम्बन्ध में UGC के नए कैरियर एडभांसमेंट स्कीम पैकेज को क्रियान्वित किया था एवं विश्वविद्यालय शिक्षकों के वेतनमान दिनांक 13.11.2001 के अधिसूचना द्वारा यथा घोषित एवं अधिसूचित पुनरीक्षित UGC वेतनमानों के अनुसार पुनरीक्षित किया था। लेकिन, जैसा कि उपरोक्त अधिसूचना के खंड 12 में घोषित किया गया है, पुनरीक्षित वेतनमानों को इस शर्त पर प्रयोज्य बनाया गया था कि वे शिक्षक जिन्होंने सरकार द्वारा स्वीकृत UGC पैकेज के नये कैरियर एडभांसमेंट स्कीम के अनुसार रीडर एवं इससे उपर के पदों पर प्रोन्नत किए जाने की पात्रता अर्जित नहीं की थी अपने वार्षिक वेतनवृद्धि के हकदार नहीं होंगे। यह स्पष्ट किया गया है कि UGC पैकेज के कैरियर एडभांसमेंट स्कीम के अनुसार रीडर एवं इससे उपर के ग्रेड में प्रोन्नति हेतु न्यूनतम पात्रता मानदण्ड Ph. D. डिग्री है। Ph. D. डिग्री रहित व्यक्ति व्याख्याता (सेलेक्शन ग्रेड) के पद तक ही जा सकते हैं। विद्वान अधिवक्ता आगे स्पष्ट करते हैं कि याचीगण ने दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना के खण्ड 12 में अधिकथित शर्तों के साथ 1.1.1996 के प्रभाव से प्रतिस्थापित वेतनमान स्वीकार किया था। अधिसूचना में नियत शर्तों के साथ प्रतिस्थापित वेतनमान स्वीकार कर चुकने के उपरांत, याचीगण जो Ph. D. डिग्री धारण नहीं करते हैं, 1.1.1996 के उपरांत वार्षिक वेतनवृद्धि का दावा नहीं कर सकते हैं।

11. विश्वविद्यालय परिनियम की धारा 22 के उपखंड (2) को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि जहाँ वेतनमान में दक्षतारोध विहित किया गया है वहाँ विश्वविद्यालय सेवकों को उसे नियुक्त करने में सशक्त प्राधिकारी के विशेष अनुमोदन के बिना दक्षतावरोध से उपर की वेतनवृद्धि नहीं दी जायगी। विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना के खंड 12 के अधीन मात्र वर्तमान परिनियम की पुनरावृत्ति थी एवं यह तद्द्वारा विश्वविद्यालय शिक्षकों को किसी प्रसुविधा से वंचित नहीं करता है जिसके पात्र वे अन्यथा नहीं थे।

12. विश्वविद्यालय द्वारा अपनाया गया अगला अभिमत यह है कि अन्यथा भी, चूँकि याचीगण का दावा तत्कालीन बिहार राज्य के विभाजन की तिथि से पूर्व की मौद्रिक प्रसुविधाओं का था, एवं दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना में भी इंगित किया गया है, याचीगण द्वारा ऐसी प्रसुविधा की मांग मात्र बिहार राज्य के विरूद्ध नहीं की जा सकती थी।

13. परस्पर विरोधी निवेदनों से तथ्य जो प्रतीत होते हैं, ये हैं:-

यह कि याचीगण को 16/25 वर्षीय प्रोन्नति योजना के अधीन विश्वविद्यालय प्राध्यापकों के तौर पर नियुक्त किया गया था। प्रत्यक्षत:, उन्हें व्याख्याता के पद से रीडर के पद पर प्रोन्नत किए जाते समय एवं रीडर के पद से विश्वविद्यालय शिक्षकों के पद पर उनकी प्रोन्नति के समय उन्हें दक्षतावरोध को प्रयोज्य नहीं बनाया गया था। ऐसी प्रोन्नति स्पष्टत: ऐसा कोई विभेद किए बिना प्रदान किया गया था कि क्या वे Ph. D. की डिग्री धारण करते थे अथवा नहीं।

14. याचीगण के वेतनमान को UGC द्वारा किए गए वेतनमान के पुनरीक्षण के अनुरूप विश्वविद्यालय शिक्षकों के पुनरीक्षित वेतनमान में नियत किया गया था।

15. जैसा कि प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के निबन्धक के आक्षेपित आदेश (उपाबन्ध 2) में इंगित किया गया है, वार्षिक वेतनवृद्धि के याचीगण के दावे से इनकार इस आधार पर किया गया प्रतीत होता है कि UGC पैकेज के नये कैरियर एडभांसमेंट स्कीम (उपाबन्ध 1) के अधीन, जैसा कि झारखण्ड सरकार द्वारा स्वीकार किया गया है प्रोन्नति हेतु पात्रता मानदंड के तत्सम एक शर्त निम्नलिखित निबन्धनों में अधिकथित किया गया है:–

''रीडर एवं इससे उपर के ग्रेडों पर प्रोन्नति हेतु न्यूनतम पात्रता मानदंड Ph. D. होगा। वैसे व्यक्ति जो Ph. D. डिग्री रहित हैं व्याख्याता (सेलेक्शन ग्रेड) के पद तक जा सकते हैं।''

16. यह पात्रता मानदंड विनिर्दिष्ट रूप से इस निष्कर्ष की ओर अग्रसर नहीं करता है कि यह एक दक्षतावरोध एवं वार्षिक वेतनवृद्धि के प्रदाय पर निर्बन्धन को भी सृजित करता है। ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है जबतक कि विहित प्रक्रिया के माध्यम से परिनियम के अंतर्गत यथोचित रूप से निर्वचित नहीं किया गया हो न कि किसी कार्यकारी अनुदेश के माध्यम से।

17. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने परिनियम के खंड 22 के उप-खंड (2) को निर्दिष्ट करेंगे जो किसी दक्षतावरोध को निम्नलिखित निबन्धनों में अधिकथित करता है:-

'' जहाँ किसी वेतनमान में दक्षतावरोध विहित किया जाता है वहाँ विश्वविद्यालय सेवकों को अवरोध से उपर की वेतनवृद्धि उसे नियुक्त करने में सशक्त प्राधिकारी की विशेष मंजूरी के बिना नहीं दी जायगी।''

18. 13.11.2001 को अधिसूचित एवं 1.1.1996 से प्रयोज्य पुनरीक्षित वेतनमान में विश्वविद्यालय परिनियम की धारा 22 की उप-धारा (2) के प्रावधानों के निबन्धनों में कोई दक्षतावरोध नियत नहीं किया गया था।

अधिसूचना के खंड 12 के शर्तों में यद्यपि यह पात्रता मानदंड पर जोर देता है, यह रीडर एवं इससे उपर के ग्रेड से शिक्षकों की प्रोन्नति के सम्बन्ध में है। याचीगण को इस शर्त पर जोर दिए बिना पहले ही विश्वविद्यालय प्राध्यापक के पद पर प्रोन्नति प्रदान किया गया था कि उन्हें Ph. D डिग्री धारण करना चाहिए। ऐसी परिस्थितियों में, दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना के पूर्व शिक्षकों के सम्बन्ध में किसी दक्षतावरोध की अनुपस्थिति में, याचीगण जिन्होंने विश्वविद्यालय प्राध्यापक की प्रास्थिति प्राप्त कर ली थी परिनियम की धारा 22(1) के प्रावधानों के अन्तर्गत वार्षिक वेतनवृद्धि के हकदार होंगे जो निम्नवत पठित है:–

धारा 22(1). किसी विश्वविद्यालय सेवक द्वारा वार्षिक वेतनवृद्धि सामान्यतया सामान्य तौर पर नहीं आहरित नहीं की जायगी, जबतक कि इसे उसे नियुक्त करने में सशक्त प्राधिकारी द्वारा दण्डित करने के कदम के तौर पर रोका न गया हो।''

स्वीकार्यत:, याचीगण ने परिनियम की धारा 22(3) के अन्तर्गत अधिकथित शर्तों के निबन्धनों में वार्षिक वेतनवृद्धि के लिए स्वयं को अर्हित कर लिया था। याचीगण के लिए एक नये दक्षतावरोध सृजित करके, जैसा कि प्रतीत होगा, उन्हें ऐसे अधिकार की प्रसुविधा से इनकार नहीं किया जा सकता है। अन्यथा भी, यदि दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना द्वारा कोई दक्षतावरोध सृजित किए जाने की ईप्सा की जाती है तो यह भविष्यलक्षी रूप से प्रवर्तित होगा न कि भूतलक्षी रूप से। याची पुरूषोत्तम दुबे को छोड़कर सभी याचीगण 13.11.2001 से पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके थे। इसलिए उन्हें वार्षिक वेतनवृद्धि के अधिकारपूर्ण दावे से मात्र इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता है कि उनलोगों ने प्रतिस्थापित वेतनमान के दिनांक 13.11.2001 की अधिसूचना एवं इसके खंड 12 में अधिकथित शर्तों को स्वीकार किया था।

20. उक्त विवेचनों के आलोक में, विनोवा भावे विश्वविद्यालय के निबन्धक के दिनांक 29.11.2007 के आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है एवं एक ऐसे अधिकार को जो परिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत याचीगण को प्रोद्भूत हुआ था, राज्य सरकार के सम्बन्धित विभाग द्वारा निर्गत अधिसूचना/परिपत्र द्वारा रोका या इसमें कटौती नहीं की जा सकती है।

21. इस विवाद को निर्दिष्ट करते हुए कि याचीगण के वेतनवृद्धि के अधिशेषों का भुगतान करने का दायित्व कौन वहन करेगा इस न्यायालय को ध्यान में यह लाया गया है कि यद्यपि अधिशेष के ऐसे दावे तत्कालीन बिहार राज्य के विभाजन की तिथि से पूर्व की तिथि से सम्बन्धित है, दोनों राज्यों की सरकारों के द्वारा एवं इनके बीच किए गए दिनांक 30.9.2001 के करार के अनुसार वित्तीय दायित्व का वहन झारखण्ड सरकार द्वारा किया जाना है। इस मुद्दे को **WP(S) No. 2859 वर्ष 2004** में **डॉ॰ उपेन्द्र किशोर बख्शी बनाम् झारखण्ड राज्य एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा भी सुलझाया गया है जिसमें यह विनिश्चित किया गया था कि प्रश्नगत संस्थान झारखण्ड राज्य में है एवं दिनांक 30.9.2001 के करार के अनुसार जैसा कि राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्वीकार किया गया है, संपूर्ण दावे का भुगतान एकमात्र झारखण्ड राज्य द्वारा किया जाना है।

तद्नुसार, इन रिट याचिकाओं को अनुज्ञात किया जाता है। प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को उन अधिशेषों की धनराशि का आकलन करने जो वार्षिक वेतनवृद्धि के सम्बन्ध में याचीगण को प्रोद्भूत हुआ, जिसकी गणणा प्रत्येक याचीगण के सम्बन्ध में इसके बकाया रहने की तिथि से की जायगी एवं इस आदेश के एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से एक माह के भीतर राज्य सरकार के समक्ष कोषों के आबंटन के लिए एक दावा रखने का निर्देश दिया जाता है। राज्य सरकार विश्वविद्यालय से अध्यपेक्षा की प्राप्ति से दो माह के भीतर याचीगण को भुगतेय धनराशि का भुगतान करने में विश्वविद्यालय को समर्थ बनाने के लिए कोष निर्मुक्त करेगा।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को दी जाय।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

रसीदन बीबी

बनाम्

मो॰ हसन एवं अन्य

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 18 वर्ष 2008. 16 दिसम्बर, 2008 को विनिश्चित।

लेटर्स पैटेण्ट के खण्ड 10 के अधीन अपील के मामले में।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XLI, नियम 19 सह-पठित धारा 151—अभिधान एवं कब्जे की घोषणा के लिए दाखिल वाद खारिज—अपील को अधिवक्ता की अनुपस्थिति के व्यक्तिक्रम कारण खारिज किया गया था—प्रत्यावर्तन याचिका भी व्यतिक्रम के कारण खारिज—अपीलार्थी के अधिवक्ता प्रत्यावर्तन के अनुतोष हेतु एक पर्याप्त हेतुक निर्मित करने में असफल हुए—उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने खारिजियों को सम्पुष्ट किया—अभिनिर्धारित, वादी-अपीलार्थी ने न्यायालय के समक्ष अपनी ओर से कोई गलत कथन नहीं किया है बल्कि, वादी-अपीलार्थी के अधिवक्ता की त्रुटि के कारण उसे भुक्तभोगी नहीं बनाया जा सकता है—जब मुवक्किल ने किसी अधिवक्ता की अनुपस्थिति के कारण बर्खास्तगी में कोई भूमिका अदा नहीं की है तो वादकार को सामान्यतया प्रभावित नहीं होने दिया जाना चाहिए जिससे घोर अन्याय कारित हो। **(पैरा 5 एवं 7)**

अधिवक्तागण.—M/s Sumir Prasad, Jay Shankar Tiwary, For the Appellant; Mr. Triveni Mishra, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.—यह अपील प्रकीर्ण अपील सं॰ 398 वर्ष 2003 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 6.2.2006 के उस आदेश के विरूद्ध दायर की गयी है, जिसके द्वारा अपील खारिज

की गयी थी एवं प्रकीर्ण केस सं० 2 वर्ष 2002 में चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, पलामू द्वारा पारित उस आदेश को संपुष्ट किया गया था, जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 19 सह-पठित धारा 151 के अधीन दाखिल प्रत्यावर्तन याचिका को खारिज किया गया था।

2. इस अपील को उद्भूत करने वाले विवाद को उजागर करने के लिए यह कहना आवश्यक होगा कि अपीलार्थिनी रसीदन बीबी ने विद्वान मुंशिफ के न्यायालय में एक विभाजन वाद दाखिल किया था जो विभाजन वाद सं० 53 वर्ष 1992 था, जिसके द्वारा उसने ग्राम हैदरनगर, जिला पलामू में अवस्थित 0.12 एकड़ क्षेत्रफल वाले भूमि के एक टुकड़े पर कब्जे की संपुष्टि एवं अभिधान की घोषणा के अनुतोष की ईप्सा की है जिसपर उसने अपना आवासीय घर भी बनाया था। वाद को प्रतिवाद के पश्चात् खारिज किया गया था जिसके विरूद्ध वादी-अपीलार्थी ने चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, पलामू के समक्ष एक अपील दाखिल किया। जब यह अपील सुनवायी के लिए आया था तो अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले अधिवक्ता उपस्थित होने में असफल रहे एवं परिणामस्वरूप अपील को व्यतिक्रम में खारिज किया गया था। तदुपरांत एक प्रकीर्ण केस सं० 2 वर्ष 2002 अपील के प्रत्यावर्तन के लिए जिला न्यायाधीश के समक्ष वादी-अपीलार्थी द्वारा दाखिल किया गया था जिसे व्यतिक्रम में खारिज किया गया था। परन्तु अपीलार्थी के लिए दुर्भाग्यवश, प्रत्यावर्तन का आवेदन इस आधार पर खारिज किया गया था कि प्रत्यावर्तन आवेदन में वादी-अपीलार्थी ने निवेदन किया था कि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता की अनुपस्थिति उनके परिवार के एक सदस्य की अचानक बीमारी के कारण था जिसके कारण उन्होंने न्यायालय परिसर छोड़ दिया था एवं घर चले गए थे। उक्त तथ्य का कथन उसके प्रत्यावर्तन याचिका में नहीं किया गया था। प्रत्यावर्तन याचिका में यह कहा गया था कि अधिवक्ता एक अन्य न्यायालय में व्यस्त थे जिसके कारण वह उपस्थित नहीं हुए। लेकिन, अपर जिला न्यायाधीश, जिनके समक्ष प्रत्यावर्तन याचिका दाखिल की गयी थी, यह अभिनिर्धारित करके प्रसन्न थे कि अपीलार्थी के अधिवक्ता पर्याप्त हेतुक का एक मामला निर्मित करने में असफल हुए थे, ताकि अपील के प्रत्यावर्तन का अनुतोष मंजूर किया जा सके।

3. इसलिए, प्रत्यावर्तन के आवेदन को अस्वीकार किया गया था जिसके विरूद्ध अपीलार्थी ने विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रकीर्ण अपील सं० 398 वर्ष 2003 दाखिल किया। विद्वान एकल न्यायाधीश अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखकर प्रसन्न थे एवं उन्होंने अपीलार्थी के अधिवक्ता की अनुपस्थिति को स्पष्ट करते हुए इस बात की पुनरावृत्ति की कि वे पर्याप्त हेतुक का मामला निर्मित करने में अविचल नहीं रहे थे एवं इसलिए यह एक उपयुक्त मामला नहीं था जहाँ प्रत्यावर्तन के आवेदन को अनुज्ञात किया जाना चाहिए था। परिणामतः, अपील भी खारिज किया गया था एवं प्रकीर्ण वाद को खारिज करने वाले चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश के आदेश को संपुष्ट किया गया जिसके द्वारा अपील के प्रत्यावर्तन से इनकार किया गया था।

4. यह लेटर्स पैटेन्ट अपील उपरोक्त आदेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है एवं अपील के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने एतस्मिनपूर्व यथा निर्दिष्ट उन निवेदनों की पुनरावृत्ति करते हुए अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की आलोचना की जिसे अवर न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था। यह निवेदन किया गया था कि अवर न्यायालय ने अपीलार्थी का केस स्वीकार न करने में मुख्य रूप से इस आधार पर एक त्रुटि की थी कि वे उपस्थित नहीं हो सके थे जब अपील की सुनवायी की गयी थी क्योंकि उन्हें अपने परिवार के एक सदस्य की बीमारी के कारण उपस्थित होने से निवारित किया गया था जिसके कारण उन्हें घर जाना था एवं इसलिए, यह अनुपस्थिति का पर्याप्त हेतुक था एवं प्रकीर्ण केस सं० 2 वर्ष 2002 के माध्यम से प्रत्यावर्तन याचिका की खारिजी अन्यायोचित था।

5. अपीलार्थी के अधिवक्ता को सुनने के उपरांत एवं अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों के आलोक में सम्यक् विचारोपरांत, हम इस दृष्टिकोण के हैं कि अपीलार्थी के अधिवक्ता यह प्रमाणित करने में बुरी तरह से विफल रहे हैं कि उन्हें उस तिथि को अनुपस्थिति हेतु पर्याप्त हेतुक था जब अपील को सुनवायी के लिए लिया गया क्योंकि उस कथन में स्पष्ट अनियमितता है जिसे उसने याचिका में

समाविष्ट किया था एवं जिसे बाद में न्यायालय में पेश किया गया था। इस प्रकार प्रत्यावर्तन याचिका में जो प्रकीर्ण केस सं॰ 2 वर्ष 2002 था एवं अपीलीय मंच के समक्ष किया गया उसका मौखिक निवेदन स्पष्ट रूप से एक दूसरे के विपरीत था एवं उस तर्काधार पर यदि अवर न्यायालय अपील के प्रत्यावर्तन की अनुज्ञा नहीं दी, तो इसे किसी अनियमितता या अविधिमान्यता से ग्रस्त अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि किसी भी व्यक्ति को जो न्यायालय में आता है बेदाश होकर आना चाहिए एवं तथ्य को उस प्रकार रखना चाहिए जो कपटता रहित थे। वर्तमान मामले में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता प्रथम अपीलीय न्यायालय में स्पष्ट रूप से अपनी अनुपस्थिति को न्यायोचित ठहराने वाले दो कथन लेकर आए हैं एवं इस अनियमितता के कारण उस कथन पर विश्वास करना निशिचित रूप से कठिन था जो अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा कहा गया था।

6. इस प्रकार, अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचने में उचित प्रतीत होते हैं कि पर्याप्त हेतुक का एक मामला अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्मित नहीं हुआ था। परन्तु, वैसा कहकर, हम इस तथ्य से समान रूप से अवगत हैं कि वादी-अपीलार्थी ने अपनी ओर से न्यायालय के समक्ष कोई गलत कथन नहीं किया था एवं यदि कोई गलत कथन किया गया था तो यह मात्र अधिवक्ता की ओर से था जिसके लिए वह अपील का अवसर प्राप्त किए बिना उस भूमि के टुकड़े पर अभिधान की घोषणा के लिए दाखिल उसके वाद के खारिज किए जाने के तौर पर भुक्तभोगी होगी जिसपर उसका आवासीय मकान निर्मित है, वह अपने मामले को गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभावित कराने को बाध्य है क्योंकि वाद की खारिजी का स्वत: प्रभाव आवासीय परिसर से उसके निष्काषण का होगा यहाँ तक कि उस अपील से प्रभावित हुए बिना जो उसने चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, पलामू के समक्ष दाखिल की है।

7. बारम्बार, विनिश्चयों की श्रृंखला में यह अधिकथित किया गया है कि अधिवक्ता की त्रुटियों के कारण वादकार को प्रभावित होने नहीं दिया जाना है एवं यद्यपि इस निर्णयाधार को सभी मामलों की परिस्थितियों में समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता है, इसलिए इसकी प्रयोज्यता की अनदेखी एक दी गयी परिस्थिति में नहीं की जा सकती विशेष रूप से तब जब परिणाम घोर अन्याय का हो।

8. वर्तमान मामले में, हमने स्पष्ट रूप से नोट किया है कि अपीलार्थी के अधिवक्ता को ही एक ऐसी कहानी बुनने के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है जिसमें अपीलार्थी का कोई योगदान नहीं है यद्यपि वह अपने अधिवक्ता की त्रुटियों के लिए भुक्तभोगी होगी।

9. इसलिए, हम इस अपील को मात्र उपरोक्त कारण से ही अनुज्ञात करना यथोचित समझते हैं, यद्यपि हम अवर न्यायालय द्वारा अपनाये गए इस दृष्टिकोण को पृष्ठांकित करते हैं कि अपील के प्रत्यावर्तन हेतु पर्याप्त हेतुक का कोई केस नहीं निर्मित हुआ था। इसलिए हम इस अपील को अनुज्ञात करते हैं एवं अभिधान अपील सं॰ 3 वर्ष 1997 को एतस्मिनपूर्व बताये गए कारणों से इसके मूल संख्या में प्रत्यावर्तित किया जाता है।

10. इसलिए, यह लेटर्स पैटेन्ट अपील इस निर्देश के साथ अनुज्ञात किया जाता है कि अभिधान अपील सं॰ 3 वर्ष 1997 के गुणागुण पर सुने एवं निस्तारित किए जाने के लिए चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, पलामू के समक्ष मूल संख्या में प्रत्यावर्तित होगाा।

लेकिन, व्ययों के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

सुशील कुमार सुरेका

बनाम

संतोष कुमार सिंह

सिविल पुनरीक्षण सं॰ 13 वर्ष 2009. 20 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XXI, नियम 58 एवं 97 सह-पठित सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 151—एक अभिधान निष्काषण वाद जो समझौता डिक्री में समाप्त हुआ—निष्पादन केस में आदेश XXI के विभिन्न नियमावलियों के अधीन बारम्बार आक्षेप दाखिल किये गए—सभी अस्वीकृत—पूर्व आक्षेपकर्ता के पुत्र द्वारा पुनरीक्षण याचिका—अभिनिर्धारित, तथ्यों एवं परिस्थितियों से यह स्पष्ट है कि विपक्षी पक्षकार स्वतंत्र रूप से दावा नहीं कर रहा है अपितु अपने पिता के माध्यम से दावा कर रहा है—उसके एवं उसके पिता द्वारा दाखिल आक्षेपों को उच्च न्यायालय द्वारा बारम्बार अस्वीकार किया गया था—विधि की प्रक्रिया के घोर दुरूपयोग का मामला—विपक्षी पक्षकारों पर 2,500/- रू॰ का नाममात्र का व्यय अधिरोपित किया गया—याची डिक्रीधारक के पुनरीक्षण आवेदन को अनुज्ञात किया गया था। (पैरा 3 से 7)

निर्णयज विधि.—2009(1) JCR 318 (Jhr.)—Referred to.

अधिवक्तागण.—M/s. P.K. Prasad, Rahul Gupta, Ayush Aditya, For the Petitioner; Mr. Jagdish Prasad Sahu, For the Opposite Party.

आदेश

अंतिम निस्तारण के लिए याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद एवं विपक्षी पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जगदीश प्रसाद साहु को विस्तार से सुना गया।

2. यह सिविल पुनरीक्षण आवेदन प्रकीर्ण केस सं॰ 10 वर्ष 2005 में पारित दिनांक 27.2.2009 के आदेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है। श्री प्रसाद ने निवेदन किया कि उक्त प्रकीर्ण केस को निर्बंधित नहीं किया जा सकता है एवं ऐसा नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित तथ्य रखा।

3. याची-डिक्रीधारक द्वारा किसी कैलाश चन्द खेमका के विरूद्ध एक अभिधान निष्काषण वाद सं॰ 9 वर्ष 1997 दाखिल किया गया था जो समझौता डिक्री में समाप्त हुआ। लेकिन, याची को ऐसी डिक्री निष्पादित करने के लिए एक निष्पादन केस उद्गृहित करना था। निष्पादन केस में, वर्तमान विपक्षी पक्षकार के पिता, श्री अवधेश कुमार सिंह ने सिविल प्रक्रिया संहिता (सि॰ प्र॰ सं॰) के आदेश 21, नियम 97 के अधीन इस आधार पर आक्षेप दाखिल किया कि उसने मौखिक विक्रय के आधार पर 45,000/-रू॰ की राशि के बदले में संपत्ति अर्जित की। ऐसा आक्षेप 7.1.2002 को अस्वीकार किया गया था। पुनः उसने सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 21, नियम 58 के अधीन एक आक्षेप दाखिल किया। इसे भी अस्वीकार किया गया था, जिसके विरूद्ध उसने प्रकीर्ण अपील दाखिल किया जिसे भी खारिज किया गया था। इसके विरूद्ध उसने अपील दाखिल किया, जिसे भी खारिज किया गया था। तब उसने सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 151 के अधीन इसी प्रकार का आक्षेप दाखिल किया इसे भी 16.1.2002 को अस्वीकार किया गया था जिसके विरूद्ध उसने एक सिविल पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किया जिसे भी उच्च न्यायालय द्वारा 26.2.2003 को खारिज किया गया था। तब पुनः उसने आदेश 21, नियम 97 के अधीन आक्षेप दाखिल किया। इसे भी 4.9.2003 को अस्वीकार किया गया था। इसके विरूद्ध, एक सिविल पुनरीक्षण दाखिल किया गया था जिसे भी 5.11.2002 को खारिज किया गया था। अंततः कब्जे का परिदान 7.12.2003 को प्रभावित हुआ था। इसी बीच, उक्त अवधेश कुमार सिंह ने अपने अभिप्रायित दावे के आधार पर अभिधान वाद सं॰ 28 वर्ष 2001 दाखिल किया जिसे उक्त आक्षेपों का आधार बनाया गया था। यह वाद उप-न्यायाधीश, राँची के न्यायालय में लम्बित है।

4. अवधेश कुमार सिंह के यथा उपरोक्त बारम्बार असफल होने के उपरांत, उसके पुत्र संतोष कुमार सिंह-वर्तमान विपक्षी पक्षकार ने अपने पिता के माध्यम से दावा करते हुए, उक्त निष्पादन मामले में एक याचिका दाखिल किया। ऐसे आक्षेप को भी 17.11.2003 को अस्वीकार किया गया था, जिसके विरूद्ध उसने एक अपील दाखिल किया जो प्रकीर्ण अपील सं॰ 24 वर्ष 2003 था। सम्पूर्ण मामले पर विचार करके, अपील को खारिज किया गया था। अन्य के साथ-साथ, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विपक्षी पक्षकार संतोष कुमार सिंह का अपने पिता अवधेश कुमार सिंह से पृथक

या स्वतंत्र कोई अभिधान नहीं था एवं इसलिए, वह अपने पिता के विरूद्ध पारित आदेशों द्वारा समान रूप से बाध्य है, एवं यह कि उसके पिता एक अभिप्रायित मौखिक विक्रय के आधार पर दावा कर रहे थे; एवं यह कि विपक्षी पक्षकार के पिता द्वारा दाखिल वाद लम्बित था। ऐसे आदेश के विरूद्ध, विपक्षी पक्षकार ने एक सिविल पुनरीक्षण दाखिल किया जो सिविल पुनरीक्षण सं॰ 146 वर्ष 2006 था। पक्षकारों की सुनवायी के उपरांत, उक्त सिविल पुनरीक्षण 24.2.2005 को खारिज किया गया था। यह पाया गया था कि अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों एवं मामलों की विवेचना की थी एवं इन तर्कों द्वारा समर्थित आदेश पारित किया था एवं अधिकारिता का प्रयोग विधित: एवं उचित रूप से किया है। यह भी पाया गया था कि ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने में कोई त्रुटि या अविधिमान्यता नहीं हुई थी। लेकिन, यह सम्प्रेक्षित किया गया था कि उसमें के याची (इसमें वर्तमान विपक्षी पक्षकार) को विधि के प्रावधानों के अन्तर्गत उसको उपलब्ध किसी अन्य उपचार की माँग करने का विकल्प खुला था। तब पुन:, विपक्षी पक्षकार ने इसी प्रकार के अभिवाक् उठाते हुए सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 21, नियम 98, 99, 100 एवं 101 के अन्तर्गत एक आक्षेप दाखिल किया जिसे उसके एवं उसके पिता द्वारा दाखिल पूर्वतर आक्षेपों में बारम्बार अस्वीकार किया गया था, परन्तु उक्त प्रकीर्ण वाद को मुख्यत: इस आधार पर स्वीकार किया गया है कि कब्जे का परिदान पहले ही प्रभावित हुआ है एवं प्रकीर्ण वाद सुनवायी के लिए लम्बित है।

5. श्री प्रसाद ने **वोल बिल्डर्स प्रा॰ लि॰ बनाम जनाब सलीम साहेब (W.P.(C). No. 629 वर्ष 2008)** के **2009(1) JCR (Jhr.)** में प्रकाशित मामले में एक निर्णय पर भरोसा व्यक्त किया है।

6. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकारों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री साहू ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और निवेदन किया कि एक कपटपूर्ण समझौता विलेख अभिप्राप्त किया गया था एवं याची को गलत रूप से बेदखल किया गया था। उन्होंने आक्षेपित आदेश के समर्थन में कई निर्णयों पर भरोसा किया।

7. उपर उल्लिखित तथ्यों एवं परिस्थितियों से, यह स्पष्ट है कि विपक्षी पक्षकार स्वतंत्र रूप से दावा नहीं कर रहा है, बल्कि वह अपने पिता के माध्यम से दावा कर रहा है। उसके आक्षेप उसके पिता द्वारा किए गए आक्षेपों के सदृश हैं। उसके एवं उसके पिता द्वारा दाखिल आक्षेप को इस न्यायालय द्वारा बारम्बार अस्वीकार किया गया था। विपक्षी पक्षकार के पिता द्वारा दाखिल वाद लम्बित है। यह विधि के घोर दुरूपयोग का एक केस है। वे निर्णय जिसपर श्री साहु द्वारा भरोसा व्यक्त किया गया है वे इस मामले के तथ्यों एव परिस्थितियों में प्रयोज्य नहीं है जैसा कि उपर में उल्लेख किया गया है। बल्कि **वोल बिल्डर्स (ऊपर)** का निर्णय जिसपर श्री प्रसाद द्वारा भरोसा व्यक्त किया गया है इस मामले में प्रयोज्य नहीं है।

8. परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है एवं इस सिविल पुनरीक्षण आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है। परिणामत:, प्रकीर्ण केस सं॰ 10 वर्ष 2005 अस्वीकार हो जाता है। मैं विपक्षी पक्षकार पर 2,500/- रु॰ के नाममात्र के व्यय अधिरोपित करने हेतु विवश हूँ जिसे वह चार सप्ताह के भीतर झारखण्ड उच्च न्यायालय के अधिवक्ता संगठन में अधिवक्ता कल्याण कोष में निक्षेपित करेंगे।

माननीय ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश एवं डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

रेणु देवी

बनाम्

सेन्ट्रल कोल फिल्ड्स लि॰ एवं अन्य

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 13 वर्ष 2009. 26 मार्च, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि—पुत्र के लिए अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए इस आधार पर की गयी ईप्सा को एकल पीठ द्वारा अस्वीकार किया गया कि याची के पति के सेवानिवृत्त होने से मात्र एक वर्ष पूर्व गायब होने की रिपोर्ट दी गयी थी—एल॰ पी॰ ए॰—अभिनिर्धारित, इस दावे

को विधितः कायम नहीं रखा जा सकता है क्योंकि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा उसके गायब होने के सात वर्ष के उपरांत हीं प्रोद्भूत हो सकता था एवं उस अवधि के पूर्व याची के पति/कर्मचारी को मृत उपधारित नहीं किया जा सकता था—इस बात की पुनरावृत्ति करना उपयोगी है कि उस अवधि के दौरान कर्मचारी/पति अधिवर्षिता तक पहुँच चुका होगा इस प्रकार वाद हेतुक अब मौजूद नहीं—एल॰ पी॰ ए॰ खारिज। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.—Mr. Rajesh Kumar, For the Appellant; Mr. A. Sen, For the Respondent.

आदेश

यह अपील W.P.(S) No. 2113/2008 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 15.9.2008 के आदेश के विरूद्ध दायर की गयी है, जिसके द्वारा रिट याचिका को खारिज किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप याची के अपने गायब पति के स्थान पर अनुकंपा के आधार पर पुत्र की नियुक्ति की मांग करने के उसके दावे को अस्वीकार किया गया था।

2. वर्तमान मामला उन मामलों में से एक नहीं है जहाँ कर्मचारी मृत होता है बल्कि एक ऐसा मामला है जहाँ प्रत्यर्थी कंपनी के कर्मचारी को अपनी अधिवर्षिता के एक वर्ष पूर्व लापता पाया गया था। मामले की रिपोर्ट पुलिस में दी गयी थी एवं एक प्राथमिकी दर्ज की गयी थी, परन्तु आजतक याची के पति का पता नहीं चला था।

3. इसलिए, वर्तमान याची/अपीलार्थी एक केस लेकर आयी है कि उसके पति की मृत्यु की उपधारणा होनी चाहिए थी क्योंकि वे सात वर्षों से अधिक से गायब थे एवं इसलिए, उसके पुत्र को अपने पिता के स्थान पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति मंजूर की जानी चाहिए थी। अपने पति की सेवानिवृत्ति सम्बन्धी सभी लाभों का भुगतान करने का एक निर्देश देने की भी ईप्सा की गयी थी।

4. प्रत्यर्थी-कंपनी के अधिवक्ता द्वारा यह सूचित किया गया था कि याची को सेवानिवृत्ति सम्बन्धी देयों का भुगतान पहले ही किया जा चुका था, जो उसके पति को भुगतेय था एवं जहाँ तक अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का सवाल है इसे प्रदान नहीं किया जा सकता है क्योंकि याची के पति मृत नहीं हैं क्योंकि वे गायब हैं एवं अभी भी जीवित हो सकते हैं।

5. दूसरी ओर, वर्तमान याची/अपीलार्थी के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यदि याची के पति को आठ वर्षों से अधिक तक लापता पाया जाता है तो इसे उपधाारणा के आधार पर मृत्यु का एक केस माना जाएगा एवं, इसलिए, नियमानुसार अनुकंपा के आधार पर याची के पुत्र को नियुक्ति प्रदान किया जाना उपयुक्त था।

6. एतस्मिनपूर्व उल्लिखित तथ्यों के आलोक में पक्षों के अधिवक्ता को सुन चुकने के उपरांत, हम इस दृष्टिकोण के हैं कि याची के पति की अपनी अधिवर्षिता के पूर्व मात्र एक वर्ष की सेवा शेष थी जिसके दौरान उसे गायब पाया गया था एवं इसलिए, एक वर्ष की अवधि की समाप्ति के उपरांत याची का अपने पति के स्थान पर अपने पुत्र की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा विधितः कायम नहीं रह सकता है क्योंकि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा उसके गायब होने के सात वर्षों के उपरांत ही प्रोद्भूत हो सकती है एवं उस अवधि की समाप्ति से पूर्व याची के पति/कर्मचारी को मृत उपधारित नहीं किया जा सकता है। इसकी पुनरावृत्ति करना उपयोगी है कि याची के पति ने इस अवधि के दौरान अधिवर्षिता की उम्र को भी प्राप्त किया एवं इसलिए, उसके गायब होने की अवधि के एक वर्ष के उपरांत ही उसका सेवा में रहना समाप्त हो गया। मामले की उस दृष्टि में, जब याची ने अपने गायब पति के स्थान पर अनुकंपा के आधार पर अपने पुत्र की नियुक्ति का दावा किया तो

वाद हेतुक विद्यमान नहीं रहा क्योंकि उसके पति सेवा में नहीं थे एवं इसलिए, अपने पति के गायब होने के सात वर्षों के उपरांत उसकी मृत्यु की उपधारणा के आधार पर अनुकंपा पर नियुक्ति का दावा कायम नहीं रह सकता है।

7. इसके अतिरिक्त, नियुक्ति के ऐसे दावे के निहितार्थ की उपेक्षा नहीं की जा सकती है क्योंकि यदि याची के अभिवाक् को ग्रहण किया जाता एवं याची के पुत्र को उपरोक्त परिस्थितियों में नियुक्ति प्रदान की जाती तो यह कल्पित करना दूर नहीं है कि इसे कर्मचारियों द्वारा उसके गायब रहने के आधार पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा करने के लिए सेवानिवृत्ति के सिरे पर कूटचाल एवं कार्यप्रणाली के तौर पर प्रयुक्त किया जा सकता था यद्यपि हम किसी साक्ष्य की अनुपस्थिति में उस प्रभाव का कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं करते हैं कि वर्तमान मामले में यही स्थिति है। परन्तु उपरोक्त इंगित कारणों से, गायब रहने की अवधि के दौरान अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा कायम नहीं रखा जा सकता था क्योंकि वह पहले ही सेवा से निवृत्त हो चुका था जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा करने वाला वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ।

8. इस प्रकार, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा नियत कारणों के अतिरिक्त, याची के पुत्र की अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा उचित रूप से ही ग्रहण नहीं किया गया है एवं इसलिए, हम इस अपील को ग्रहण करने का कोई कारण नहीं पाते हैं, जो स्वीकृति के प्रक्रम पर ही खारिज किया गया है।

9. जहाँ तक सेवानिवृत्ति सम्बन्धी देयों का सम्बन्ध है, इसका भुगतान प्रत्यर्थी-कंपनी द्वारा शीघ्रातिशीघ्र किया जाएगा, यदि पहले भुगतान नहीं किया गया हो।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

डॉ॰ जी॰ के॰ लठ उर्फ गोपाल कृष्ण लठ

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

W.P.(Cr.) No. 267 वर्ष 2008. 23 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 387—उद्दापन–परिवादी का अभिकथन कि सुरक्षा प्रहरियों एवं याची ने उसे धमकी देकर समयपूर्व सेवानिवृत्ति का आवेदन लिखने के लिए बाध्य किया–अभिनिर्धारित, यह कभी भी अभिकथित नहीं किया गया है कि याची ने व्यक्तिगत प्रतिष्ठा या संपत्ति को क्षति पहुँचाने के आशय से धमकी दी है–उद्दापन के बुनियादी अवयवों की अनुपस्थिति–याची को उन्मोचित करने से इनकार करने वाले आक्षेपित आदेश को अपास्त किया गया। (पैरा 12 से 17)

अधिवक्तागण.–Mr. T.R. Bajaj, For the Petitioner; Mr. R.R. Mishra, For the State; Mr. S. Piprawall, For the Respondent No. 2.

आदेश

यह रिट आवेदन दां॰ पु॰ सं॰ 195 वर्ष 2007 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 13.6.2008 के उस आदेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिसमें C/1 केस सं॰ 704 वर्ष 2001 में न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 18.5.2007 का वह आदेश अभिपुष्ट किया गया था जिसके द्वारा याची द्वारा दाखिल उन्मोचन की याचिका को अस्वीकार किया गया था।

2. इस आवेदन को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि परिवादी-प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने एक परिवाद दाखिल किया इसमें यह अभिकथित करते हुए कि 18.9.2000 को जब याची से टाटा मुख्य अस्पताल में उसके कक्ष में आने के लिए टेलीफोन पर कहा गया, तो वह वहाँ गया एवं वहाँ 5-6 सुरक्षा प्रहरियों को उपस्थित पाया। वहाँ याची तथा अन्य सुरक्षा प्रहरियों ने उसे समयपूर्व सेवानिवृत्ति का एक आवेदन लिखने को बाध्य किया। उक्त आवेदन को पाकर, याची ने प्रकट किया कि इसे अन्य अभियुक्त व्यक्तियों, TISCO के प्रबन्ध निदेशक एवं साथ ही कार्यपालक निदेशक के कहने पर उपाप्त किया गया था। तदुपरांत इस याची ने किसी अन्य व्यक्ति को प्रकट नहीं करने की धमकी दी अन्यथा उसकी हत्या सुरक्षा प्रहरियों द्वारा कर दी जाएगी। अगले दिन, परिवादी ने मामले को बिस्टूपुर पुलिस थाने के समक्ष रिपोर्ट की परन्तु उनलोगों ने मामले में कोई रूचि नहीं दिखायी एवं तब उसके पास परिवाद दर्ज कराने के अलावा कोई अन्य विकल्प शेष नहीं बचा क्योंकि परिवादी ने समय पूर्व सेवानिवृत्ति का स्वेच्छा से कभी कोई आवेदन नहीं दिया था, बल्कि उसे वह आवेदन लिखने के लिए बाध्य किया गया था, यद्यपि, निबन्धनों के अनुसार, एक माह की नोटिस दिए जाने की अपेक्षा थी।

3. तदुपरांत, परिवादी का कथन सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर लिया गया था एवं मामले को जाँच के लिए लिया गया था। जाँच कराने के उपरांत, विद्वान मजिस्ट्रेट ने यह नहीं पाया कि प्रथम दृष्टया भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 342, 347, 387, 504 एवं 506 के अधीन अपराध निर्मित हुआ है एवं इस प्रकार, याची को सम्मन निर्गत किया। उपस्थिति दर्ज कराने के उपरांत, आवेदन को उन्मोचित करने के लिए एक आवेदन दाखिल किया गया था परन्तु उस प्रार्थना को विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा, दिनांक 20.6.2006 के आदेश के माध्यम से इनकार किया गया था जिसे विद्वान सत्र न्यायाधीश, जमशेदपुर के समक्ष चुनौती दी गयी थी, जिन्होंने पक्षकारों को सुनने के उपरांत आदेश को अपास्त किया एवं मामले में एक युक्तिसंगत आदेश पारित करने के लिए उसे विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रतिप्रेषित किया। तदुपरांत विद्वान मजिस्ट्रेट ने पक्षकारों को सुनने के बाद 18.5.2007 को एक आदेश पारित किया इसमें यह अभिनिर्धारित करते हुए कि उपरवर्णित अपराध के लिए याची के विरूद्ध एक प्रथम दृष्टया मामला प्रतीत होता है एवं यह कि आदेश को दां॰ पु॰ सं॰ 195 वर्ष 2007 में विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष चुनौती दी गयी थी परंतु उसे 13.6.2008 को खारिज किया गया था।

4. उस आदेश से व्यथित होकर, यह रिट आवेदन दाखिल किया गया है।

5. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा समय पूर्व सेवानिवृत्ति के लिए कहे जाने पर, जब उन्हें प्रबन्धन द्वारा सेवानिवृत्त कराया जा रहा था, तो प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने इसे स्वीकार किया परन्तु अपनी सेवानिवृत्ति के दस महीनों के उपरांत, एक परिवाद सभी मिथ्या अभिकथनों के साथ दर्ज कराया गया था ताकि प्रबन्धन शर्तों एवं निबन्धनों को परास्त कर सके लेकिन, यदि परिवाद याचिका में किए गए सम्पूर्ण अभिकथनों को सत्य माना जाए, तो भी कोई अपराध, जो कुछ भी, निर्मित नहीं हुआ है एवं इस प्रकार, दोनों अवर न्यायालयों ने मामले में याची को उन्मोचित न करके अविधिमान्यता कारित की एवं इसलिए, अवर न्यायालयों द्वारा मामले से याची को उन्मोचित करने से इनकार करते हुए पारित आदेश अपास्त किए जाने के लिए उपयुक्त है।

6. इसके यथा विरूद्ध, प्रत्यर्थी सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आरोप के विरचना के प्रक्रम पर, मात्र मजिस्ट्रेट ही इस बात पर विचार करने के लिए अपेक्षित हैं कि क्या कोई प्रथम दृष्टया मामला निर्मित हुआ है या नहीं एवं उस सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, दोनों अवर न्यायालयों ने तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करने के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन अपराधों के लिए प्रथम दृष्टया मामला निर्मित हुआ है जिसके लिए संज्ञान लिया गया है एवं इस प्रकार, अवर न्यायालय इस केस से याची को उन्मोचित करने से इनकार करने में पूर्णतया न्यायोचित हैं।

7. इस प्रकार, विषय जो विचारण के लिए आता है, इसके सम्बन्ध में है कि क्या परिवाद याचिका एवं जाँच के अनुक्रम में साक्षियों द्वारा किए गए कथन अपराध गठित करते हैं जिसके अधीन संज्ञान लिया गया है?

8. यह कहा जाय कि परिवाद में किए गए इस अभिकथन पर कि याची एवं सुरक्षा प्रहरियों ने उसे समयपूर्व सेवानिवृत्ति का आवेदन लिखने के लिए बाध्य किया, संज्ञान भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 342, 347, 504 एवं 506 के अधीन लिया गया है। इस प्रकार, प्रथम एवं सर्वप्रथम बिन्दु यह है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 387 के अधीन अपराध, अभिकथन की पृष्ठभूमि को सत्य मानते हुए क्या निर्मित हुआ है।

9. इस सम्बन्ध में कोई भी भारतीय दण्ड संहिता की धारा 387 में अंतर्विष्ट प्रावधान का उल्लेख कर सकता है जो निम्नवत पठित है:-

> *387. **उद्दापन करने के लिए किसी व्यक्ति को मृत्यु या घोर उपहति के भय में डालना.**-जो कोई उद्दापन करने के लिए किसी व्यक्ति के स्वयं उसकी या किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु या घोर उपहति के भय में डालेगा या भय में डालने का प्रयत्न करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।*

10. उक्त प्रावधान का अवलोकन करके यह प्रतीत होता है कि ऐसे अपराध को गठित करने के लिए कुछ दृश्य और प्रकट कृत्य होना चाहिए जो सहज एवं सामान्य निष्कर्ष प्रतिबिंबित करता हो कि वास्तव में, गलत करने वाले ने किसी व्यक्ति को मृत्यु या घोर उपहति के भय में रखा था। उद्दापन के कृत्य की ओर अग्रसर करने वाले किसी प्रकट कृत्य की अनुपस्थिति में इसे धमकी द्वारा उद्दापन के लिए कारित एक अपराध नहीं कहा जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि किसी भौतिक कृत्य के दृश्य चिन्ह के बिना, शब्द का सरल प्रयोग ही अभियुक्त की ओर से किसी भौतिक कृत्य या किसी ऐसी सामग्री की अनुपस्थिति में उस अपराध को गठित करने के लिए पर्याप्त नहीं है जो यह इंगित कर सके कि वास्तव में अभियुक्त ने भय या मृत्यु की धमकी द्वारा उद्दापन किया था।

11. वर्तमान मामले में मुख्य अवयव की जैसा कि इंगित किया गया है पूर्ण कमी है। इस सम्बन्ध में, मैं परिवाद के पैराग्राफ 3, 4 एवं 5 में किए गए कथन के सुसंगत भाग को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जो निम्वत पठित है:-

> *''यह कि 28.9.2000 को जो बृहस्पतिवार एवं परिवादी के लिए अवकाश था, एवं अचानक लगभग 12 बजे परिवादी ने डॉ॰ जी॰ के॰ लठ से टेलीफोन के माध्यम से सूचना प्राप्त किया, एवं परिवादी से उसके कार्यालय में लगभग 3.30 बजे दिन में एक अत्यावश्यक कार्य से आने को कहा गया एवं तद्नुसार वे डॉ॰ जी॰ के॰ लठ, जमशेदपुर, टाटा मुख्य अस्पताल के कक्ष में लगभग तीन बजे गया एवं पाया कि डॉ॰ जी॰ के॰ लठ के कार्यालय में पहले से ही 5/6 सुरक्षा प्रहरी मौजूद थे।*
>
> *यह कि जैसे ही उन्होंने विपक्षी पक्षकार संख्या-2 के कार्यालय में प्रवेश किया, तो सुरक्षाकर्मियों द्वारा कमरा अंदर से बन्द कर दिया गया एवं उनलोगों ने परिवादी को डॉ॰ जी॰ के॰ लठ के निर्देश का पालन करने को कहा।*
>
> *परिवादी भयभीत एवं घबरा गया एवं डॉ॰ लठ से कमरे से बाहर जाने की अनुमति देने का आग्रह किया परन्तु उसकी अनुमति नहीं दी गयी एवं उन्हें दो कागजातों पर हस्ताक्षर करने को कहा गया जो कि सेवा से उसकी बर्खास्तगी के कागजात होना एवं साथ ही स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की मांग करने वाला पाया गया था। उसे सुरक्षाकर्मियों द्वारा गन्दी भाषा में गाली दिया गया था। यह भी अभिकथित किया गया था कि याची ने परिवादी से कहा था कि यह डॉ॰ जे॰ जे॰ इराणी एवं अरूण नारायण सिंह के निर्देशों पर किया जा रहा था।''*

12. इसका परिशीलन करने पर कोई व्यक्ति यह पा सकता है कि भौतिक कृत्य के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है बल्कि सरल रूप से यह कहा गया है कि उसे लिखने को बाध्य किया गया था एवं इन परिस्थितियों के अन्तर्गत यह मुश्किल से यह कहा जा सकता है कि याची ने मृत्यु या उपहति का भय दिखाकर या धमकी देकर उद्दापन का प्रयोग किया था।

13. अभिकथन की इस पृष्ठभूमि में जिसका मैंने उल्लेख किया है, धाराएँ 506 एवं 504 के अधीन यथा अनुध्यात साशयित अपमान या आपराधिक अभित्रास के अपराध सहित कोई अन्य अपराध निर्मित नहीं हुआ है। यह कभी भी अभिकथित नहीं किया गया है कि याची ने किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के शरीर, प्रतिष्ठा या संपत्ति को क्षति पहुँचाने के आशय की घोषणा के साथ धमकी दी हो और न ही यह अभिकथित किया गया है कि याची ने शांति के भंग को प्रकोपित करने के आशय से प्रत्यर्थी सं॰ 2 को अपमानित किया है।

14. उपर विवेचित कारणों से, मैं पाता हूँ कि उन सामग्रियों में जिसपर याची के विरूद्ध अभियोजन प्रारम्भ किया गया है उन अपराधों के अवयवों की कमी है जिसके अधीन संज्ञान लिया गया है।

15. इस प्रक्रम पर, **कर्नाटक राज्य बनाम् एल॰ मुनीस्वामी एवं अन्य [(1977)2 SCC 699]** के मामले को निर्दिष्ट करना उचित होगा जहाँ जब माननीय न्यायालय ने यह पाया कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जिसपर कोई न्यायालय किसी अपराध के लिए अभियुक्त को युक्तिसंगत रूप से दोषसिद्ध कर सकता था तो न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही जारी रखने की अनुज्ञा देना सार्वजनिक समय एवं धन की मात्र बर्बादी होगा। इस सम्बन्ध में माननीय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

> *''सिविल एवं दाण्डिक दोनों मामलों में, उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की व्यावृत्ति एक हितकारी सार्वजनिक प्रयोजन की प्राप्ति के लिए अभिहित है जो यह है कि किसी न्यायालयी कार्यवाही का प्रयोग परेशान करने या अत्याचार के एक अनैतिक हथियार के रूप में करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।''*

16. इसलिए, यह अभिनिर्धारित करना अवर न्यायालयों की ओर से विल्कुल गलत था कि भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 342, 347, 387, 504 एवं 506 के अधीन अपराध गठित करने के लिए प्रथम दृष्टया सामग्रियाँ मौजूद हैं।

17. मामले की उस दृष्टि में, उन आदेशों को जो केस से याची को उन्मोचित करने से इनकार करने के लिए आक्षेपित हैं, एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

18. परिणामस्वरूप, आवेदन अनुज्ञात हो जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

कृष्णा सिंह @ छोटू सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य

दा॰ अ॰ सं॰ 755 वर्ष 2005. 23 जून, 2009 को विनिश्चित।

S.T. सं॰ 495 वर्ष 2004 में सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 15.3.2005 एवं 16.3.2005 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 376 सह-पठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 32—मृत्युकालिक घोषणा–इसपर आधारित दोषसिद्धि–मृतका ने जो अभिकथित रूप से एक बलात्संग पीड़िता है, अपने शरीर पर किरासन तेल डालकर आत्महत्या कारित की एवं 100% जल गयी–उसके मृत्युकालिक घोषणा को उस अस्पताल में अन्वेषण अधिकारी द्वारा दो घंटे के भीतर अभिलिखित किया गया जहाँ उसका ईलाज चल रहा था–अभिकथन एक डॉक्टर

की उपस्थिति में अभिलिखित किया गया था जिन्होंने यह प्रमाणित किया कि ऐसा कथन करते समय पीड़िता आत्यंतिक रूप से सचेत थी एवं स्वस्थ मानसिक दशा में थी–दोषसिद्धि बरकरार रखा गया। (पैरा 3, 5, 15 एवं 18)

अधिवक्तागण.–M/s B.M. Tripathy, Nutan Sharma, Navin Kumar Jaiswal, For the Appellant; Mr. D.K. Prasad, For the Respondent.

निर्णय

यह अपील सत्र विचारण सं॰ 495 वर्ष 2004 में श्री एस॰ के॰ मुरारी, सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 15.3.2005 के निर्णय के विरूद्ध दायर की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है एवं भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 306 के अधीन आरोप से दोषमुक्त किया गया था एवं दस वर्षों के कठोर कारावास भुगतने से दण्डित किया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि 30.5.2004 को लगभग 3.30 बजे शाम को विवेक मल्लिक की बेटी रूबी कुमारी उम्र लगभग 14 वर्ष, गाँधी रोड, हल्दी पट्टी, थाना–धनबाद, जिला–धनबाद में अवस्थित अपने मकान में थी। अभियुक्त छोटू सिंह का रूबी कुमारी के घर में आना–जाना था। अपीलार्थी छोटू सिंह रूबी कुमारी के परिवार के अन्य सदस्यों की अनुपस्थिति में उसके घर लगभग 3.30 बजे शाम में पहुँचा। उसने रूबी कुमारी का मुँह बन्द कर दिया एवं तदुपरांत उसपर बलात्संग कारित किया। रूबी कुमारी द्वारा हल्ला किए जाने पर, उसके भाईयों मनीष कुमार, शिवेश कुमार मल्लिक, कोई मुन्ना पंडित, गया पंडित एवं अन्य लोग भी घटनास्थल पर पहुँचे जिससे रूबी कुमारी ने घटना के बारे में बताया। रूबी कुमारी दस्त एवं उल्टी से ग्रस्त हो गयी। उसे उसके भाई द्वारा ईलाज के लिए शक्ति नर्सिंग होम ले जाया गया। अभियुक्त कृष्ण सिंह द्वारा कारित बलात्संग के अभिकथित कृत्य के कारण रूबी कुमारी अवसाद का शिकार हो गयी एवं उसने सोचा कि उसके जीवन में अब कुछ भी शेष नहीं बचा है। उसने 1.6.2004 को लगभग 8.30 बजे रात्रि में घर का दरवाजा अंदर से बन्द करने के उपरांत अपने शरीर पर किरासन तेल उडेल लिया एवं आग लगा लिया जिसके परिणामस्वरूप रूबी कुमारी के पूरे शरीर पर जलने की उपहतियाँ आयी।

3. तदुपरांत रूबी कुमारी को P.M.C.H., धनबाद लाया गया एवं ईलाज के लिए आकस्मिक ईमरजेंसी वार्ड में भर्ती कराया गया। जब उसका ईलाज चल रहा था, तो उपनिरीक्षक मो॰ मोईनुद्दीन (अ॰ सा॰ 8) P.M.C.H., धनबाद पहुँचे एवं उसी दिन 10.30 बजे रूबी कुमारी का कथन अभिलिखित किया। रूबी कुमारी के कथन के आधार पर अपीलार्थी के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 109, 113, 376, 306 के अधीन धनसार थाना केस सं॰ 319 वर्ष 2004 दिनांकित 1.6.2004 निर्बंधित किया गया था। रूबी कुमारी की मृत्यु P.M.C.H., धनबाद में अपना कथन देने के उपरांत उसी दिन 1.57 बजे दिन में हो गयी। अन्वेषण के दौरान, अन्वेषण अधिकारी ने अभियोजन साक्षियों का कथन अभिलिखित किया, घटनास्थल का निरीक्षण किया, रूबी कुमारी के शव का मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार किया एवं इसे मृत्योपरांत परीक्षण के लिए भेज दिया। रूबी कुमारी के शव का मृत्योपरांत परीक्षण डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार (अ॰ सा॰ 6) सह–प्राध्यापक, विधि विज्ञान चिकित्सा, P.M.C.H., धनबाद द्वारा दिनांक 1.6.2004 को 3.45 बजे शाम में किया गया। अन्वेषण की समाप्ति के उपरांत, अन्वेषण अधिकारी ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 109, 113, 376 एवं 306 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप–पत्र पेश किया।

4. अभियोजन ने अभियुक्त–अपीलार्थी के विरूद्ध लगाये गए आरोप को प्रमाणित करने के लिए आठ साक्षियों की परीक्षा की है। वे हैं अ॰ सा॰ 1, गया पंडित, अ॰ सा॰ 2, फुलवा देवी, अ॰ सा॰ 3 मुन्ना पंडित, अ॰ सा॰ 4, मनीष कुमार मल्लिक, अ॰ सा॰ 5, शिवेश कुमार मल्लिक, अ॰ सा॰ 6, डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार, अ॰ सा॰ 7, डॉ दिनेश कुमार गेंडोरिया एवं अ॰ सा॰ 8, मो॰ मोईनुद्दीन। अभियुक्त का

बचाव अभिकथित घटना से पूर्ण इनकार का है। यह भी कहा गया है कि उसे इस मामले में मिथ्यापूर्वक फंसाया गया है क्योंकि अभियुक्त के पिता ने अपनी भूमि के लिए धन की मांग की थी जिसे उसने रूबी कुमारी के पिता को बेचा था। बचाव पक्ष का अग्रेतर अभिवाक् यह है कि धन की मांग के कारण विवेक कुमार मल्लिक का अभियुक्त के पिता के साथ झगड़ा था।

5. मैं मामले के अभिलेखों से पाती हूँ कि सम्पूर्ण अभियोजन मामला मात्र मृतका रूबी कुमारी के कथनों एवं साथ ही कुछ परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। यह स्वीकृत तथ्य है कि रूबी कुमारी की मृत्यु दाह उपहति के कारण हुई थी। विचार किए जाने के लिए मुख्य प्रश्न यह है कि क्या अन्वेषण अधिकारी द्वारा अभिलिखित रूबी कुमारी के कथन पर मृत्युकालिक घोषणा के तौर पर विश्वास किया जा सकता है एवं इसके आधार पर अभियुक्त अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है।

6. अपीलार्थी के वरीय अधिवक्ता, श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी ने एक तर्कसंगत प्रश्न उठाया है कि क्या पीड़िता अपने मृत्युकालिक घोषणा अभिलिखित किए जाते समय मानसिक रूप से स्वस्थ थी अथवा नहीं। दूसरा यह कि क्या उसका कथन अभिलिखित करने की रीति विधि के अनुरूप थी अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त यह कि क्या उक्त मृत्युकालिक घोषणा के सम्बन्ध में साक्षी द्वारा कोई सम्पोषण है।

7. मैं इस मामले के अभिलेखों से पाती हूँ कि लातेहार पुलिस थाने के आरक्षी उप-निरीक्षक मो॰ मोईनुद्दीन द्वारा अभिलिखित पीड़ीता रूबी कुमारी के कथन को प्रदर्श-4 के तौर चिन्हित किया गया है। अब मुझे यह विचार करना है कि क्या पीड़ित लड़की के उक्त कथन को मृत्युकालिक घोषणा के तौर पर समझा जा सकता है एवं यह कि वह उस समय स्वस्थ मानसिक दशा में थी अथवा नहीं। पीड़ित लड़की रूबी कुमारी ने कहा है कि 30.5.2004 को लगभग 3.30 बजे अपराह्न में अभियुक्त उसके घर आया जब उसके माता पिता अपने पैतृक घर गये हुए थे। उसने पुनः कहा कि अभियुक्त का उसके घर आना जाना था। अभियुक्त आया एवं उसका मुँह बन्द कर दिया एवं तदुपरांत उसपर बलात्संग कारित किया। अपने अभिकथन में उसने यह भी कहा कि उसकी चीख सुनकर मोनीश कुमार, शिवेश कुमार, मुन्ना पंडित, गया पंडित एवं अन्य व्यक्ति उसके घर पहुंचे जिसे उसने घटना के बारे में बताया। 31.5.2004 को वह दस्त एवं उल्टी का शिकार हो गयी जिसके लिए उसका ईलाज शक्ति नर्सिंग होम में कराया गया। अपने कथन में उसने कहा कि 1.6.2004 को लगभग 8.30 बजे सुबह में उसने घर का दरवाजा बन्द कर लिया एवं अपने शरीर पर किरासन तेल डाल लिया एवं आत्महत्या करने के क्रम में आग लगा ली क्योंकि वह महसूस कर रही थी कि उसके जीवन में कुछ भी शेष नहीं बचा है।

8. मैंने प्रदर्श 4 का अवलोकन किया है एवं मैं पाती हूँ कि रूबी कुमारी का कथन 1.6.2004 को 10.30 बजे P.M.C.H., धनबाद में आकस्मिक आपात बार्ड में डॉ दिनेश कुमार गिंदोरिया (अ॰ सा॰ 7) के उपस्थिति में अभिलिखित किया गया था जिन्होंने प्रदर्श 4 पर अपने हस्ताक्षर किए। मैं प्रदर्श 4 पर मनीष कुमार मल्लिक का, जो पीड़ित लड़की का भाई है, हस्ताक्षर भी पाती हूँ।

9. अ॰ सा॰ 7, दिनेश कुमार गिंदोरिया, डॉक्टर ने अपने साक्ष्य में काफी विनिर्दिष्ट रूप से कहा है कि रूबी कुमारी का कथन उनकी उपस्थिति में 1.6.2004 को अभिलिखित किया गया था जब वे P.M.C.H., धनबाद में इमरजेंसी वार्ड में ड्यूटी पर थे। उन्होंने कहा है कि रूबी कुमारी को दाह उपहति होने पर अस्पताल लाया गया था एवं अस्पताल में भर्ती कराया गया था एवं उन्होंने उसका ईलाज किया था। उसने यह भी कहा है कि उप-निरीक्षक ने रूबी कुमारी का कथन उनकी उपस्थिति में अभिलिखित किया था एवं कथन को उसे पढ़कर सुनाया एवं स्पष्ट किया गया था जिसपर उसने अपने अंगूठे का निशान लगाया। उनके अनुसार वह दाह उपहतियों के कारण अपने कथन पर हस्ताक्षर करने की स्थिति में नहीं थी। अ॰ सा॰ 7 ने कहा कि उन्होंने भी उसके कथन पर हस्ताक्षर किया। उन्होंने

रूबी कुमारी के कथन पर उपस्थित अपने हस्ताक्षर की पहचान की जिसे प्रदर्श 3 के तौर पर चिन्हित किया गया है। मेरी राय में, दिनेश कुमार गिंदोरिया, अ॰ सा॰ 7 ड्यूटी पर तैनात एक डॉक्टर था जिन्होंने रूबी कुमारी की दाह उपहतियों का ईलाज किया था एवं वह बिल्कुल स्वतंत्र साक्षी है। इसलिए, उसके परिसाक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

10. अगला महत्वपूर्ण साक्षी अ॰ सा॰ 4 मनीष कुमार मल्लिक है जो पीड़ित लड़की का भाई है। अ॰ सा॰ 4 ने अपने साक्ष्य में कहा है कि रूबी कुमारी ने अपना कथन काफी तेज आवाज में दिया था। उस समय वह उसके विस्तर के किनारे मौजूद नहीं था बल्कि वह कमरे के ठीक बाहर था एवं उसने पीड़ित लड़की का कथन सुना था। उसने यह भी कहा है कि उसकी बहन रूबी कुमारी की मृत्यु उसी दिन अर्थात् 1.6.2004 को 1.57 बजे अपराह्न में हो गयी। अ॰ सा॰ 4 ने आगे कहा कि उसकी बहन रूबी कुमारी ने 30.5.2004 को उसे बताया था कि अभियुक्त छोटू सिंह ने उसपर बलात्संग किया था।

11. अ॰ सा॰ 6 शैलेन्द्र कुमार, वह डॉक्टर है जिन्होंने मृत्योपरांत परीक्षण किया। उसके साक्ष्य से यह आया है कि मृत्यु का कारण 100% दाह उपहति के फलस्वरूप सदमें के कारण हुई थी एवं योनिच्छिद्र फटा हुआ पाया गया था जिसके किनारों पर रक्त के थक्के थे। उन्होंने अपने प्रति-परीक्षण में पैरा 6 एवं 7 पर यह भी कहा:-

> *''6. 100% दाह का अभिप्राय है पूरे शरीर में दाह की उपहति। रिपोर्ट में इसका कोई वर्णन नहीं है कि योनि स्राव का रिपोर्ट प्राप्त किया गया था।*
>
> *7. यह आवश्यक नहीं है कि 100% दाह के किसी मामले में उपहत अचेत हो जायगा रोगी के अर्द्ध अचेत हो जाने की भी संभावना नहीं है। मृत्यु के समय स्मृति क्षति संभव है। रोगी आखिरी प्रक्रम पर भ्रमित हो सकता है। मेरे दूत ने योनि स्राव लिया। रोगी मृत्यु से 10 से 15 मिनट पूर्व भ्रमित हो सकता है।''*

वर्तमान मामले के तथ्यों को स्पष्ट करने के लिए, यह वर्णन करना महत्वपूर्ण है कि वह सर्वप्रथम पेट की गड़बड़ी एवं उल्टी के ईलाज के लिए अस्पताल गयी थी। ईलाज के उपरांत, वह अपने घर लौटी परन्तु उसने वहाँ बलात्संग का जिक्र नहीं किया। यह भारतीय महिला का एक काफी सामान्य आचरण है क्योंकि यह किसी महिला के लिए काफी अधिक अपमानजनक है जो उसके सम्पूर्ण जीवन तक चलता रहता है। तदुपरांत अपनी असहनीय मानसिक कष्ट के कारण उसने अपने शरीर पर किरासन तेल डाला एवं अपना जीवन समाप्त करने के लिए स्वयं को जला डाला। तदुपरांत, उसे अस्पताल ले जाया गया जहाँ उसने अपनी मृत्युकालिक घोषणा किया।

13. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **2001(6) S.C.C. पृष्ठ 118** पर प्रकाशित **लक्ष्मी (श्रीमती) बनाम् ओम प्रकाश एवं अन्य** के मामले में विनिश्चय पर विश्वास व्यक्त किया है। उनके अनुसार हस्तगत मामले में मृत्युकालिक घोषणा आरक्षी उप-निरीक्षक द्वारा अभिलिखित किया गया है एवं यह किसी मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित नहीं किया गया है एवं इस प्रकार इस मृत्युकालिक घोषणा को उपरोक्त विनिश्चय की दृष्टि में त्याग दिया जाना चाहिए।

14. मेरी राय में, वरीय अधिवक्ता, श्री त्रिपाठी द्वारा उपर निर्दिष्ट मामले के तथ्य वर्तमान मामले से पूर्णतया भिन्न है। वह निर्णयज विधि जिसपर विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत एवं निर्दिष्ट किया गया है अपनी उत्पत्ति में पूर्णतया भिन्न था। उक्त मामले में, विभिन्न समयों पर पाँच मृत्युकालिक घोषणायें थी एवं मामले के प्रारम्भ में ही उसने (मृतक, जनक कुमारी) जो कुछ भी उसके मन में चल रहा था उसे त्रिशला कुमारी, अ॰ सा॰ 1 को पूर्व में ही इंगित किया था। उसके आत्महत्या कारित करने एवं अभियुक्त व्यक्तियों को आलिप्त करने की संभावना को उक्त मामले के तथ्यों में खारिज नहीं किया जा सकता है जो अभिलेख पर मौजूद है(निर्णय के पैरा 32 का अन्तिम भाग)। इसलिए, इस मानदंड की वर्तमान मामले में कोई सुसंगति नहीं है।

15. यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि वर्तमान मामले का तथ्य यह है कि मृत्युकालिक घोषणा को उप-निरीक्षक द्वारा दाह की घटना के दो घंटे के उपरांत अभिलिखित किया गया था एवं उसने इसे पढ़कर सुनाये जाने एवं स्पष्ट किए जाने के उपरांत अपने दायें अंगूठे का निशान लगाया था। इसके अतिरिक्त, इसे दिनेश कुमार गिंदोरिया, डॉक्टर की उपस्थिति में अभिलिखित किया गया था जिन्होंने इसपर (प्रदर्श 4) अपने हस्ताक्षर किए। डॉक्टर गिंदोरिया को अ॰ सा॰ 7 के तौर पर परीक्षित गया है एवं उन्होंने अभिसाक्ष्य दिया है कि जब मृत्युकालिक घोषणा अभिलिखित किया गया था तो पीड़ित लड़की पूर्णतया सचेत एवं मानसिक रूप से स्वस्थ थी। वह काफी तेज आवाज में कथन कर रही थी एवं उसके भाई अ॰ सा॰ 4 ने, जो कमरे के बाहर उपस्थित था काफी स्पष्ट रूप से उसकी मृत्युकालिक घोषणा सुनी। उसके भाई अ॰ सा॰ 4 ने मृत्युकालिक घोषणा को सम्पुष्ट भी किया है। मैंने पीड़ित लड़की के मृत्युकालिक घोषणा का अवलोकन किया है एवं पाया है कि उसने अपनी भावनायें काफी स्पष्ट रूप से एवं असंदिग्ध शब्दों में अभिव्यक्त किया है। उसने अपने बलात्संग की व्यथा व्यक्त की है एवं स्वयं को समाप्त करने का निर्णय किया है ताकि समाज के अपमान से बच सके। इस प्रकार, मेरी राय में पीड़ित लड़की की मृत्युकालिक घोषणा, जो मात्र 14 वर्ष की थी एक चुनौतीरहित दस्तावेज है। उक्त मृत्युकालिक घोषणा को 1.6.2004 को 10.30 बजे दिन में अभिलिखित किया गया है एवं उसकी मृत्यु उसी दिन अर्थात् उसकी मृत्युकालिक घोषणा के अभिलेखन के साढ़े तीन घंटे के उपरांत 1.57 बजे अपराह्न में हो गयी। यह दर्शाता है कि अन्वेषण प्राधिकारी को मृत्युकालिक घोषणा अभिलिखित करने के लिए मजिस्ट्रेट की सेवा उपाप्त करने का कोई समय नहीं था।

16. यहाँ **1995 सम्पूरक (4) S.C.C. पृष्ठ 24** पर प्रकाशित **चरीपल्ली शंकरराव बनाम् लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश, हैदराबाद उच्च न्यायालय** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का वर्णण करना तर्कसंगत होगा। जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 8 पर अभिनिर्धारित किया है:-

> *''यहाँ यह लाभदायक रूप से इंगित किया जा सकता है कि रमावती देवी बनाम् बिहार राज्य (1983)1 .S.C.C. पृष्ठ 211 के मामले में इस न्यायालय द्वारा यह सम्प्रेक्षित किया गया था कि विधि की ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है कि किसी मृत्युकालिक घोषणा को आवश्यक रूप से किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष ही किया जाना चाहिए। ऐसे दस्तावेज को कितना साक्ष्यिक महत्व या मूल्य दिया जाना है यह प्रत्येक विशिष्ट मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। जैसा कि हमारे द्वारा विवेचित किया गया है, वर्तमान मामले में मृत्युकालिक घोषणा अभिलिखित करने के लिए मजिस्ट्रेट की सेवा उपाप्त करने का प्रयत्न किया गया था परन्तु मजिस्ट्रेट उपलब्ध नहीं थे एवं मृत्युकालिक घोषणा प्रदर्श P-5 को हेड कांस्टेबल द्वारा अभिलिखित किया जाना था जो तथ्य स्वतंत्र साक्षियों सहित कई साक्षियों से समर्थन प्राप्त करता है। इसलिए, हमें इसे स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है। उक्त मृत्युकालिक घोषणा को स्वीकार करने में उच्च न्यायालय पूर्णतया न्यायोचित था।''*

17. वर्तमान मामला उपर में रिपोर्ट किए गए मामले के तथ्यों के बिल्कुल समान है। इस प्रकार मुझे अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को त्यागने में कोई संकोच नहीं है कि पुलिस के समक्ष की गयी एवं उप-निरीक्षक द्वारा अभिलिखित की गयी मृत्युकालिक घोषणा वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में एवं उपरवर्णित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि की दृष्टि में अग्राह्य है। मेरी राय में, यह मृत्युकालिक घोषणा अपीलार्थी के दोष को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। इसलिए, मृत्युकालिक घोषणा की सत्यता की दृष्टि में किसी अन्य साक्ष्य पर विचार किए जाने की जरूरत नहीं है।

18. उपर वर्णित तथ्यों एवं परिस्थितियों की दृष्टि में, मैं विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाती हूँ। तद्नुसार, मैं अपील को खारिज करती हूँ एवं विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि एवं दण्डादेश को एतद्द्वारा संपुष्ट किया जाता है।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

जितबहन सिंह मुण्डा एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2206 वर्ष 2004. 23 जून, 2009 को विनिश्चित।

छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम, 1908–धारा 71A—सह-पठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5—जमीन का प्रत्यावर्तन–56 वर्ष गुजर जाने के पश्चात प्रत्यावर्तन मामला दाखिल किया गया–यद्यपि, उपायुक्त विलम्ब को माफ करने में सशक्त हैं जहाँ पक्षकार प्रत्यावर्तन इप्सित करने के अपने अधिकार का इस्तेमाल करता है परन्तु असामान्य रूप से लम्बी अवधि के उपरांत ऐसी शक्ति का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता जिसके दौरान तीसरे पक्ष के हित संभावित रूप में प्रभावी हो गए हैं। (पैरा 6 से 8)

निर्णयज विधि.–(2004)8 SCC 340; (2000)5 SCC 414; LPA No. 61/2004—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Dilip Kumar Prasad, For the Petitioners; Mr. J.C. to S.C., For the Respondents.

आदेश

एस॰ ए॰ आर॰ केस संख्या 1 वर्ष 1996-97 में प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 30.10.96 के आदेश को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक यथोचित रिट निर्गत करने के लिए जिसके द्वारा एवं जिसके अधीन ग्राम-हरम लोहार, पुलिस थाना-तमर, पी॰ एस॰ संख्या 191, जिला-राँची में अवस्थित खाता संख्या 175 के अधीन आच्छादित 2.35 एकड़ भूमि जिसका पुनरीक्षण सर्वेक्षण प्लॉट संख्या 813 है, को अवैधानिक रूप से प्रत्यर्थी संख्या 5 एवं 6 के पक्ष में प्रत्यावर्तित करने का आदेश किया गया है और प्रत्यावर्तन के उक्त आदेश से उद्भूत होने वाले एस॰ ए॰ आर॰ अपील संख्या 498 वर्ष 1996 में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 17.4.1998 के आदेश को भी निरस्त करने के लिए जिसके कारण विद्वान अपीलीय न्यायालय ने त्रुटिपूर्ण रूप से अपील को खारिज किया और पुनरीक्षण को अवैधानिक रूप से खारिज करते हुए राँची एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण संख्या 74/98 में प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 8.7.02/10.1.2004 के आदेश को निरस्त करने के लिए वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गई है।

2. तथ्य, संक्षेप में निम्नांकित रूप से हैं:–

याचीगण का मामला यह है कि उक्त अभिलिखित रैयत ने सांविधिक अधिकार के इस्तेमाल में प्रश्नाधीन जमीन का समर्पण 9.6.1940 को जमींदार के पक्ष में कर दिया जिसने उक्त समर्पण को स्वीकार किया और इसको अपनी बाकस्त भूमि मानते हुए इस पर अपना कब्जा प्राप्त किया। उक्त जमींदार ने प्रश्नाधीन जमीन का बन्दोबस्त दिनांक 25.3.1942 के हुकमनामा से किसी घनश्याम सिंह मुण्डा के पक्ष में कर दिया और स्थानीय क्षेत्र के सभी व्यक्तियों की जानकारी में उक्त बन्दोबस्त प्राप्तकर्ता बन्दोबस्त की तिथि यानि 25.3.1942 को उक्त भूमि पर काबिज हुआ जिसके आधार पर उसने खेती प्रारम्भ कर दी और तद्नुसार जमीन्दार/खेवटदार के सेरिस्ता पर उसका भाटक के लिए आकलन किया गया और वह जमींदारी निहित होने तक अपने नाम से जमींदार को भाटक का भुगतान करता रहा। किराए की रसीद, हुकुमनामा और साथ ही जमींदारी की रसीदें रिट याचिका में अनुलग्न है। वर्ष 1956 में उक्त भूमि के सरकार में निहित होने पर बन्दोबस्ती प्राप्तकर्ता के नाम से मांग सृजन किया गया और बन्दोबस्त किए गए रैयत से बिहार राज्य द्वारा किराया प्राप्त किया जाना था जिसके सबूत के तौर पर उसके नाम पर रसीदें भी 24.3.1962 से निर्गत की गई थी। पूर्वोक्त मूल बन्दोबस्ती प्राप्तकर्ता घनश्याम सिंह मुण्डा अपने पीछे तीन पुत्रों जो इसमें याचीगण हैं, को अपने वैधानिक वारिसों और उत्तराधिकारियों के तौर पर छोड़ते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ जिन्होंने अन्य सम्पत्तियों के अतिरिक्त पूर्वोक्त जमीन विरासत में प्राप्त की और उन्हें खास कृषि कार्य का कब्जा प्राप्त हुआ और प्रश्नाधीन

जमीन के संबंध में अंचलाधिकारी ने याचीगण के नामों का नामान्तरण किया। याचीगण अपने ही नाम से बिहार राज्य को किराए का भुगतान करते रहे जिसके सबूत में अंचलाधिकारी तमर अंचल ने भी किराए की रसीद निर्गत की। वर्ष 1976 में, वर्तमान सर्वेक्षण कार्य के दौरान प्रश्नाधीन जमीन को बाँट दिया गया और नए खाता संख्या 155/क के अधीन दो नई प्लॉट संख्या 1448 प्रदान की गई। प्रत्यर्थी संख्या 5, अर्थात् बुधराम पहान ने अभ्यापति वाद संख्या 254 के माध्यम से छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम की धारा 83 के अधीन एक याचिका दाखिल की जिसमें सहायक बन्दोबस्त पदाधिकारी ने उसे दिनांक 29.12.1989 के अपने आदेश में छोटानागपुर के काश्तकारी अधिनियम की धारा 71A के अधीन आवेदन दाखिल करने का निर्देश दिया। तद्नुसार प्रश्नाधीन जमीन के प्रत्यावर्तन के लिए एस॰ ए॰ आर॰ वाद संख्या 1/96-97 दाखिल किया गया। विशेष पदाधिकारी ने दिनांक 31.10.1996 के अपने आदेश में प्रत्यर्थी संख्या 5 एवं 6 के पक्ष में प्रत्यावर्तन का आदेश पारित किया। व्यथित होकर इससें के याचीगण ने अपर समाहर्त्ता रांची के न्यायालय के समक्ष उक्त आदेश के विरूद्ध एक अपील दाखिल किया जिसे एस॰ ए॰ आर॰ अपील संख्या 498/1996 के तौर पर दर्ज किया गया और दिनांक 17.4.1998 के आदेश से इसे खारिज भी कर दिया गया। तत्पश्चात् याचीगण ने आयुक्त, दाक्षिणी छोटानागपुर प्रमण्डल रांची के न्यायालय में पूर्वोक्त आदेश के विरूद्ध एक पुनरीक्षण दाखिल किया जिसे एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण संख्या 74/1998 के तौर पर पंजीकृत किया गया और 8.7.2002 को निर्णत सुरक्षित रखा गया और 17 महीने गुजर जाने के उपरांत 1.1.2004 को पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी गई। सभी तीन अधीनस्थ प्राधिकारियों द्वारा पारित पूर्वोक्त आक्षेपित निर्णय वर्तमान रिट याचिका में चुनौती का विषय वस्तु है।

3. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि इसमें के याचीगण के पिता के पक्ष में प्रारम्भ में किराए की रसीदें जमींदार द्वारा निर्गत की गई थी जिसके बाद बिहार राज्य द्वारा निर्गत किया गया था और उसे सदा ही रैयत के तौर पर मान्यता थी जिसके नाम से जमीन का मूलरूप से बन्दोबस्त किया गया था। यह भी तर्क दिया गया है कि वर्ष 1996 में अर्थात् 50 वर्ष गुजर जाने के उपरांत प्रत्यावर्तन के लिए दाखिल याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित था। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अतिरिक्त रूप से उठाया गया तर्क है कि छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम की धारा 46 एवं छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम के अन्य प्रावधान लागू नहीं होंगे क्योंकि अभिलिखित रैयत ने 9.6.1940 को प्रश्नाधीन जमीन समर्पित कर दी थी। इसके अतिरिक्त, 25.3.1942 को जमींदार द्वारा किसी घनश्याम सिंह मुण्डा के पक्ष में जमीन का पुन: बन्दोबस्त कर दिया गया था। यह भी निवेदन किया गया है कि जमींदार के पक्ष में समर्पण करने के प्रयोजन के लिए उस समय उपायुक्त की अनुमति की आवश्यकता नहीं थी और प्रश्नाधीन जमीन की बन्दोबस्ती याचीगण के पिता जो मृत हो चुके हैं के पक्ष में किया गया था। याचीगण की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम के धारा 71A का आलम्ब नहीं लिया जा सकता और इस प्रकार प्रत्यावर्तन का आदेश अवैधानिक था।

4. प्रत्यर्थीगण ने तीन अधीनस्थ प्राधिकारियों के समवर्ती निष्कर्षों को निर्दिष्ट किया है और इन पर भरोसा किया है यह इंगित करने के लिए कि रिट याचिका को इसी आधार पर ही खारिज कर देना चाहिए। उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि सादा हुक्मनामा या तत्कालीन जमींदार या भूस्वामी द्वारा निर्गत किराए की रसीद द्वारा किसी अधिकार का सृजन नहीं किया जा सकता और दस्तावेजी साक्ष्य की अनुपस्थिति में समर्पण को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

5. मैंने प्रतिद्वंदी निवेदनों एवं अभिवाकों पर विचार किया है। वर्तमान मामले में स्वीकृत स्थिति शेष रहता है कि बन्दोबस्त का एक हुकुमनामा था वहां जमींदार/भू-स्वामी और फिर वर्ष 1956 में जमींदारी के निहित होने के उपरांत बिहार राज्य द्वारा किराए की रसीद निर्गत की गई थी और यह तथ्य भी स्वीकृत है कि तद्द्वारा उक्त से निर्गत रसीदों ने मूल बन्दोबस्ती प्राप्तकर्ता अर्थात् घनश्याम सिंह मुण्डा की मृत्यु के उपरांत याचीगण को रैयत के तौर पर मान्यता दी थी जो इसमें के याचीगण का पिता

था और इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि उपायुक्त की पूर्व अनुमति की कोई आवश्यकता सुसंगत समय पर नहीं थी और इस प्रकार इन तथ्यों पर गहराई से विचार किए जाने की आवश्यकता थी यह भी एक स्वीकृत स्थिति है कि 56 वर्ष बीत जाने के उपरांत छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम की धारा 71A के अधीन प्रत्यावर्तन के लिए एस॰ ए॰ आर॰ वाद दाखिल किया गया था और परीसीमा का मुद्दा उठाया गया था परन्तु इस पर विचार नहीं किया गया था। परिसीमा को लेकर मुद्दे पर बार-बार माननीय सर्वोच्च न्यायालय और साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया है और यह निश्चायी रूप से अवधारित किया गया है कि प्रत्यावर्तन के लिए 40 वर्षों के उपरांत दाखिल आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित होता है।

6. सीतु साहु एवं अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य [(2004)8 एस॰ सी॰ सी॰ 340] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि धारा 71A में शब्दों ''किसी भी समय'' का इस्तेमाल अधिनियम की आर्थिक सामाजिक नीति अर्थात अनजान अशिक्षित और पिछड़े नागरिकों के अधिकारों के अतिक्रमण को रोकने की नीति को क्रियान्वित करने में उपायुक्त को पर्याप्त लचीलापन प्रदान करने के विधायी आशय का सबूत है। इस प्रकार जहाँ उपायुक्त धारा 71-A के अधीन अपनी शक्ति का इस्तेमाल करने का निर्णय लेता है वहाँ यह तर्क देना निरर्थक होगा कि परिसीमा अधिनियम के परिसीमा की अवधि समाप्त हो चुकी है। परिसीमा अधिनियम के अधीन परिसीमा की अवधि का आशय व्यवहार न्यायालयों में लाए गए वादों को वर्जित कराने का है जहाँ पक्ष स्वयं अचल सम्पत्ति के प्रत्यावर्तन को इप्सित करने के अपने अधिकार के इस्तेमाल करने का विकल्प चुनता है। परन्तु जहाँ आर्थिक सामाजिक कारणों से पक्ष स्वयं ही अपने अधिकारों की जानकारी न रखता है तो सामाजिक न्याय करने के लिए राज्य के एक अधिकारी को पर्याप्त शक्ति प्रदान करके इसके जिम्मेदार बनाकर विधायिका ने प्रवेश किया है। तथापि असामान्य रूप से एक लम्बी अवधि के उपरांत ऐसी शक्ति का भी इस्तेमाल नहीं किया जा सकता जिस दौरान तीसरे पक्ष के हित संभवत: प्रभावी हो गए है। इस प्रकार परीक्षण यह नहीं है कि 1963 के अधिनियम में विहित परिसीमा की अवधि समाप्त हो चुकी है या नहीं बल्कि यह है कि अयुक्तिसंगत विलम्ब के उपरांत धारा 71A के अधीन शक्ति का इस्तेमाल इप्सित किया गया था।

7. सीतु साहु एवं अन्य (ऊपर) में पूर्वोक्त पर विचार करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अन्तिम रूप से निर्णीत किया कि ऐसी शक्ति के इस्तेमाल के लिए 40 वर्ष की अवधि निश्चित रूप से ही अयुक्तिसंगत है। भले ही यह परिसीमा की एक अवधि द्वारा बाधित न हो। **(2000)5 एस॰ सी॰ सी॰ 414 (जय मंगल ओरांव बनाम मीरा नायक)** में रिपोर्ट किए गए मामले में इसी प्रकार का मुद्दा विचारण के लिए दोबारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया और पैरा-16 पर यह निर्णीत किया गया है कि इस दौरान सामान्य विधि और साथ-साथ परिसीमा की विधि के अधीन भी पक्षों को अधिकारों के अर्जित हो जाने के कारण 40 वर्ष की अवधि को माफ नहीं किया जा सकता। एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 61/2004 में इस न्यायालय के एक खण्डपीठ ने दोबारा पैरा 50 पर परिसीमा के बिन्दु पर इसी दृष्टिकोण को दोहराया।

8. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए इससे ऊपर कथित कारणों एवं आधारों पर आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते है। क्योंकि प्रत्यावर्तन मामला 56 वर्षों के उपरांत दाखिल किया गया था जो निश्चित तौर पर अयुक्तिसंगत अवधि में जैसा कि बार-बार माननीय सर्वोच्च न्यायालय और साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है और उस आधार पर यह अनुज्ञात किए जाने का दायी था।

9. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और अधीनस्थ प्राधिकारियों द्वारा पारित दिनांक 31.10.1996, 17.4.1998 एवं 8.7.02/10.1.2004 के आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा निरस्त किए जाते हैं।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

मेसर्स बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के लोदना क्षेत्र के प्रबंधन के संबंध में नियोक्तागण

बनाम

उनके कर्मकार

एल॰ पी॰ ए॰ संख्या 23 वर्ष 2007. 8 मई, 2009 को विनिश्चित।

लेटर्स पेटेण्ट के खण्ड 10 के अधीन एक अपील के मामले में।

सेवा विधि–बर्खास्तगी–यह आरोप कि कर्मकार को छुट्टी के बिना अनुपस्थित पाया गया–उसे 'बदली-सूची' में डालकर दण्डित किया गया–इस आरोप पर उसे सेवा से बर्खास्त नहीं किया जा सकता–अधिकरण द्वारा पिछले पारिश्रमिक के 25% के साथ पुनर्बहाली पूर्णरूपेण न्यायसंगत। (पैरा 9 एवं 12)

निर्णयज विधि.–(2008)1 SCC 115; (2008)3 SCC 729; (2006)6 SCC 187; (2004)13 SCC 342; (2008)12 SCC 726—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Anoop Kumar Mehta, For the Appellant; Mr. Manish Kumar, For the Respondents.

निर्णय

डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) संख्या 4800 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 7.9.2006 के निर्णय के विरूद्ध लेटर्स पेटेण्ट के खण्ड 10 के अधीन यह अपील निर्दिष्ट है, जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को खारिज किया था यह अवधारित करते हुए कि केन्द्रीय सरकार के औद्योगिक अधिकरण, धनबाद द्वारा पारित अधिनिर्णय पूर्णत: वैधानिक और वैध है।

2. मामले के तथ्य एक संकीर्ण परिधि में है।

3. सम्बद्ध कर्मकार अपीलार्थी के अधीन लोदना कोयला खदान में ट्राम चालक था। प्रबंधन ने बिना छुट्टी के सम्बद्ध कर्मकार को अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण इप्तिस करते हुए उसे दिनांक 21.10.1993 का एक अभियोग पत्र निर्गत किया। सम्बद्ध कर्मकार ने उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों से इन्कार करते हुए अपना स्पष्टीकरण दाखिल किया। एक विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ की गई। जाँच पदाधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर प्रबंधन ने उसे 'बदली-सूची' में डालकर उसपर दण्ड अधिरोपित किया। 1994 में प्रबंधन ने दिनांक 19.10.94 को एक और अभियोग पत्र निर्गत किया यह अभिकथित करते हुए कि सम्बद्ध कर्मकार ने पहली जाँच के समय अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति के संबंध में जाली चिकित्सीय दस्तावेज प्रस्तुत किए थे। जाँच कराने के उपरांत प्रबंधन ने उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया। तत्पश्चात् एक औद्योगिक विवाद उठाया गया और न्यायनिर्णयन के लिए विवाद को अधिकरण को निर्दिष्ट कर दिया गया।

> *''क्या ट्रामचालक श्री राम सकल माली की सेवाएं 4.11.1995 के प्रभाव से समाप्त करने में मेसर्स बी० सी० सी० एल० के लोदना कोयला खदान के प्रबंधन की कार्यवाही न्यायसंगत है? अगर नहीं, तो सम्बद्ध कर्मकार किस अनुतोष का अधिकारी है?''*

4. अधिनिर्णय से यह प्रतीत होता है कि मामले की सुनवाई करने से पहले अधिकरण ने घरेलू जांच की निष्पक्षता पर विचार किया और निर्णीत किया कि घरेलू जाँच उचित एवं निष्पक्ष थी। तत्पश्चात् अधिकरण इसको लेकर निर्णय करने के लिए आगे बढ़ा कि सेवा से बर्खास्तगी का आदेश उचित एवं न्यायसंगत है या नहीं। अधिकरण ने समूचे साक्ष्य पर विचार किया और प्रथमत: यह निर्णीत किया कि अनधिकृत अनुपस्थिति के इन्हीं आरोपों पर कर्मकार पर उसे ''बदली-सूची'' में डालने का दण्ड अधिरोपित किया गया था। इसलिए एक ही आरोपों के लिए कोई और दण्ड नहीं हो सकता था। अधिकरण ने यह भी पाया कि विभागीय जाँच में प्रबंधन ने निगरानी विभाग के किसी अधिकारी को

गवाह के तौर पर पेश नहीं किया और निगरानी विभाग द्वारा किया गया परिवाद भी जाँच पदाधिकारी के समक्ष पेश नहीं किया गया था। प्रबंधन चिकित्सीय दस्तावेजों की पहचान करने में भी विफल रहा जिनके जाली होने का उन्होंने अभिकथन किया था। इसके बावजूद जाँच रिपोर्ट के आधार पर प्रबंधन द्वारा बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया। इसलिए, अधिकरण ने अवधारित किया कि कर्मकार की सेवा से बर्खास्तगी का आदेश न्यायसंगत नहीं था। तद्नुसार, प्रबंधन को सम्बद्ध कर्मकार को 25% पिछले पारिश्रमिक के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया गया।

5. एक रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ एल॰ संख्या संख्या 4800/2006 दाखिल करके प्रबंधन ने उक्त अधिनिर्णय को चुनौती दी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पाया कि अधिकरण ने तथ्यों, साक्ष्य और अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर विस्तार से परिचर्चा की थी और यह भी विचारित किया था कि झूठे चिकित्सीय प्रमाण-पत्रों का प्रबंधन का अभिकथन सिद्ध नहीं किया जा सका था और याची के विरूद्ध आरोपो को सिद्ध करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी। परिणामत: विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनिर्णय को संपुष्ट किया और रिट याचिका को खारिज कर दिया। अत: यह अपील हुई है।

6. अपीलार्थी-प्रबंधन की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ मेहता ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित अधिनिर्णय एवं आक्षेपित निर्णय को विधि में त्रुटिपूर्ण बताते हुए इनकी आलोचना की। विद्वान अधिवक्ता ने प्रथमत: यह निवेदन किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह अवधारित करने में अभिलेख की त्रुटि कारित की है कि अधिकरण का ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं है कि घरेलू जाँच उचित एवं निष्पक्ष थी, यद्यपि अधिकरण ने स्पष्टत: निर्णीत किया है कि घरेलू जाँच उचित एवं निष्पक्ष था। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि जब घरेलू जाँच को निष्पक्ष एवं उचित निर्णीत किया गया था, तो अधिकरण के पास मामले का पुनर्मूल्यांकन करने का विकल्प नहीं खुला था जबतक कि दण्ड आश्चर्यजनक रूप से सिद्ध आरोपों के अननुपाती न हो। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि मामले की किसी भी दृष्टि में, दण्डादेश के साथ अधिकरण द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था और विद्वान एकल न्यायाधीश को अधिनिर्णय को संपुष्ट नहीं करना चाहिए था। इस संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने **उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम विनोद कुमार [(2008)1 एस॰ सी॰ सी॰ 115], पश्चिमी बोकारो कोलियरी ''टिस्को लिमिटेड बनाम राम प्रवेश सिंह [(2008)3 एस॰ सी॰ सी॰ 729]** एवं **प्रभागीय नियंत्रक, एन॰ ई॰ के॰ आर॰ टी॰ सी॰ बनाम एच॰ अमरेश [(2006)6 एस॰ सी॰ सी॰ 187]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया।

7. स्वीकार्यत:, 21.10.1993 को प्रबंधन द्वारा प्रथम अभियोग पत्र उसके अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए निर्गत किया गया था। सम्बद्ध कर्मकार ने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया और चिकित्सीय प्रमाण पत्र जमा किया यह दर्शाते हुए कि बीमारी के कारण वह ड्यूटी पर हाजिर नहीं हो सका। तथापि, एक विभागीय जाँच संचालित की गई और जाँच पदाधिकारी ने चिकित्सीय प्रमाण-पत्र पर भरोसा नहीं किया एवं जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत किया यह अवधारित करते हुए कि उसकी अनुपस्थिति अनधिकृत था। जाँच रिपोर्ट के आधार पर, प्रबंधन ने उसे ''बदली-सूची'' के अधीन रखकर दण्ड का एक आदेश पारित किया। 1994 में, एक द्वितीय अभियोग-पत्र निर्गत किया गया था निगरानी विभाग से इस प्रभाव के पत्र एवं शिकायत प्राप्त होने के आधार पर कि पूर्व की जाँच में कर्मकार द्वारा प्रस्तुत चिकित्सीय प्रमाण-पत्र जाली थे। दोबारा एक विभागीय जाँच प्रारम्भ की गई। कर्मकार ने अपना जवाब दाखिल किया। यद्यपि आरोप सिद्ध नहीं हुए थे क्योंकि इस आरोप के समर्थन में कि चिकित्सा दस्तावेज जाली थे, प्रबंधन द्वारा न तो निगरानी द्वारा की गई शिकायत और न ही किसी अन्य साक्ष्य को प्रस्तुत किया गया फिर भी जाँच पदाधिकारी ने अपनी रिपोर्ट दाखिल की और उसके आधार पर प्रबंधन ने कर्मकार को सेवा से बर्खास्त करने वाले दण्ड का एक आदेश पारित कर दिया। यहाँ यह उल्लेख करने योग्य है कि अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए पूर्वतर अभियोग-पत्र अभिप्रमाणित स्थायी आदेश के खण्ड 26.1.1 के अधीन निर्गत किया गया था। अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति के संबंध में झूठी सूचना देने

को लेकर द्वितीय आरोप-पत्र खण्ड 26.1.1, 26.1.12 एवं 26.1.20 के अधीन था क्योंकि चिकित्सीय दस्तावेज झूठे थे। अतएव यह प्रकटत: स्पष्ट है कि ड्यूटी से उसकी अनुपस्थिति के संबंध में दो आरोप लगाए गए थे जिसके लिए उसे पहले पदावनत करके और उसे ''बदली-सूची'' में रखकर दण्डित किया गया था। अन्य शब्दों में, प्रबंधन चिकित्सीय प्रमाण पत्र से असंतुष्ट होकर पहले ही पूर्व की विभागीय जाँच में कर्मकार को दण्डित कर चुका था और इसलिए, कार्रवाई के इसी कारण के लिए द्वितीय विभागीय जाँच अनौचित्यपूर्ण प्रतीत होती है।

8. लेफ्टिनेंट गवर्नर, दिल्ली एवं अन्य बनाम उच्च न्यायालय नरीन्दर सिंह [(2004)13 एस॰ सी॰ सी॰ 342)] के मामले में, याची द्वारा द्वितीय कारण-पृच्छा को चुनौती दी गई थी जो दिल्ली पुलिस में कॉन्स्टेबल था और ड्यूटी से लापरवाही करने के लिए अनुशासनिक कार्रवाई के अध्यधीन किया गया था जिसकी परिणति बिना संचयी प्रभाव की एक चरण में वेतन को कम किए जाने के दण्ड के रूप में हुई। तत्पश्चात्, दो वर्ष के उपरांत द्वितीय कारण-पृच्छा नोटिस निर्गत की गयी थी प्रोन्नति सूची से उसका नाम हटाने का प्रस्ताव रखते हुए जिससे उसे नियम के अधीन लाया गया था। अधिकरण ने द्वितीय कारण-पृच्छा नोटिस को निरस्त कर दिया और मामला सर्वोच्च न्यायालय चला गया। न्यायाधीशों ने सम्परीक्षित किया:-

> *"4. कारण-पृच्छा नोटिस का पठन इंगित करता है मानो यह विभागीय कार्यवाही के सातत्य में हो। ड्यूटी के प्रति समर्पण की कमी को प्रस्तावित कार्रवाई के कारण के तौर पर उल्लिखित किया गया है जो पहले की कार्यवाही का भी विषय-वस्तु था। प्रोन्नति से वंचित करने या प्रतिवर्तन का प्रस्ताव रखने वाली द्वितीय प्रस्तावित कार्रवाई जो एक कार्रवाई के एक ही कारण पर आधृत है आक्षेपित कारण-पृच्छा नोटिस के अधीन अनुध्यात है। कार्रवाई के एक ही कारण के आधार पर द्वितीय दण्ड दोहरे जोखिम के तुल्य होगा। अतएव, ऐसी एक कार्रवाई को शून्य करने में अधिकरण विधि में उचित था। हम किसी नियम की परिधि या कार्यक्षेत्र पर अपना मत व्यक्त नहीं कर रहे हैं।''*

9. वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-प्रबंधन ने अपील के ज्ञापन के पैरा 5 में स्वीकार किया है कि पूर्वतर विभागीय कार्यवाही में अपीलार्थी के विरूद्ध लगाए गए आरोप यानि अनधिकृत अनुपस्थिति, सिद्ध हुए थे और उसे बदली-कर्मकार की सूची में डालकर दण्ड अधिरोपित किया गया था। द्वितीय आरोप के मामले में जो कार्रवाई के उसी कारण से संबंधित है, मेरे सुविचारित मत में, यह विधि में अनुचित है और दोहरे जोखिम के तुल्य होगा।

10. जहाँ तक अपीलार्थी द्वारा भरोसा किए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का सवाल है, तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित विधि के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि कर्मचारी को धन के दुर्विनियोग का दोषी पाए जाने की स्थिति में बर्खास्तगी करने/हटाए जाने का दण्ड यथोचित दण्ड है और एक कर्मकार के लिए भ्रामक सहानुभूति के कारण न्यायालय को दण्ड को कम करने से बचना चाहिए। ऐसे मामले में, न्यायिक मंचो की ओर से उदारता या भ्रामक सहानुभूति और दण्ड की मात्रा के साथ छेड़छाड़ करने के लिए कोई जगह नहीं है।

11. मवजी सी॰ लकुम बनाम सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया [(2008)12 एस॰ सी॰ सी॰ 726] के मामले में मामले का तथ्य यह था कि कर्मचारी एक चपरासी के तौर पर प्रत्यर्थी-बैंक की सेवा में था। सेवा में रहते हुए, अपीलार्थी पर दो आरोप-पत्रों का तामीला किया गया और उसके विरुद्ध एक जाँच हुई एवं उसे सेवा से उन्मोचित कर दिया गया। इसके परिणामत: एक औद्योगिक विवाद आया जिसके लिए औद्योगिक अधिकरण का संदर्भ किया गया। औद्योगिक अधिकरण ने निष्कर्ष दिया कि

अपीलार्थी के विरुद्ध कराया गया। जाँच निष्पक्ष एवं उचित था, परन्तु अपीलार्थी के विरुद्ध स्थापित आरोप सेवा से उन्मोचित किए जाने के अन्तिम दण्ड को आवश्यक बनाने के लिए पर्याप्त नहीं थे। अतएव, अधिकरण ने उन्मोचन के दण्ड को एक वार्षिक वेतन वृद्धि को रोके जाने के दण्ड से प्रतिस्थापित कर दिया। प्रत्यर्थी-बैंक ने रिट आवेदन दाखिल करके अधिकरण के अधिनिर्णय को चुनौती दी जिसे अनुज्ञात किया गया और उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने निर्णीत किया कि अधिकरण द्वारा एकबार इस निष्कर्ष पर पहुँच जाने के बाद कि अपीलार्थी के विरुद्ध जाँच उचित एवं निष्पक्ष था, अधिकरण को दण्ड के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। अपीलार्थी-कर्मचारी ने खण्ड पीठ के समक्ष अपील दाखिल किया जिसे खारिज कर दिया गया था। अपील को अनुज्ञात करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया:–

"23. इस पृष्ठभूमि में जब हम विद्वान एकल न्यायाधीश के असामान्य रूप से लम्बे निर्णय को देखते हैं, तो यह सामने आता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रथमतः यह निर्णीत किया कि अधिकरण ने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 11-A के प्रावधानों के अधीन इसमें निहित शक्तियों से आगे जाकर कार्य किया है। विद्वान न्यायाधीश ने धारा-11-A के संबंध में इसके उत्कथित करने के उपरांत, सम्परीक्षित कियाः–

''यद्यपि न्यायालय इसको लेकर अपने निष्कर्ष तक पहुँचने की शक्ति से युक्त था कि एक दिए गए मामले में सेवा से उन्मोचन या बर्खास्तगी के दण्ड का अधिरोपण न्यायसंगत है या नहीं। इसका उद्देश्य के लिए ही अधिकरण को साक्ष्य का अवलोकन करने के लिए प्राधिकृत किया गया है जिसे सविस्तार जाँच पदाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया है और उसे यह पता लगाना होता है कि क्या अपचारी के विरुद्ध सिद्ध आरोपों की प्रकृति से उन्मोचन या बर्खास्तगी का दण्ड सुसंगत है।''

यहाँ तक तो विद्वान एकल न्यायाधीश का निष्कर्ष सही प्रतीत होता है। तथापि, निर्णय का समूचा बल परिवर्तित हो गया है मात्र इस कारण कि औद्योगिक अधिकरण ने जाँच को उचित एवं निष्पक्ष पाया था। विद्वान न्यायाधीश इस राय के प्रतीत होते हैं कि अगर जाँच को निष्पक्ष और उचित अवधारित किया जाता है, तब औद्योगिक अधिकरण साक्ष्य या दण्ड की मात्रा के प्रश्न में नहीं जा सकता। हमें संदेह है कि यह सही विधि नहीं है। अगर जाँच को निष्पक्ष पाया भी जाता है, तो भी वह केवल एक निष्कर्ष होगा यह प्रमाणित करने वाला कि अपचारी को कभी संभव अवसर दिए गए थे और नैसर्गिक न्याय एवं निष्पक्षता के सिद्धांतों का अनुपालन किया गया था। इसका यह अर्थ नहीं कि पहुँचे गए निष्कर्ष आवश्यक रूप से सही निष्कर्ष थे। अगर औद्योगिक अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दिए गए साक्ष्य पर निष्कर्षों का समर्थन नहीं किया जा सकता था इस निष्कर्ष पर भी पहुँचता है कि दिया गया दण्ड अत्यधिक रूप से अननुपाती है तो साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने में एवं/या दण्ड की मात्रा के साथ हस्तक्षेप करने में भी अधिकरण औचित्यपूर्ण होगा। इसको लेकर कोई विवाद नहीं हो सकता कि धारा 11-A के अधीन शक्ति का न्यायसंगत रूप से इस्तेमाल करना होगा और हस्तक्षेप केवल तभी संभव है जब अधिकरण निष्कर्षों के साथ संतुष्ट न हो और यह भी निष्कर्ष निकलता हो कि प्रबंधन द्वारा अधिरोपित दण्ड संबंधित कर्मकार के दोष के स्तर के अत्यधिक अननुपाती है। इसके अतिरिक्त, अधिकरण को इसको लेकर कारण देने होते है कि यह निष्कर्षों या दण्ड की मात्रा के साथ क्यों संतुष्ट नहीं है और ऐसे कारण काल्पनिक या सनक पूर्ण नहीं होना चाहिए अपितु वे ठोस कारण होने चाहिए।

25. यद्यपि विद्वान न्यायाधीश ने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 11-A के अधीन शक्तियों के इस्तेमाल के संबंध में सभी सिद्धांतों की परिचर्चा की है और समानुपातिकता तथा वेडनेसबरी के सिद्धांतों पर भी परिचर्चा की है, परन्तु यह लगता है कि विद्वान न्यायाधीश ने इन सभी सिद्धांतों को वर्तमान मामले में उचित रूप से

लागू नहीं किया है। विद्वान न्यायाधीश ने मेसर्स फायरस्टोन टायर एण्ड रबर कम्पनी ऑफ इण्डिया प्राईवेट लिमिटेड बनाम प्रबंधन [ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1227] के विख्यात निर्णय को विस्तार से उत्कथित किया है, तथापि, विद्वान न्यायाधीश उस निर्णय के ए० आई० आर० पैरा 32 में किए गए सम्परीक्षणों की उपेक्षा करते हुए प्रतीत होते हैं जहाँ यह सम्परीक्षित किया गया है कि (एस० सी० सी० पृष्ठ 830 पैरा 36]:—

"36. शब्द अधिनिर्णयण कार्यवाही के अनुक्रम में अगर अधिकरण को समाधान है कि उन्मोचन या बर्खास्तगी का आदेश न्यायसंगत नहीं था स्पष्टतः इंगित करती है कि अधिकरण को अब घरेलू जाँच में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की और अपने को समाधान करने की शक्ति है कि क्या एक नियोक्ता द्वारा भरोसा किया गया उक्त साक्ष्य एक कर्मकार के विरूद्ध अभिकथित कदाचार को सिद्ध करता है। जो मूलतः स्पष्टीकरण न्याय निष्कर्ष या जो साक्ष्य से एक नियोक्ता द्वारा निकाला जा सकता था, अब अधिकरण द्वारा पहुँचे जाने वाले एक समाधान का रूप ले चुका है कि कदाचार का निष्कर्ष सही है.....अधिकरण को अब विचारण की स्वतंत्रता है, न केवल इस बात की कि नियोक्ता द्वारा अभिलिखित कदाचार का निष्कर्ष सही है या नहीं; परन्तु उक्त निष्कर्ष से मतान्तर रखने की भी, अगर एक उपयुक्त मामला बनता है।''

26. हम पैरा 7 : 1 पर विद्वान न्यायाधीश के सम्परीक्षणों से अचंभित है:-

''निर्णय के अनुक्रम में कहीं पर भी अधिकरण पूर्वोक्त मार्ग-निर्देशों या वेडनेसबरी परीक्षण का अनुपालन करता हुआ प्रतीत नहीं होता है। जब यह साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन कर रहा था और इसके बल पर यह भिन्न निष्कर्षों पर पहुँच रहा था और अन्ततः इसने दण्ड को प्रतिस्थापित कर दिया है तो इसके लिए पूर्वोक्त मार्ग-निर्देशों का पालन करना आवश्यक था। केवल इस निष्कर्ष पर कि प्राधिकारी का निर्णय अवैधानिक था या यह असंगत सामग्री पर आधृत था या सुसंगत सामग्री को विचार में नहीं लिया गया था या यह कि यह ईतना अयुक्तिसंगत था कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे निर्णय पर नहीं पहुँच सकता था या स्थापित दोष की प्रकृति के अननुपाती था जिससे कि न्यायिक विवेक को धक्का लगे अधिकरण दण्ड को प्रतिस्थापित कर सकता था। अधिकरण के अधिनिर्णय का सम्पूर्ण विषय वस्तु इसे इंगित नहीं करता।

हम इन सम्परीक्षणों के साथ सहमत होने में असमर्थ हैं।''

12. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर नोटिस किया गया है अधिकरण ने पाया कि झूठे चिकित्सीय कागजात को जमा करने के द्वितीय आरोप के विरूद्ध विभागीय जाँच में निगरानी द्वारा की गई शिकायत तक को पेश नहीं किया गया था। किसी भी गवाह को परीक्षित नहीं किया गया था यह सिद्ध करने की चिकित्सीय कागजात जाली था। इसके बावजूद अधिकरण द्वारा सेवा से बर्खास्तगी के कठोर दण्ड को पारित किया गया था, इस तथ्य के बावजूद कि कर्मचारी को ''बदली-सूची'' में डालकर पहले ही पदावनति का दण्ड अधिरोपित किया जा चुका था। अतएव, हमारे विचार में, सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को निरस्त करके और 25% पिछले पारिश्रमिक के साथ पुनर्बहाली का निर्देश करके अधिकरण द्वारा पारित आदेश पूर्णतया न्यायसंगत है। अतएव विद्वान एकल न्यायाधीश ने उचित ही अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय के साथ हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया।

13. पूर्वोक्त कारणों से, इस अपील में कोई गुण नहीं है, जो तद्नुसार खारिज की जाती है।

जया राय, न्यायमूर्ति—मैं सहमत हूँ।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

अनोश एक्का

बनाम

सतर्कता ब्यूरो के माध्यम से राज्य एवं अन्य

WP. (Cr.) No. 163 वर्ष 2009. 29 जून, 2009 को विनिश्चित।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988–धारा 5 सह-पठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 156(3)–प्राथमिकी–विशेष न्यायाधीश, सतर्कता ब्यूरो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन संस्थित करने के लिए, अपने समक्ष किये गये परिवाद को इसे निर्दिष्ट करने की शक्ति रखते हैं–विशेष न्यायाधीश, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध का संज्ञान लेते समय एक दण्डाधिकारी समझे जायेंगे। (पैरा 13, 17 एवं 20)

निर्णयज विधि.–2006(2) East. Cr.C. 209 (Ori.)–Disagreed with; (1984)2 SCC 500 : 1984 SCC (Cri.) 277—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s N. N. Sinha, Rakesh Ranjan, For the Petitioner; Mr. A.K. Kashyap, For the Vigilance.

आदेश

वह प्रश्न जो इस आवेदन में उठाया गया है, यह है कि क्या विशेष न्यायाधीश, सतर्कता ब्यूरो को प्राथमिकी संस्थित करने एवं इसके अन्वेषण के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन परिवाद को निर्दिष्ट करने की शक्ति है?

2. इस आवेदन को उद्‌भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि परिवादी-प्रत्यर्थी सं॰ 7 ने विद्वान विशेष न्यायाधीश, सतर्कता ब्यूरो, राँची के समक्ष एक परिवाद दर्ज कराया इसमें यह अभिकथित करते हुए कि याची (तत्कालील मंत्री, झारखण्ड सरकार) ने आय के अपने ज्ञात स्रोत के अननुपात में आस्तियाँ अर्जित की है जो अभिकथन हिन्दी समाचारपत्र ''प्रभात खबर'' में प्रकाशित समाचार पर आधृत था, जिसकी पेपर कटिंग को भी परिवाद याचिका में संलग्न किया गया था। परिवाद प्राप्त करने पर विद्वान विशेष न्यायाधीश ने दिनांक 24.11.2008 के आदेश के माध्यम से परिवाद को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन प्राथमिकी संस्थित करने एवं अन्वेषण करने के लिए सतर्कता ब्यूरो थाना को निर्दिष्ट किया। उपरोक्त आदेश के अनुशरण में, सतर्कता थाना केस सं॰ 26 वर्ष 2008 भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 406, 409, 420, 423, 424, 465, 120(B) के अधीन एवं साथ ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 11/13(2) सह-पठित धारा 13(1) के अधीन संस्थित किया गया था।

3. विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित उक्त आदेश से व्यथित होकर, इस रिट आवेदन को दिनांक 24.11.2008 के उक्त आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके अधीन परिवाद केस को प्राथमिकी संस्थित करने के लिए सतर्कता पुलिस थाने को निर्दिष्ट किया गया था।

4. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विशेष न्यायाधीश दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अर्थान्तर्गत एक दण्डाधिकारी नहीं हैं, बल्कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(3) में यथा अंतर्विष्ट प्रावधानों के निबन्धनों में सत्र न्यायालय है एवं इस प्रकार, उन्हें प्राथमिकी संस्थित करने एवं इसके अन्वेषण के लिए परिवाद को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन सतर्कता ब्यूरो को निर्दिष्ट करने की कोई अधिकारिता नहीं है एवं

इस प्रकार, आक्षेपित आदेश बिल्कुल अविधिमान्य है एवं इसे **सुरेन्द्र नाथ स्वाईन बनाम् उड़ीसा राज्य [2006(2) East.Cr. C. 209 (Ori.)]** के मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा प्रदत्त निर्णय की दृष्टि में अपास्त किए जाने योग्य है जिसमें यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि विशेष न्यायाधीश को संहिता की धारा 156 की उप-धारा (3) के अर्थान्तर्गत एक दण्डाधिकारी के तौर पर नहीं समझा गया है एवं तद्द्वारा वह पुलिस को परिवाद निर्दिष्ट करने एवं इसका अन्वेषण करने में अक्षम है।

5. इसके अतिरिक्त, इस प्रभाव का भी निवेदन किया गया था कि परिवादी का याची के पद के क्रियाकलापों से कोई लेना देना नहीं था एवं इस प्रकार, विद्वान विशेष न्यायाधीश को उसके द्वारा दाखिल परिवाद को ग्रहण नहीं करना चाहिए था विशेष रूप से तब जब याची एवं अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध किए गए अभिकथन समाचारपत्र में प्रकाशित समाचार पर आधृत था।

6. इसके यथा विरूद्ध, सतर्कता ब्यूरो की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विशेष न्यायाधीश का न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन मूल अधिकारिता का एक न्यायालय है एवं इस प्रकार, इसे मूल दाण्डिक अधिकारिता को एक न्यायालय के तौर पर कार्य करना है, जो परिनियम के अधीन आरोपित निर्बन्धन के अध्यधीन है एवं चूँकि विशेष न्यायाधीश को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन या धारा 190 के अधीन इसकी अधिकारिता का प्रयोग करने की शक्ति से वंचित नहीं किया गया है इसलिए विशेष न्यायाधीश दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन या धारा 190 के अधीन प्रदत्त प्रावधानों के निबन्धनों में कार्रवाई करने की सभी शक्ति उपधारित करते हैं।

7. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि यद्यपि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अधीन यथा कल्पित प्रावधान दण्डाधिकारी के बारे में निर्दिष्ट करता है परन्तु उस अभिव्यक्ति को परिनियम के प्रावधान को पूर्ण प्रभावी बनाने के क्रम में समामेलन द्वारा विधायन के सिद्धांत के अन्तर्गत विशेष न्यायाधीश के तौर पर पढ़ा जाना है एवं विधि की इस प्रतिपादना को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **ए॰ आर॰ अंतुले बनाम रामदास श्रीनिवास नायक एवं एक अन्य [(1984)2 SCC 500]** एवं **[1984 SCC (Cri.) 277]** के मामले में अधिकथित किया गया है।

8. इस प्रकार यह निवेदन किया गया था कि विद्वान विशेष न्यायाधीश मामले को संस्थित करने या इसके अन्वेषण के लिए सतर्कता ब्यूरो को निर्दिष्ट करने की सभी शक्ति रखते हैं एवं, इसलिए, आवेदन में आत्यंतिक रूप से कोई गुणागुण नहीं है एवं इस प्रकार, यह खारिज किये जाने योग्य है।

9. दाण्डिक न्यायशास्त्र का यह एक सुज्ञात मान्यता प्राप्त सिद्धांत है कि कोई भी व्यक्ति दाण्डिक विधि को गतिशील बनाया जा सकता है सिवाय वहाँ के जहाँ किसी अपराध को अधिनियमित या सृजित करने वाले परिनियम इसके विपरीत इंगित करते हों। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 किसी भी व्यक्ति को दण्डाधिकारी से संपर्क करने की अनुमति देता है, यह कोई परिवाद दाखिल करने में सक्षम बनाने के लिए परिवादी के लिए कोई योग्यता विहित नहीं करता है। परन्तु जहाँ किसी परिवादी के लिए कोई पात्रता मानदण्ड अनुध्यात किया जाता है, वहाँ विशेष प्रावधान बनाया गया है जिसे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 195 से 199 मे पाया जा सकता है। ये सभी विशेष प्रावधान स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि ऐसे किसी सांविधिक प्रावधान की अनुपस्थिति में, परिवादी को सुने जाने का अधिकार दाण्डिक न्यायशास्त्र के लिए बाह्य धारणा है। इस स्थिति में, मैं इस सम्बन्ध में पेश किए गए निवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ।

10. याची की ओर से उठाये गए अन्य बिन्दू की ओर आते हुए, मैं सर्वप्रथम दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान को निर्दिष्ट करूँगा, जो निम्नवत पठित है:–

"4(1) भारतीय दण्ड संहिता के अधीन सभी अपराधों का अन्वेषण, जाँच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इसमें इसके पश्चात अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार की जायगी।

(2) किसी अन्य विधि के अधीन सभी अपराधों का अन्वेषण, जाँच, विचारण और उनके सम्बन्ध में अन्य कार्यवाही इन्हीं उपबन्धों के अनुसार किन्तु ऐसे अपराधों के अन्वेषण, जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही की रीति या स्थान का विनियमन करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के अधीन रहते हुए, की जाएगी।

इसके परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि धारा 4(1) संहिता के प्रावधानों के अनुसार भारतीय दण्ड संहिता के अधीन प्रत्येक अपराध के लिए अन्वेषण, जाँच या विचारण का प्रावधान करता है जबकि धारा 4(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार अन्वेषण, जाँच या विचारण किए जाने के लिए अन्य विधि के अन्तर्गत अपराधों के लिए प्रावधान करता है परन्तु यह ऐसे अपराधों के लिए अन्वेषण, जाँच या विचारण किए जाने या अन्वेषण की रीति या स्थान या अन्यथा को नियमित करने के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियम के अध्यधीन है। विशेष परिनियम के अधीन जाँच, विचारण, इत्यादि से सम्बन्धित किसी प्रावधान की अनुपस्थिति में इसपर दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार विचार किया जाना है।

11. मामले में आगे जाते हुए, मैं यह इंगित करूँगा कि परिवाद पर या पुलिस अधिकारी की किसी रिपोर्ट पर या वहाँ जहाँ दण्डाधिकारी को स्वयं किसी अन्य स्रोत के माध्यम से अपराध की कारिता की जानकारी प्राप्त होती है एवं सत्र न्यायालय के मामले में दण्डाधिकारी द्वारा संज्ञान लेने की चार विधियाँ विहित करता है। विशेष न्यायाधीश का न्यायालय दाण्डिक न्यायालय होने के कारण इसे उपर वर्णित रीति में से एक अर्थात् कोई कार्यवाही संस्थित करने की दृष्टि से धारा 193 में यथा वर्णित किसी दण्डाधिकारी को सुपुर्द किए जाने पर, के सिवाय किसी भी रीति में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने एवं अंतत: अभियुक्त को विचारित करने की शक्ति प्रदान की गयी है चूँकि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान दण्डाधिकारी तक ही सीमित है, इसलिए याची की ओर से निवेदन पेश किया गया है कि विशेष न्यायाधीश दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन परिवाद केस को निर्दिष्ट करने की शक्ति नहीं रखते हैं परन्तु **ए॰ आर॰ अंतुले बनाम रामदास श्रीनिवास नायक एवं एक अन्य (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सदृश परिप्रेक्ष्य में यह अभिनिर्धारित किया है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (पुरानी) के प्रावधान को प्रभावी बनाने के क्रम में, विशेष न्यायाधीश पढ़ा जाना है जहाँ भी अभिव्यक्ति दण्डाधिकारी का प्रयोग समाविष्टिकरण द्वारा विधायन के सिद्धांत के अन्तर्गत किया गया है।

12. मामले की उस दृष्टि में, निश्चित रूप से विशेष न्यायाधीश परिवाद को इसके संस्थित किए जाने एवं अन्वेषण के लिए सतर्कता ब्यूरो के समक्ष निर्दिष्ट करने की शक्ति रखते हैं।

13. इसके अतिरिक्त, मामले को एक अन्य कोण से देखा जाए।

14. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 के प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हुए यह उल्लेख किया गया है कि अन्य विधि के अन्तर्गत विशेष परिनियम के किसी प्रावधानों की अनुपस्थिति में, इसका अन्वेषण, जाँच इत्यादि दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन किया जाएगा। उसी परिप्रेक्ष्य में, हम भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 में यथा अंतर्विष्ट प्रावधानों की जाँच करेंगे कि क्या विशेष न्यायाधीश की शक्तियों को निर्बन्धित किया गया है ताकि उसे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने से अवरोधित किया जा सके। उक्त प्रावधान निम्नवत पठित है:–

5. विशेष न्यायाधीश के अधिकार एवं प्रक्रिया.-(1) विशेष न्यायाधीश किन्हीं अपराधों का संज्ञान उसे विचारण के लिए अभियुक्त की सुपुर्दगी के बिना कर सकता है और विचारण के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में मजिस्ट्रेट द्वारा वारंट मामलों के विचारण के लिए विनिर्दिष्ट प्रक्रिया अपनाएगा।

(2) विशेष न्यायाधीश अपराध से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध किसी व्यक्ति का साक्ष्य अभिप्राप्त करने की दृष्टि से उस व्यक्ति को इस शर्त पर क्षमादान कर सकता है कि वह अपराध के सम्बन्ध में और उसके किए जाने में चाहे कर्ता या दुष्प्रेरण के रूप में सम्बद्ध प्रत्येक अन्य व्यक्ति के सम्बन्ध में समस्त परिस्थितियों की जिनकी उसे जानकारी है पूर्ण और सत्यतः प्रकट न कर दे और तब दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 308 की उप-धारा (1) से (5) तक के प्रयोजन के लिए यह समझा जाएगा कि क्षमादान उस संहिता की धारा 307 के अधीन दिया गया है।

(3) उप-धारा (1) की उप-धारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के प्रावधान जहाँ तक वह इस अधिनियम से असंगत न हों विशेष न्यायाधीश की कार्यवाहियों पर लागू होंगे और इन प्रावधानों के प्रयोजन के लिए विशेष न्यायाधीश का न्यायालय सत्र न्यायालय समझा जाएगा और विशेष न्यायाधीश के समक्ष अभियोजन संचालित करने वाला व्यक्ति लोक अभियोजक समझा जायेगा।

(4) उप-धारा (3) के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धाराएँ 326 एवं 425 के प्रावधान जहाँ तक सम्भव हो, विशेष न्यायाधीश के समक्ष की कार्यवाहियों पर लागू होंगे और इन प्रावधानों के प्रयोजन के लिए विशेष न्यायाधीश मजिस्ट्रेट समझा जाएगा।

(5) विशेष न्यायाधीश किसी दोषसिद्ध व्यक्ति को जो उस अपराध के लिए विधि द्वारा प्राधिकृत कोई भी दण्डादेश पारित कर सकता है, जिस अपराध के लिए वह व्यक्ति दोषसिद्ध हुआ है।

(6) इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय अपराध का विचारण करने वाला विशेष न्यायाधीश दण्ड विधि (संशोधन) अध्यादेश, 1944 (1944 का अध्यादेश 38) द्वारा जिला न्यायाधीश को प्रदत्त शक्तियों एवं कृत्यों का प्रयोग कर सकेगा।

15. अधिनियम की धारा 5 की उप-धाराएँ (1), (2), (3) एवं (4) में यथा अंतर्विष्ट सभी प्रावधानों के संयुक्त पठन से यह प्रतीत होता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धाराएँ 326 एवं 475 के सहित इसके प्रावधान, जहाँ तक कि वे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधाानों के साथ असंगत नहीं हैं, विशेष न्यायाधीश के समक्ष किसी कार्यवाही में प्रयोज्य नहीं होंगे, जिसे विचारण हेतु अभियुक्त को सुपुर्द किए बिना अपराध का संज्ञान लेने को सशक्त किया गया है।

16. यह कहा जाय कि यदि धारा 5 की उप-धारा (1) में यथा कल्पित प्रावधान अधिनियम में नहीं हों, तो विशेष न्यायाधीश, सत्र न्यायाधीश या अपर सत्र न्यायाधीश होने के कारण दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 द्वारा रखे गए प्रतिबंध के कारण संज्ञान लेने में सक्षम नहीं होंगे। इसलिए, विधायिका ने अपनी बुद्धिमत्ता से धारा 5 की उप-धारा (3) में इसे रखा है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता के सभी प्रावधान, जहाँ तक कि वे धारा 5 की उप-धारा (1) में यथा उपबंधित के सिवाय असंगत नहीं हैं, प्रयोज्य होंगे।

17. आगे उप-धारा (3) में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान पुनः यह स्पष्ट करता है कि विशेष न्यायाधीश किसी अन्य प्रावधान की प्रयोज्यता से उद्भूत किसी भी कार्यवाही के लिए सत्र न्यायालय समझे जायेंगे परन्तु विधायिका अधिनियम की धारा 5 की उप-धारा (1) के निबन्धनों में प्रावधानों का आश्रय लेते समय न्यायालय की प्रास्थिति के बारे में स्पष्ट रूप से चुप है। परन्तु धारा 190 के प्रावधान को ध्यान में रखते हुए जो कभी भी अपवर्जित किया गया नहीं प्रतीत होता है, परन्तु विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन संज्ञान लेते समय एक दण्डाधिकारी समझे जायेंगे विधि की जिस प्रतिपादना को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही अधिकथित किया गया है जैसा कि उपर इंगित किया गया है।

18. वैसी स्थिति होने के कारण, विद्वान विशेष न्यायाधीश सदैव ही दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के निबन्धनों में अपनी शक्ति का प्रयोग करने में सशक्त होंगे।

19. इस प्रकार, उपर निर्दिष्ट मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोण **ए॰ आर॰ अंतुले बनाम रामदास श्रीनिवास नायक एवं एक अन्य (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के विपरीत प्रतीत होता है।

20. इसलिए, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि विशेष न्यायाधीश दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन मामले से निपटने की शक्ति रखते हैं।

21. तद्नुसार, मैं इस आवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ। इस प्रकार, इसे खारिज किया जाता है।

माननीय अजित कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 148 वर्ष 2004. 23 जून, 2009 को विनिश्चित।

कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1973—धाराएँ 2(i)(j)(viii) एवं 3—कार्यशाला–कार्यशाला एवं जमीन जो कोयले के लदान के लिए प्रयुक्त टबें/बाल्टी को साँचे पर ढालने, पीटकर आकार देने और अनुरक्षण के लिए इस्तेमाल की जाती है अधिनियम की धारा 2(h) के अधीन खानों की परिभाषा की परिधि के भीतर आती है और अधिनियम की धारा 3 के प्रावधान के कारण नियत तिथि पर यह केन्द्र सरकार में निहित हो गया–अभिनिर्धारित, निजी प्रत्यर्थी द्वारा किसी अभिधान का दावा नहीं किया जा सकता। (पैरा 14 से 16)

निर्णयज विधि.–(1997)1 SCC 177; (2004)13 SCC 67; (2006)6 SCC 340—Discussed.

अधिवक्तागण.–Mr. Anoop Kumar Mehta, For the Petitioner; Mr. S.K. Verma, For the Respondents.

आदेश

सी॰ एन॰ टी॰ अपील सं॰ 2/1998 में वर्तमान प्रत्यर्थी संख्या 2 आयुक्त उत्तरी छोटानागपुर प्रमण्डल, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 7.10.2003 के आदेश को निरस्त करने के लिए वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गई है जिसके द्वारा और जिसके अधीन छोटानागपुर काश्तकारी नियमावली, 1959 के नियम 74 के अधीन प्रत्यर्थी संख्या 4 श्री प्रदीप कुमार बोस द्वारा दाखिल अपील को अनुज्ञात कर दिया गया है। अतिरिक्त आग्रह, वाद संख्या 163 वर्ष 1991 में इसमें के प्रत्यर्थी संख्या 3 बन्दोबस्त

पदाधिकारी धनबाद द्वारा पारित दिनांक 5.12.1997 के आदेश की संपुष्टि के लिए है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम 1973 की धारा 3 में निहित प्रावधानों के कारण और विशेष रूप से उक्त अधिनियम की धारा 2(h) (vii) में यथा निहित ''खान'' की परिभाषा के आलोक में याची की कम्पनी में यथा निहित 0.73 एकड़ माप वाली जमीन के संबंध में जो खाता सं॰ 20 प्लॉट संख्या 169 से सम्बद्ध और मौजा-भूपटडीह (मौजा सं॰ 252) में अवस्थित है याची के स्वामित्व के अधीन अभिलेख को खोलने का निर्देश देकर याची की अपील को अनुज्ञात किया है। सी॰ एन॰ टी॰ अपील संख्या 2/1998 में पारित दिनांक 7.10.2003 के आदेश को अग्रसर करने या इसके अनुसरण में एवं इसको प्रभावी बनाने में उन्हें रोकने के लिए और सम्बन्धित प्रत्यर्थीगण प्रत्यायोजन को कोई कार्रवाई न करने का निर्देश देने वाले एक यथोचित रिट आदेश या निर्देश को निर्गत करने के लिए भी प्रार्थना की गई है।

2. तथ्य संक्षेप में निम्नांकित रूप से है:-

कतरास राज ईस्टेट के मुख्तारनामा धारक किसी प्रोफूलो चन्द्र मजुमदार ने मौजा भूपतडीह के प्लॉट संख्या 169 सी॰ एस॰ खाता संख्या 20 के अधीन 3.98 एकड़ जमीन की बन्दोबस्ती खनन और अन्य अनुलग्न प्रयोजनों के लिए विलेख संख्या 3370 के माध्यम से बंदोबस्ती के एक पंजीकृत विलेख द्वारा 26.9.1924 को ललित अमुल्यो मोहन बासु के पक्ष में कर दिया। ललित अमूल्यो मोहन बासु के निधन पर पूर्वोक्त जमीन एन॰ के॰ बोस एवं ब्रदर्स द्वारा विरासत में प्राप्त की गई और निजी प्रत्यर्थी संख्या 4 एन॰ के॰ बोस एवं ब्रदर्स का वैधानिक उत्तराधिकारी है। पुनरीक्षणीय सर्वेक्षण अभिलेखों में उक्त जमीनें पश्चिमी कतरास कोयला खान के नाम से अभिलिखित की गई थी। जिसका कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1973 के अधीन राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था जो 1.5.1973 को प्रभावी हुआ था और यह कोयला खान राष्ट्रीयकरण अधिनियम 1973 की अनुसूची के क्रम संख्या 207 पर प्रतीत होता है।

3. यह प्रतीत होता है कि निजी प्रत्यर्थी के पूर्वजों जो खान के भूतपूर्व स्वामी थे, ने कोयला खान सीम में कोयला के लदान और इसे रेल पर पीट के शीर्ष तक लाने के लिए प्रयुक्त टब/बाल्टी को सांचे में ढालने, पिघलाने मरम्मती और अनुरक्षण के लिए पूर्वोक्त भूमि पर एक कार्यशाला संस्थापित की थी और वर्ष 1961 में कोयला खानों के राष्ट्रीयकरण के पहले उक्त कार्यशाला को रूबी इंजीनियरिंग वर्क्स का नाम एवं चिन्ह दिया गया था। आर॰ एस॰ खतियान दिनांक 20.3.1987 में की गई प्रविष्टि को चुनौती देते हुए उक्त प्रत्यर्थी संख्या 4 ने छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम की धारा 89 के अधीन एक आवेदन दाखिल किया। निजी प्रत्यर्थी संख्या 4 का मामला यह था कि 25/26.9.1974 को एक पारिवारिक बंटवारा हुआ था और 73 डिसमिल जमीन जिस पर कार्यशाला अवस्थित थी, को उसके हिस्से में आबंटित किया गया था। सहायक बन्दोबस्त पदाधिकारी ने दिनांक 7.9.1991 के अपने आदेश से 73 डिसमिल जमीन के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 4 के मामले को अनुज्ञात कर दिया और एक बट्टा (विभाजित) प्लॉट संख्या 232/1 के अधीन प्रत्यर्थी संख्या 4 के नामों से आर॰ एस॰ खतियान संख्या 31 में इसकी प्रविष्टि करने का निर्देश दिया जिसका भूमि की प्रकृति ''मकान मैसाहन'' के लिए लगान के तौर पर दर्ज करने का आदेश किया गया था। याची ने व्यथित होकर छोटानागपुर काश्तकारी नियमावली के नियम 74 के साथ पठित छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम, 1908 की धारा 89(2) के प्रावधानों के अधीन सर्वेक्षण बन्दोबस्त पदाधिकारी, धनबाद के न्यायालय में एक प्रथम अपील एफ॰ ए॰ संख्या 163/1991 दाखिल किया और दिनांक 23.9.1993 के आदेश से अपील को खारिज कर दिया गया।

तत्पश्चात् याची ने छोटानागपुर काश्तकारी नियमावली, 1959 के नियम 74 के अधीन एक द्वितीय अपील दाखिल किया यह कहते हुए कि कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम 1973 के 1.5.1973 के प्रभाव से अधिनियम पर संबंधित सम्पत्ति पश्चिमी कतरास कोयला खान के भाग का गठन करने का कारण पहले ही सभी अवभारों से मुक्त होकर याची की कम्पनी के नाम से निहित हो

चुकी थी। इसने यह भी निर्दिष्ट किया कि कार्यशाला उस जमीन पर स्थापित और तैयार की गई थी जो अनन्य रूप से कोयला खान मशीनरी के विनिर्माण में संलग्न थी और इसे कोयला खनन के भूतपूर्व मालिक द्वारा स्थापित किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 2 ने मामले की सुनवाई करने के उपरांत वाद संख्या 163/1991 में पारित दिनांक 23.9.1993 के आदेश को अपास्त कर दिया और कार्यस्थल का निरीक्षण करने के उपरांत विधि के अनुसार एक निर्णय देने के लिए मामले को बन्दोबस्त पदाधिकारी को प्रतिप्रेषित कर दिया। प्रतिप्रेषण पर इसमें के प्रत्यर्थी संख्या 3 बन्दोबस्त पदाधिकारी ने एक कार्यस्थल निरीक्षण किया और पक्षों की विस्तार से सुनवाई की और दिनांक 13.11.1997/5.12.1997 के अपने आदेश में अपील को अनुज्ञात किया और याची के नाम से आर॰ एस॰ सर्वेक्षण खाता खोलने का निर्देश दिया। प्रत्यर्थी संख्या 4 ने व्यथित होकर छोटानागपुर काश्तकारी नियमावली, 1959 के नियम 74 के अधीन एक अपील दाखिल की जिसे सी॰ एन॰ टी॰ द्वितीय अपील संख्या 2/1998 के तौर पर दर्ज किया गया और इसमें के प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वितीय अपीलीय न्यायालय ने केवल कब्जे के आधार पर उक्त द्वितीय अपील को अनुज्ञात कर दिया।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया मुख्य तर्क यह है कि एक खान या खनन क्षेत्र के संबंध में प्रयुक्त अधिकार अभिधान एवं हित सभी प्रकार के अवभारों से मुक्त केन्द्र सरकार की कोयला कम्पनियों में निहित थी और कतरास कोयला खदान भी निहित थी और अनुसूची में सम्मिलित भी और प्रतिकर का भुगतान कर दिए जाने से निजी प्रत्यर्थी का कोई दावा शेष नहीं रह जाता है। रखा गया अगला तर्क यह है कि कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1973 की धारा 2(h) खान को परिभाषित करती है जो एक समावेशी परिभाषा है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया अगला तर्क यह है कि **(1997)1 एस॰ सी॰ सी॰ पृष्ठ 177** में रिपोर्ट किए गए **मेसर्स बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ बनाम मदन लाल अग्रवाल** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तीन माननीय न्यायाधीशों की एक पीठ द्वारा मुद्दे पर पूर्ण रूप से विचार किया गया है और इसका निपटारा किया गया है।

5. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि दिनांक 26.9.1974 को एक बंटवारा/पारिवारिक व्यवस्था हुई थी और 73 डिसमिल जमीन अलग की गई थी और प्रत्यर्थी संख्या 4 का नाम अभिलिखित किया गया था यह भी तर्क दिया गया है कि पारित आक्षेपित आदेश पूर्णत: न्यायसंगत था क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 4 का कब्जा था।

6. मैंने प्रतिद्वंदी निवेदन अभिवाकों एवं निर्णयज विधि पर विचार किया है। इस तथ्य को लेकर कोई विवाद नहीं है कि कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1973 1.5.1973 से प्रभावी हुआ था और इसमें अनुलग्न अनुसूची में सभी भूतपूर्व निजी खानें सम्मिलित थी जो सभी अवभारों से मुक्त होकर केन्द्र सरकार में निहित हो गई थी। पश्चिमी कतरास कोयला खान, कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1973 के साथ अनुलग्न अनुसूची के क्रम संख्या 207 पर सूचीबद्ध है। इसको लेकर कोई विवाद नहीं है कि निहित होने के समय कोई पारिवारिक बन्दोबस्ती या विभाजन नहीं था और अभिकथित पारिवारिक बन्दोबस्ती/विभाजन जिसके आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 4 ने दावा रखा उसके अनुसार भी दिनांक 26.9.1974 का था जो निहित होने और संसदीय अधिनियम के काफी बाद की तिथि है।

7. भूतपूर्व निजी कोलियरी खानो और एक खान के संबंध में प्रयुक्त कुछ भी केन्द्र सरकार के स्वामित्व वाली कम्पनी में निहित हो चुका था और उन्हें यथा अभिनिर्धारित प्रतिकर का भी भुगतान कर दिया गया था। निहित होने और खानों की समावेशी परिभाषा के संबंध में मुद्दा अब अनिर्णीत नहीं रहा है और **मेसर्स बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ बनाम मदन लाल अग्रवाल (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तीन माननीय न्यायाधीशों की एक पीठ ने कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1973 की धारा 2(h) के अधीन खानों की समावेशी परिभाषा की व्याख्या करते हुए निम्नांकित रूप से अवधारित किया:–

''इसके अतिरिक्त ''खानों'' की परिभाषा उन सभी परिसम्पत्तियों को भी आच्छादित करती है जो खान के सुचारू रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक है इसके निरपेक्ष रहते हुए कि ये परिसम्पत्तियाँ एक खान की है या नहीं। इस प्रकार, धारा 2(h)(vi) एक खान जो के समीपस्थ और खान के प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त सभी जमीनों, इमारतों, मशीनरी एवं उद्भूत उपकरण भण्डार वाहनों रेलवे ट्रामवे इत्यादि को आच्छादित करती है। इसलिए, ये सारी सम्पत्तियाँ अगर एक खान के समीपस्थ है और खान के सुचारू कार्यकलाप के लिए आवश्यक है, अर्जित कर ली जाएगी इसके निरपेक्ष रहते हुए कि वे ''खान के मालिक'' की है या नहीं। इसी प्रकार धारा 2(h)(ix) के अधीन एक ही प्रबंधन के अधीन खान एवं खानों को चलाने के प्रयोजनों के लिए मुख्य रूप से विद्युत आपूर्त्ति के लिए परिचालित सभी विद्युत गृहों को अर्जित किया जाएगा इसके निरपेक्ष की ये विद्युत-गृह खान के स्वामी के थे या नहीं। धारा 2(h) का उप-खण्ड (xi) प्रावधान करता है कि अन्य सभी [उप खण्ड (x) में वर्णित को छोड़कर] जमीनों और इमारतों जहाँ कहीं भी अवस्थित हो यदि केवल प्रबंध के विक्रय या सम्पर्क कार्यालयों की अवस्थित के लिए या खान कर्मचारीगण और पदाधिकारीगण के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं इनका भी अर्जन किया जाएगा। उप-खण्ड (x) के विरचित उप-खण्ड (xi) में खान के मालिक के स्वामित्व वाले शब्दो को निहित नहीं करता। इस प्रकार, खान का परिभाषा खण्ड कम-से-कम दो भिन्न प्रकार की सम्पत्ति को आच्छादित करता है; (i) वे सम्पत्तियां भी खान की हैं और (ii) सम्पत्तियों से खान द्वारा खान के सुचारू कार्यकलाप के लिए इस्तेमाल की जाती है। पहली कोटि की सम्पत्तियाँ वैसी सम्पत्तियां होगी जो खनन कम्पनी के स्वामित्व वाली है। द्वितीय कोटि का सम्पत्तियां आवश्यक रूप से खनन कम्पनी के स्वामित्व वाली न हो सकती हैं ऐसी सम्पत्तियां भी हो सकती है जो खनन कम्पनी द्वारा पट्टे पर दी गई हो या खनन कम्पनी के कब्जे में हो और उनके द्वारा प्रयुक्त की जाती हो।

8. इसी प्रकार धारा 2(h)(vii) के अधीन एक खान में या इसके सम्पत्ति और मुख्य रूप से खानों के प्रयोजनो के लिए प्रयुक्त होने वाली सभी कार्यशालाएँ भी खान की परिभाषा के अधीन शामिल है। और कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1973 में निहित प्रावधानों के अनुसार निहित हो और इसे नीचे यथा उत्कथित किया गया है:–

''सभी कार्यशालाएं (एसी कार्यशालाओं की इमारती, मशीनरी, उपकरणों, ऐसी कार्यशाला के भण्डारों और उन जमीनो को शामिल करते हुए जिसपर ऐसी कार्यशालाएं अवस्थित हो) जो एक खान में या इसके समीपस्थ हो और खान या खानो की एक संख्या के प्रयोजनो के लिए मुख्य रूप से एक ही प्रबंधन के अधीन प्रयुक्त हो।''

9. (2004)13 एस॰ सी॰ सी॰ 67 (वेस्टर्न कोलफील्डस लिमिटेड बनाम सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया) में इसी प्रकार के मुद्दे पर विचार करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मेसर्स बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ बनाम मदन लाल अग्रवाल** के पूर्वोक्त निर्णय को निर्दिष्ट किया और इसपर भरोसा किया एवं पैरा-5 पर निम्नांकित रूप से अवधारित किया:–

"5. यह कि संयंत्र एवं मशीनरी जो निजी प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रत्यर्थी 1 को आडमान किया गया था एवं खानो के भाग का गठन करती थी, इसलिए, कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम के अधीन राष्ट्रीयकरण के अध्यधीन ये विवादित नहीं हो सकती न केवल भुगतानो के आयुक्त के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, बल्कि अधिनियम में शब्द की परिभाषा और इस न्यायालय के निर्णयों को भी ध्यान में रखते हुए, विशेषकर भारत कोकिंग कोल लिमिटेड बनाम मदन लाल अग्रवाल (1997)1 एस० सी० सी० 177) में परिभाषा का अर्थान्वयन करने वाला निर्णय। इस प्रकार, दोनो कोयला खदानो के राष्ट्रीयकरण पर आडमान परिसम्पत्तियाँ कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम की धारा 6 के निबंधनों में सभी अवभारों से मुक्त होकर अपीलार्थीगण में निहित हो गई थी। उस सीमा तक, जहाँ तक प्रत्यर्थी 1 को आडमान

की गई वस्तुओं के सम्बद्ध में निजी प्रत्यर्थीगण के विरूद्ध कोई दावा है, प्रत्यर्थी 1 को अनिवार्य रूप से भुगतानों के आयुक्त के समक्ष अधिनियम की धारा 20 के अधीन अपने उपचार का अनुसरण करके इसकी वसूली को इप्सित करना है या किसी ऐसे तरीके द्वारा जो विधि में इसे उपलब्ध हो। अपीलार्थीगण के विरूद्ध कोई डिक्री पारित नहीं की जा सकती थी और न ही वे निजी प्रत्यर्थीगण की दायिताओं को पूरा करने के लिए बाध्य है।''

10. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि रूबी इंजीनियरिंग वर्क्स एक कार्यशाला है जो पश्चिमी कतरास कोयला खदान के भाग का गठन करती थी जो 1.5.1983 को ही निहित हो गया था और इसका इस्तेमाल खनन प्रयोजनों के लिए किया जाता है और यह खानों में या इसके निकट स्थित है।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2006)6 एस॰ सी॰ सी॰ 340 (साउथ इस्टर्न कोल फिल्डस लिमिटेड बनाम आयुक्त, सीमा शुल्क एवं केन्द्रीय उत्पाद, मध्य प्रदेश)** में एक खान क्षेत्र में एक कार्यशाला में सभी विनिर्मित वस्तुओं पर ड्यूटी और इसकी छुट के संबंध में मुद्दे पर विचार करते हुए खनन अधिनियम, 1952 की धारा 2(1)(j) के अधीन यथा परिभाषित खान की परिभाषा पर विचार किया जिसे नीचे उत्कथित किया गया है:–

''खान अधिनियम की धारा 2(1)(j)(vii) कथित करती है कि खान में सम्मिलित है:–

2.(1)(j)(viii) एक खान के आस-पास के क्षेत्र के भीतर और एक ही प्रबंधन के अधीन अवस्थित सभी कार्यशालाएं और भंडार और एक ही प्रबंधन के अधीन उस खान या कई खानो की संख्या से संबंधित प्रयोजनों के लिए प्राथमिक रूप से प्रयुक्त।''

12. इसके अतिरिक्त, मुद्दों पर विचार करते हुए इसने एक खान के परिसर शब्द की व्याख्या की और परिभाषित किया और पैरा 23 एवं 24 पर निम्नांकित रूप से निर्णीत किया:–

"23. तथापि, जहाँ एक शब्द या अभिव्यक्ति का अर्थ स्पष्ट नहीं है तो स्वाभाविक रूप से व्याख्या के शाब्दिक नियम लागू नहीं किया जा सकता और इसलिए हमे व्याख्या के अन्य नियमों का आश्रय लेना होता है, जैसा कि हेडन का रिस्टि नियम, प्रयोजनमूलक नियम, इत्यादि। हमारे विचार में वर्तमान मामला में प्रयोजनमूलक नियम को लागू करना चाहिए। इस नियम के अधीन, हमें उस उद्देश्य को देखना है जिसके लिए प्रावधान बनाया गया था। इसपर उस दृष्टि से देखते हुए, हमारा विचार है कि ''परिसरों'' शब्द को व्यापक अर्थ देना होगा और संकीर्ण अर्थ नहीं।

24. अन्य शब्दों में, हमे छूट-संबंधी अधिसूचना में ''परिसरों'' शब्द की व्याख्या करके आस-पास के क्षेत्र का अर्थ निकालना होगा। जैसा कि कॉलिन्स के अंग्रेजी शब्दकोष में परिभाषित है या एक स्थान के आस-पास का क्षेत्र या परिवेश का अर्थ देना होता है जैसा कि नई लघुकृत ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्दकोष में परिभाषित है। ऐसा इसलिए है क्योंकि छूट-संबंधी अधिसूचना का उद्देश्य एक खान में उत्पादित वस्तुओं को उत्पाद शुल्क से छूट प्रदान करना है ताकि खनन उद्योग को बढ़ावा मिले। एक कार्यशाला में एक खान के परिवेश में स्थित क्षेत्र से है और खान से संबंधित प्रयोजन के लिए ही मात्र अस्तित्व में है एवं एक ही प्रबंधन के अधीन है, स्वाभाविक रूप से खान के कार्यकलापों को पूरा कर रही है। इसलिए, हमें अधिसूचना की व्याख्या इस प्रकार करनी होगी जिससे कि छूट प्रदान करने का प्रयोजन के लिए ऐसी एक कार्यशालाओं को एक खान की परिभाषा के भीतर शामिल किया जाय क्योंकि यह खनन उद्योग को प्रोत्साहन प्रदान करेगी।'

13. कारखाना अधिनियम की धारा 2(m) कारखाना को परिभाषित करती है जो एक खान को शामिल नहीं करती और इसे नीचे उत्कथित किया गया है:–

(m) ''कारखाना'', का अर्थ किसी परिसर से है जिसमें उसके आस-पास का क्षेत्र शामिल है:–

(i) जहाँ पर दस या इससे अधिक व्यक्ति कार्य कर रहे हैं, या पिछले बारह महीनों में किसी दिन कार्य कर रहे थे और जिसके किसी भाग में विद्युत की सहायता से विनिर्दिष्ट प्रक्रिया चलाई जाती है, या सामान्य रूप से ऐसा किया जाता हो, या

(ii) जहाँ पर बीस या इससे अधिक व्यक्ति कार्य कर रहे हैं, या पिछले बारह महीनों में किसी दिन कार्य कर रहे थे, और जिसके किसी भाग में विद्युत की सहायता के बगैर एक विनिर्माण प्रक्रिया चलाई जाती हो या सामान्यतः ऐसा किया जाता हो, परन्तु खान अधिनियम, 1952 (35 वर्ष 1952) के प्रभावी होने के अध्यधीन एक खान को शामिल नहीं करती, या संघ की सशक्त सेनाओं की एक संयत्र ईकाई, एक रेलवे चलायमान शेड या एक होटल, रेस्तराँ या भोजन का स्थान]

14. पूर्वोक्त की दृष्टि में, मेरा यह सुविचारित मत है कि प्रश्नाधीन कार्यशाला और जमीन कोयला खान (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1973 की धारा 2(h) के अधीन खानों की परिभाषा के भीतर आते हैं और इसलिए अधिनियम की धारा 3 के प्रावधान के कारण नियत तिथि को केन्द्र सरकार में निहित हो गए थे, उपरोक्त प्रावधान निम्नांकित रूप से उत्कथित है:-

''नियत तिथि को, अनुसूची में विनिर्दिष्ट खानों के संबंध में मालिकों के अधिकार, अभिधान एवं हित सभी अवभारों से मुक्त होकर, केन्द्र सरकार में अन्तरित और पूर्णरूप से उसमें निहित हो जाएगा।''

15. वर्तमान मामले में कार्यशाला एक खनन क्षेत्र में है और खनन संबंधी प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल की जाती है और इस प्रकार कोयला खान राष्ट्रीयकरण अधिनियम के परिभाषा खण्ड 5.2 (h)(vii) के अधीन शामिल है जैसा कि पूर्वोक्त निर्णय में अवधारित किया गया था।

16. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और आयुक्त, उत्तरी छोटानागपुर प्रमण्डल, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 7.10.2003 का आक्षेपित आदेश, एतद् द्वारा निरस्त किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

मंगरा ओराँव

बनाम

झारखण्ड राज्य

दाण्डिक अपील सं॰ 54 वर्ष 2002. 21 मई, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 380 वर्ष 1999 में, श्री आर॰ एन॰ वर्मा, अपर न्यायिक आयुक्त-सह-विशेष न्यायाधीश सं॰ 1, राँची द्वारा पारित दिनांक 9 जनवरी, 2002 के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860–धारा 394–डकैती–सूचनादाता ने अपीलार्थी को नहीं पहचाना एवं बाद में अगले दिन यहाँ वहाँ से सूचना पाकर एवं अनुमान के आधार पर उसने अभियुक्त व्यक्तियों को नामजद किया–अभिनिर्धारित, विरोधाभासी साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी की भागीदारी संदेहास्पद है–अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए।

(पैरा 14 एवं 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Tapas Rai *(Amicus Curiae),* For the Appellant; Mr. Swapan Maji, For the State.

न्यायालय द्वारा.-बार-बार बुलाये जाने पर भी अपीलार्थी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। तब न्यायालय ने श्री तापस राय, अधिवक्ता को न्यायालय का सहयोग करने को कहा और वे न्यायालय का सहयोग करने को सहमत हो गये।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

यह अपील सत्र विचारण सं॰ 380 वर्ष 1999 में, श्री आर॰ एन॰ वर्मा, अपर न्यायिक आयुक्त-सह-विशेष न्यायाधीश, राँची द्वारा पारित दिनांक 9 जनवरी, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध निर्दिष्ट है जिस निर्णय के द्वारा उन्होंने अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 398 के अधीन दोषी पाया एवं उसे दस वर्षों का दण्डादेश भुगतने से दण्डित किया। लेकिन, उन्होंने अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता के धारा 394 के अधीन दोषमुक्त किया। उन्होंने सह-अभियुक्तों सोमरा ओराँव एवं एतवारी ओराँव को भी दोषमुक्त किया।

2. अभियोजन मामला सूचनादाता, राजेश कुमार द्वारा सुखदेवनगर थाने में 8.1.1998 को एक बजे रात्री में दिए गए फर्दबयान के आधार पर प्रारम्भ किया गया था। 8.1.1998 को लगभग एक बजे उसने थाने में अन्वेषण अधिकारी के समक्ष पिस्तौल एवं कारतूस पेश किए एवं कहा कि उसके एक दुकान-सह-आवास है जहाँ से वह एक दुकान चलाता है। उसने कहा कि 7.1.1998 को लगभग 7.15 बजे शाम में जब वह अपनी दुकान में बैठा था और उसका छोटा भाई दुकान के बाहर खड़ा था, तब दो लड़के वहाँ आए। उनमें से एक चंपा ओरांव का पुत्र, मंगरा ओरांव था, उसने उससे एक सिगरेट की मांग की। उसके अन्य दोस्त दुकान के बाहर खड़े थे। जब उसने सिगरेट का पैकेट उसे दिया और तब उसने अपनी जेब से एक पिस्तौल निकाल ली एवं इसे कनपट्टी पर रखते हुए पैसों की मांग की। जिसपर सूचनादाता ने रिवॉलवर पकड़ लिया एवं अपने छोटे भाई राकेश कुमार को 'मामा' को बुलाने को कहा जो दुकान के सामने ही रहता है। इस बीच, उसने अभियुक्त मंगरा ओरांव से रिवॉल्वर छीन ली। मंगरा ने अपने दोस्त से जो दुकान के बाहर खड़ा था, बम देने को कहा एवं बम लेकर, उसने मैदान की ओर भागना प्रारम्भ कर दिया परन्तु जब वह दौड़ रहा था तो बम फूट गया। अन्य ग्रामीणों की मदद से सूचनादाता ने अभियुक्त व्यक्तियों का पीछा किया परन्तु उनलोगों का पता नही पा सके। उसने कहा कि मंगरा ओरांव पहले भी सिगरेट के लिए उसके दुकान पर आया करता था परन्तु वह अन्य अभियुक्त सोमरा को नहीं जानता था एवं उनलोगों की तलाश करने के उपरांत, उसने पाया कि जब वे लोग भाग रहे थे, तो विस्फोट में एक अभियुक्त की ऊंगली विस्फोट के उपरांत गिर गया था। उसने अभियुक्त मंगरा एवं सोमरा का पूर्ण विवरण दिया। अन्वेषण अधिकारी ने पिस्तौल की अभिग्रहण सूची बनायी एवं आयुध अधिनियम की धाराएँ 393, 216(A), 201 एवं 25(i)(b)(a), 26 एवं 35 के अधीन एक केस दर्ज किया एवं अन्वेषण के उपरांत भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 393, 398, 216, 201 एवं 109 के अधीन एवं आयुध अधिनियम की धाराएँ 13, 26 एवं 35 के अधीन आरोपपत्र पेश किया।

3. चूँकि, यह केस अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए विद्वान मजिस्ट्रेट ने केस पर संज्ञान लेने के उपरांत, इसे सत्र न्यायालय में भेज दिया, जहाँ भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 398 एवं 394 के अधीन आरोपित अपीलार्थी के साथ-साथ अन्य अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण कराया गया था। विचारण के उपरांत, अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 398 के अधीन दोषी पाया गया था एवं अपर सत्र न्यायाधीश, राँची द्वारा यथा उपरोक्त दोषसिद्ध एवं दण्डित किया गया था।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि सूचनादाता एवं अन्य साक्षियों के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि 7.1.1998 को घटना के समय सूचनादाता ने अभियुक्त की पहचान नहीं की थी एवं बाद में, उसने 7.1.1998 को प्राथमिकी दर्ज नहीं कराया, क्योंकि दोनों ही थाने घटनास्थल के निकट थे। इसके अतिरिक्त, सूचनादाता द्वारा दिया गया पहचान एवं नाम संदेहास्पद है क्योंकि पड़ोसी साक्षियों ने कहा है कि घटना के तत्काल बाद सूचनादाता ने उनलोगों को बुलाया परन्तु वे लोग अभियुक्त व्यक्तियों का नाम बताने में असफल रहे एवं इस प्रकार, अपीलार्थी की पहचान संदेहास्पद है। विचारण न्यायालय ने सोमरा ओरांव को इस आधार पर दोषमुक्त किया कि स्वयं सूचनादाता ही घटना के तत्काल बाद साक्षियों को अभियुक्तों का नाम बताने में असफल रहा था।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने इस प्रार्थना का विरोध किया है एवं निवेदन किया कि सूचनादाता अ॰ सा॰ 4 राजेश कुमार एवं उसके छोटे भाई राकेश कुमार, अ॰ सा॰ 7 ने अभियोजन मामले का पूर्ण समर्थन किया है एवं अपीलार्थी मंगरा ओरांव की पहचान की है एवं इस प्रकार यह दोषसिद्धि अपास्त किए जाने के लिए उचित एवं उपयुक्त है।

6. पक्षकारों की सुनवायी करके एवं साक्ष्यों का अवलोकन करके, मैं पाता हूँ कि अभियोजन ने विचारण के अनुक्रम में आठ साक्षियों की परीक्षा की है। अ॰ सा॰ 1 कौशलेन्द्र कुमार है, अ॰ सा॰ 2 उमेश प्रसाद है, अ॰ सा॰ 3 निरन्जन प्रसाद है, अ॰ सा॰ 4 राजेश कुमार (सूचनादाता) है, अ॰ सा॰ 5 बिनोद प्रसाद है, अ॰ सा॰ 6 संतोष कुमार है एवं अ॰ सा॰ 7 राकेश कुमार, सूचनादाता का भाई-सह-प्रत्यक्षदर्शी है एवं अ॰ सा॰ 8 राजेन्द्र प्रसाद है।

7. सूचनादाता के अनुसार, अ॰ सा॰ 4, राजेश कुमार ने 7.1.1998 को लगभग 7.15 बजे शाम में सूचना प्राप्त किया कि वह उसके 'किराना' दुकान में बैठा था, तब अभियुक्त मंगरा ओरांव वहाँ आया एवं एक पैकेट सिगरेट की मांग की। वह पहले भी उसके दुकान में आया करता था। उसने एक पैकेट सिगरेट का पैकेट उसे दे दिया। सिगरेट का पैकेट लेकर, उसने अपने पॉकेट से रिवॉल्वर निकाल लिया एवं उसके कनपट्टी पर रखते हुए उसने उसके नकद पेटी से पैसों की मांग की जिसपर उसने रिवॉल्वर पकड़ लिया एवं अपने भाई राकेश से अपने 'मामा' बिनोद प्रसाद को बुलाने को कहा। अपीलार्थी का दोस्त सोमरा दुकान के बाहर खड़ा था, उसे अभियुक्त सोमरा द्वारा बम देने के लिए बुलाया गया तब उसने बम मंगरा को दिया एवं जब उसके छोटे भाई द्वारा हल्ला किया गया तो साक्षियों ने वहाँ पहुँचना प्रारम्भ कर दिया एवं देखा कि दोनों अभियुक्त व्यक्ति भाग रहे थे एवं रिवॉल्वर सूचनादाता के हाथ में आ गया एवं जब वे भाग रहे थे तो बम फोड़ दिया गया था, चूँकि बाहर गहरा अंधेरा था इसलिए दोनों अभियुक्त भाग गए। उसने कहा कि सुखदेवनगर थाने को टेलीफोन कॉल किया गया था। तब अन्वेषण अधिकारी 11.11.1995 को रात्रि में आए एवं तब उसने अपना बयान अन्वेषण अधिकारी के समक्ष दिया। उसने फर्दबयान को प्रदर्श सं॰ 2 के तौर पर प्रमाणित करने के लिए हस्ताक्षर किया। उसने वह पिस्तौल दिया, जिसे उसने अभियुक्त मंगरा से छीन लिया था। जब पुलिस पुनः वहाँ आयी तो अभियुक्त की गिरी हुई ऊंगली बरामद की गयी थी एवं अन्वेषण अधिकारी ने एक अभिग्रहण सूची तैयार की। उसने अभियुक्त सोमरा को पहचाना। अपने प्रति-परीक्षण में, पैरा-7 पर उसने कहा कि अभियुक्त सोमरा का उपनाम रमेश कुमार मुंडा है एवं उसने पुलिस के समक्ष कहा कि दोनों अभियुक्त उसके दूकान पर आए एवं उनमें से एक सोमरा ओरांव उर्फ रमेश कुमार मुंडा था। उसने पुलिस के समक्ष कहा कि जब साक्षियों ने आना प्रारम्भ किया तो मंगरा ओरांव ने अपने दोस्त रमेश मुंडा उर्फ सोमरा को बम देने के लिए पुकारा।

8. राकेश कुमार, अ॰ सा॰ 7 सूचनादाता का भाई है, जो दुकान में उपस्थित था, मुख्य साक्षी है। उसने कहा कि उनका किराना का दुकान है एवं घटना के दिन शाम में वह दुकान के बाहर बैठा था। उसका भाई राजेश कुमार दुकान में बैठा था, अभियुक्त मंगरा एक अन्य व्यक्ति के साथ वहाँ आया एवं उसके भाई से सिगरेट की मांग की एवं उसने पैसों की मांग की एवं अपनी जेब से पिस्तौल निकाल लिया एवं इसे उसके भाई पर तान दिया। उसके भाई ने पिस्तौल पकड़ लिया एवं तब मंगरा ने अपने दोस्त सोमरा से बम देने को कहा, जिसपर उसके भाई ने उसे अपने 'मामा' को बुलाने को कहा। उसने शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया एवं अभियुक्तों ने भागना प्रारम्भ कर दिया, जिसपर बम गिर पड़ा एवं अभियुक्त की ऊंगली काटते हुए फूट गया। लगभग 11 बजे रात्रि में, प्रभारी अधिकारी, शिवाजी प्रसाद वहाँ आए जिसपर कथन दिया गया। अगले दिन पुनः, पुलिस आयी एवं कटी हुई ऊंगली को अभिग्रहित किया। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कहा कि पुलिस ने कभी भी उसका कथन अभिलिखित नहीं किया और न ही उसकी परीक्षा की। उसने पैरा 7 में कहा कि घटना के समय पर ही वह अभियुक्त मंगरा एवं सोमरा के नाम जानता था।

9. अन्य साक्षी, अर्थात् अ॰ सा॰ 1 कौशलेन्द्र कुमार ने कहा कि घटना की तिथि, अर्थात् 7.1.1998 को लगभग 7.30 बजे शाम में घटना राजेश के दुकान में घटी एवं दो व्यक्ति दुकान पर आए एवं उनलोगों ने पिस्तौल की नोंक पर पैसों की मांग की, राजेश ने पिस्तौल को छीन लिया परन्तु वे लोग भाग गए। उसने पिस्तौल की अभिग्रहण सूची पर अपने हस्ताक्षर प्रमाणित किए। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कहा कि उसने अभियुक्तों में से किसी की पहचान नहीं की एवं सूचनादाता राजेश कुमार ने उनसे अभियुक्तों का नाम नहीं बताया।

10. अ॰ सा॰ 2 उमेश प्रसाद ने भी न्यायालय में यह कहा कि 7.1.1998 को घटना सूचनादाता राजेश कुमार के दुकान में घटी, राजेश कुमार ने उसे बताया कि दो अभियुक्त पिस्तौल की नोंक पर उससे 'रंगदारी' की मांग कर रहे थे एवं 'छीना-झपटी' के दौरान, पिस्तौल गिर गया। उसने यह भी कहा कि उसने उससे अभियुक्त का नाम नहीं बताया था।

11. अ॰ सा॰ 3, निरन्जन प्रसाद ने भी यह कहा था कि घटना 7.1.1998 को घटी थी एवं जब उनलोगों ने शोर मचाया तो दोनों अभियुक्त व्यक्ति भाग गए। उनलोगों ने उन सब का पीछा भी किया, परन्तु वे लोग भाग गए। उसने किसी भी अभियुक्त को नहीं पहचाना। राजेश ने उसे बताया कि अभियुक्त उससे पिस्तौल की नोंक पर पैसों की मांग कर रहे थे एवं उसके विरोध करने पर, पिस्तौल गिर पड़ा एवं डकैत भाग गए। वे लोग गिर भी गए थे एवं बम फूट गया परन्तु सूचनादाता द्वारा डकैतों का नाम उसे नहीं बताया गया था।

12. अ॰ सा॰ 5, बिनोद प्रसाद ने न्यायालय में कहा कि घटना की तिथि, अर्थात् 7.1.1998 को लगभग 7.30 बजे शाम में राकेश ने उसे बुलाया यह कहते हुए कि 'मामा' चोर दुकान में प्रवेश कर गए हैं, जिसपर उसने शोर मचाया एवं अन्य साक्षीगण निरन्जन, संतोष एवं उमेश आए एवं अभियुक्त व्यक्ति भाग गए। राजेश ने उसे बताया कि दुकान पर दो व्यक्ति आए थे। उनलोगों ने सिगरेट की मांग की थी एवं जब उसने पैसों की मांग की और अभियुक्त ने एक पिस्तौल निकाल ली जिसे उसने पकड़ लिया। अपने प्रति-परीक्षण में उसने कहा कि उसने अभियुक्तों में से किसी की भी पहचान नहीं की। वह सोमरा एवं मंगरा को नहीं जानता है।

13. अ॰ सा॰ 6, संतोष कुमार ने भी यह बताया कि 7.1.1998 को घटना घटी एवं शोर सुनकर वह राजेश की दुकान पर पहुँचा। राजेश ने उसे बताया कि दो अभियुक्त मंगरा एवं सोमरा वहाँ आए थे। वे लोग पिस्तौल की नोंक पर पैसों की मांग कर रहे थे परन्तु उसने कहा कि उसने घटना नहीं देखी थी।

14. इस प्रकार स्वतंत्र साक्षियों अ॰ सा॰ 1 से 3 एवं 5 के साक्ष्य से यह प्रकट है कि सभी साक्षीगण घटना के तत्काल बाद आए। उनलोगों से अभियुक्त का नाम नहीं प्रकट किया गया था। यद्यपि, अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 7 ने भी दावा किया की उनलोगों ने अभियुक्त को पहचाना था एवं वे उनलोगों के नाम मंगरा ओरांव के तौर पर एवं उसके पिता का नाम भी जानते थे। अ॰ सा॰ 4 एवं अ॰ सा॰ 7 दोनों ने कहा था कि टेलीफोन किए जाने पर दारोगा लगभग 11.30 बजे रात्रि में आए परन्तु फर्दबयान से यह प्रतीत होता है कि इसे 1 बजे रात्रि में पेश किया गया था जो अभियोजन केस पर संदेह उत्पन्न करता है। अभिग्रहण सूची जिसे विचारण में भी प्रदर्श के तौर पर चिन्हित किया गया है, यह कहता है कि अभिग्रहण सूची को 8.1.1998 को 1.45 बजे दोपहर में तैयार किया गया था एवं इस प्रकार दोनों ही साक्षियों अ॰ सा॰ 4, अ॰ सा॰ 7 एवं अ॰ सा॰ 5, मामा के कथन अभिग्रहण सूची, इसके समय एवं स्थान तथा फर्दबयान के स्थान एवं समय के सम्बन्ध में विरोधाभाषी हैं। यह प्रतीत होता है कि

सूचनादाता ने अभियुक्तों की पहचान नहीं की थी एवं बाद में अगले दिन उसने यहाँ वहाँ से एवं अनुमान पर अभियुक्त व्यक्तियों को नामित किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 11 में अभियुक्त सोमरा ओरांव को दोषमुक्त करते समय यह कहा है कि चुँकि सूचनादाता ने घटनास्थल पर एकत्रित लोगों को अभियुक्तों के नाम नहीं बताए इसलिए सोमरा ओरांव संदेह का लाभ प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।

15. मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि साक्ष्य के आधार पर संदेहास्पद है। तद्नुसार, श्री आर॰ एन॰ वर्मा, अपर न्यायिक आयुक्त-सह-विशेष न्यायाधीश सं॰ 1, राँची द्वारा पारित दिनांक 9 जनवरी, 2002 के निर्णय एवं आदेश को अपास्त किया जाता है एवं अपील को अनुज्ञात किया जाता है।

16. अपीलार्थी मंगरा ओरांव जमानत पर है एवं इस प्रकार उसे अपने जमानत बंधपत्रों के बंधन से निर्मुक्त किया जाता है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

रूप नारायण दास

बनाम

सेन्ट्रल कोलफिल्ड लि॰ एवं अन्य

WP (S) No. 4881 वर्ष 2007. 8 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति–अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावे को बिना कोई तर्क दिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि नियुक्ति का अधिकार एक मूल्यवान अधिकार है एवं विनिर्दिष्ट आधार का वर्णन किए बिना ऐसे अधिकार से इनकार नहीं किया सकता है। (पैरा 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. N. K. Sahani, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा निर्गत दिनांक 20/23.12.2006 के पत्र के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है, जिसके द्वारा अनुकंपा के आधार पर याची की नियुक्ति की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया है। याची की अग्रेतर प्रार्थना अनुकम्पा के आधार पर उसकी नियुक्ति करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने की है।

2. यह कहा गया है कि याचीगण के पिता की जो प्रत्यर्थी सं॰ 1 के अधीन मजदूर के तौर पर कार्यरत थे, मृत्यु 13.6.2004 को सेवाकाल में हो गयी। अपने पिता की मृत्यु के उपरांत, याची ने कर्मकार स्व॰ पचन दास के आश्रित पुत्र होने के कारण प्रत्यर्थीगण के नियमानुसार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया। उसने अन्य आश्रित(तों) द्वारा अपनी अनापत्ति देने वाले शपथपत्र एवं अन्य अपेक्षित दस्तावेज भी संलग्न किए। परन्तु रिट याचिका के उपाबंध 4 में अंतर्विष्ट दिनांक 20/23.12.2006 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थीगण ने उसके आवेदन को इस आधार पर विचार करने से इनकार कर दिया है कि उसका नाम सेवा अभिलेख में पश्चातवर्ती प्रक्रम पर प्रविष्ट किया गया था एवं वह प्रविष्टि विधिमान्य नहीं है। उक्त अस्वीकृति के विरूद्ध याची ने विभाग के समक्ष एक अपील दाखिल किया, परन्तु इसे नहीं सुना गया था। तत्पश्चात् याची ने इस रिट आवेदन को दाखिल किया।

3. प्रत्यर्थीगण ने प्रति शपथपत्र दाखिल किए हैं एवं याची के दावे से इस आधार पर इनकार किया है कि याची अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पाने का अधिकारी नहीं है क्योंकि उसका नाम बाद

में भिन्न लिखावट में सेवा अभिलेख में प्रविष्ट किया गया था। सेवा अभिलेख में उपलब्ध कराया गया नाम भी याची के नाम के साथ सही रूप से मेल नहीं खाता है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची के दावे से इनकार करने के लिए दिया गया तर्क पूर्णत: तुच्छ है। याची के दावे से इनकार करने का एक अस्पष्ट एवं अविनिर्दिष्ट आधार अपनाया गया है कि उसका नाम बाद में दर्ज किया गया था। इस बात का कोई विवरण नहीं है कि किस अभिलेख में प्रविष्टि की गयी है एवं इसमें क्या गलत है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रति शपथपत्र में यह कथन करते हुए एक स्पष्टीकरण उपलब्ध कराया गया है कि याची का नाम सेवा अभिलेख में दर्ज नाम से मेल नहीं खाता है एवं यह कि प्रविष्टि एक भिन्न स्याही में है। शपथपत्र के माध्यम से दिए गए पश्चातवर्ती स्पष्टीकरण को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि याची का नाम सेवा अभिलेख में दर्ज नहीं किए जाने का कोई कारण वर्णित नहीं किया गया गया है, फिर भी इसे कई कारणों से स्वीकार नहीं किया गया है।

6. सुनवायी के दौरान, याची की ओर से यह निवेदन किया गया है कि ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि यह प्रविष्टि याची या उसके स्वर्गीय पिता द्वारा कपटपूर्वक की गयी थी। प्रविष्टि प्रत्यर्थीगण के अभिलेख में है। यदि प्रविष्टि में कोई अनियमितता थी तो याची के पिता को सूचित किया जाता एवं स्पष्ट करने का मौका दिया जाता। मैं उक्त निवेदन में सार पाता हूँ।

7. यह सुस्थापित है कि किसी मूल्यवान अधिकार को इनकार करने से पूर्व, कारणों को स्वयं आदेश में ही बताया जाना चाहिए। शपथपत्र के माध्यम से बाद में दिया गया स्पष्टीकरण विधि में ग्राह्य नहीं है। रिट याचिका के उपाबंध 4 में अंतर्विष्ट आक्षेपित आदेश से, मैं पाता हूँ कि याची के दावे को अस्वीकार करने के लिए कोई आख्यापक तर्क एवं कोई विनिर्दिष्ट आधार नियत नहीं किया गया है।

8. आक्षेपित आदेश से यह स्पष्ट नहीं है कि किस अभिलेख की प्रविष्टि याची के नाम से मेल नहीं खा रहे हैं एवं इसे अवैध क्यों समझा गया था।

9. उक्त की दृष्टि में, आक्षेपित आदेश कायम नहीं रह सकता एवं इसे एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को याची के आवेदन पर विचार करने एवं इस आदेश की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर स्पष्ट एवं आख्यापक तर्क अभिलिखित करते हुए एक नवीन आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है। यदि प्रत्यर्थीगण का आक्षेप विधि के किसी नियम या प्रावधान द्वारा समर्थित नहीं पाया जाता है एवं यदि याची अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का अधिकारी पाया जाता है तो प्रत्यर्थीगण उसके बाद एक माह की अवधि के भीतर उस सम्बन्ध में एक यथोचित आदेश पारित करेंगे। यदि याची के आग्रह को स्वीकार करने में कोई विधिक अड़चन पायी जाती है तो इसे आदेश में विनिर्दिष्ट रूप से वर्णित किया जाएगा एवं उक्त अवधि के भीतर लिखित रूप में याची को संसूचित किया जाएगा।

10. तद्नुसार इस रिट याचिका को निस्तारित किया जाता है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

सुमित्रा देवी एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 833 वर्ष 2006. 16 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

(क) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973–धारा 482–सम्पूर्ण दाण्डिक कार्यवाही का अभिखंडन–संज्ञान एक ऐसे पुलिस अधिकारी द्वारा पेश पुलिस रिपोर्ट पर लिया गया जो कोई अधिकारिता नहीं रखता है क्योंकि घटनास्थल उसकी क्षेत्रीय सीमा के अन्तर्गत नहीं आता है–दण्डाधिकारी का आदेश भी मामले के अन्वेषण हेतु नहीं लिया गया था–अभिनिर्धारित, दाण्डिक कार्यवाही विधिमान्य नहीं है। (पैरा 6 एवं 7)

(ख) भारतीय दण्ड संहिता, 1860–धारा 494–द्विविवाह–द्विविवाह की शिकायत व्यथित पक्षकार द्वारा किया जाना चाहिए–पति ने ऐसी कोई शिकायत नहीं की है कि उसकी पत्नी ने दूसरा विवाह रचाया है– अभिनिर्धारित, संज्ञान अविधिमान्य एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 198 का उल्लंघनकारी है। (पैरा 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Tarun Kumar Sinha, For the Petitioners; Mr. A. K. Jha, For the Opp. Parties.

आदेश

इस आवेदन में याची ने श्री कुमार पवन, न्यायिक दण्डाधिकारी, गिरीडीह के न्यायालय में लम्बित जी॰ आर॰ सं॰ 1613 वर्ष 2004, टी॰ आर॰ सं॰ 861 वर्ष 2006 के तत्सम आदित्यपुर थाना केस सं॰ 53 वर्ष 2004 से उद्‌भूत सम्पूर्ण दाण्डिक कार्यवाही के अभिखंडन की प्रार्थना की है।

2. यह प्रतीत होता है कि राजू महतो ने एक लिखित रिपोर्ट दर्ज करायी उसमें यह अभिकथित करते हुए कि उसकी शादी ग्राम अहिल्यापुर के कमलदेव महतो की पुत्री सुमित्रा देवी के साथ हुई थी। यह कहा गया है कि विवाह के उपरांत उक्त कमलदेव महतो उसकी पत्नी को ले गया एवं वर्ष 1994 में उसके विरूद्ध एक केस दर्ज कराया। यह कहा गया है कि उक्त केस में उसे दोषसिद्ध किया गया है। यह भी अभिकथित किया गया है कि तदुपरांत 30.8.2004 को उक्त कमलदेव महतो ने रोहित महतो, लालजीत महतो के साथ मिलकर उपरोक्त सुमित्रा देवी का विवाह किसी मनोज वर्मा के साथ दुखिया मठ में संपन्न कराया। यह अभिकथित किया गया है कि जब सूचनादाता ने उनलोगों को ऐसा करने से मना किया तो उपरोक्त अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उसपर प्रहार किया गया है।

3. यह प्रतीत होता है कि उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर अहिल्यापुर थाना केस सं॰ 53 दिनांकित 7.8.2004 भा॰ दं॰ सं॰ धाराएँ 341, 323, 494 के अधीन संस्थित किया गया था एवं पुलिस ने अन्वेषण प्रारम्भ किया। यह भी प्रतीत होता है कि अन्वेषण पूरा करने के उपरांत, पुलिस ने सी॰ जे॰ एम॰, गिरीडिह, के न्यायालय में आरोपपत्र पेश किया जिन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 341, 323 एवं 494 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया एवं मामले को विचारण हेतु अवर न्यायालय में अंतरित किया।

4. यह निवेदन किया गया है कि लिखित रिपोर्ट के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण घटना दुखिया मठ में घटित हुआ, जो गिरीडिह, (मुफस्सिल) थाना की अधिकारिता के अन्तर्गत है, इसलिए अहिल्यापुर थाना द्वारा प्राथमिकी का दर्ज किया जाना एवं अन्वेषण किया जाना पूर्णतया अधिकारिताविहीन है। यह भी निवेदन किया गया है कि सी॰ जे॰ एम॰, गिरीडिह ने पुलिस द्वारा पेश आरोपपत्र के आधार पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 494 के अधीन अपराध का संज्ञान गलत रूप से लिया। यह निवेदन किया गया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 198 सिवाय अपराध द्वारा व्यथित किसी व्यक्ति के द्वारा किए गए परिवाद के, भा॰ दं॰ सं॰ के अध्याय XX के अधीन दण्डनीय अपराध का संज्ञान लेने की न्यायालय की शक्ति पर प्रतिबंध लगाता है। यह निवेदन किया गया है कि चूँकि सूचनादाता ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 494 के अधीन अपराध की कारिता की शिकायत करते हुए सी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष परिवाद दाखिल नहीं किया था, इसलिए संज्ञान का आदेश विधि में अनुचित है, परिणामत: उक्त संज्ञान के आधार पर अभियुक्त का विचारण भी अविधिमान्य है।

5. दूसरी ओर विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया था कि सी॰ जे॰ एम॰, गिरीडिह एवं/या अन्वेषण अधिकारी द्वारा कोई अविधिमान्यता कारित नहीं की गयी है, इसलिए, यह आवेदन खारिज किए जाने का दायी है।

6. निवेदनों को सुन चुकने के उपरांत, मैंने मामले के अभिलेख का अवलोकन किया है। परिवाद याचिका के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि घटना 30.8.2004 को दुखिया मठ में घटित हुई। यह कहा गया है कि उक्त दुखिया मठ गिरीडिह (मुफस्सिल) थाना की अधिकारिता के अन्तर्गत आता है। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने कोई प्रति शपथपत्र दाखिल करके उपरोक्त तथ्य पर विवाद नहीं किया है। दं॰ प्र॰ सं॰ के अधीन किसी थाने का प्रभारी पुलिस अधिकारी दण्डाधिकारी के आदेश के बिना अपने थाने की क्षेत्रीय अधिकारिता के अन्तर्गत कारित अपराध का संज्ञान ले सकता है। इस प्रकार, यदि कोई अपराध किसी थाने की अधिकारिता से परे कारित किया जाता है तो पुलिस अधिकारी को इसका अन्वेषण करने की कोई अधिकारिता नहीं होती है जबतक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे ऐसा करने को कहा न गया हो। उक्त परिस्थितियों में, एक ऐसे अपराध के लिए अहिल्यापुर थाने के पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण जो गिरीडिह (मु॰) थाने की अधिकारिता में घटित हुआ, उसकी अधिकारिता से परे है, तद्नुसार अहिल्यापुर थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा पेश आरोपपत्र अविधिमान्य है एवं अधिकारितारहित है।

7. मैं वर्तमान मामले में एक अन्य अविधिमान्यता पाता हूँ। यह प्रतीत होता है कि विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, गिरीडिह ने अहिल्यापुर थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा पेश आरोपपत्र के आधार पर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 494 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया था। यह वर्णण करना सुसंगत है कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 494 के अधीन अपराध अध्याय XX अर्थात् विवाह से सम्बन्धित अपराध में शामिल है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 198 यह प्रावधान करता है कि कोई भी न्यायालय अपराध से व्यथित पक्षकार के द्वारा किए गए परिवाद के सिवाय भा॰ दं॰ सं॰ के अध्याय XX के अधीन दण्डनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा। स्वीकार्यत: पति (जो इस मामले का सूचनादाता है) ने न्यायालय में कोई परिवाद दाखिल नहीं किया है कि उसकी पत्नी ने द्वितीय विवाह रचाया था एवं तद्द्वारा द्विविवाह का एक अपराध कारित किया था। यह भी एक स्वीकृत स्थिति है कि विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ ने पुलिस रिपोर्ट के आधार पर संज्ञान लिया। उक्त परिस्थितियों में, सी॰ जे॰ एम॰ का वह आदेश जिसके द्वारा उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 494 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया, दं प्र॰ सं॰ की धारा 198 का उल्लंघनकारी है।

8. उपर किए गए विवेचनों की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि श्री कुमार पवन, न्यायिक दण्डाधिकारी, गिरीडिह के न्यायालय में लम्बित जी॰ आर॰ सं॰ 1613 वर्ष 2004/टी॰ आर॰ सं॰ 861 वर्ष 206 के तत्सम अहिल्यापुर थाना केस सं॰ 53 वर्ष 2004 के सम्बन्ध में याचीगण के विरूद्ध सम्पूर्ण दाण्डिक कार्यवाही अविधिमान्य है।

9. परिणामस्वरूप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। श्री कुमार पवन, न्यायिक दण्डाधिकारी, गिरीडिह के न्यायालय में लम्बित जी॰ आर॰ सं॰ 1613 वर्ष 2004 (टी॰ आर॰ सं॰ 861 वर्ष 2006) के तत्सम अहिल्यापुर थाना केस सं 53 वर्ष 2004 से सम्बन्धित सम्पूर्ण दाण्डिक कार्यवाही को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है।